जैनागम सारांश

भाग ३

तत्त्व ज्ञान

खण्ड–1

वरिष्ठ स्वाध्यायी तत्त्व चिंतक
"जिन शासन रत्न"
विमल कुमार नवलखा

जैनागम सारांश

32 जैन आगमों का हिन्दी में (चित्र एवं चार्ट सहित)

भाग-3 तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-1

प्रेरणा पुंज

गणाधिपति महास्थविर विद्धद्वर्य ***श्री शान्तिमुनिजी म.सा.***

शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, ***आचार्यप्रवर श्री विजयराजजी म.सा.***

की 50वीं दीक्षा जयंति (स्वर्ण जयंति) वर्ष के पावन शुभअवसर पर

मार्गदर्शक

आगम ज्ञाता विद्धद्वर्या बहिन साध्वी युगल

महासती ***श्री शीलप्रभाजी म.सा.*** **की 31वें दीक्षा वर्ष उपलब्धि एवं**

महासती श्री ***सत्यप्रभाजी म.सा.*** **की 25वीं दीक्षा जयंति (रजत जयंति) वर्ष के शुभअवसर पर**

लेखक एवं संपादक

विमल कुमार नवलखा (जगपुरावाला)

29-30-31, चिराग रेसिडेन्सी, कीम (पूर्व)

जिला-सूरत (गुज.)

मो. : 9426883605 e-mail : vimalnavlakha54@gmail.com

प्रकाशक

नवकार इन्टरनेशनल (नवलखा ग्रुप)

एक्सपोर्ट हाउस, अहमदाबाद (गुज.)

पुस्तक	-	जैन आगम सारांश
		(भाग-3) तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-1
संप्रेरक	-	गणाधिपति महास्थविर विद्वद्वर्य **श्री शान्तिमुनिजी म.सा.**
		शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, **आचार्यप्रवर श्री विजयराजजी म.सा.**
प्रेरणा एवं मार्गदर्शक	-	बहिन साध्वी युगल **श्री शीलप्रभाजी म.सा. एवं श्री सत्यप्रभाजी म.सा.**
लेखक	-	विमल कुमार नवलखा
प्रकाशक	-	नवकार इन्टरनेशनल (नवलखा ग्रुप)
पुस्तक प्राप्ति	-	विमल कुमार नवलखा
		29-30-31, चिराग रेसीडेंसी, कीम (पूर्व), सूरत (गुज.)
मुद्रक	-	स्वदेशी ऑफसेट, उदयपुर (राज.)-313001
		E-mail : swadeshioffset@gmail.com
		Mo. : 09784845675
मूल्य	-	ज्ञानार्जन

शुभ–आशंषा

– आचार्य श्री विजय गुरूदेव

वचनों का सार प्रवचन है, प्रवचनों का सार आगम है, आगमों का सार क्या है ? इस सवाल के जवाब में गुरू फरमाते हैं–अनुभव सम्मत आचरण ही आगमों का सार है, आगम दूध की तरह होते हैं, दूध के हर अंश में मलाई है मगर वह दूध के अंश जितनी ही है। जब सम्पूर्ण दूध को मथते है तो दूध के सारे अंशों से मलाई का हिस्सा निकलता है मगर जितना दूध है उतनी मलाई नहीं होती, उस मलाई में दूध का सारा भाग आ जाता है वैसे आगमों का सार आचरण है। उस आचरण में आगम का सम्पूर्ण सार आ जाता है, बस अपना आचरण आगम सम्मत हो और अनुभव सम्मत हो, उस आचरण को आगम सम्मत बनाने के लिए विद्वान्, श्रुत आराधक भाई विमल जी नवलखा वर्षों से प्रयत्नशील है। समय–समय पर आप अपनी प्रतिभा से आगमों के सारांश को प्रस्तुत करते रहे हैं। आप हमारे संघ की साध्वीरत्ना महासती श्री शीलप्रभा जी म.सा., महासती श्री सत्यप्रभा जी म.सा. के सांसारिक अग्रज भ्राता है। महासतीद्वय भी प्रतिभाशाली है और प्रवचनों व लेखन के माध्यम से साहित्यश्री की अभिवृद्धि में सतत पुरूषार्थरत रहती है।

श्रीमान् नवलखा सा. अपनी योग्यता व प्रतिभा से शासन सेवा में समर्पित रहे यही अंतरंग आशा व अभिलाषा है।

अनुमोदना

अनन्तकाल से जीव जड़ के संयोग को अपनत्व समझकर मोहपाश में बंधकर, चार गति चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। पुण्य से बंधन में वह देव एवं मनुष्य गति में तथा पापाचरण के कारण तिर्यंच एवं नरकायु को भोगता है। अज्ञान, मोह, कषाय, मिथ्यात्व के कारण यह परिभ्रमण अनवरत चला आ रहा है।

आत्म तत्त्व के बारे में चिंतन हुआ ही नहीं क्योंकि इतने पुण्यायु बंधी पुण्य का संग्रह भी शायद हुआ नहीं कि मनो भावनाएं उस ओर प्रगति कर सके। मनुष्य भव अति दुर्लभ है और ''चतुरंगाणि परमंगाणि'' के न्याय स्वरूप आत्म तत्त्व की ओर हो गया, वह मानो भव सागर तिरने की कगार पर आ गया।

आगम बत्तीसी के 32 आगमों में सम्यग ज्ञान, दर्शन चरित्र एवं तप का विशद विश्लेषण किया गया है, निगोद से मोक्ष तक की जीवन यात्रा का स्वरुप तात्त्विक रुप से समझाया गया है, चतुर्विध संघ के आचार-विचार, व्यवहार को दिग्दर्शित किया गया है, इनको आचार शास्त्र विभाग, उपदेश एवं धर्म कथा शास्त्र विभाग एवं तत्त्वज्ञान शास्त्र विभाग में संयोजन करके गंभीर विषय को सरलता से संक्षिप्त सारांश रुप देकर उत्कृष्ट कार्य किया है।

हमारे सांसारिक अग्रज भ्राता श्री विमल कुमारजी नवलखा वरिष्ठ स्वाध्यायी हैं और आगम आदि पठन-पाठन में गाढ़ रूचि रखते हैं, पूर्व में आगम बत्तीसी सारांश (हिन्दी संस्करण), पर्युषण में प्रवचनोपयोगी 'अन्तर्मन के मोती' थोकड़ों के लिए जैन तत्त्व दर्शन, जैन आगमों में मध्यलोक, संलेखना संथारा जैनागमों में लोकस्वरूप आदि का विशिष्ट संकलन कर समाज को लाभान्वित कर स्वयं की आत्मा को भावित करते आ रहे हैं, यह हमारे लिए भी गौरवपूर्ण है। प्रस्तुत ग्रंथ ''जैनागम सारांश'' चार भागों में प्रकाशित कराया है, बहुत मनोहर है, चित्र एवं चार्ट आदि से वस्तु तत्त्व को अच्छी तरह से समझाया गया है, हमने भी इनका अवलोकन किया कार्य स्तुत्य है, हम अनुमोदना प्रेषित कर भावी जीवन की आध्यात्मिक मंगल कामना करते हैं।

बहिन साध्वी द्वय

दिनांक : 1 जून, 2024 **शीलप्रभा एवं सत्यप्रभा**

आचार्य
शिवमुनि

मंगल संदेश

समस्त जिनवाणी का सार एक शब्द में कहे तो 'मैं जीवात्मा हूँ।' आत्मा को केन्द्रिभूत रखकर समस्त तीर्थकर जिनवाणी प्रदान करते है। जीव मात्र के कल्याण के लिए तीर्थकर देशना प्रदान करते है।

जीव का मिथ्या दर्शन है की वह अपने को छोड़कर अजीव तत्व को, पर तत्व को, देह को अपना मानकर, देह के लिए विभाव में जाता है और अपना स्वभाव छोड़कर कर्त्ता-भोक्ता बनता है, क्रिया-प्रतिक्रिया करता है, कषाय की उत्पत्ति करता है और चार गति चौरासी लाख जीवायोनि में यात्रा कर रहा है।

जीव में अष्ठ गुणों की सम्पदा होते हुए भी प्रकट नहीं रही, उसका मूल कारण है मिथ्या दर्शन। जो सब पापों का मूल है, आस्रव का मूल कारण है। सभी तीर्थकरों ने सम्यक्त्व का, सत्य का बोध करवाया, जीव को उसके स्वरूप का बोध करवाया और उसमें स्थित होने की विधि प्रदान की।

अस्तित्व का बोध, उस पर श्रद्धा, भेद-विज्ञान व आत्म स्थिरता ये मोक्ष मार्ग की सीढ़िया है। आत्मार्थी साधकों को इस विधि का प्रयोग करते हुए आत्म ध्यान के प्रयोग सीखकर भेद-विज्ञान प्राप्त कर क्षायिक सम्यक्त्व का पुरूषार्थ करते हुए केवल ज्ञान की ओर बढ़ना चाहिए। मिथ्यात्व व मोह का त्याग, वैराग्य के द्वारा वीतरागता की ओर बढ़ते जाए।

जिनवाणी का पारायण करते हुए 32 आगमों के नवनीत को वरिष्ठ स्वाध्यायी जिनशासन रत्न श्री विमलकुमार जी नवलखा द्वारा जैनागम सारांश चार भागों में प्रकाशित होने जा रहा है। आपका उत्तम पुरूषार्थ अनुमोदनीय है, प्रशंसनीय है। जिनवाणी रसिक चतुर्विध संघ से अनुरोध है आगम सारांश का स्वाध्याय कर हेय, ज्ञेय, उपादेय को ध्यान में रखकर आत्म कल्याण के क्षेत्र में आगे बढ़े।

सहमंगल मैत्री,

दिनांक -: 11-04-2024
स्थान -: आत्म भवन, अवध संगरीला, सूरत (गुजरात)

शिवमुनि
(आचार्य शिवमुनि)

www.jainacharya.org
shivacharyaji@yahoo.co.in
09350111542
http://www.facebook.com/shivmuni
http://www.twitter.com/jainacharya
http://acharyashivmuni.blogspot.in/
http://www.youtube.com/jainacharyaji
JAINACHARYA

लेखक के दो शब्द

परम पूज्य, परम कृपालु, देवाधिदेव, चरम तीर्थंकर, भगवान महावीर स्वामी ने केवलज्ञान प्राप्त कर सतत् परोपकार में रहकर धर्मदेशना रूपी अमृत का दान जगत के जीवों के लिए किया।

केवलज्ञान से सर्व अर्थों को जानकर उसमें जो प्रज्ञापनीय अर्थ हैं, उन्हें प्रभु फरमाते हैं। गणधर भगवंत उस ''आगम वाणी'' को झेलकर सूत्र रूप गुंथित करते हैं, यह सूत्र रूप रचित पदार्थ यानि श्रुतज्ञान।

जगत में दो प्रकार के पदार्थ हैं, (1) अनभिलाप्य (नहीं कह सकने वाले) (2) अभिलाप्य (कह सकने वाले)। जो कहे जा सकें उनके भी दो विभाग हैं (1)अप्रज्ञापनीय (जो समझाये (बताये) न जा सके) (2) प्रज्ञापनीय (बताये या समझाये जा सके)।

अभिलाप्य पदार्थों से अनभिलाप्य पदार्थ अनंत हैं, अभिलाप्य कम हैं, थोड़े हैं, अप्रज्ञापनीय उनसे भी कम हैं, प्रज्ञापनीय पदार्थ अल्प हैं, फिर भी यह अल्पता अत्यन्त विशाल है। ऐसे अभिलाप्य-प्रज्ञाापनीय पदार्थों का संग्रह यानि ''आगम ग्रंथ''।

आगम यानि समुद्र का मंथन जिनका अवगाहन दुष्कर, अति दुष्कर है। सामायिक से लेकर बिन्दुसार नामक 14वें पूर्व तक श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान का सार चारित्र है, और चारित्र का सार मुक्ति (मोक्ष) सुख है।

अगाध जलराशि से परिपूरित समुद्र में से रत्न खोजना अति कठिन, दुष्कर कृत्य है, फिर भी उस महाभयावह वारिधि में से भी रत्न जिज्ञासु खोजने के लिए तत्पर होकर रत्नों की प्राप्ति कर ही लेते हैं। तलस्पर्शी अभ्यास करने वाले महान् आत्मार्थी मनीषियों ने ''आगम भंडार'' वाचकों के समक्ष रखकर महान् उपकार किया है।

तत्त्वरूपी ''रत्न'' ये आगम ग्रंथ हमारे समक्ष विद्यमान हैं, उपकारियों ने शास्त्रों के माध्यम से ''अदृष्ट जगत'' के दर्शन कराकर हम पर उपकार किया है।

जैन शासन के चारों अनुयोग द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, कथानुयोग, चरणकरणानुयोग का एक महान् संकलन आगम सारांश में कर दिया है। इस ज्ञानार्णव को विषय प्रतिपादन कौशल्य से 4 विभागों में विभक्त कर, समस्त विषय का सम्पूर्ण विवेचन पूर्वक वर्णन इस में किया है।

तत्त्वज्ञान अत्यंत जटिल विषय है, फिर भी चार्ट आदि एवं चित्रादि के माध्यम से सरल पठनीय शैली से सम्पादन करने की कोशिश की है।

सम्पूर्ण लोक के समस्त पदार्थों का समुचित दिग्दर्शन जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि जगत के तत्त्वों, पदार्थों को एक ग्रंथ में समाकर ''गागर में सागर'' की युक्ति को कृतार्थ की है।

विषय वस्तु- जैनागमों में विस्तृत एवं यत्र तत्र बिखरे पुष्पों को एकत्रित कर विषयानुकूल सम्पादन करने की चेष्टा करते हुए आचार, संस्कार, उपदेश, कथाशास्त्र एवं तत्त्वज्ञान को इस ग्रंथ में यथास्थान प्रस्तुत किया है। सभी का पारस्परिक

संयोजन होने से एक दूसरे की वक्तव्यता में एक दूसरे का संदर्भ भी आवश्यकतानुसार दिया है। पाठकों को संदर्भ की उचित जानकारी हो सके यही मंतव्य रहा है।

32 जैनागमों का विस्तृत वर्णन पढ़कर, उनमें से सार रूप ग्रहण कर पाठकों के समक्ष रखना, और उसे सुरुचि, पूर्व बनाना यह अत्यन्त दुष्कर था. परन्तु ''जहाँ चाह वहां राह'' की उचित को चरितार्थ करते हुए यह कदम उठाया और वर्षों तक रही हुई लालसा को पूर्ण किया।

सन् 1987 से 1992 तक के पांच वर्षों में श्रद्धेय त्रिलोक मुनि ने अति परिश्रम करके मेरे इस भगीरथ कार्य को पूर्ण किया था, उनेक स्वर्गवास के पश्चात पुनः इसकी जरूरत महसूस हुई, और इस कार्य को नवीनतम रूप देकर चित्रों एवं सारणियों, चार्टो का समावेश करके इस आगम सारांश लेखन को पुनः गतिमान किया, इस ज्ञान गंगा को सर्वत्र पहुंचाने एवं इस आगम रस से आप्लावित करने के इस पुण्योपार्जन में मेरी सुज्ञा बहिन साध्वि द्वय परम् विदुषी श्रद्धेय शील प्रभाजी म.सा. एवं आगम ज्ञाता पंडित रत्न श्री सत्य प्रभाजी म.सा. विशेष योगदान रहा, चित्र, सारणियों, चार्ट ये सभी उन्हीं की आगम ज्ञान पिपासा की झलक है।

महास्थविर गणाधिपति, प्रकांड पंडित, आगम मर्मज्ञ, विद्वदवर्य श्री शांति मुनि जी म.सा. एवं शासन गौरव, प्रज्ञानिधि, जिन शासन के अनमोल रत्न आचार्य प्रवर श्री विजयराज जी म.सा. के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से आगम सारांश का लेखन, सम्पादन का कार्य बड़ी ही उमंग, उत्साह से प्रारंभ किया और सभी गुरूजनों के ज्ञान प्रकाश तले यह कार्य उत्तरोत्तर करता रहा।

32 आगमों की विषय वस्तु को मैंने 3 भागों में विभक्त करने का प्रयास किया **यथा–** 1.आचार शास्त्र विभाग, 2. उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग 3. तत्त्व ज्ञान विभाग। तत्त्वज्ञान विभाग अत्यन्त विस्तृत होने से इसे दो भागों में विभक्त किया। इस प्रकार 4 भाग बनाये गये। यथा-

1. आचार शास्त्र विभाग– आचारांग सूत्र आवश्यक सूत्र एवं चार छेद सूत्रों के साथ दशवैकालिक सूत्र तथा चूलिकाएं एवं सूत्रकृतांग सूत्र का समावेश कर इनके परिशिष्टों के साथ संयोजन करके लेखन सम्पादन किया, इससे साधु-साध्वियों के आचार आदि का विस्तृत प्रथम भाग में नियोजन किया गया है। पासत्थादि का विवेचन देकर प्रथम भाग को सुरुचि पूर्ण बनाया है। सर्वप्रथम आचारांग सूत्र एवं उसके परिशिष्ट, आवश्यक सूत्र एवं उसके परिशिष्ट तथा 4 छेद सूत्र उनके परिशिष्ट और साथ में पासत्थादि, नियंठा स्वरूप आदि का समावेश कर विस्तृत एवं रोचक तथा शास्त्रीय प्रमाणादि देकर सुरूचिपूर्ण बनाया।

2. उपदेश एवं कथा शास्त्र विभाग– यह विस्तृत सूत्रों का विभाग है, इसमें, अंग, उपांग एवं मूल सूत्रों का संयोजन करके नंदी सूत्र की कथाएं, परिशिष्ट आदि देकर अत्यंत रोचक पठनीय, मननीय, उपदेशात्मक बनाया है। उपासक दशा अन्तकृत दशा जैसे उपदेशी सूत्रों का संकलन चतुर्दिध संघ के लिए अप्रतिम भेंट स्वरूप विभाग प्रदान करने की भरपूर कोशीश की है। इस भाग में नन्दी सूत्र इसकी कथाएं अनुयोग द्वार सूत्र आदि मूल सूत्रों के साथ औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीय एवं 5 उपांग सूत्रों के साथ, ज्ञाता धर्म कथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, प्रश्न व्याकरण, विपाक सूत्र, अनुत्तरोपपातिक आदि अंग सूत्रों का महा समायोजन करके 15 सूत्रों का सारांश लिखकर, पर्युषण सम्बन्धी रोचक व्याख्यान सामग्री अन्तकृत सूत्र के साथ देकर इस ग्रंथ भाग को जिज्ञासा मय बनाया है।

3. तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-1 इसमें उत्तराध्ययन सूत्र, अंग सूत्रों में से ठाणांग एवं समवायांग आदि गणितीय सूत्रों का समावेश करके उपांग सूत्रों में से जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति, ज्योतिषगण राज प्रज्ञप्ति (चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति) एवं जीवाजीवाभिगम सूत्र का विवेचन विस्तृत करके चार्ट एवं चित्रादि देकर अति रोचक पठनीय बनाया है। भ्रान्तियां निवारण करने, द्विअर्थी शब्दों, नक्षत्र भोजन आदि के बारे में निराकरण करके स्वमत स्थपित किया है। गुणस्थान प्रकरण देकर इस भाग को अति रोचक बनाया है।

4. तत्त्वज्ञान विभाग खण्ड-2- इस विभाग में प्रज्ञापना सूत्र, भगवती (व्याख्या प्रज्ञप्ति) सूत्र जैसे अति विशाल सूत्र शास्त्रों का दोहन करके तत्त्वज्ञान जैसे अपार ज्ञान भंडार को श्री संघ के सम्मुख पठनीय, मननीय, ज्ञेय बनाकर प्रस्तुत करना महान् चुनौति भरा कार्य था, इसलिए इस चौथे खण्ड को पूर्णतः अलग करके अलग ग्रंथ रूप देने का विचार करके, इसे अति भव्य बनाने के लिए चार्ट एवं चित्रादि देकर इसे साधु-साध्वी एवं अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों, पी.एच.डी. तथा डॉक्टरेट (D.Lit.) करने वाले भव्य जनों के लिए अति सरल एवं सरस पाठ्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया है। इसका श्रेय मेरी अत्यन्त आदरणीय सुज्ञ आगम मर्मज्ञ विदुषी साध्वी रत्ना बहिन द्वय श्री शीलप्रभाजी म.सा. एवं सत्यप्रभाजी म.सा. को देता हूँ, जिनके अथक परिश्रम, मार्गदर्शन एवं सत्प्रेरणा से अत्यंत सुलभ हो गया, जिससे सागर को गागर में भरकर विद्वान पाठकों के समक्ष रख सका।

आगम सूत्रों की विषय वस्तु की गहनता, अनेकार्थता को सुगम्य बनाने हेतु आवश्यकतानुसार परिशिष्ट देकर रोचकता और अर्थ ग्रहण को सुरुचि पूर्ण बनाने एवं द्वि अर्थ सूचक और अन्य मतावलम्बियों के प्रक्षिप्त संदेहात्मक शब्द रचनाओं को भी पारदर्शक और स्वमतानुसार बनाने का भी श्रम किया। विवादास्पद शब्द रचनाओं के प्रति सजग रहते हुए कहीं कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, उसके लिए मैं विद्वदवर्य पाठक गण से क्षमा प्रार्थी हूं। स्वमत रखने के लिए अन्य मत का या द्विअर्थी शब्द रचनाओं का खण्डन आवश्यक होता है। इसी को ध्यान में रखते हुए, स्वमत प्रतिष्ठित करने का प्रयास मात्र है।

विशालतम आगम साहित्य को संक्षिप्त और सरल हिन्दी भाषा में समस्त जन समुदाय के लिए उपयोगी बने, ऐसा विचार करके ये सारांश प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे पूर्व भी कई रचनाएं प्रस्तुत की पर्युषण पर्वराधना में स्वाध्यायियों के लिए उपयोगी 'अन्तर्मन के मोती' थोकड़ो के लिए उपयोगी 'जैन तत्त्व दर्शन' भाग 1 एवं 2, 'जैनागमो में मध्यलोक' भूगोल संबंधी, 'जैनागमों में लोक स्वरूप' भाग 1 एवं 2 लोक द्रव्य क्षेत्र काल भाव का दिग्दर्शन करने हेतु, जैनागमों में उत्कृष्ट एवं संलेखना संथारा ये रचनाएं समाज के समक्ष रखते हुए अत्यधिक आनन्द का अनुभव हुआ।

उक्त नवीन रचना जैनागम सारांश 4 खण्डों में प्रस्तुत कर आप सभी के समक्ष रखते हुए अपार आनन्द और हर्ष की अनुभूति हो रही है, मानो वत्स अपने अभिभावकों के श्री चरणों में पुष्प अर्पित कर रहा है।

इस आगम सारांश रचना को अध्ययन करते समय इसमें कोई त्रुटि नजर आये तो उसे सुधार कर पढ़ने का अनुनय करता हूँ और अल्पज्ञ समझ कर मेरी भूलों के लिए मुझे क्षमा करने का वृहद् हृदय रखें। जिनाज्ञा के विपरीत या विरूद्ध एक शब्द भी लिखने में आया हो तो अरिहन्त सिद्ध भगवन्तों की साक्षी से सभी से करबद्ध क्षमा याचना।

विमल कुमार नवलखा (जगपुरा)

कीम, पीपोदरा सूरत

प्रकाशन सहयोगी दान दाता

21000/- श्रीमान् रमेशचन्द्रजी सा. ओमप्रकाशजी सा. हीरालालजी सा. मांडोत, खमनोर, अंकलेश्वर

21000/- श्रीमान् गणपतलालजी सा. विशाल कुमारजी सा. भलावत, रायपुर (भीलवाड़ा) टिम्बा
श्रीमान् मनोहरलालजी सा. दिनेश कुमारजी सा. पंकज कुमारजी सा. आंचलिया, रायपुर, धोरण पारड़ी
श्रीमान् राजेन्द्र कुमारजी सा. संजय कुमारजी सा. चेतन कुमारजी सा. बोल्या, रायपुर, लाड़वी-मुम्बई, नेरोल

15000/- श्रीमान् सुरेश चन्दजी सा. दीपक कुमारजी सा. नाहर, लाम्बिया, ब्यावर, अंकलेश्वर

11000/- श्रीमान् जीवनसिंहजी सा. चण्डालिया, महाराणा परिवार, घासा, बारडोली

11000/- श्रीमान् सुरेश कुमारजी सा. जीवन सिंहजी सा. दिलीप कुमारजी सा. बाबेल, राशमी, कामरेज

11000/- श्रीमान् चन्द्रसिंहजी सा. प्रशांत कुमारजी सा. मयंक कुमारजी सा. बाबेल डूंगला, कामरेज

11000/- श्रीमान् गौतम कुमारजी सा.अर्पित कुमारजी सा. बोहरा, बर (ब्यावर), कोयम्बटूर

11000/- श्रीमती मदनबाई श्रीमान् मांगीलालजी सा. सौ. कल्पनाजी श्री कांतिलालजी सा. रांका, पूना

11000/- आगममर्मज्ञा डॉ. चेतनाजी म.सा. के पास अध्ययन रत विरक्ता कु. पूजा की ओर से

11000/- श्रीमान् धनराजजी सा. राजकुमारजी सा. समर्थ कुमारजी सा. भंडारी, अरेठ, बारडोली, ब्यावर

6000/- श्रीमान् अंकित कुमारजी सा. निशांत कुमारजी सा. कोठारी, रायपुर, भीलवाड़ा

5100/- श्रीमान् प्रकाशचन्दजी सा. पल्केशजी नमनजी सा. कटारिया, पाली मारवाड़

3000/- श्रीमान् प्रेमसिंहजी सा. शर्मिष्ठ कुमारजी सा. प्रशांत कुमारजी सा. बुरड़, बारडोली

2100/- श्रीमान् पारसमलजी सा. सचिन कुमारजी सा. मेहता, पाली मारवाड़

2100/- श्रीमती कंचन बाई स्व. श्री शांतिलालजी सा. कोठारी, देवगढ़, कामरेज

7500/- श्री जैन दिवाकर महिला परिषद्, चित्तौड़गढ़ (महासती जय श्रीजी म.सा. की प्रेरणा)
श्रीमती अंगूरबालाजी प्रेम कुमारजी सा. भड़क्त्या, अध्यक्ष, चित्तौड़गढ़
श्रीमती नगीनाजी राकेशजी मेहता महामंत्री, चित्तौड़गढ़
श्रीमती नीलमजी संदीपजी तरावत, उपाध्यक्ष, चित्तौड़गढ़
श्रीमती सीमाजी सुनीलजी सिपाणी कोषाध्यक्ष, चित्तौड़गढ़
श्रीमती पुष्पाजी छीतरमलजी चण्डालिया, चित्तौड़गढ

1500/- श्रीमान् ललित कुमारजी सा. स्व. श्री लक्ष्मीलालजी सा. भलावत, रायपुर, कीम

1500/- श्रीमती रेखाजी श्रीमान् मुकेश कुमारजी सा. अम्बालालजी सा. रांका, राजाजी का करेड़ा, अहमदाबाद

1500/- श्रीमती कंचनदेवीश्री किशनलालजी सा. विपिन कुमारजी सा. तातेड़, डिंडोली, चित्तौड़गढ़, थाणे, मुम्बई

1500/- श्रीमान् दिनेश कुमारजी सा. जैन, 8-वीर नगर, दिल्ली रोड मेरठ (यू.पी.)

1500/- श्रीमती मधुजी श्री प्रदीप कुमारजी सा. मठ्ठा, सेंती, चित्तौड़गढ़

1500/- श्रीमान् राजेन्द्रजी सा. पुखराजजी सा. कटारिया, बेलगाम (कर्नाटक)

1500/- श्रीमान् प्रकाशजी, पिंटू कुमारजी, प्रिंस कुमारजी कोठारी, देवगढ़, कामरेज

1500/- श्रीमती प्रेमलताजी श्रीमान् भोपालसिंहजी सा. सांखला, आरणी, कामरेज

1500/- श्रीमान् विनोद कुमारजी सा. नमन कुमारजी सा. दर्शन कुमारजी सा. बोरदिया, चेनपुरा, कीम

अनुक्रमणिका

I उत्तराध्ययन सूत्र

प्रस्तावना	1
प्रथम अध्ययन-विनय श्रुत	3
दूसरा अध्ययन-परिग्रह जय (22)	4
तीसरा अध्ययन-चार दुर्लभ अंग	5
चैथा अध्ययन-कर्मफल एवं धर्म प्रेरणा	6
पांचवां अध्ययन-बाल एवं पंडित मरण	6
छठा अध्ययन-ज्ञान क्रिया	7
सातवां अध्ययन-दृष्टांत युक्त धर्म प्रेरणा	8
आठवां अध्ययन-दुर्गति से मुक्ति	9
नवमां अध्ययन-नमि राजर्षि शक्रेन्द्र संवाद	10
दसवां अध्ययन-वैराग्योपदेश	11
ग्यारहवां अध्ययन-बहुश्रुत महात्म्य	12
बारहवां अध्ययन-हरिकेशि मुनि	13
तेरहवां अध्ययन-चित्त-संभूति (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती)	14
चैदहवां अध्ययन-भृगु पुरोहित	15
पन्द्रहवां अध्ययन-भिक्षु गण	16
सौलहवां अध्ययन-ब्रह्मचर्य समाधि	17
सत्रहवां अध्ययन-पापी श्रमण परिचय	18
अठारहवां अध्ययन-संयति मुनि	19
उन्नीसवां अध्ययन-मृगा पुत्र	20
बीसवां अध्ययन-अनाथी मुनि श्रेणिक संवाद	21
इक्कीसवां अध्ययन-समुद्रपाल मुनि	23
बाइसवां अध्ययन-अरिष्ट नेमि	23
तेइसवां अध्ययन-केशी गौतम संवाद	24
चोइसवां अध्ययन-समिति-गुप्ति	26
पच्चीसवां अध्ययन-जयघोष-विजय घोष	27
छब्बीसवां अध्ययन-समाचारी	27
सत्ताइसवां अध्ययन-गर्गाचार्य	29
अट्ठाइसवां अध्ययन-मोक्ष मार्ग	29
उन्तीसवां अध्ययन-सम्यक पराक्रम (प्रश्नोत्तर) (विविध विषयों के प्रश्नोत्तर)	30
तीसवां अध्ययन-तप स्वरूप	39
इक्तीसवां अध्ययन-चरण विधि	40
बत्तीसवां अध्ययन-प्रमाद से सुरक्षा	41
तैंतीसवां अध्ययन-अष्ट कर्म	42
चौंतीसवां अध्ययन-लेश्या स्वरूप	43
पैंतीसवां अध्ययन-मुनि धर्म	44
छत्तीसवां अध्ययन-जीव अजीव	44
उपदेशी एवं सूत्रगत गाथाएं एवं अर्थ	45
II ठाणांग सूत्र	50
पहला ठाणा-अनेक तत्त्वों को 1 संख्या में	50
दूसरा ठाणा-2 भेद संख्या, 22 क्रियाएं अनेक विषय	50
तीसरा ठाणा-3 की संख्याओं से अनेक विषय	53
चौथा ठाणा-4 की संख्याओं से अनेक विषय	59
पांचवां ठाणा-5 की संख्याओ से अनेक विषय	67
छठा ठाणा-6 की संख्या से अनेक विषय	71
सातवां ठाणा-7 की संख्या से अनेक विषय, निन्हवादि	73
आठवां ठाणा-8 की संख्या से अनेक विषय, समितियाँ	76
नवां ठाणा-9 की संख्या से, अनेक विषय, ब्रह्मचर्य आदि	77
दसवां ठाणा-10 की संख्या मिथ्यात्वादि, सम्यक दर्शन, 10 अच्छेरे	78
उपसंहार	83
III समवायांग सूत्र	87
प्रथम समवाय-एक की संख्या के आधार से अनेक विषय	87
दूसरे समवाय-दो की संख्या के आधार से अनेक विषय	87
तीसरे समवाय-तीन की संख्या के आधार से अनेक विषय	87
4 से 10 समवाय-4 से 10 के आधार से साधु श्रावक	88
11 से 20 समवाय-11 से 20 संख्याक के आधार से अनेक विषय साधु श्रावक	88
21 से 33 समवाय-पड़िगाएं, उम्र, पूर्व, ब्रह्मचर्य आदि के विषय	90
34 से 70 समवाय-संख्या से अनेक विषय, 34 अतिशय	92

71 से 100 समवाय-पुरुष की 72 कला, एक मुहुर्त 77 लव आदि अनेक विषय	94
प्रकीर्णक समवाय-	95
12 अंगों का वर्णन	96
दृष्टिवाद 14 पूर्व का वर्णन	102
प्रकीर्णक वर्णन-नरक पृथ्वी, देवलोक, तीर्थंकर,	104
चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव वर्णन	108
ज्ञानदर्शन चारित्र तप	111
IV जम्बूद्वीप प्रज्ञाप्ति सूत्र	114
प्रस्तावना	114
पहला वक्षस्कार	116
जम्बूद्वीप जगती आगे का वर्णन	116
चारद्वार	118
भरत क्षेत्र, वैताढ् पर्वत	118
विद्याधर सभा	120
नदियां पर्वत	121
दूसरा वक्षस्कार काल	122
अवसर्पिणी काल	122
प्रथम सुखमासुखमी आरा मनुष्य, शरीर	123
दूसरा सुखमी आरा	124
तीसरा सुखमा दुःखमी आरा	124
कुलकर व्यवस्था	124
प्रथम तीर्थंकर	125
भगवान ऋषभदेव दीक्षा	125
चौथा दुःखम सुखमी आरा	126
पांचवां दुःखमी आरा	126
विच्छेद के 10 बोल	127
छठा दुखम दुखमी आरा	127
उत्सर्पिणी काल	127
1 दुःखम दुःखमी आरा	127
2 दुःखमी आरा	127
संवत्सरी मान्यता टिप्पण	128
3 दुःखम सुखमी आरा	128
4 सुखमा दुःखमी आरा	129
5 सुखम आरा	129
6 सुखम सुखमा आरा	129
टिप्पण	129
तीसरा वक्षस्कार	129
भरत चक्रवर्ती	129
2 गुफाएं	132
भरत की राज्य सम्पदा	136
14 रत्न, नव निधिएं	136
भरत को कवेल ज्ञान	137
14 रत्नों का परिचय	138
चक्रवर्ती के 13 तेले	140
चौथा वक्षस्कार	141
चुल्लहिमवंत पर्वत	141
पद्म द्रह, पद्म कमल	142
पद्मों की संख्या	143
तीन नदियां	144
हेमवंत युगलिक क्षेत्र	145
महाहिमवान पर्वत	146
हरिवर्ष क्षेत्र	146
निषध वर्षधर पर्वत	147
कूट, नदियां	147
महाविदेह क्षेत्र	148
उत्तरकुरू क्षेत्र	148
गंधमादन पर्वत	148
कूट	149
यमक पर्वत, कांचनक पर्वत	150
जम्बू सुदर्शन वृक्ष	151
माल्यवान वक्षस्कार	152
1 से 8 विजय	153
सीतामुख वन	155
9 से 16 विजय	155
देवकुरू क्षेत्र	156
चित्र, विचित्र पर्वत	156
कूट शाल्मली पीठ	156
वक्षस्कार पर्वत	156
17 से 24 विजय	156

पर्वत नदियां	156
सीतोदा मुख वन	157
25 से 32 विजय	157
मन्दर मेरु पर्वत	158
भद्रशाल वन	159
नन्दन वन	161
सौमनस वन	162
पंडग वन	163
अभिषेक शिलाएं	163
मेरू पर्वत के कांड, नाम	164
नीलवान वर्षधर पर्वत	164
रम्यक वर्ष क्षेत्र	165
हैरण्यवत युगलिक क्षेत्र	165
शिखरी पर्वत	165
ऐरावत क्षेत्र	165
जम्बूद्वीप के प्रमुख क्षेत्र एवं पर्वत	166
क्षेत्रफल सहित वर्णन	167
जीवा, ईषु, परिधि, धनफल, प्रतर, क्षेत्रफल कोठा	167
525 कूट	180
78 नदियों का 14,70,000 नदी परिवार	181
भरत क्षेत्र	182
महाविदेह गत पर्वतों का परिमाण	182
महाविदेह पूर्व पश्चिम, सिद्धायतन	183
पांचवां वक्षस्कार	185
तीर्थंकर जन्माभिषेक	186
दिशाकुमारियां	187
64 इन्द्रों द्वारा तीर्थंकर जलाभिषेक	187
56 दिशाकुमारियां	187
छठा वक्षस्कार	188
जम्बूद्वीप के 10 विषय	188
सातवां वक्षस्कार	188
ज्योतिष मंडल	189
सूर्य मंडल, चन्द्र मंडल	190
चन्द्र मंडल एवं आंतरे	193
जम्बू द्वीप में सूर्य मंडल	194
मेरू के चारों ओर नक्षत्र ज्योतिष चक्र	196
निषध-नीलवंत का व्याघात अंतर	196
नक्षत्र चन्द्र का योग	197
नक्षत्र-चन्द्र-सूर्य का योग	198
28 नक्षत्र तालिका	199
जम्बू द्वीप में तीर्थंकर आदि की संख्या	201
उपसंहार	202
परिशिष्ट-1	202
जैन सिद्धांत-वर्तमान ज्ञात दुनिया	202
V-VI ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति (सूर्य चन्द्र प्रज्ञप्ति)	205
प्रस्तावना	205
विषय सूचि प्राभृत-प्रतिप्राभृत	208
चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र-एक विचारणा	211
पहला प्राभृत	212
नक्षत्र मास में मुहुर्त	212
छोटा बड़ा दिन, वर्ष प्रारंभ	212
अर्द्ध मंडल गति	213
दो सूर्य	214
सूर्यो का अन्तर	215
सूर्य भ्रमण क्षेत्र द्वीप समुद्र में	216
सूर्य चन्द्र विमान	216
मंडलों का विष्कंभ परिधि	216
दूसरा प्राभृत	217
दोनों सूर्यो का भ्रमण संक्रमण गति,	217
कर्णकला गति सूर्य की मुहुर्त गति	218
तीसरा प्राभृत	219
प्रकाशित क्षेत्र	219
चौथा प्राभृत	219
मंडल संस्थान	219
पांचवां प्राभृत	221
ताप में रुकावट	221
छठा प्राभृत	221
प्रकाश में घट वध	221
सातवां प्राभृत	221
सूर्य लेश्या	221

आठवां प्राभृत	221
सूर्य भ्रमण मार्ग	222
नवमां प्राभृत	222
ताप लेश्या, छाया प्रमाण	222
दसवां प्राभृत	224
नक्षत्र नाम क्रम	224
नक्षत्र चन्द्र संयोग सूर्य संयोग	224
नक्षत्र चन्द्र संयोग एवं समर्पण	225
नक्षत्रों का कुल उपकुल	225
तिथि मास संयोग	226
रात्रि वाहक नक्षत्र क्षेत्र	227
चन्द्र योग दिशा से	227
नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य मंडल सीध में चार्ट	228
नक्षत्र देवता, मुहुर्तों के नाम दिन-रात के नाम	231
अभिजित से नक्षत्रारंभ	231
प्रक्षेपांश भ्रम मूलक	232
युग में नक्षत्र योग चन्द्र सूर्य के साथ	234
पांच संवत्सर	234
नक्षत्रों में गमन	235
नक्षत्रों का सीमा विष्कंभ	236
चन्द्र सूर्य नक्षत्र पूर्णिमा योग	236
चन्द्र सूर्य नक्षत्र अमावस्या योग	236
ग्यारहवां प्राभृत	238
संवत्सर युग की आदि समाप्ति	238
बारहवां प्राभृत	238
संवत्सरों का कालमास	238
तेरहवां प्राभृत	241
चन्द्र की हानि वृद्धि	241
चन्द्र का अयन	242
चौदहवां प्राभृत	242
प्रकाश-अंधकार	242
पन्द्रहवां प्राभृत	242
चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र गति	242
गति से योग का संबंध	242
सौलहवां प्राभृत	243
लक्षण	243
सतरहवां प्राभृत	243
चयोपचय	243
अठारहवां प्राभृत	243
ऊँचाई	243
उन्नीसवां प्राभृत	244
सूर्य चन्द्रादि संख्यात	244
बीसवां प्राभृत	245
विमानादि कथन	246
टिप्पण	246
आगम उपसंहार	247
चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र एक विचारणा	248
परिशिष्ट-1	249
ज्ञातव्य गणित	249
मंडल परिधि ज्ञान	249
परिशिष्ट-2	251
नक्षत्र का थोकड़ा	251
परिशिष्ट-3	254
ज्योतिष मंडल विज्ञान एवं आगम की दृष्टि में	
परिशिष्ट-4	257
17वें प्रति प्राभृत के प्रश्नोत्तर निर्णयार्थ	257
प्रक्षिप्त प्रवृत्तियां	
परिशिष्ट-5	264
वैज्ञानिक दृष्टिकोण में आगम	
उपसंहार	269
VII जीव-अजीवाभिगम सूत्र	270
प्रस्तावना	270
प्रथम प्रतिपत्ति	273
अजीव ज्ञान, जीवज्ञान	273
संसारी जीव वर्णन 14 प्रकार	273
त्रस स्थावर 2 प्रकार	280
4 प्रकार के देवों के 21 द्वार से वर्णन	281
दूसरी प्रतिपत्ति संसारी जीव	285
संसारी जीव 3 प्रकार	285
3 वेद की तालिका	288

तीसरी प्रतिपत्ति	289
जीव के 4 प्रकार	289
नरकावास	289
नरक वर्णन पाथडा पृथ्वी पिंड	290
अवगाहना, अवधि आदि	291
नरक शरीर, नरक दुःख	293
तिर्यच, देव विमान, मनुष्य	294
अन्त द्वीपों का वर्णन	295
कल्प वृक्ष	296
युगलिक मनुष्यादि	296
देवों की परिषद	298
द्वीप समुद्रों का वर्णन	298
लवण समुद्र	299
पातालकलश, लवण शिखा	300
चन्द्र सूर्य द्वीप	300
उपसंहार	301
अन्य द्वीप समुद्र	301
मनुष्य क्षेत्र	301
द्वीप समुद्र चार्ट	304
असंख्याता द्वीप समुद्र	305
नन्दीश्वर द्वीप	305
ज्योतिष मंडल	307
विमान आयाम-विष्कंभ	309
वैमानिक देव	309
चौथी प्रतिपत्ति	310
जीवों के 5 प्रकार	310
पांचवीं प्रतिपत्ति	311
जीवों के 6 प्रकार	311
छठी प्रतिपत्ति	311
संख्या की जीवों के 7 प्रकार	313
सातवीं प्रतिपत्ति	313
जीवों 8 प्रकार	313
आठवीं प्रतिपत्ति	314
जीवों के 9 प्रकार	314
नवमी प्रतिपत्ति	314
जीवों के 10 प्रकार	314
दूसरा खंड-सर्व जीव प्रतिपत्ति	314
पहली प्रतिपत्ति	314
सर्व जीवों के 2 भेद तालिका	315
दूसरी प्रतिपत्ति	316
सर्व जीवों के 3 भेद तालिका	316
तीसरी प्रतिपत्ति	317
सर्व जीवों के 4 भेद तालिका	317
चौथी प्रतिपत्ति	318
सर्व जीवों के 5 भेद तालिका	318
पांचवीं प्रतिपत्ति	318
सर्व जीवों के 6 भेद तालिका	318
छठी प्रतिपत्ति	319
सर्व जीवों 7 भेद तालिका	319
सातवीं प्रतिपत्ति	320
सर्व जीवों के 8 भेद तालिका	320
आठवीं प्रतिपत्ति	320
सर्व जीवों के 9 भेद तालिका	320
नवमी प्रतिपत्ति	320
सर्व जीवों के 10 भेद तालिका	320
परिशिष्ट-1	321
आएसणं	321
परिशिष्ट-2	323
एक समय की कायस्थिति	323
परिशिष्ट-3	325
पुहुत्त शब्द विचारणा	325
परिशिष्ट-4	327
छद्मस्थों से भूलें एक अनुप्रेक्षण	327
गुणस्थान प्रकरण	333
14 गुणस्थान	341
बंध, उदय, उदीरणा सत्ता का अधिकार	347
बंधाधिकार यंत्र, उदय उदीरणा सत्ता का यंत्र	350
गतिमार्गणा	352
563 मार्गणाएं	355

उत्तराध्ययन सूत्र

प्रस्तावना–

संसार में दो मूल तत्त्व है जीव और जड़। चैतन्यवंत जीव है तथा इसका अभाव वाला जड़ है। चैतन्य के रागद्वेष के कारण अचैतन कर्म उसे प्रभावित करते हैं। रागद्वेष के विजेता को जिन कहते है। भगवान महावीर रागद्वेष के विजेता थे, वे जिन और तीर्थंकर भी थे। भगवान के विचार आचार और विश्वास का संग्रह द्वादशांगी वाणी है। उनकी वाणी आगमों में सुरक्षित है। उन्हीं आगमों में सरल सरस यह आगम उत्तराध्ययन सूत्र है।

रचना–

यह सूत्र 36 श्रेष्ठतम अध्ययनों का संकलनात्मक सूत्र है। नंदी सूत्र में इसे अंग बाह्य (अनंगप्रविष्ट) सूत्रों में कहा गया है। इस सूत्र की रचना कब हुई? किस आचार्य ने इसकी रचना की या किसी अंग सूत्र (प्रश्नव्याकरण सूत्र या दृष्टिवाद सूत्र) में से इसे उदृत किया? इस संबंध में कोई प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है। तथापि नंदी सूत्र की आगम सूचि में इस सूत्र को स्थान प्राप्त होने से यह स्पष्ट है कि नंदी सूत्र की रचना के समय तो इसका अस्तित्व था ही। अतः नंदी सूत्र से इसकी प्राचीनता एवं प्रमाणिकता कम नहीं है।

सूत्र नाम एवं विषय

उत्तराध्ययन सूत्र मूल सूत्र में वर्गीकृत किया है। उत्तर + अध्ययन अर्थात् श्रेष्ठ एवं प्रधान अध्ययनों का संकलन सूत्र है इसमें जीव, अजीव, परीषह, कर्मवाद षट द्रव्यादि, नव तत्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बाल मरण, पंडित मरण, वैराग्य और संसार, पार्श्व एवं महावीर परम्परा के सभी विषयों का सुन्दर आकलन है, स्वाध्याय के लिए, आत्म चेतना की जागृति के लिए इसका अध्ययन, पठन, मनन, चिंतन आदरणीय है।

उत्तराध्ययन के 13 अध्ययन धर्मकथात्मक है। (7, 8, 9, 12, 13, 14, 18, 19, 20, 21, 22, 25, 27) आठ उपदेशात्मक(1, 3, 4, 5, 6, 10, 23, 32) आठ आचारात्मक (2, 11, 15, 16, 17, 24, 26, 35) सात सैद्धाान्तिक। (28, 29, 30, 31, 33, 34, 36) है।

प्रसिद्धि– श्रेष्ठ अध्ययनों एवं अनेक उत्तम उपयोगी विषयों के कारण यह सूत्र साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविकाओं में विशेष रूचिकर है। सैकड़ों साधु-साध्वी इसे कठंस्थ करके सदा इसका स्वाध्याय कर आत्म आनन्द की प्राप्ति करते हैं। इस अत्यधिक लोप्रियता के कारण इस सूत्र के लिए ऐसी श्रुति परम्परा भी प्रचलित है कि- यह सूत्र निर्वाण प्राप्त करते समय अन्तिम रात्रि में भगवान के श्रीमुख से फरमाया गया है। किन्तु इस विषयक प्राचीन इतिहास या प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है अतः यह श्रुति परम्परा केवल श्रद्धा-प्रतीक ही है।

व्याख्या साहित्य एवं संस्करण- महान निर्यक्तिकार आचार्य भद्रबाहु द्वितीय ने इस सूत्र पर निर्युक्ति रचना की। प्रसिद्ध चूर्णिकार जिनदास गणि महत्तर इसके चूर्णिकार है। वादी वेताल शांतिसूरी जी ने टीका लिखी। इसके बाद अनेक आचार्य महापुरूषों ने वृत्तियां लिखी है। संस्कृत, प्राकृत के बाद हिन्दी साहित्य भी बहुत उपलब्ध है। इस सूत्र के सैकड़ों संस्करण विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं। सभी जैन समुदायों में इसका प्रचलन है। 2100 श्लोक परिमाण जितना यह सूत्र माना जाता है।

-विमल कुमार नवलखा

उत्तराध्ययन सूत्र

प्रथम अध्ययन (विनय श्रुत)-

इस अध्ययन का नाम हैं- विनय श्रुत। विनय को बारह प्रकार के तप में आभ्यंतर तप कहा गया है। उववाई सूत्र में इसके सात प्रकार कहे गये हैं- 1. ज्ञान विनय, 2. दर्शन विनय, 3. चारित्र विनय, 4. मन विनय, 5. वचन विनय, 6. काया विनय, 7. लोकोपचार विनय

दशवैकालिक सूत्र के नवमें अध्ययन में चार प्रकार की विनय समाधि कही गई है यथा-

1. विनय समाधि 2. श्रुत समाधि 3. तप समाधि 4. आचार समाधि।

इस प्रस्तुत अध्ययन में विनय के अनेक रुपों को लक्ष्य में रखकर ही विषय का संकलन किया गया है।

1. जो गुरु के इशारे से और भाव भंगी से समझ कर उनके निर्देशों का यथार्थ पालन करता है, उनकी शुश्रुषा करता है, वह विनीत शिष्य है। इससे वितरीत आचरण करने वाला अविनीत शिष्य है।

2. सड़े कान वाली कु त्ती के समान अविनीत शिष्य कहीं भी आदर नहीं पाता है।

3. ग्रामीण शूकर उत्तम भोजन को छोड़कर अशुचि की ओर लालायित होता है उसी प्रकार सद्गुणों को छोड़कर कई अज्ञानी प्राणी दुराचरणों में रमण करते हैं।

4. गुरु आदि के द्वारा अनुशासन करने पर भिक्षु कभी क्रोध न करे एवं कोई भूल हो जाए तो उसे छिपाये नहीं।

5. इस भव में या परभव में दूसरों के द्वारा दमन किये जाने की अपेक्षा ज्ञानी पुरुषों को स्वतः आत्मदमन करना ही श्रेयस्कर है। अतः संयम और तप से स्वयं ही आत्म दमन कर लेना चाहिए अर्थात् सम्पूर्ण इच्छाओं एवं संकल्प-विकल्पों से रहित बन जाना चाहिए। ऐसा करने से ही इस लोक एवं परलोक में आत्मा सुखी बनती है।

6. वचन से, व्यवहार से, आसन से एवं आज्ञा पालन से, गुरु का पूर्ण विनय करना चाहिए। ऐसा विनय शील शिष्य शास्त्र ज्ञान को, अनेक सद्गुणों को और यश को प्राप्त करता है।

7. सावद्यकारी, निश्चयकारी आदि भाषा का प्रयोग नहीं करना। अकेला भिक्षु अकेली स्त्री के साथ खड़े रहकर वार्तालाप नहीं करना।

8. यथासमय ही कार्यों को करना, भिक्षाचरी की विधियों का यथावत पालन करना।

9. आचार्य आदि कभी अप्रसन्न हो तो विवेक पूर्वक उनके चित्त की आराधना करना।

10. विनीत शिष्य सर्वत्र पुज्यनीय होता है, वह गुरु के मन को भाता है एवं वह तप समाचारी और संयम समाधि से सम्पन्न बन जाता है। पांच महाव्रतों का पालन करते हुए वह महान् तेजस्वी भी हो जाता है।

11. देवों के लिए भी पुज्यनीय बनकर वह विनीत शिष्य अन्त में संयम की आराधना का एवं सद्गति का भागी बनता है।

दूसरा अध्ययन (परीषह जय)-

तप संयम का यथावत् पालन करते हुए जो मन, वचन एवं काया के प्रतिकूल प्रसंग उत्पन्न होते है या संयम के प्रतिकूल प्रसंग उपस्थित होते हैं वे परीषह कहे गये हैं और उन परिस्थितियों को धैर्य से, उत्साह से पार कर लेना एवं संयम तप की मर्यादा से विचलित नहीं होना परीषह को जीतना कहा गया है।

इस अध्ययन में भिक्षु के 22 परीषह बताकर उन पर विजय प्राप्त करने की शिक्षा दी गई है।

1. क्षुधा परीषह- भिक्षु भूख से क्लांत होकर भी एषणा समिति का भंग न करे, न ही सचित्त वनस्पति का छेदन-भेदन करे या करावे।

2. पीपासा परीषह- प्यास से पीडित होकर भी सचित जल का सेवन न करे। प्यास से मुंह सूखने लगे तो भी अदीन भाव से सहन करे। देह और आत्म स्वरुप की भिन्नता का विचार करे।

3.4. शीत- उष्ण परीषह- अल्प वस्त्र या अचेल साधना के समय ठंडी या गर्मी की अधिकता होने पर भी दीन न बने। अग्नि की एवं पंखे की चाहना न करें, स्नान की भी इच्छा न करें।

5. दंश- मशक परीषह- डांस मच्छर आदि क्षुद्र जीवों के त्रास से घबरावें नहीं किन्तु संग्राम के अग्रभाग पर रहे हुए हाथी के समान सहनशील बने।

6. अचेल-परीषह- वस्त्र की कमी से या निर्वस्त्र अवस्था में भी कभी दीनता न करे।

7. अरति-परीषह- विचरण काल में अनेक संकट उपस्थित हो तो भी कभी शोकाकुल न बने, अप्रसन्न नहीं होवे, सदा संयम पालन में प्रसन्न रहे।

8. स्त्री परीषह- शील रक्षा हेतु सदा स्त्री को एवं स्त्री संग को आत्मा के लिए कीचड़ सम समझकर उनसे विरक्त रहे। स्त्रियों से पूर्ण सावधान रहने वालों का ही श्रमण जीवन सफल होता है।

9. चर्या-परीषह- विहार संबंधी कष्टों को सहन करने के साथ-साथ मुनि ग्रामादि में या किसी भी व्यक्ति में ममत्व बुद्धि न करे। राग-द्वेष रहित होकर एकत्व भाव में रमण करे।

10. शय्या परीषह- अनुकूल प्रतिकूल उपाश्रय में समभाव रखे।

11. निषद्या परीषह- भूत-प्रेत आदि से युक्त स्थान में भी निर्भय रहे।

12.13. अक्रोश-वध परीषह- कठोर शब्द या मारपीट के व्यवहार में भी मुनि समान भाव रखे किन्तु मूर्खों के सदृश मूर्ख न बन जावे। अर्थात् भिक्षु कभी भी क्रोध न करे, प्रतिकार न करे, किन्तु शान्त भावों से सहन करे और यह सोचे कि-

जैसे जापे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय।
वांका बुरा न मानिए, वो लेन कहां पे जाय।

और यह भी कि आत्मा तो अमर है किसी के मारने पर भी आत्मा का कुछ बिगड़ने वाला नहीं हैं।

14.15. याचना अलाभ परीषह– दीर्घ जीवन काल में संयम पालन हेतु, भिक्षा चर्या करना आवश्यक है। अतः भिक्षा की याचना करने में एवं भिक्षा के न मिलने में, कभी भी खेद न करे, किन्तु तप में रमण करे।

16. रोग परीषह– संयम मर्यादा की सुरक्षा हेतु एवं कर्म निर्जरा के लिए कभी भी रोगातंक होने पर औषध चिकित्सा की भिक्षु चाहना भी न करे। उस रोगांतक का उपचार किए बिना सहन करने में ही सच्ची साधुता है।

17. तृण स्पर्श परीषह– अल्प वस्त्र से या निर्वस्त्र से रहने में एवं खुले पांव चलने में जो तृण, कांटे, पत्थर आदि से कष्ट हो, उसे समभाव से सहन करना।

18. जल्ल मैल परीषह– ब्रह्मचारी मुनि पसीना, मैल आदि से घबराकर कभी स्नान की इच्छा न करे। किन्तु कर्म निर्जरा की दृष्टि प्रमुख रखते हुए एवं उत्तम भगवदाज्ञा समझ कर जीवन पर्यन्त पसीना जनित मैल को देह पर धारण करे।

19. सत्कार-पुरस्कार परीषह– अत्यधिक मान सम्मान पाकर भी फूलना नहीं किंतु विरक्त रहना और अन्य का मान सम्मान देखकर चाहना भी नहीं करना। सूत्रकृतांग सूत्र में वंदना पूजा-सत्कार को महान् किचड़ भूत एवं सूक्ष्म शल्य कहा है।

20-21. प्रज्ञा-अज्ञान परीषह– तप संयम की अत्यंत विकट साधना करते हुए भी बुद्धि की मंदता न मिटे और 2 अतिशय ज्ञान (अवधि, मनपर्यव ज्ञान आदि) उत्पन्न न होवे तो भी खेद नहीं करना, धैर्य श्रद्धा से साधना करना।

22. दर्शन परीषह– किसी भी प्रकार के खेद से या अलाभ से घबरा कर संयम साधना से एवं न्याय मार्ग से च्युत नहीं होना, किन्तु दृढ़ श्रद्धा के साथ मोक्ष-मार्ग में अग्रसर होना।

इन परिषहों से पराजित नहीं होने वाला मुनि शीघ्र ही आत्म कल्याण कर लेता है।

तीसरा अध्ययन (चार दुर्लभ अंग)–

1. जीव कर्म संयोग से नाना योनियों में भ्रमण करते हुए कीट, पतंगा, पशु, नरक, देव रुप में उत्पन्न होता है कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय और कभी शुद्र बनता है।

2. संसार भ्रमण में जीव को मनुष्य भव अत्यंत अल्प प्राप्त होते हैं पुण्य से प्राप्त हो भी जाय तो भी धर्म श्रवण एवं उसमें श्रद्धा प्रतीती रुचि होना भी जीवों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है।

3. कई जीव धर्म श्रवण की प्राप्ति और श्रद्धा के हो जाने पर भी कुछ पुण्यांशों की कमी से धर्म तत्त्व (व्रत-नियम-संयम तप) को स्वीकार नहीं कर सकते अथवा तो पालन नहीं कर सकते।

4. जो मनुष्य भव प्राप्त कर संयम तप में पुरुषार्थ करता है उसका मानव भव प्राप्त करना सफल है, क्योंकि इस मानव जीवन के अतिरिक्त किसी भी योनि में संयम तप की आराधना करने की योग्यता ही नहीं हैं।

5. संयम तप से कर्म निर्जरा के साथ-साथ पुण्य संचय होने से कई जीव, देव भव को प्राप्त करते है।

6. फिर मनुष्य भव में आकर के वे दस गुणों से संपन्न अवस्था को प्राप्त कर यथासमय भौतिक समृद्धि का त्याग कर संयम तप आदि की आराधना द्वारा संपूर्ण कर्म क्षय करके मुक्त हो जाते हैं।

7. प्रत्येक मुमुक्ष प्राणी को- 1. मनुष्य भव, 2. धर्म श्रवण 3. धर्म श्रद्धान 4. तप संयम में पराक्रम, ये चार मोक्ष के दुर्लभ अंग जानकर प्राप्त अवसर में आलस्य प्रमाद, मोह, पुद्‌गलाशक्ति को हटाकर संयम -तप में अग्रसर होना चाहिए।

8. सरल और पवित्र आत्माओं में ही धर्म ठहरता है एवं उनका ही कल्याण होता है।

चौथा अध्ययन (कर्म फल एवं धर्म प्रेरणा)-

1. जीवन सांधा नहीं जा सकता अर्थात् क्षण भर भी कोई आयुष्य की वृद्धि नहीं कर सकता अतः बुढ़ापे की प्रतीक्षा न करते हुए जब भी अवसर प्राप्त हो अप्रमत्त भाव से तप संयम व्रत नियम का आचरण कर लेना चाहिए।

2. प्राणी कुमति के प्रभाव से अनेक पाप कृत्यों के द्वारा धन को अमृत समझ कर उसके उपार्जन करने में लगा रहता है, किंतु मृत्यु समय में नर्क में जाते हुए उसकी रक्षा, वह जोड़ा हुआ धन, नहीं करता।

3. पारिवारिक लोगों के लिए या अन्य लोगों के लिए भी प्राणी जो पाप उपार्जन करता है उसके फल भोगने के समय वह बंधु गण कोई भी बंधुता (फल में भाग बांटना) नहीं कर सकते। कर्मों का फल इस भव में या परभव में स्वयं को भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता है।

4. स्वच्छंदता का पूर्ण रुप से त्याग कर भगवदाज्ञा में ही संपूर्ण जीवन को अप्रमत्त भाव से लगाने वाला शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है।

5. पीछे धर्म करने का कथन करने वाले पहले और पीछे कभी धर्माचरण नहीं कर सकते क्योंकि अचानक मृत्यु के आने पर बिना अभ्यास के धर्म आचरण दुःशक्य हैं ।

6. संयमाराधना काल में लुभावने प्रसंग, प्रतिकूल प्रसंग उपस्थित होने पर भी सदा सावधान रहना चाहिए अर्थात क्रोध मान भी नहीं करना एवं माया लोभ भी नहीं करना।

7. सम्यक श्रद्धान के साथ संयम पालन करते हुए अंतिम श्वांस तक गुणों की आराधना करनी चाहिए।

पांचवा अध्ययन (बाल मरण -पंडित मरण)-

जन्म के साथ मृत्यु का संबंध जुड़ा हुआ है। जीवन जीना भी एक कला है तो मृत्यु भी उसमें कम कला नहीं है। बाल मरण (अकाम मरण) और पण्डित मरण (सकाम मरण) के भेद से दो प्रकार के मरण का इस अध्ययन में वर्णन है।

1. बाल जीवों का अकाम मरण बारम्बार होता है और पण्डित पुरुषों का उत्कृष्ट सकाम मरण एक बार ही होता है अर्थात् जघन्य मध्यम, आराधना में अधिकतम सात-आठ भव हो सकते है और उत्कृष्ट आराधना में जीव उसी भव में मुक्ति प्राप्त करता है।

2. विषयासक्त बाल जीव अनेक क्रूर कर्म करते है। कई परलोक को ही स्वीकार नही करते। ''जो सब संसारी प्राणियों का हाल होगा वह हमारा भी हो जायेगा।'' ऐसा सोचकर कई प्राणी हिंसा, झूठ, छल-कपट, धूर्त्तता आदि स्वीकार करते है सुरा और मांस का सेवन करते है एवं धन और स्त्रियों में ही गृद्ध बने रहते हैं।

3. ऐसे लोग केंचुए के मुंह से और शरीर से मिट्टी ग्रहण करने के समान ही राग-द्वेष दोनों के माध्यम से कर्म संग्रह करते है।

4. उक्त अज्ञानी प्राणी मृत्यु से आक्रान्त होने के समय नरक गति आदि के दुःखों का भान होने पर वैसे ही अनुताप करता है जिस प्रकार अटवी में गाड़ी की धुरी टूट जाने पर गाड़ीवान शोक करता है।

5. वह धर्माचरण रहित अज्ञानी प्राणी हारे हुए जुआरी के समान मृत्यु समय में पश्चाताप रुप आर्त्त-ध्यान करता है।

6. पंडित मरण भी विषमता के कारण न तो सभी भिक्षुओं को प्राप्त होता है और विभिन्नता के कारण सभी गृहस्थों को भी प्राप्त नहीं होता है।

7. कई गृहस्थों का संयम जीवन अर्थात् धर्म साधना अनेक साधुओं से भी उच्च होती है। किन्तु सुसाधुओं का संयम तो सभी गृहस्थों से सर्वोच्च ही होता है।

8. भिक्षा जीवी कई श्रमणों का आचारण और श्रद्धान शुद्ध नहीं होता है। इसीलिए उनका जटाधारण, मुण्डन, नग्नत्व, विभिन्न वेष भूषा, चर्म, वस्त्र एवं अन्य उपकरण धारण करना उन्हे दुर्गति से मुक्त नहीं कर सकता है। अतः भिक्षु हो या गृहस्थ यदि वह सुव्रती और सुशील है तो ही दिव्य गति को प्राप्त कर सकता है।

9. जो पौषधः व्रत, नियम एवं सदाचरण का पालन करते हुए गृहस्थ अवस्था में रहते है अथवा जो इन्द्रिय विषयों से एवं सम्पूर्ण पापों से पूर्ण रुप से संवृत्त हेकर भिक्षा जीवन से धर्माराधना करते हैं, ऐसे श्रमणोपासक और श्रमण मृत्यु समय में संत्रस्त नहीं होते हैं किन्तु वे पंडित मरण को प्राप्त होते हैं। उनमें से कई सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं और कई देव और मनुष्य भव के अंतर से क्रमशः मोक्ष प्राप्त करते है।

10. इन अकाम, सकाम दोनों मरणों के प्रतिफल की तुलना करके मुमुक्षुओं को दया धर्म स्वीकार करना चाहिए और देह के ममत्व का त्याग करके मृत्यु समय में भक्त प्रत्याख्यान आदि कोई भी पंडित मरण (संथारा) स्वीकार करना चाहिए।

छठा अध्ययन (ज्ञान क्रिया)-

1. अज्ञानी पुरुष (प्राणी) दुःखों की वृद्धि करते रहते हैं। अतः मुमुक्षु मानव जीवादि तत्त्वों का ज्ञान करके सत्य की गवेषणा करते हुए सभी प्राणियों से मैत्री का व्यवहार करें। पारिवारिक जनों में भी असंरक्षण भाव को जान कर स्नेह रहित बने। धन सम्पत्ति को भी चंचल समझ कर उसका त्याग करें।

2. ज्ञान युक्त आचरण को हृदयंगम कर परिग्रह को नरक का प्रमुख कारण जानकर त्याग दे और सभी प्राणियों को आत्मवत् समझकर सावद्य आचरण का सर्वथा त्याग कर दे।

3. सावद्य कर्म और धन परिग्रह का त्यागी मुनि गृहस्थ द्वारा प्रदत्त, एषणा समिति की विधि से प्राप्त आहार से संयम जीवन निर्वाह करे। पक्षी की भांति संग्रह वृत्ति से मुक्त रहे।

4. ज्ञान कर लेने मात्र से मुक्ति मानने वाले एवं कुछ भी आचरण (पाप त्याग) न करने वाले स्वेच्छा वश वचन वीर्य से मुक्ति की कल्पना कर सकते हैं किन्तु वास्तव में उन्हें कुछ भी आत्मोन्नति की उपलब्धि नहीं हो सकती है, और पापाचरण एवं आसक्ति से दुर्गति प्राप्त करते समय वह ज्ञान और वचन वीर्य उनकी तनिक भी रक्षा नहीं कर सकता है।

उनकी दशा (बिल्ली आवे तो उड़ जाना) इस प्रकार रटने वाले तोते के समान होती है अर्थात् तोते का वह कोरा रटन बिल्ली के झपट से उसे मुक्त नहीं कर सकता। वैसे ही वे अज्ञानी जन्म मरण के दुःख से नहीं छूट सकते।

सातवां अध्ययन (दृष्टांत युक्त धर्म प्रेरणा)-

1. जिस प्रकार खाने पीने में मस्त बना एड़क-मेमना (भेड़ का बच्चा) मानो पाहुणे की इन्तजार करता है अर्थात् पाहुणे के आने पर उसके सिर को धड़ से अलग करके पका कर खाया जाता है। इसी प्रकार अधर्मिष्ट प्राणी नरक की चाहना करता है।

2. वह अज्ञानी प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, डकैती करने वाला, मायाचारी, स्त्री विषय लंपट, महारंभी, महापरिग्रही और सुरा एवं मांस का सेवन करने वाला, तोंद वाला एवं पुष्ट शरीर वाला होकर नरक की आकांशा करता है।

3. वह इच्छित भोगों का सेवन कर दुःख से एकत्रित की हुई सम्पूर्ण सामग्री एवं धन को छोड़कर और अनेक संचित कर्मों को साथ लेकर जाता है एवं वर्तमान को ही देखने वाला भविष्य का विचार न करने वाला वह भारी कर्मा बना हुआ प्राणी मरण समय आने पर खेद प्राप्त करता है।

4. जिस प्रकार एक कांगिणी (एक पाई)को लेने पुनः अटवी में जाने वाला मनुष्य हजार मोहरों को गंवा देता है, अपथ्यकारी आम को खाकर राजा राज्य सुख हार जाता है उसी प्रकार तुच्छ मानवीय भोगों में आसक्त होकर मनुष्य सम्पूर्ण दैविक सुख एवं मोक्ष आनन्द को हार जाता है।

5. तीन प्रकार के वणिक होते हैं- 1. लाभ कमाने वाला, 2. मूल धन रख पाने वाला, 3. मूल भी खो देने वाला।

उसी प्रकार धर्म की अपेक्षा प्राणी की तीन अवस्था है- 1. देव भव का या मुक्ति का लाभ प्राप्त करने वाला, 2. मनुष्य भव रुप पूंजी को ही पुनः प्राप्त करने वाला, 3. नरक तिर्यञ्च रुप दुर्गति को प्राप्त करने वाला।

6. नरक तिर्यंच गति में जाने वाला सदा हारा हुआ होता है। उन गतियों से उसका दीर्घकाल तक भी बाहर निकलना दुर्लभ होता है।

7. मनुष्य का आयुष्य और भोग देव की तुलना में अत्यल्प है। जल बिन्दु एवं समुद्र सा अन्तर है। यह जानकर भी जो मानुषिक भोगों से निवृत्त नहीं होता हैं उसका आत्मप्रयोजन नष्ट हो जाता है। वह मोक्ष मार्ग को प्राप्त करके भी पथभ्रष्ट हो जाता है।

8. भोगों से निवृत्त होने वाला प्राणी उत्तम देव गति को और फिर मनुष्य जीवन को प्राप्त कर अणुत्तर गुणों एवं सुखों को प्राप्त करता है।

9. बाल जीव धर्म को छोड़ अधर्म स्वीकार कर दुर्गति प्राप्त करते हैं। और धीर वीर पुरुष अधर्म को छोड़ धर्म को स्वीकार कर सद्‌गति के भागी बनते हैं।

आठवां अध्ययन (दुर्गति से मुक्ति)-

1. सम्पूर्ण स्नेहों का त्याग कर देने वाला सभी दोषों और दुःख से मुक्त हो जाता है। वह स्नेह चाहे इन्द्रिय विषयों का हो या धन परिवार का हो अथवा यश-कीर्ति एवं शरीर का हो, सभी त्याज्य ही है।

2. भोगाशक्त व्यक्ति संसार में इसी प्रकार फंस जाता है जिस प्रकार श्लेष्म में मक्खी।

3. कई साधक अपने आप को श्रमण मानते हैं किन्तु प्राणियों को एवं प्राणी वध को भी नहीं जानते समझते। वे दुर्गति प्राप्त करते हैं, क्योंकि प्राणी वध का अनुमोदन करने वाला भी कदापि मुक्त नहीं हो सकता। तो स्वयं अज्ञान वश से वध करने वाले के मुक्ति का प्रश्न ही नहीं है।

4. अतः सम्पूर्ण जगत के चराचर प्राणियों का मन वचन काया के द्वारा हनन नहीं करना, नही करवाना एवं न ही कभी अनुमोदन करना।

5. सम्पूर्ण अहिंसा के पालन हेतु भिक्षु ऐषणा विधि से शुद्ध आहार प्राप्त करे अर्थात् भिक्षु के लिये किसी प्रकार का प्राणी वध हो उस भिक्षा को ग्रहण न करे।

6. निर्दोष भिक्षा में भी रसाशक्त न बने किन्तु जीवन निर्वाह के लिये नीरस, शीतल, सार-हीन, रुक्ष पदार्थों का सेवन करे।

7. लक्षण, स्वप्न आदि के फल बताने वाल पाप शास्त्रों का प्रयोग नहीं करे।

8. संसार में ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है प्रायः लोभ भी आगे से आगे बढ़ता रहता है जैसे कि दो मासा सोने की प्राप्ति की इच्छा वाला कपिल सम्पूर्ण राज्य लिप्सा तक पहुंच जाता है। अतः इच्छाओं को सदा नियंत्रित करना चाहिए।

9. चूहे को जिस प्रकार बिल्ली से सदा भय रहता है उसी प्रकार छद्मस्थ साधक को सदा स्त्री से भय बना रहता है। अतः भिक्षु स्त्री सम्पर्क सहवास -एवं अति परिचय का सदा वर्जन करे। इस प्रसंग में स्त्री को राक्षसी रुप में देखने की प्रेरणा की गई है।

नवमां अध्ययन (नमि राजर्षि)-

महासती मदनरेखा के पुत्र नमिकुमार जब संयम स्वीकार करने के लिए तत्पर हुए थे तब उनके वैराग्य की परीक्षा ब्राह्मण का रुप धारणकर स्वयं शक्रेन्द्र ने की। नमि राजर्षि ने इन्द्र को यथार्थ उत्तर देकर संतुष्ट किया। दोनों का संवाद इस प्रकार हैः-

1. शकेन्द्र- मिथिला में कोलाहार (रोने आदि) का क्या कारण है?

नमि राजर्षि- सुविस्तृत वृक्ष के गिरे जाने पर पक्षी क्रंदन करते हैं वैसे ही नगरी के लोग अपने स्वार्थ को रोते हैं।

2. शकेन्द्र- जलते हुए अन्तःपुर की ओर प्रेक्षण करना चाहिए?

नमि राजर्षि- जहां मेरा कुछ भी नहीं है, उस नारी या भवनों के जलने से मेरा कोई नुकसान नहीं है। पुत्र, स्त्री एवं धन के त्यागी के लिये कुछ भी प्रिय नहीं होता है न ही कुछ अप्रिय होता है। सम्पूर्ण बंधनों से मुक्त तपस्वी भिक्षु को विपुल सुख होता है।

3. शकेन्द्र- नगर को सुरक्षित अजेय बना कर फिर दीक्षा लेना।

नमि राजर्षि- श्रद्धा, तप, संयम, समिति, क्षमादि, धर्म, गुप्ति, धैर्य आदि आत्म सुरक्षा के सच्चे साधन है। इन्ही के द्वारा कर्म शत्रुओं से अजेय बना जायेगा।

4. शकेन्द्र- जल महल आदि निर्माण करा कर फिर दीक्षित होना।

नमि राजर्षि- संसार भ्रमण के मार्गों में कहीं भी अपना घर बनाने की आवश्यकता नहीं है। शाश्वत मोक्ष स्थान प्राप्त करके वहीं पर ही शाश्वत निवास स्थाान बनाना श्रेयस्कर है।

5. शकेन्द्र- चोर डाकु ओं से नगर की रक्षा कर फिर दीक्षित होना।

नमि राजर्षि- राजनीति दूषित है, इसमें जानते हुए भी न्याय का अन्याय हो जाता है, सच्चे दण्डित हो जाते है और झूठ बच जाते हैं।

6. शकेन्द्र- उद्दंड राजाओं को वश में करके फिर दीक्षित होना।

नमि राजर्षि- अन्य राजाओं का दमन कर झुकाने से कोई लाभ नहीं है। लाखों सुभटों को जीतने वाले की अपेक्षा स्वयं की आत्मा को दमन करने वाला श्रेष्ठ होता है। वही परम विजयी होता है।

अतः स्वयं की आत्मा के साथ अर्थात् अनादि आत्म दुर्गुणों के साथ ही संग्राम करना चाहिए बाह्य युद्ध से कोई लाभ नहीं है। आत्म विजय से ही सुख की प्राप्ति होती है।

7. शकेन्द्र- यज्ञ, दान, ब्राह्मण भोजन करा के साथ में दक्षिणा देकर फिर दीक्षा लेना।

नमि राजर्षि- प्रतिमास जो कोई दस लाख गायों का दान करें उसकी अपेक्षा कुछ भी दान न करते हुए संयम साधना श्रेष्ठतम है।

8. शकेन्द्र- घोर गृहस्थाश्रम में रह कर ही धर्म व्रताराधना कर लेनी चाहिए?

नमि राजर्षि -केवल घोर जीवन एवं कठिनाईयों युक्त जीवन से निर्वाण प्राप्त नहीं होता है। किन्तु सम्यग् ज्ञान एवं विवेक के साथ संयम का आचरण करने से ही मुक्ति होती है। मास-मासखमण तप करके कोई पारणे में कुशाग्र जितना ही खावे तो भी वह अज्ञानी शुद्ध संयामाराधन के समक्ष अमावश तुल्य भी नहीं है।

9. शकेन्द्र- तुम स्वर्ण चांदी मणि रत्न आदि से कोश-भण्डार भरा कर फिर दीक्षित होना।

नमि राजर्षि- इच्छाएं आकाश के समान अनन्त है। सोने चांदी के पहाड़ भी हो जाय तो भी संतोष एवं त्याग के बिना इच्छाओं की पूर्णता होने वाली नहीं है। अतः इस इच्छापूर्ति के लक्ष्य को छोड़ कर तप संयम का आचरण करना ही श्रेयस्कर है।

10. शकेन्द्र- प्राप्त वर्त्तमान सुखों को छोड़कर भावी सुख की चाहना नहीं करनी चाहिए।

नमि राजर्षि- संयम साधक आगे के काम भोगों की लालसा से अभी के प्राप्त भोगो का त्याग नहीं करता है। वह तो इन भोगों को शल्य समझ कर संसार प्रपंच से मुक्त होने के लिए इनका त्याग करता है। इन भोगों की चाहना मात्र ही दुर्गति को देने वाली है। ये काम भोग आशीविष के समान है। उनके अधिकतम प्राप्ति का लक्ष्य भिक्षु को नहीं होता है। अतः उसे संकल्पों विकल्पों से दुखी होने की कुछ भी संभावना नहीं रहती है। अल्प सांसारिक सुखों का त्याग कर अधिक संसारी सुख की चाहना करने वाले को कभी पश्चाताप करना पड़ सकता है किंतु भिक्षु का ऐसा लक्ष्य नहीं होता है।

दसवां अध्ययन (वैराग्योपदेश)-

1. इस अध्ययन में ''हे गोतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर'' इस वाक्य का अनेक गाथाओं के अन्तिम चरण में उच्चारण किया गया है।

2. मनुष्य जीवन- शीघ्र ही गिर जाने की संभावना वाले वृक्ष के परिपक्व पत्तों के समान अस्थिर है, तृण के अग्र भाग पर लटकती हुई ओस बिन्दु के समान चंचल है।

3. क्षणभंगुर जीवन होते हुए भी यह जीवन अनेक संकट की घड़ियों से परिपूर्ण होता है। अतः अवसर पाकर धर्म पुरुषार्थ करने में क्षणभर का भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

4-5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, नरक, देव इन ग्यारह स्थानों (घाटियों) को पार करते रहने के कारण इस जीव को कभी पुण्य योग से चिरकाल के अन्तर में ही मनुष्य भव प्राप्त होता है। उसमें भी कईयों को आर्यक्षेत्र, उच्चकुल, परिपूर्ण अंगोपांग, सद्धर्म श्रवण एवं श्रद्धा प्रतीती का मिलना उत्तरोत्तर दुर्लभ है।

5. इसके विपरीत अनार्य क्षेत्र, चोर-डाकू-कसाई-कुल तथा अंधापन बहरापन, लुलापन, लंगड़ापन एवं कुष्टरोग से युक्त शरीर प्राप्त होता है, और कुतीर्थी (अशुद्ध धर्म प्रणेताओं) की संगति एवं विपरीत मान्यता वाली बुद्धि और मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है।

6. अतः हे मुमुक्ष सभी सुन्दर अवसरों युक्त मानव भव प्राप्त करके अब तुझे धर्म पुरुषार्थ करने में तनिक भी आलस्य नहीं करना चाहिए।

7. पांचो इन्द्रिय एवं शरीर का बल भी क्रमशः घटता चला जा रहा है अतः हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद न करो।

8. अनेक रोगांतक पुनः पुनः शरीर को नष्ट भ्रष्ट करने में लगे रहते हैं। अतः इस जीवन में जल-कमल वत् रहकर सम्पूर्ण धन परिवार के ममत्व बंधन का त्याग कर संयम स्वीकार करना चाहिए।

9. हे गौतम सम्पूर्ण संसार प्रवाह को पार कर संयम प्राप्त करके अब रुको मत, लेकिन शीघ्र ही भावों की श्रेणी की वृद्धि कर मोक्ष (कर्म का क्षय करने) में प्रयत्नशील बनो।

इस प्रकार मनुष्य भव की दुर्लभता, क्षण, भंगुरता एवं दुःखमय जीवन को समझकर प्रत्येक प्राणी मोक्ष प्रदायक अप्रमत्त भाव युक्त संयम में अग्रसर बने।

ग्यारहवां अध्ययन का सारांश (बहुश्रुत महात्म्य)-

1. विद्याहीन, अभिमानी, सरस आहार के लोलुपी, अजितेन्द्रिय एवं असंबद्ध प्रलापी या अतिभाषी ये अविनीत होते हैं।

2. मानी, क्रोधी, प्रमादी (अनेक अन्य कार्यों में, इच्छापूर्ति में, व्यस्त) रोगी और आलसी ये शिक्षा- (श्रुत अध्ययन) लाभ नहीं कर सकते।

3. 1. हास्य न करने वाला, 2. इन्द्रिय मन पर काबू करने वाला, 3. मार्मिक वचन न बोलने वाला, 4. सदाचारी, 5. दुराचरणों का त्यागी, 6. रसलोलुपता रहित, 7. क्रोध स्वभाव रहित एवं 8. सत्यपरायण हो वह शिक्षा अध्ययन प्राप्ति के योग्य होता है।

4. जो बार-बार क्रोध भाव को लम्बे समय तक टिकाए रखता है, मित्रों को ठुकराता है, श्रुत का घमण्ड करता है, अत्यल्प भूल होने पर ही किसी का तिरस्कार कर देता है, मित्रों पर कुपित होता है, मित्र की भी पीठ पीछे निंदा करता है, जो द्रोही है, असंविभागी और अप्रीतिकर स्वभाव वाला है, वह अविनीत कहा जाता है एवं वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता है।

5. इन उक्त अवगुणों को दूर कर गुणों को धारण करने वाला एवं नम्रवृत्ति, अचपल अमायावी अकुतूहली, लड़ाई झगड़ों से दूर रहने वाला, कुलीन, लज्जावान, बुद्धिमान मुनि सुविनीत कहा जाता है।

6. गुरुकुल वास में रहकर शिष्य को उक्त गुण सम्पन्न बनना चाहिए। प्रियंकर और प्रियवक्ता शिष्य श्रुत का विशाल अध्ययन कर बहुश्रुत हो जाता है।

7. बहुश्रुत मुनि संघ में अत्यधिक शोभायमान होते हैं उनकी विभिन्न उपमाएं भी इस अध्ययन में कही गई है।

1. वे शंख में रखे गये दूध के समान शोभायमान होते हैं।

2. उत्तम जाति के अश्व के समान मुनियों में श्रेष्ठ होते हैं।

3. पराक्रमी योद्धा के समान अजेय होते हैं।

4. हथनियों से घिरे हुए बलवान हाथी के समान अपराजित होते हैं।

5. तीक्ष्ण सींग एवं पुष्ट स्कंध वाले बैल के अपने युथ में सुशोभित होने के समान वे साधु समुदाय में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और ज्ञान से पुष्ट होकर सुशोभित होते हैं।

6. उसी प्रकार पशुओं में निर्भय सिंह के समान।

7. अबाधित बल में वासुदेव के समान।

8. राजेश्वर्य में चक्रवर्ती के समान।

9 देवताओं में शक्रेंद्र के समान।

10. अज्ञानांधकार नाश करने में सूर्य के समान।

11. ताराओं में प्रधान परिपूर्ण चन्द्र के समान।

12. परिपूर्ण कोठारों के समान।

13. श्रेष्ठ जम्बू सुदर्शन वृक्ष के समान।

14. नदियों में सीता नदी (सबसे विशाल नदी है) के समान विशाल।

15. पर्वत में ऊंचे मंदर मेरु पर्वत के समान।

16. समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र के समान विशाल एवं गंभीर होते हैं।

ऐसे श्रेष्ठ गुण एवं उत्तमता वाले बहुश्रुत भगवन् श्रुत -प्रदान कर्त्ता एवं समाधान कर्त्ता होते हैं तथा चर्चावार्ता में अजेय होते हैं। अतः मोक्ष के इच्छुक संयम पथिक प्रत्येक साधक को श्रुत संपन्न बनना चाहिए एवं उस श्रुत से स्व- पर का कल्याण करना चाहिए।

बारहवां अध्ययन हरिकेशी मुनि-

1. शुद्र जाति में जन्म प्राप्त करके भी कोई जीव ज्ञान एवं तप संयम उपार्जन कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

2. चाण्डाल कुलोत्पन्न हरिकेश बल नामक अणगार के संयम तपोबल से यज्ञ करने वाले पुरोहित, अध्यापक एवं बालक प्रभावित हुए एवं उन्होंने सही धर्म, भाव यज्ञ एवं भाव स्नान को समझा।

3. यक्ष भी मुनि से प्रभावित होकर समय -समय पर उनकी सेवा में उपस्थित होता था। उसी के निमित्त ने भद्रा राजकुमारी को एवं ब्राह्मणों को मुनि से प्रभावित किया।

यज्ञशाला में जातिवाद को आगे कर मुनि को भिक्षा देने से इन्कार कर दिया गया एवं मुनि के साथ अभद्र व्यवहार भी किया गया।

भद्रा ने बालकों को उपालंभ देते हुए कहा कि जो तुम इन मुनि की अवहेलना कर रहे हरे यह तुम पर्वत को नखों से खोदने के समान, लोहे को दांतों से चबाने के समान और अग्नि को पांवों से कुचलने के समान मूर्खता कर रहे हो।

भिक्षा काल में भिक्षु का अपमान करना, पतंग सेना का अग्नि में गिर कर भस्म होने के समान है।

फिर यक्ष का विकराल उपद्रव होने पर पुरोहित और पुरोहित पत्नी भद्रा ने मुनि का अनुनय विनय कर यक्ष को शान्त किया, उपद्रव दूर हुआ फिर उन्होंने मुनि को आदर पूर्वक आहार दिया।

4. हरिकेशी मुनि को भिक्षा देने पर वहां यज्ञशाला में पंचदिव्य वृष्टि हुई। जिससे लोगों में यह स्पष्ट हुआ कि जाति की अपेक्षा से कहीं अधिक महत्व तप, संयम,शील का है अर्थात् उन द्रव्य यज्ञकर्ताओं की अपेक्षा वहां मुनि का भाव यज्ञ विशेष प्रभावक रहा।

5. फिर मुनि ने उन्हें संबोधित कर उपदेश दिया- अग्नि और पानी के द्वारा बाह्य शुद्धि से आत्म उन्नति नहीं अपितु पाप का संग्रह होता है।

तदनन्तर उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए समझाया कि छः काया के जीवों की किंचित भी हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं कहना, अदत्त का त्याग कर, स्त्री परिग्रह एवं क्रोध मान, माया आदि से निवृत्त होना, यही सच्चा महायज्ञ है।

6. इस भाव यज्ञ में आत्मा, ज्योति स्थान है। तप, ज्योति अग्नि है। मन वचन काया घी डालने के चाटु है, शरीर कंडे है और कर्मकाष्ठ है। संयम योग स्वाध्याय -ध्यान आदि शांति पाठ है। यह ऋषियों का प्रशस्त यज्ञ (होम) है।

अकलुषित एवं प्रशस्त लेश्या वाला संयम ही धर्म जल का हौद है, ब्रह्मचर्य शांति तीर्थ है, प्रशस्त अध्यवसाय निर्मल जल है, जिसमें स्नान कर मुनि शीतलता कर्म मल रहित अवस्था रुप मोक्ष गति को प्राप्त करते हैं।

यह ऋषियों का प्रशस्त महास्नान है।

तेरहवां अध्ययन (चित्त संभूति)-

1. निदान करने से संभूत मुनि चक्रवर्ती पद की प्राप्ति तो कर लेता है किन्तु धर्म का आचरण नहीं कर सकता है।

2. पूर्व भवों के साथी बन्धु चित्त मुनि का परिचय, जाति स्मरण ज्ञान एवं बोध को प्राप्त करता है। अपने को किचड़ में फंसा हुआ मानने पर भी काम भोगों का त्याग वह निदान फल के कारण नहीं कर पाता है। श्रावक व्रतों को भी धारण नहीं कर सकता है एवं मृत्यु पाकर नरक में जाता है।

3. कर्मो का शुभाशुभ फल प्रत्येक आत्मा केसाथ रहता है। कर्म फल दिये बिना नहीं छुटते हैं।

4. ब्रह्मदत्त ने अपनी भावनानुसार भाई चित्त मुनि का स्वागत करते हुए उसे भोगों का निमंत्रण दिया। तब चित्त मुनि ने सम्पूर्ण गीतों को विलाप तुल्य एवं नृत्यों को विडम्बना, आभूषणों को भार और कामभोगों को दुःख कारी कह कर विरक्त मुनि जीवन को अनुपम सुखमय बताया।

5. किसी मृग समूह में से एक मृग को पकड़कर सिंह ले जाता है तो अन्य मृग उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। उसी प्रकार ये संसार के कुटुम्बीजन मृत्यु मुख में जाने पर कोई सहायभूत नहीं होते हैं एवं दुर्गति में प्राप्त होने वाले उसके दुःखों में हिस्सा भी नहीं बांट सकते।

मृत्यु प्राप्त मानव को अग्नि के सुपुर्द कर ये लोग धन सम्पत्ति के स्वामी बन जाते हैं।

मार्मिक उपदेश सुनकर भी निदान कृत राजा तनिक भी धर्माचरण स्वीकार नहीं कर सकता है एवं पूर्ण विरक्त चित्तमुनि भी उसके किसी निमंत्रण को स्वीकार नहीं करते हैं।

इस प्रकार निदान के प्रभाव से दोनों का प्रेम मिलन का अवसर व्यर्थ ही निकल जाता है।

चित्तमुनि ने संयम तप का आराधन कर मुक्ति प्राप्त की और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भाई संभूति भोगों में फंसा रह कर नरक में गया।

चौदहवां अध्ययन (भृगु पुरोहित)-

प्रासंगिक- छः जीव संयम पालन कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं और वहां से आयु पूर्ण कर क्रमशः राजा, रानी पुरोहित, पुरोहित पत्नी बनते हैं। शेष दो देव कालांतर से पुरोहित के पुत्र होते हैं। इस अध्ययन में संयम स्वीकार करने की भावना वाले पुत्रों का माता-पिता के साथ तात्त्विक संवाद है। तदनन्तर विरक्त पुरोहित का पत्नी के साथ संवाद है एवं अन्त में विरक्त रानी का राजा को उद्‌बोधन है। छहों कमशः विरक्त हो जाते हैं और संयम स्वीकार कर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

1. संयम के लिए माता-पिता की अनुमति लेना आवश्यक होता है। इसी प्रकार पति पत्नी को भी परस्पर स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

2. वेदों का अध्ययन त्राण भूत नहीं होता है, ब्राह्मणों को भोजन कराने से भी नरक गमन से मुक्ति नहीं हो सकती है और ओरस (कपूत) बेटे सुख सद्‌गति नहीं दे सकते हैं।

3. काम भोगों के क्षण मात्र के सुख बहुत काल व्यापी दुःख के देने वाले हैं एवं यह दुःख रूप अनर्थों की खान है। मुक्ति के ये विरोधी हैं।

4. काम भोगों अतृप्त मानव रात-दिन धन की खोज में लगा रहता है और काल के गाल में फंस जाता है। अतः क्षण भर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

5. धर्माचरण के लक्ष्य में धन, कुटुम्ब, भोग सामग्री का कोई वास्ता नहीं है। धर्माचरण तो संपूर्ण कर्मक्षय करने एवं भव परंपरा का छेदन करने के लिए किया जाता है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था प्रकट करने हेतु तप संयम स्वीकार किया जाता है।

6. अरणी लकड़ी में अग्नि, तिल में तेल और दूध में घी उत्पन्न होता है और विनष्ट हो जाता है। किंतु आत्मा का यह स्वरुप नहीं है वह तो अमूर्त (अरुपी)होने से इंद्रियग्राह्य नहीं है और अमूर्त होने से नित्य शाश्वत है। आत्म परिणामों से ही कर्मबंध होते हैं और कर्मबंध ही संसार के हेतु हैं। अतः कर्म मुक्ति के लिए संयम तप स्वीकार करना परम आवश्यक है।

7. सारा संसार मृत्यु से पीड़ित, जरा से घिरा हुआ है। व्यतीत होने वाले रात दिन मनुष्य की उम्र पर अघोष शस्त्र रूप में पड़ रहे हैं।

8. व्यतीत होने वाले दिन पुनः नहीं आते, धर्म करने वाले का ही वह समय सफल होता है।

9. जिसकी मौत के साथ दोस्ती नहीं है मौत से भागने की शक्ति नहीं है या जिसे उम्र का निश्चय ज्ञान नहीं है उसे कभी भी कल के भरोसे धर्माचरण को नहीं छोड़ना चाहिए।

10. सर्प शरीर की कांचली (त्वचा) को त्याग कर मुक्त भाव से चला जाता है। उसी तरह विरक्त आत्मा संसार के समस्त संयोगों को और भोगों को छोड़ देते हैं।

11. रोहित मत्स्य जाल काटकर बाहर निकल जाता है। उसी प्रकार विरक्त आत्मा धीरपुरुष मोह जाल को काटकर मुक्त विहारी श्रमण बन जाते हैं ।

12. एक दूसरे के निमित्त से भी संयम की प्राप्ति हो जाती है अतः किसी भी निमित्त से अवसर प्राप्त होने पर संयम से वंचित नहीं रहना चाहिए।

13. धन और काम भोगों को छोड़कर जीव को अवश्य ही अकेले जाना पड़ता है।

14. जो यह भौतिक सुख सम्पन्नता है वह मांस के टुकड़े का पक्षी के लिए दुखःदाई होने के समान है। मांस के टुकड़े का त्याग कर पक्षी कलह-झपट से मुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार परिग्रह मुक्त मुनि भी परम सुखी हो जाता है।

पन्द्रहवां अध्ययन (भिक्षु गुण)-

इस अध्ययन में भिक्षु के अनेक विशिष्ट आदर्श गुणों का एवं अनेक सामान्य गुणों का कथन किया गया है।

1. भिक्षु सरल आत्मा, ज्ञानादि से सहित, संकल्पों का छेदन करने वाला, परिचय एवं इच्छाओं को न बढ़ाने वाला, अज्ञात भिक्षाजीवी, रात्रि आहार विहार से उपरत, आगमज्ञ, आत्म रक्षक और मूर्च्छा रहित होता है।

2. आक्रोश, वध को सम्यक् सहन करने वाला, आकुलता हर्ष -शोक न करने वाला भिक्षु होता है।

3. शयन-आसन, शीत-उष्ण, डांस-मच्छर से व्यग्र मन न होने वाला, वंदन प्रशंसा का अनाकांक्षी, आत्मार्थी, तपस्वी, मोहोत्पादक स्त्री पुरुषों की संगति न करने वाला, कुतूहल से रहित भिक्षु होता है।

4. पाप शास्त्रों का अर्थात् ज्योतिष मंत्र-तंत्र औषध भेषज का प्रयोग नहीं बताता है। रोगांतक आने पर किसी वैद्यादि की शरण और चिकित्सा का परित्याग करता हुआ संयम पालन करता है, वह भिक्षु है।

5. राजादि क्षत्रियों तथा शिल्पियों एवं अन्य गृहस्थों से ऐहिक प्रयोजन से किसी प्रकार का सम्पर्क-परिचय नहीं करता है, वह भिक्षु है।

6. आहारादि न देने वाले पर अप्रसन्न न होवे, देने वाले पर प्रसन्न होकर आशीर्वचन न कहे। नीरस सामान्य आहार मिलने पर निन्दा न करे। सामान्य घरों में भिक्षार्थ जावे, वह भिक्षु हैं।

7. भयानक शब्दों एवं भय स्थानों में भी भयभीत न बने, वह भिक्षु है।

8. जीवों के खेद को जानने वाला एवं उन्हें आत्मवत् समझने वाला, आगम ज्ञान में कोविद, परीषह विजेता, उपशान्त एवं किसी को अपमानित खिंसित न करने वाला, मंद कषायी, अल्प भोजी, घर छोड़ कर एकत्व भाव में लीन रह कर विचरण करने वाला, भिक्षु है।

सोलहवां अध्ययन (ब्रह्मचर्य समाधि)-

ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा के लिये एवं आत्म समाधि भावों के लिए निम्न सावधानियां रखनी चाहिए।

1 स्त्री आदि के साथ एक मकान में नहीं रहना।

2 राग वृद्धि करने वाली, स्त्री संबंधी वार्ताएं न करना न सुनना।

3 स्त्रियों के साथ बारंबार वार्ता एवं अधिक सम्पर्क न करना।

4 स्त्रियों के अंगोपांगों को देखने में दृष्टि नहीं टिकाना।

5 स्त्री रुदन, हास्य, गीत, क्रंदन आदि शब्द श्रवण में आसक्त न होना।

6. पूर्व अनुभूत स्त्री विषयों का स्मरण, चिंतन, मनन नहीं करना।

7 शीघ्र काम वासना वृद्धि करने वाले उत्तेजक, पौष्टिक खाद्य पदार्थ, रसायन औषधियों का सेवन नहीं करना। दूध, घृत आदि विगयों का अमर्यादित या सदा निरन्तर सेवन नहीं करना।

8. भर पेट भोजन नहीं करना या ठूंस कर नहीं खाना।

9. शरीर का वस्त्रादि से श्रृंगार शोभा नहीं करना। विभूषावृत्ति का त्याग करना।

10. शब्द रुप गंध रस स्पर्श पांचों मनोज्ञ विषयों की आसक्ति का त्याग करना। पांचों इन्द्रियों का निग्रह करना।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य -संयम के जितने भी बाधक शंका स्थान हों उनका त्याग करना।

पूर्ण समाधि भाव युक्त दुष्कर ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले मुनि देव दानव के भी नमस्करणीय होते हैं और इसके पालन से जीव संयम की आराधना कर मुक्त हो जाते हैं।

सत्तरहवां अध्ययन (पापी श्रमण परिचय)-

जो संयम स्वीकार करने के बाद लक्ष्य एवं साधना से च्युत होकर अन्यथा आचरण करते हैं वे इस अध्ययन में पापी श्रमण की संज्ञा से सूचित किए गए हैं।

1. जो श्रुत अध्ययन में तल्लीन नहीं रहते हैं।

2. निद्राशील होते हैं दिन में भी खाकर के सो जाते हैं।

3. आचार्य उपाध्याय के कुछ सूचना प्रेरणा करने पर सामने बोलते हैं, उनका सम्यग् विनय सेवा भक्ति नहीं करते हैं, घमण्डी बने रहते हैं।

4. जीव रक्षा एवं यातना का लक्ष्य नहीं रखते हैं।

5. बिना देखे या बिना पूंजे कहीं भी बैठ जाते हैं, सो जाते हैं।

6. शीघ्र एवं चपल गति से चलते हैं या कूद कर चलते हैं।

7. प्रतिलेखना की विधि का पालन नहीं करते हैं।

8. मायावी, लालची, घमण्डी, वाचाल, मन एवं इन्द्रियों का निग्रह नहीं करनेवाले, असंविभागी एवं अप्रिय स्वभाव वाले हैं।

9. विवाद, कलह एवं कदागृह शील होते हैं।

10. इधर-उधर चक्कर लगाते रहने वाले अर्थात् अस्थिर आसन वाले हैं।

11. सोने की विधि का पालन नहीं करते हैं।

12. विगयों का बारम्बार सेवन करते हुए भी तपश्चर्या नहीं करते हैं।

13. सुबह से शाम तक कुछ न कुछ खाते ही रहते हैं।

14. अस्थिर चित्त होकर गण गच्छ का बारम्बार परिवर्तन (त्यागना एवं स्वीकारना) करते रहते हैं।

15. निमित्त बताते है, यंत्र-तंत्र- मंत्र विद्या आदि का प्रयोग करते हैं, गृहस्थों को बताते हैं।

16. सामुदानिक भिक्षा नहीं करते हैं। एक ही घर में आहार कर लेते हैं।

गृहस्थ के बिछौने पर बैठ जाते हैं या खड़े हो जाते हैं।

उक्त आचरण करने वाले पापी श्रमण कहे गये हैं।

ये इस लोक में निंदा के पात्र होते हुए शिथिलाचारी कहे जाते है और ये अपना दोनों लोक भव बिगाड़ते हैं। किन्तु इनके विपरीत शुद्ध संयम पालन करने वाले अर्थात् उक्त दोषों का परित्याग करने वाली सुव्रती मुनि अमृत के समान पूजित होते हैं और परलोक के भी आराधक होते हैं।

अठारहवां अध्ययन संयति मुनि

प्रासंगिक- संयति राजा मृग का शिकार करते हुए बगीचे में गर्दभाली अणगार के समीप जाता है एवं भयभीत होकर मुनि से क्षमा की प्रार्थना करता है। तत्पश्चात् मुनि का उपदेश सुनकर वह संयम ग्रहण करता है। संयम पर्याय में विचरण करते हुए क्षत्रिय राजर्षि से उनकी भेंट होती है। वे संयति राजर्षि के प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए उन्हें अनेक प्रकार से एवं उदाहरणों से धर्म में एवं संयम तप में स्थिर रहकर पराक्रम करने की प्रेरणा करते हैं।

1. दूसरे निरपराध प्राणियों को मारते समय व्यक्ति को तनिक भी विचार नहीं होता है किन्तु जब खुद के लिए तनिक भी आपत्ति की संभावना हो तो घबराकर दीनता स्वीकार कर लेता है।

2. अनित्य इस जीवन में स्वयं को भी मरना अवश्य है, कोई अमर तो हो ही नहीं सकता। अतः हिंसादि में तल्लीन होने से कोई लाभ नहीं है।

3. सब कुछ छोड़ कर एक दिन जाना पड़ेगा। जीवन बिजली की चमक के समान चंचल है। फिर भी प्राप्त राज्यादि में आसक्त होकर परलोक का विचार नहीं करना, यह अज्ञान दशा ही है।

4 सगे-संबंधी आदि भी जीते हुए जीव के साथ है, मरने पर केवल शुभाशुभ कर्म ही साथी होते है। पारिवारिक लोग फिर घर में भी नहीं रखते।

5. संसार में अनेक एकान्तवादी धर्म सिद्धान्त हैं, एकान्त होने से उनका कथन युक्ति संगत नहीं है। अतः सम्यग् तत्त्वों की श्रद्धान के साथ सम्यग् धर्म में स्थिर रहना चाहिए। सार यह है- कोई भी सिद्धान्त वाले हो जो हिंसादि पाप कार्यों में तल्लीन रहते है वे दुर्गति प्राप्त करते हैं और जो पाप का त्याग कर अहिंसक दयामय, आर्य धर्म का आचरण करते हैं, वे दिव्य गति प्राप्त करते हैं।

6. विभिन्न एकान्त- सिद्धान्त मिथ्या एवं निरर्थक है यह जानकार स्याद्वादमय सम्यक् निष्पाप मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

7. दस चक्रवर्ती राजाओं ने भी सम्पूर्ण राज्य लक्ष्मी का त्याग कर संयम तप की आराधना से मुक्ति प्राप्त की, दो चक्रवर्ती (आठवें, बारहवें) संयम धारण न करने से नरक में गये।

8 दशार्णभद्र राजा, नमि राजा, करकंडु, दुर्मुख, नगति राजा, उदायन राजा, श्वेत राजा, विजय, महाबल इत्यादि बड़े-बड़े राजाओं ने संयम धारण कर आत्म कल्याण किया।

9. यह जानकर शूरवीर मोक्षार्थी साधक को मोक्षमार्ग में दृढ़ता पूर्वक पराक्रम करना चाहिए।

उन्नीसवां अध्ययन मृगापुत्र-

प्रासंगिक- मृगापुत्र को मुनि दर्शन से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होता है। नरकादि भवों को देखकर भोगों से विरक्त हो जाता है। दीक्षा की स्वीकृति के लिए उनके माता-पिता के साथ हुए रोचक संवाद एवं नरक के वर्णन का विस्तार सूत्र में किया गया है। संवाद में संयम की दुष्करता बताते हुए महाव्रत एवं अनेक आचारों को स्पष्ट किया गया है। अन्त में आज्ञा प्राप्त कर संयम स्वीकार कर अकेले ही विचरण करने का एवं मास के संथारे से कर्म क्षय कर मुक्त होने का वर्णन है।

1. जाति स्मरण ज्ञान अध्यवसायों की शुद्धि युक्त अनुप्रेक्षण से एवं ज्ञानावरणीय कर्म और मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होता है। इस ज्ञान से पूर्व भव का एवं अनेक भवो का, उन भवों के आचरणों का, स्थानों का एवं संयम विधियों का ज्ञान हो सकता है और स्वतः ही जीव को धर्म की एवं वैराग्य की तथा संयम की प्राप्ति हो सकती है। मिथ्यात्व मोहनीय का क्षय आदि न हो तो वह अज्ञान कहा जाता है, इसलिए सूत्र में मोहनीय कर्म की प्रमुखता से कथन है।

2. विषय भोग, विष फल एवं किंपाक फल की उपमा वाले हैं अर्थात् दिखने में एवं भोगने में लुभावने हैं किन्तु इनका परिणाम कटुक है अर्थात् दुःखदाई है।

3. यह शरीर अनित्य है अशुचिमय है अशास्वत और क्लेशों का भाजन है। इसे पहले या पीछे अवश्य छोड़ना पड़ेगा। पानी के झाग या बुदबुदों के समान यह जीवन क्षणभंगुर है। यह शरीर रोगों का घर है और बुढ़ापे से घिरा हुआ है।

4. संसार में जन्म, जरा-वृद्धावस्था, रोग और मरण यह चार बड़े दुःख है। बाकी तो यह सारा संसार दुःख मय है।

5. संसार अटवी में बिना धर्म की खर्ची लिए जाने वाले प्राणी व्याधि रोग आदि दुःखों से पीड़ित होते हैं ।

6. समस्त प्राणियों के प्रति तथा विरोध भाव रखने वाले वालों के प्रति भी समता भाव धारण करने रूप अहिंसा का पूर्ण पालन करना दुष्कर है।

7. सदा अप्रमत्त भाव से हितकारी एवं सत्य उपयोग पूर्वक बोलना भी दुष्कर है।

8. पूर्ण रूप से अदत्त का वर्जन और निर्वद्य एवं एषणीय आहारादि का ग्रहण करना भी कठिन है।

9. काम भोगों का पूर्णतया त्याग करना एवं संपूर्ण आरंभ परिग्रह ममत्व का परित्याग करना अति दुष्कर है।

10. रात्रि भोजन का त्याग और खाद्य पदार्थ, औषध भेषज का संग्रह नहीं करना भी सुदुष्कर है।

11. बावीस परिषह सहना एवं लोच करना तथा पैदल विहार करना अतिकष्टमय है।

12. जीवन भर बिना विश्राम के इन सभी संयम गुणों को धारण करना मानो-

   1. लोहे के बड़े भार को सदा उठाए रखना है।
   2. ऊपर से गिरती हुई गंगा नदी के प्रति स्त्रोत में चलना है।
   3. भुजाओं से समुद्र पार करना है।
   4. बालू रेत का कवल चबाना है।

5. तलवार की धार पर चलना है।

6. लोहे के चने चबाना है।

7. दीप्त अग्नि शिखा को पीना है ।

8. कपड़े की थैली को हवा से भर देना है।

9. मेरु पर्वत को तराजू में तोलना है।

अर्थात् ये उक्त सभी कार्य अति दुष्कर है इनके समान ही संयम पालन करना भी अत्यंत दुष्कर है ।

13. अग्नि की उष्णता से भी नरक की गर्मी अनंत गुणी है। यहां की ठंड से नरक की ठंडी अनंत गुणी है। वहां नैरयिक को बारम्बार जलाया पकाया जाता है, करवत से छीला जाता है, मुद्गरों से टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया जाता है। तीक्ष्ण कांटों में खींचा जाता है। घाणी में पील दिया जाता है। छेदन-भेदन किया जाता है। बलपूर्वक उष्ण ज्वाजल्यमान रथ में जोत दिया जाता है। मारमार कर, चूर-चूर कर दिया जाता है। उबाला हुआ लोहा शीशा ताम्बा पिला दिया जाता है।

14. तुम्हें मांस प्रिय था यह कह कर अग्नि के समान लाल करके खुद का मांस खिलाया जाता है। तुम्हें मदिरा बहुत प्रिय थी यह कहकर वसा (चर्बी) और खून गर्म करके पिला देते हैं। नरक में कुछ वेदना स्वभाविक होती है और कुछ परमाधामी देवकृत होती है वैक्रिय शरीर और लम्बी उम्र होने से वे नैरयिक मरते नहीं है किन्तु पारे के समान उनका शरीर पुनः जुड़ जाता है। इस प्रकार यहां यह बताया गया है कि संयम के कष्ट से अनन्त गुणा कष्ट जीव नरक में उठाता है।

15. मुनि जीवन में रोग का उपचार नहीं करना यह ध्रुव मार्ग है उसके लिए मृग आदि जंगल के पशु का दृष्टांत दिया गया है कि वे रुग्ण होने पर आहार छोड़ कर विश्राम करते हैं एवं स्वस्थ होने पर आहार पानी ग्रहण करते हैं। मुनि भी इसी प्रकार मृगचर्या से संयम की आराधना करें।

16. मुनि -लाभालाभ, सुख दुःख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान में सदा एक समान ही भाव रखे। हास्य शोक से दूर रहें। चंदन वृक्ष के समान रहे अर्थात् बुरा करने वाले के प्रति शुभ एवं हितकर अध्यवसाय रखें।

17. अंतिम गाथा में कहा गया है कि- धन दुःखों की वृद्धि करने वाला है, ममत्व बंधन महा भय को प्राप्त कराने वाला है और धर्माचरण-व्रत, महाव्रत धारण करना अणुत्तर सुखों को देने वाला है।

बीसवां अध्ययन (अनाथी मुनि)-

प्रासंगिक- एक बार घूमते हुए श्रेणिक राजा बगीचे में जाता है। वहां वह अनाथी मुनि को बैठे हुए देखता है। मुनि के रुप, यौवन, सौम्यता, वैराग्य को देखकर उसे आश्चर्य होता है। वह योग्य शिष्टाचार वंदन करके पूछ बैठता है कि- आपको दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता पडी? मुनि से उत्तर मिला कि- मैं अनाथ था। पुनः श्रेणिक ने कहा कि मै आपका नाथ बनता हूं, चलिए राज्य में। तदन्तर मुनि अपनी अनाथता का रहस्य बताते है जिससे श्रेणिक बोध प्राप्त करता है और धर्मानुरक्त हो जाता है।

1. प्रभूत धन एवं माता-पिता, भाई-बहिन और पत्नी के होते हुए भी इस जीव की मौत से एवं रोग से सुरक्षा कोई नहीं कर सकता, इसी कारण राजा हो या सेठ सभी अनाथ हैं, क्योंकि हजारों देव, हजारो स्त्रियों, हजारों राजा एवं करो़ड़ों का परिवार, 14 रत्न, नव निधान, ये सब कुछ होते हुए भी चक्रवर्ती अकेला असहाय होकर मौत आते ही नरक में चला जाता है अर्थात् ये सब पदार्थ मृत्यु और दुर्गति एवं दुःखों से रक्षा नहीं कर सकते और जिसका कोई रक्षक नहीं होता है वह अनाथ होता है।

2. धर्म-संयम स्वीकार करने वाला मानव सनाथ हो जाता है। धर्म उसे दुःख में भी सुखी रहने का प्रेरक बनता है एवं मृत्यु को भी महोत्सव के आनन्द सा अनुभव कराता है। और अन्त में कभी भी दुर्गति में नहीं जाने देता है। अतः ऐसे संयम धर्म से युक्त आत्मा सनाथ बन जाता है।

3. कई व्यक्ति संयम साधना को स्वीकार करने के उपरान्त भी अनाथ बने रह जाते हैं, वह दूसरे प्रकार की अनाथता है, अर्थात् अनेक संयमधारी होकर भी अपनी आत्मा की दुर्गति से रक्षा करने में समर्थ नहीं हो पाता है। यथा-

4.(1) जो महाव्रतों का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करते हैं।

(2) मन, इन्द्रिय एवं कषाय का निग्रह नहीं करते।

(3) रसों में आसक्त रहते हैं।

(4) चलने में , बोलने में, गवेषणा में, या खाने में जो भी संयम की मर्यादाएं हैं उनका ध्यान रखकर पालन नहीं करते अर्थात् समिति गुप्ति का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं करते हैं।

5. जो लोगों को निमित्त बताते हैं, हस्त रेखा, लक्षण, स्वप्न आदि का फल बताते हैं, विद्यामंत्र से चमत्कार बताते हैं, सावद्य अनुष्ठानों में एवं गृहकार्यों में भाग लेते हैं।

6. जो औद्देशिक (साधु के निमित्त तैयार किये) खाद्य पदार्थ आदि लेता है अथवा ऐषणीय अनेषणीय जो मिले सो ले लेता है।

इस प्रकार जो उत्तमार्थ- संयम की विराधना करता है, वह भी अनाथ है अर्थात् दूषणों से युक्त बना हुआ उसका वह संयम दुर्गति से एवं दुःखों से उसे नहीं बचा सकता। इसलिए वे साधु होकर के भी अनाथ ही हैं।

सूत्र में उस साधु की नग्नता, मुण्डन आदि को मोक्षार्थ साधन में निरर्थक बताया है। कांच के टुकड़ों के समान खोटा बताया है और दोनों लोक में संक्लेश प्राप्त करने वाला एवं कर्मों का नाश नहीं करने वाला बताया है।

पिया गया विष, उल्टा ग्रहण किया शस्त्र और अविधि से साधा गया यक्ष सुखदाई नहीं होकर दुःखदाई बनता है। उसी प्रकार संयम की विधियों से विपरित आचरण उसका हित करने वाला नहीं होता ।

इस प्रकार धर्म (संयम धर्म) स्वीकार करना पहली सनाथता है और संयम का, जिज्ञासा का ईमानदारी पूर्वक पूर्ण पालना करना दूसरी सनाथता है। दोनों प्रकार की सनाथता धारण करने पर ही जीवन सफल एवं आराधक होता है।

इक्कीसवां अध्ययन (समुद्रपाल मुनि)-

प्रासंगिक :- जिनमत में कोविद पालित श्रावक के समुद्रपाल नामक पुत्र था। एक बार उसने अपने भवन में बैठे चोर को मृत्युदण्ड के लिये ले जाते हुए देखा और अशुभ कर्मों के कटु फल का चिन्तन करते हुए वह विरक्त हो गया और संयम स्वीकार कर उसने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त किया।

1. मुनि त्रस स्थावर सभी जीवों के प्रति पूर्ण अनुकंपा भाव रखे। सावद्य योगों का पूर्णतः (तीन करण तीन योग से) त्याग करे।

2. अपने बलाबल को जानकर मुनि संयम में विचरण करे और तप धारण करे।

3. सिंह के समान सदा निर्भीक रहे।

4. परीषहों को सम्यक् सहन कर कर्म क्षय करे किन्तु घबरावे नहीं।

5. आश्रवों का सदा निरोध करे। अकिंचन एवं अ ममत्वी बने अर्थात् परिग्रह एवं ममत्व से मुनि सदा दूर रहे।

बाईसवां अध्ययन (अरिष्ट नेमि)-

प्रासंगिक- बाईसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमि नाथ अपने विवाह प्रसंग पर बारात लेकर जाते हुए पशुओं की करुण पुकार सुन कर वहीं से पुनः लौट जाते हैं। एक वर्ष तक दान देकर संयम स्वीकार करते हैं। यथा समय भगवान के भ्राता रथनेमि और सती राजुल भी संयम स्वीकार करते हैं। एक बार घोर वृष्टि के निमित्त से गुफा में नग्न राजीमति को देखकर रथनेमि संयम से विचलित हो जाते हैं। राजीमति बड़े ही विवेक एवं वीरता से उसके विचारों में परिवर्तन ला देती है और अंत में दोनों ही कर्म क्षय कर मुक्त हो जाते हैं।

1. कृष्ण वासुदेव अरिष्टनेमि के चचेरे बड़े भाईथे। उन्होंने भगवान का विवाह करने में सक्रिय भाग लिया।

2. भगवान अरिष्टनेमि का शरीर 1008 लक्षणों से युक्त, उत्तम, संहनन, संस्थान से सम्पन्न था।

3. जीवों के प्रति अनुपम अनुकम्पा भाव से उन्होने विवाह का त्याग कर दिया।

4. कृष्ण वासुदेव ने अरिहन्त अरिष्टनेमि के दीक्षा ग्रहण करने पर उत्तम आराधना करने के शुभाशीष वचन कहे।

5. भोगासक्त व्यक्ति भी मनुष्य भव को दुर्लभ कह कर मनुष्य संबंधी भोगों में आनन्द मानता है जबकि मोक्षार्थी साधक भोगों को प्रत्येक भवों में प्राप्त होने वाला जानकर मनुष्य भव की दुर्लभता को मोक्ष प्राप्ति के हेतु भूत समझता है। क्योंकि भोगों की सुलभता अन्य गतियों-भवों में भी होती है किन्तु संयम और मोक्ष की आराधना केवल मनुष्य भव में ही होती है। अतः दुर्लभ मनुष्य भव का उपयोग ज्ञानी आत्मा मुक्ति साधन में ही समझते हैं बाकी तो सभी कर्तव्यों को वह मनुष्य भव का दुरुपयोग रुप समझते है।

6. स्व पर की एकान्त हित भावना से कहे गये कटु वचन भी सुभाषित वचन होते हैं।

7. शब्दों को प्रभावशाली बनाकर उच्चारण करना गुस्से और घमण्ड़ से भिन्न है।

8. कषाय का त्याग कर, इन्द्रियों को वश में कर एवं गुप्तियों से युक्त होकर दृढ़ता से संयम नियमों का पालन करने से जीव आराधना करके आत्मकल्याण साध लेता है।

इन्हीं गुणों के आसेवन एवं धारण से रथनेमि मुनि एवं राजमति सती ने आत्म कल्याण साध लिया।

तेईसवां अध्ययन (केशी गौतम संवाद)-

प्रासंगिक- भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर गौतम स्वामी एवं पार्श्वनाथ भगवान के परम्परा के अवधिज्ञानी श्रमण केशी स्वामी अपनी-अपनी शिष्य मण्डली सहित श्रावस्ति नगरी में पधार कर अलग-अलग उद्यान में ठहरते हैं। गमनागमन, भिक्षाचारी आदि में दोनों के श्रमण एक दूसरों को देखते हैं एवं कुछ परिचय पाते हैं। कुछ आचारादि की भिन्नता होने से शिष्यों में चर्चा जिज्ञासाएं उत्पन्न होती हैं। उनका समाधान करने हेतु उचित अवसर देखकर दोनों प्रमुख श्रमण एकत्रित होकर प्रश्नोत्तर वार्तालाप का प्रोग्राम बनाते हैं। तद्नुसार गौतम स्वामी केशी श्रमण के पास शिष्य परिवार सहित जाते हैं। परस्पर सम्यक् विनय व्यवहार आसन (दर्भादि) आदान-प्रदान किया जाता है। वहां अन्य अनेक दर्शक श्रोता तथा अनेक जाति के देव भी आते हैं। केशी स्वामी 'महाभाग' संबोधन द्वारा गौतम स्वामी से पृच्छा करते हैं और गौतम स्वामी 'भन्ते' संबोधन पूर्वक केशी स्वामी को अनुमति और उत्तर देते हैं। अंत मे केशी स्वामी चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में समर्पित हो जाते हैं।

ज्ञान गोष्ठी का सारांश-

1. पार्श्वनाथ भगवान के साधुओं का सचेल धर्म होता है और भगवान महावीर स्वामी के साधुओं का अचेल धर्म होता है। यहां सचेल धर्म का अर्थ है- यथेच्छ परिमाण एवं रंग के वस्त्र धारण कर सकना और अचेत धर्म का अर्थ है- मर्यादित परिमाण में (अल्प अल्पतम) अल्प मूल्य एवं केवल श्वेत रंग के वस्त्र ही रखना।

2. इसी प्रकार चातुर्याम धर्म और पंच महाव्रत धर्म का अंतर है। यह अंतर केवल संख्या से संबंधित है।

इन दोनों अंतर का कारण यह है कि मध्यम बाईस तीर्थंकरों के समय काल प्रभाव से मनुष्य सरल और प्रज्ञा संपन्न अधिक होते हैं। प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासनकाल के मनुष्य उक्त गुणसंपन्न अत्यल्प होते हैं। वक्र जड़ों की संख्या ही अधिक होती है।

3. संयम यात्रा एवं ज्ञानादि के लिए एवं प्रतीति (परिचय) के लिए किसी भी लिंग (वेष) का प्रयोजन होता है जो व्यवस्था एवं आज्ञानुसार होता है।

निश्चय में तो मोक्ष के मुख्य साधन ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्रतिज्ञा में सभी तीर्थंकरों के शासन में कोई अंतर नहीं है।

4. आत्मा, 4 कषाय और 5 इन्द्रियों (इन दस) को जीतने में ही पूर्ण विजय है अर्थात् आत्म परिणति को भगवदाज्ञा में समर्पित कर देना, ज्ञानात्मा से कषायात्मा को शिक्षित कर नियंत्रित करना एवं समभाव में रहना, वैराग्य भावों का उत्कटता से इन्द्रियों की चंचलता को शान्त करना एवं इच्छाओं को शान्त करना, यही सभी आत्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है।

5. रागद्वेष और स्नेह, ये ही संसार में बंधन और जाल है। इनका छेदन करना चाहिए अर्थात् आत्मा को इन परिणामों से मुक्त रखने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान के द्वारा विवेक सावधानी रखने से राग द्वेष और स्नेह परिणामों से मुक्त बना जा सकता है।

6. तृष्णा- इच्छाएं, लालसाएं ये ही हृदय में विष बेलें- लताएं हैं। अतः मोक्षार्थी को समीति से गुप्ति की ओर अग्रसर होते हुए सम्पूर्ण ऐहिक, पारलौकिक लालसाओं से क्रमशः मुक्त होना चाहिए। प्रशंसा, प्रतिष्ठा, सन्मान की लालसाएं भी मुनि जीवन में समूल उखाड़ फैंकनी आवश्यक हैं, तभी विष भक्षण से मुक्ति सम्भव है।

7. कषाय, आत्मगुणों को जलाने में अग्नि के समान है। अतः गुस्सा, घमण्ड, कपट, चालाकी और चाहनाओं का श्रुत, सदाचार, तप के द्वारा शान्त बनाने में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

8. मन एक बिना लगाम का उद्दण्ड घोड़ा है। इसे धर्म-शिक्षा से अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, विवेक, आत्म स्वरुप चिंतन से वश में रखना चाहिए। श्रुत-रस्सी की लगाम ही इसका निग्रह करने में सर्वश्रेष्ठ साधन है। अतः साधु को सदा श्रुत अध्ययन, पुनरावर्त्तन, अनुप्रेक्षा आदि में लीन रहकर मन की स्वच्छंदता और उद्दण्डता को नष्ट करने में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

9. वीतराग, सर्वज्ञ दर्शित-स्याद्वादमय मार्ग ही न्याय संगत मार्ग है। इस उत्तम मार्ग की आराधना से जीव संसार भ्रमण से मुक्त हो सकता है।

10. संसार समुद्र में डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही त्राण शरण भूत द्वीप है।

11. मानव शरीर ही नावा है, जीव नाविक है। यदि यह देह संयम- तप से इधर-उधर भटकना चाहता है या इसकी क्षमता संयम तप की नहीं है तो यह छिद्रों वाली नावा के समान है। ऐसे असहायक शरीर रुपी नौका से समुद्र पार नहीं किया जा सकता। अपितु जो शरीर संयम-तप की वृद्धि में सहायक है इधर-उधर नहीं भटकता है, वह निश्छिद्र नावा के समान है। उससे जीव रुपी नाविक संसार समुद्र पार कर मुक्त हो सकता है।

12. इस जगत के भाव अंधकार को दूर कर ज्ञान प्रकाश फैलाने वाले सूर्य तीर्थंकर प्रभु होते हैं। वे समस्त प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश देते हैं।

13. सिद्धशिला से कुछ ऊपर लोकाग्र में क्षेमकारी, कल्याणकारी, ध्रुव-स्थान है, वहां व्याधि, वेदना एवं जन्म मरण नहीं है। शारीरिक मानसिक दुःख भी नहीं है। उस स्थान को प्राप्त करने वाले मुनि भवभ्रमण के संक्लेश से सदा के लिए मुक्त हो जाते हैं।

चौबीसवां अध्ययन (समिति गुप्ति)-

1. पांच समिति और तीन गुप्ति, संयम का प्राण है। अतः द्वादशांग रुप सम्पूर्ण जिन प्रवचन इसमें ही समाविष्ट माना गया है अर्थात् प्रवचन का ध्रुव लक्ष्य है मोक्ष, मोक्ष का प्रधान साधन है संयम, और संयम में प्रमुख स्थान है- पांच समिति तीन गुप्ति का, अतः इन्हें अष्ट प्रवचन माता कहा है।

2. साधु के गमनागमन करने का समय दिन का ही है। युगमात्र भूमि को देखते हुए एकाग्रचित से संयम के प्रयोजन से यानि ज्ञान दर्शन चारित्र एवं शरीर तथा सेवा के आवश्यक प्रयोजन होने पर शान्त गति से छःकाया के जीवों की रक्षा करते हुए मौन पूर्वक चलना, यह ईर्या समिति है।

3. कषायों से रहित और अहिंसा का पूर्ण रुप से पालन हो, ऐसी भाषा बोलना चाहिए। क्रोध, मान, माया, लोभ युक्त भाषा, हास्य, भय, वाचालता और विकथा प्रेरित भाषा, कठोरकारी, कर्कशकारी, छेदकारी, भेदकारी, मर्मकारी, सावधकारी, निश्चयकारी एवं असत्य, मिश्र भाषा नहीं बोलना चाहिए। किन्तु सोच-विचार कर शान्ति हितकारी, प्रियकारी, सत्य एवं व्यवहार भाषा बोलना चाहिए- यह भाषा समिति है।

4. आहारादि की निष्पत्ति में साधु का कोई भी निमित्त हो ऐसे उद्‌गम संबंधी दोष युक्त आहारादि न लेना, आहार प्राप्ति के लिए कोई भी गृहस्थ प्रवृत्ति या दीनवृत्ति न करना, आहारादि ग्रहण करते समय किसी प्रकार की जीव विराधना न हो ऐसा आहारादि ग्रहण करना एवं परिभोगेषणा के पांच मुख्य दोष एवं अन्य अनेक दोषों का परित्याग करते हुए आहारादि का उपयोग करना यह ऐषणा समिति है।

5. आवश्यक उपधि या परिस्थितिक उपधि- वस्त्र, पात्र, रजोहरण, पुस्तक, दण्ड आदि भूमि को स्पर्श करते हुए रखना चाहिए, अर्थात् ऊंचे से गिराते हुए नहीं रखना। साथ ही पहले उस भूमि को आंखों से देखना, फिर रखना। इसी प्रकार सोने, उठने, बैठने में या किसी वस्तु को उठाने में शीघ्रता एवं आलस्य नहीं होना चाहिए। यह आदान- निक्षेप समिति है।

6. मल-मूत्र आदि परठने योग्य पदार्थों को यतना पूर्वक परठना। परठने का स्थान जीवों से रहित एवं अचित्त हो और किसी को भी पीड़ाकारी न हो ऐसा विवेक रखना - यह परिष्ठापनिका समिति है।

7. संयम जीवन एवं शरीर के आवश्यक कार्यों को यतना से करना समिति है और मन वचन और काया की प्रवृत्तियों कोअल्प, अल्पतम करना उत्तरोत्तर सीमित करते रहना यह गुप्ति है।

8. अन्त में यह बताया गया है कि सम्पूर्ण अशुभ प्रवर्त्तन से निवृत्त होना गुप्ति है। इन पांच समिति तीन गुप्ति का सम्यक् आराधन करने वाला पंडित पुरुष संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

पच्चीसवां अध्ययन (जयघोष-विजयघोष)-

प्रासंगिक- जयघोष-विजयघोष दो भाई हैं। जयघोष संयम स्वीकार कर लेता है। एक बार मुनि भिक्षा केलिये अपने भाई विजयघोष ब्राह्मण के यज्ञशाला में प्रवेश करते हैं, वहां आहार-दान के निमित्त को लेकर दोनों भाईयों में वार्त्तालाप होता है। अन्त में विजयघोष भी संयम स्वीकार कर लेता है। संयम और तप से कर्म क्षय कर दोनों भाई सिद्ध अवसथा को प्राप्त करते हैं।

1. यज्ञ के नियमानुसार जो वेदों का ज्ञाता, यज्ञार्थी, ज्योतिषांग का ज्ञाता एवं धर्म का पारगामी होता है एवं जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ होता है, उसी को यज्ञ का आहार दिया जाता है।

2. तप एवं ध्यान रुपी अग्नि में कर्मों की आहुति देना ही सच्चा अग्निहोत्र है। ऐसा भावयज्ञ करने वाला यज्ञार्थी ही वेद में प्रमुख है। ज्योतिष मण्डल में प्रमुख चन्द्र है और धर्म में प्रमुख सर्वज्ञ वीतराग 'तीर्थंकर' प्रभु है।

3. जो किसी भी व्यक्ति में स्नेह आसक्ति नहीं रखता है किन्तु आर्यवचन-संयम की आज्ञाओं में रमण करता है। निर्मल हृदय होकर रागद्वेष और भय से दूर रहता है। कषायों और शरीर को कृश करता हैं। हिंसा, झूठ, अदत्त, कुशील का सर्वथा त्याग करता है। कमल के समान भोगों से अलिप्त रहता है, वह ब्राह्मण है।

4. अलोलुप, निर्दोष भिक्षा जीवी, अकिंचन (संयमोपकरण के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रखने वाला) और गृहस्थों के परिचय तथा आसक्ति से रहित है, वह ब्राह्मण है।

5. वेद पशुवध का विधान करते हैं और यज्ञ तो हिंसाकारी स्पष्ट है। अतः ये दुर्गति में जाते हुए प्राणी की रक्षा नहीं कर सकते।

6. केवल सिर मुण्डन से कोई श्रमण नहीं हो जाता और ओम्-ओम् करने से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता किन्तु समभाव धारण करने से श्रमण और ब्रह्मचर्य धारण करने से ब्राह्मण होता है। ज्ञान का अध्ययन करने से मुनि एवं निष्काम तप करने से तपस्वी होता है।

7. यदि किसी दिवाल पर गीले और सूखे मिट्टी के ढ़ेलों को फेंका जाय तो जो गीला है वह दीवाल के लग जाता हैं और सूखा है वह नहीं लगता है, इसी प्रकार काम लालसा वाले जीव संसार में फंसते हैं, विरक्त जीव संसार से मुक्त हो जाते हैं।

छब्बीसवां अध्ययन (समाचारी)-

1. भिक्षु को उपाश्रय से बाहर जाते समय आवस्सहि शब्द का उच्चारण करना, जिसका अर्थ है कि मैं संयम के आवश्यक प्रयोजन से ही बाहर जा रहा हूं।

2. उपाश्रय में प्रवेश करते समय निस्सहि शब्द का उच्चारण करना अर्थात् मै अपने कार्य से निवृत्त होकर आ गया हूं।

3.4. स्वयं का एवं अन्य का प्रत्येक कार्य गुरु की आज्ञा लेकर करना।

5. प्राप्त आहारादि का अन्य को निमंत्रण करना।

6. ज्ञानादि ग्रहण करना हो तो गुरु आदि से ऐसा कहना कि आपकी इच्छा हो तो मुझे ज्ञान आदि दीजिए।

7. भूल हो जाय तो ज्ञात होने पर ''मिच्छामि दुक्कडं'' बोलना।

8. गुरु के वचनों को सुनते समय तहत्ति शब्द उच्चारण करना एवं उन्हें स्वीकार करना।

9. गुरु की सेवा के लिए तत्पर रहना।

10. श्रुत अध्ययन के लिये किसी भी आचार्य-उपाध्याय के समीप निरन्तर रहकर अध्ययन करना।

यह दस विध समाचारी हैं।

11. भिक्षु को सुबह के अर्थात् रात्रि के चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करना चाहिए। फिर लाल दिशा होने के समय प्रतिक्रमण करना चाहिए। सूर्योदय होने के पश्चात् प्रतिलेखन कर गुरु आज्ञा लेकर अन्य कोई सेवा कार्य न हो तो प्रथम प्रहर तक स्वाध्याय करना। प्रथम प्रहर के अन्त में पात्र प्रतिलेखन करना। दूसरे पहर में ध्यान करना अर्थात् स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण या आत्म अनुप्रेक्षा करना। तृतीय प्रहर में भिक्षादि शारीरिक आवश्यक कर्त्तव्यों से निवृत्त होना। चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ में पात्र प्रतिलेखन कर उन्हें बांध कर रख देना एवं अन्य उपकरणों की प्रतिलेखन करना। चतुर्थ प्रहर के अंत में रात्रि के लिए शयनभूमि एवं मल मूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन करना। सूर्यास्त के समय से लेकर लाल दिशा रहे उस समय में प्रतिक्रमण करना। प्रतिक्रमण समाप्ति पर दिशावलोकन कर स्वाध्याय का समय आ जाने पर प्रथम प्रहर तक स्वाध्याय करना। द्वितीय प्रहर के प्रारम्भ में ध्यान करके विधि पूर्वक शयन करना। तृतीय प्रहर के अंत में निद्रा एवं शयन से निवृत्त हो जाना एवं ध्यान आदि करके स्वस्थ हो जाना। फिर चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करना। यह भिक्षु की संक्षिप्त दिनचर्या है।

12. प्रतिलेखना मुखवस्त्रिका से प्रारम्भ कर के अंत तक यातना से एवं विधिपूर्वक करनी चाहिए।

13.✲ भूख लगने पर उसे शांत करने के लिए

✲ सेवा करने का सामर्थ्य रखने के लिए

✲ नैत्र ज्योति एवं गमनागमन शक्ति के लिए

✲ संयम विधियों के पालन के लिए

❷ जीवन निर्वाह के लिए

❷ धर्म चिन्तन, अध्ययन, स्वाध्याय, ध्यान आदि के लिए इन उद्देश्यों से ही भिक्षु आहार का सेवन करे।

14.✲ रोगातंक हो जाने पर साधु को आहार छोड़ देना चाहिए।

❷ उपसर्ग उपस्थित हो जाने पर और

❷ ब्रह्चर्य की समाधि के लिए आहार छोड़ देना चाहिए

❷ त्रस-स्थावर जीवों की रक्षा के लिए अर्थात् वर्षा, आंधी, धुंअर के कारण एवं उड़ने या चलने वाले विकलेन्द्रिय प्राणियों की अत्यधिक उत्पत्ति हो जाने पर (भिक्षार्थ जाने में विराधना हो तो) आहार छोड़ देना चाहिए।

❷ कर्म निर्जरार्थ तपस्या करना हो अथवा

❷ मृत्यु समय निकट जानकर संथारा करना हो तो भी आहार छोड़ देना चाहिए।

सत्ताईसवां अध्ययन (गर्गाचार्य)

प्रासंगिक- स्थविर गर्गाचार्य के अशुभकर्म के उदय से सभी शिष्य उनके लिए असमाधि उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं। उनकी आज्ञा पालन एवं चित्त आराधन करने में एक भी साधु सफल नहीं होता है। अंत में निराश होकर गर्गाचार्य शिष्यों को छोड़कर अकेले ही संयम की आराधना करते हुए परम शांति का अनुभव करते हैं एवं कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करते हैं।

1. गलियार बैल गाड़ीवान जिस प्रकार दोनों ही परस्पर दुःखी हो जाते हैं।

उसी प्रकार अविनीत शिष्य और गुरु दोनों ही दुःखी हो जाते हैं। उनके माया, झूठ, कलह, मारपीट आदि प्रवृत्तियों से संयम का नाश हो जाता है। अतः अशुभ कर्मों का या अनादेय नाम कर्म का तीव्र उदय जानकर ऐसे समय में योग्य अवसर देखकर एकाकी विहार कर आत्म कल्याण साधना ही हितकर होता है।

अविनीत साधु कोई घमण्डी होते हैं, तो कोई दीर्घ क्रोधी होते हैं, कोई भिक्षार्थ जाने में आलसी होते हैं, कोई कुछ भी शिक्षा प्रेरणा सुनना ही नहीं चाहते, कोई बीच में बोलते, कोई सामने जवाब देते हुए कुतर्क करते हैं, कोई सदा प्रतिकूल वर्ताव करते रहते हैं। ऐसे कुलक्षणों का मोक्षार्थी मुनि को सदा परित्याग करना चाहिए तथा ऐसे कुलक्षणी साथियों का भी त्याग कर देना चाहिए।

अट्ठाईसवां अध्ययन (मोक्ष मार्ग)

1. ज्ञान दर्शन चारित्र और तप रुप चतुर्विधि धर्म से सयुंक्त यह मोक्ष मार्ग है। इन चारों की युगपत् आराधना करना ही मोक्ष प्राप्ति का राज मार्ग है।

2. जीवादि नव पदार्थों को एवं छः द्रव्यों को जानकर सर्वज्ञ के कथनानुसार उसकी श्रद्धा करना, यह सम्यग्-ज्ञान एवं सम्यक्-दर्शन है।

3. देश-विरति या सर्व-विरति का जो स्वरुप जिन वाणी के द्वारा प्ररुपित है, उसे भलीभांति समझ कर शुद्ध रुप से पालन करना सम्यक् चारित्र है।

4. उपवास आदि बाह्य-तप एवं स्वाध्याय आदि आभ्यंतर-तप में यथाशक्ति यथावसर क्रमशः वृद्धि करते रहने का प्रयत्न करना, शरीर के ममत्व को दूर कर कर्म क्षय करने में सम्पूर्ण आत्म शक्ति को झोंक देना, ''देहं पातयामि कार्यं साधयामि'' अथवा देह दुक्खं महाफलं के सिद्धान्त को आत्मसात कर देना तपाराधना है। ध्यान के बाद अन्तिम तप व्युत्सर्ग है इसमें मन-वचनकाया, कषाय, गण समूह आदि का एवं शरीर के ममत्व का तथा आहारादि का व्युत्सर्जन किया जाता है।

5. ज्ञान से तत्वों को, आश्रव-संवर को जानना। दर्शन से उनके विषय में यथावत् श्रद्धान करना, चारित्र से नये कर्म-बंध को रोकना और तप से पूर्व कर्मों का क्षय करना, इस प्रकार चारों के सुमेल से ही मोक्ष की परिपूर्ण साधना होती है। किसी भी एक के अभाव में साधना की सफलता सम्भव नहीं है। महर्षि कर्मक्षय करने के लिए चतुर्विध मोक्षमार्ग में पराक्रम करते हैं।

उनतीसवां अध्ययन (सम्यक् पराक्रम विषयक प्रश्नो के उत्तर)-

1. वैराग्य भावों की वृद्धि करने एवं संसार से उदासीन बनने से-

- उत्तम धर्म श्रद्धा कर प्राप्ति होती है।
- उससे पुनः वैराग्य की वृद्धि होती है।
- तीव्र कषाय भावों की समाप्ति एवं
- नये कर्म बन्ध की अल्पता हो जाती है।
- सम्यक्त्व की उत्कृष्ट आराधना करने वाले कई जीव उसी भव में और कई जीव तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

2. निवृत्ति की वृद्धि और त्याग व्रत की वृद्धि करने से-

- पदार्थों के प्रति अनाशक्ति भाव पैदा होता है।
- इन्द्रिय विषयों में विरक्ति भाव हो जाता है।
- हिंसादि प्रवृत्तियों का त्याग होता है।
- एवं संसार का अन्त और मोक्ष की उपलब्धि होती है।

3. धर्म की सच्ची श्रद्धा हो जाने पर

- सुख सुविधा के प्रति लगाव की कमी होती है।
- संयम को स्वीकार किया जाता है।
- शारीरिक मानसिक दुःखों का विच्छेद हो जाता है और
- बाधारहित सुख की प्राप्ति होती है।

4. गुरु एवं सहवर्ती साधुओं की सेवा से

- कर्त्तव्य का पालन होता है।
- आशातनाओं से आत्मा की रक्षा होती है।
- आशातना नहीं होने से दुर्गति का निरोध होता है।
- उनकी गुण कीर्ति, भक्ति-बहुमान करने से सद्गति की प्राप्ति या सिद्ध गति की प्राप्ति होती है।
- विनयमूलक अनेक गुणों की उपलब्धि होती हैं।
- और अन्य जीवों के लिए विनय सेवा का आदर्श उपलब्ध होता है।

5. अपने दोषों की आलोचना करने से- मोक्ष मार्ग में विघ्न करने वाले और अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले ऐसे माया, निदान और मिथ्यात्व रुप तीन शल्यों का नाश होता है। सरल भावों की उपलब्धि होती है।

6. आत्म निन्दा अर्थात् अपनी भूलों के प्रति खेद अनुभव करने से -

- पश्चाताप होकर विरक्ति भाव की वृद्धि होती है और
- उससे गुणस्थानों की क्रमशः बढ़ोतरी होकर मोह कर्म का क्षय होता है।

7. दूसरों के समक्ष अपनी भूल प्रकट करने से- जीव अपने अनादार असत्कार जन्य कर्मों की उदीरणा करता है और क्रमशः घाती कर्मों का क्षय करता है।

8. सामायिक स्वीकार करने से- पाप प्रवृत्तियां छूट जाती हैं।

9. लोगस्स पाठ (24 तीर्थंकर की स्तुति) करने से- सम्यक्त्व की विशुद्धि होती है।

10. वंदन विनय करने से- 1 निम्न कर्मों का क्षय एवं ऊंचे कर्मों का उपार्जन होता है तथा 2 उसकी आज्ञा को लोग शिरोधार्य करे ऐसे सौभाग्य को और जनप्रियता को प्राप्त करता हैं।

11. प्रतिक्रमण करने से-

- लिये हुए व्रत प्रत्याख्यानों की शुद्धि होती है।
- जिससे चारित्र शुद्ध होता है।
- समिति गुप्ति रुप अष्ट प्रवचन माता में जागरुकता बढ़ती है।
- तथा भाव युक्त प्रतिक्रमण करनेसे संयम में तल्लीनता की वृद्धि होती है एवं
- मानसिक निर्मलता की उपलब्धि होती है।

12. कायोत्सर्ग करने से अर्थात् मन वचन तथा शरीर का पूर्णतः व्युत्सर्जन कर देने से-

- भार नीचे रख देने वाले भारवाहक के समान वह साधक हल्का हो जाता है।
- और प्रशस्त ध्यान में लीन होकर उत्तरोत्तर सुख पूर्वक विचरण करता है।

13. प्रत्याख्यान करने से- आश्रवों का निरोध होता है जिससे कर्म बंध कम हो जाता है।

14. सिद्ध स्तुति-णमोत्थुणं का पाठ करने से-

- ज्ञान दर्शन चारित्र संबंधी विशिष्ट बोधि की प्राप्ति होती है।
- एवं ऐसी बोधि से संपन्न जीव आराधना के योग्य बनता है।

15. प्रायश्चित ग्रहण करने से -

- चारित्र निरतिचार होजाता हैं।
- पापाचरणों का विशोधन हो जाता है।

❷ सम्यग् ज्ञान की उपलब्धि और चारित्र की सम्यग् आराधना हो जाती है।

16. स्वाध्याय काल आया या नहीं यह जानकारी करने से एवं अस्वाध्याय के कारणों की निर्णित जानकारी करने से- ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय होता है।

17. क्षमा याचना कर लेने से-

❷ आह्लाद पूर्ण मनोभाव हो जाता है अर्थात् चित्त की प्रसन्नता होजाती है।

❷ सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव की उपलब्धि होती है।

❷ मन की निर्मलता हो जाने पर वह प्राणी सर्वत्र निर्भय बन जाता है।

18. स्वाध्याय से- ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होती है।

19. वाचना आचार्य या उपाध्याय से मूल पाठ एवं अर्थ की वाचना लेने से -

❷ सर्वतोमुखी कर्मों का क्षय होता है।

❷ वाचना लेने वाला श्रुत की उपेक्षा दोष से और आशातना दोष से बच जाता है अर्थात् सूत्रों की वाचना लेने वाले की श्रुत के प्रति भक्ति भाव की वृद्धि होती है और सम्यग् शास्त्र वांचना लेकर बहुश्रुत हो जाने से उनके द्वारा सहसा अज्ञान दोष से श्रुत की आशातना नहीं होती है।

❷ वह सदा श्रुतानुसार सत्य निर्णय करने वाला बन जाता है तथा

❷ वह भगवान के शासन में अवलंबन भूत बन जाता है।

❷ जिससे उसको महान् निर्जरा लाभ और मुक्ति लाभ होता है।

20. सूत्रार्थ के विषय में प्रश्न पूछकर समाधान प्राप्त करने से-

❷ सूत्रार्थ ज्ञान की विशुद्धि होती है।

❷ संशयों का निराकरण हो जाता है फलतः मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का क्षय होता है।

21. सूत्रों की परावर्तना करने से

❷ स्मृत्ति की पुष्टि होती है

❷ भूला हुआ ज्ञान स्थिर हो जाता है।

❷ पदानुसारिणी बुद्धि का विकास हो जाता है अर्थात् एक पद के उच्चारण से अगला पद स्वतः याद आ जाता है।

22. सूत्रांतरगत तत्त्वों की मन में विचारणा चिंतवना करने से -

- कर्म शिथिल बनते हैं, संक्षिप्त होते हैं, मंद हो जाते है और अल्प हो जाते हैं।
- कर्म बंध से और संसार से शीघ्र मुक्ति हो जाती है।

23. धर्मोपदेश देने से-

- स्वयं के कर्मों की महान् निर्जरा होती है।
- और जिन शासन की भी महत्ति प्रभावना होती है।
- आगामी भवों में महासौभाग्यशाली होने के कर्मों का उपार्जन करता है।

24. श्रुत की सम्यक् आराधना करने से-

- अज्ञान का क्षय हो जाता है
- और वह ज्ञानी कहीं भी संक्लेश-चित्त की असमाधि नहीं पाता है।

25. मन को एकाग्र करने से- चित्त की चंचलता समाप्त होती है।

26. संयम लेने से- प्रमुख आश्रव-कर्म आने के रास्ते बंद हो जाते हैं अर्थात् हिंसादि बड़े-बड़े पापों का लगभग पूर्णतया त्याग हो जाता है।

27. विविध (12 प्रकार की) तपस्या करने से- पूर्व बद्ध कर्म आत्मा से अलग हो जाते हैं।

28. अल्पकर्मा हो जाने से- वह क्रमशः योग निरोध अवस्था को प्राप्त करता है। फिर शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

29. शान्तिपूर्वक अर्थात् उतावल उद्वेग के बिना मन वचन एवं काया की प्रवृत्ति करने से-

- जीव उत्सुकता रहित एवं शान्तिप्रिय स्वभाव और व्यवहार वाला बनता है।
- शान्ति पूर्वक प्रवृत्ति करने वाला ही वास्तव में प्राणियों की पूर्ण अनुकंपा कर सकता है।
- ऐसा वह अनुकंपा पालक साधक, हाय-हाय और भड़ाभड़ युक्त प्रवृत्तिएं नहीं करता है।
- जिससे वह शोक मुक्त रहता है और
- चारित्र मोह कर्मों का विशेष रुप से क्षय करता है।

30. मन की अनासक्ति हो जाने से

- प्राणी ब्राह्य संसर्गों से और उससे उत्पन्न होने वाली परिणतियों से मुक्त हो जाता है।
- ऐसा साधक सदा एकत्व भाव में ही तल्लीन बन उसी में दत्तचित्त रहता है।
- और वह रात-दिन (प्रतिक्षण) प्रतिबंधों से रहित होकर आत्म भावों में रहता है एवं अप्रमत्त भावों से युक्त रहकर सदा अंतमुर्खी रहता है।

31. जनाकुलता एवं स्त्री आदि से रहित एकान्त स्थान के सेवन से

- चारित्र की रक्षा होती है।
- ऐसा चारित्र रक्षक साधक पौष्टिक आहार का त्याग करता है।
- दृढ़ चारित्र वाला बनता है।
- एकान्त में ही रमण करने वाला होता है।
- अतः करण से मोक्ष पथिक बन कर कर्मों की गांठ को तोड़ देता है।

32. इन्द्रियों और मन को विषयों से दूर रखने से-

- जीव नये-नये पाप कर्म नहीं करने में ही संतुष्ट रहता है अर्थात् वह पापचरण करने में उत्साह रहित हो जाता है।
- एवं पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय करके संसार अटवी को पार कर मुक्त हो जाता है।

33. सामूहिक आहार पानी का त्याग करने से-

- श्रमण परावलंबन से मुक्त होता है
- स्वावलम्बी बनता है
- वह स्वयं के लाभ से संतुष्ट रहने में अभ्यस्त हो जाता है और
- परलाभ की आशाओं से मुक्त हो जाता है।
- संयम ग्रहण करना जीवन की प्रथम सुख शय्या है, तो उसमें सामुहिक आहार का त्याग करना जीवन की दूसरी सुख शय्या है अर्थात् संयम की साधना के सथ सामूहिक आहार का त्याग करके साधक अनुपम सुख सुविधा प्राप्त करता है।

34. संयम जीवन में शरीरोपयोगी वस्त्रादि उपकरणों को अल्प रखने या त्याग करने से-

- जीव को उस उपाधि संबंधी लाना, रखना, सम्भालना, प्रतिलेखन करना एवं समय पर उसके संबंधी अनेक सुधार संस्कार आदि कार्यों के करने से मुक्ति मिलती है।
- जिससे प्रमाद और विराधना घटती है।
- स्वाध्याय की क्षति का बचाव होता है।
- उपधि संबंधी आकांक्षाए नहीं रहती है।
- और ऐसे अभ्यस्त जीव को उपाधि की अनुपलब्धि होने पर कभी संक्लेश नहीं होता है।

35. आहार का त्याग करते रहने से अथवा आहार को घटाते रहने से-

- जीने के मोह का क्रमशः छेदन होता है

- तथा वह जीव आहार की अनुपलब्धि होने पर संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है। किन्तु
- उस परिस्थिति में भी प्रसन्नचित्त रह सकता है।
- दीन नहीं बनता है।

36. कषायों के प्रत्याख्यान का अभ्यास करते रहने से -

- प्राणी वीतराग भाव के समकक्ष भावों की उपलब्धि करता है।
- ऐसा जीव सुख-दुःख दोनों अवस्था में समपरिणामी रहता है अर्थात् हर्ष और शोक से वह अपनी आत्मा को अलग रख लेता है।

37. योग प्रवृत्तियों को अल्पमत करने या त्याग करने से-

- जीव योग रहित और आश्रव रहित अर्थात्
- कर्म बंध रहित अवस्था को प्राप्त करता है।
- और पूर्व कर्मों का क्षय कर देता है।

38. शरीर का पूर्णतया त्याग कर देने से-

- प्राणी आत्मा को सिद्ध अवस्था के गुणों से युक्त बना लेता है एवं
- लोकाग्र में पहुंच कर आत्म स्वरुप में स्थिर हो जाता है।
- जन्म मरण एवं संसार भ्रमण से सदा के लिए छूट जाता है।

39. किसी भी कार्य में दूसरों का सहयोग लेने का त्याग कर देने से अर्थात् समूह में रहते हुए भी अपना समस्त कार्य स्वयं करने रुप एकत्व चर्या में रहने से-

- साधक सदा एकत्व भाव में रमण करता है। एकत्व की साधना से अभ्यस्त हो जाता है।
- अनेक प्रकार की अशांति से एवं कलह, कषाय, कोलाहल और तूं-तूं आदि की प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है।
- तथा उसे संयम, संवर और समाधि की विशिष्टतम उपलब्धि होती है।

40. आजीवन अनशन करने से अर्थात् मृत्यु समय निकट जानकर स्वतः संथारा धारण कर लेने से-

भव परम्परा की अल्पता हो जाती है अर्थात् वह प्राणी भव भ्रमण घटाकर अत्यल्प भवों से मुक्ति कर लेता है।

41. सम्पूर्ण देहिक प्रवृत्तियों का निरोध करने से अर्थात् देह रहते हुए भी देहातीत बन जाने से - वह केवल ज्ञानी योग निरोध अवस्था को प्राप्त कर चार अघाति कर्म क्षय करके मुक्त हो जाता है।

42. वेश के अनुसार ही आचार विधि का ईमानदारी पूर्वक पालन करने से अथवा अचेलकता धारण करने से-

- साधक हल्केपन को प्राप्त करता है।
- स्पष्ट एवं विश्वस्त लिंग वाला होता है।
- अप्रमत्त भावों की वृद्धि होती है।
- वह साधक जितेन्द्रिय, समितिवंत एवं विपुल तप वाला होजाता है।
- सभी प्राणियों के लिए विश्वसनीय हो जाता है।

43. साधुओं की सेवा सुश्रुसा करने से- तीर्थंकर नामकर्म बंध रुप पुण्योपार्जन होता है।

44. विनयादि सर्व गुणों से सम्पन्न हो जाने से-

- जीव उत्तरोत्तर मुक्ति गमन के निकट हो जाता है एवं
- शारीरिक मानसिक दुःखों का भागी नहीं बनता है।

45. वीतराग भावों में रमण करने से-

- जीव स्नेह एवं तृष्णा के अनुबंधनों से मुक्त हो जाता है और
- मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द रुप आदि के संयोग होने पर भी सदा विरक्त भावों से निस्पृह बना रहता है।

46. क्षमा धारण करने से- व्यक्ति कष्ट उपसर्ग एवं परिषहों के उपस्थित हो जाने पर दुःखी नहीं बनता अपितु परीषह जेता बनकर प्रसन्न रहता है।

47. निर्लोभी बनकर रहने से -

- प्राणी अकिंचन निष्परिग्रही और सच्चा साधक बन जाता है।
- ऐसे सच्चे साधक से अर्थ लोलुपी लोग कुछ भी चाहना या याचना नहीं करते ।

48. सरलता धारण करने से-

- भाषा में और काया में तथा भावों में सरलता एकमेक बन जाती है।
- ऐसे व्यक्ति का जीवन विवाद रहित बन जाता है।
- और वह धर्म का सच्चा आराधक बनता है।

49. मृदुता, लघुता, नरमाई, कोमलता के स्वभाव को धारण करने से-

- जीव उद्धत भाव या उद्दण्ड स्वभाव वाला नहीं होता है।
- और वह व्यक्ति आठ प्रकार के मद (घमण्ड) के स्थानों का विनाश कर देता है।

50. अंतरात्मा में सच्चाई धारण करने से-

- जीव भावों की विशुद्धि को प्राप्त करता है ।

❷ अर्हत भाषित धर्म का और परलोक का आराधक होता है।

51. ईमानदारी पूर्वक कार्य करने से-

❷ जीव अपूर्व- अपूर्व कार्य करने की क्षमता को प्राप्त करता है।

❷ तथा उसकी कथनी और करनी एक हो जाती है।

52. मन वचन और काया की सच्चाई धारण करने से- जीवअपनी सभी प्रवृत्तियों को विशुद्ध करता है।

53. मन का गोपन करने से अर्थात अशुभ मन को रोककर उसे शुभ रूप से परिणत करते रहने से-

❷ जीव चित्त की एकाग्रता वाला बनता है ।

❷ और अशुभ संकल्पों से मन की रक्षा कर संयम की आराधना करता है।

54. वचन का गोपन करने से अर्थात् मौन व्रत धारण करने से-

❷ जीव विचार शून्यता को प्राप्त करता है अर्थात् घाटघड़ों से मुक्त बनने में अग्रसर होता है ।

❷ और उसे अध्यात्म योग और शुभ ध्यान की प्राप्ति होती है।

55. काया के गोपन से अर्थात् अंगों पांगों के संगोपन से-

❷ कायिक स्थिरता को प्राप्त करता है।

❷ एवं पापाश्रवों का निरोध करता है।

56. मन को आगम कथित भावों में भली-भांति लगाने से-

❷ जीव एकाग्रता और ज्ञान की विशिष्ट क्षमता को प्राप्त करता है

❷ तथा वह सम्यक्त्व की विशुद्ध और मिथ्यात्व का क्षय करता है ।

57. वाणी को स्वाध्याय में भली-भांति लगाने से-

❷ भाषा से संबंधित सम्यक्तत्व के विषय की विशुद्धि होती है ।

❷ उसे सुलभ बोधि की प्राप्ति होती हैं और दुर्लभ बोधि का क्षय होता है

58. संयम योगों में काया को भलीभांति लगाने से-

❷ चारित्र की विशुद्धि होती है और सर्व दुखों से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

59. आगम ज्ञान से संपन्न बनने से-

❷ साधक विशाल तत्त्वों का ज्ञाता बन जाता है।

❷ सूत्र ज्ञान से सम्पन्न जीव डोरे युक्त सूई के समान संसार में सुरक्षित रहता है अर्थात् कहीं भी खोता या भटकता नहीं है।

- सिद्धान्तों में कोविद बना हुआ वह ज्ञानी लोगों में प्रामाणिक एवं आलंबन भूत पुरुष माना जाता है।

60. जिन प्रवचन में गाढ़ श्रद्धा सम्पन्न होने से-

- प्राणी मिथ्यात्व का विच्छेद कर देता है एवं क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है अर्थात् उसका सम्यक्त्व रुपी दीपक कभी बुझता नहीं है तथा वह
- ज्ञान दर्शन की उत्तरोत्तर वृद्धिकरता हुआ अणुत्तर ज्ञान दर्शन प्राप्त करता है।

61. चारित्र से सुसम्पन्न बनने से- जीव शैलेशी अवसथा को प्राप्त कर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है।

62.66. पांचो इन्द्रियों का निग्रह करने से

- जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ इन्द्रिय विषयों के उपस्थित होने पर भी राग द्वेष और कर्म बंध नहीं करता है।

67.70. चारों कषायों पर विजय प्राप्त कर लेने से-

- साधक क्रमशः क्षमा, नरमाई (विनम्रता), सरलता और निर्लोभता गुण से सम्पन्न बन जाता है
- और तत्जन्य कर्म बंध नहीं करता हुआ पूर्वकर्मों का क्षय करता है।

71.73. राग, द्वेष और मिथ्यात्व पाप पर विजय प्राप्त करने से अर्थात् इन परिणामों का क्षय कर देने से-

- साधक रत्नत्रय की आराधना में उपस्थित होता है।
- फिर मोह कर्म आदि का क्षय कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनता है।
- उसके केवल दो समय की स्थिति वाले शाता वेदनीय का ही बन्ध होता है।
- अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर केवली तीनों योग और श्वासोश्वास का निरोध करता है।
- जिससे उसके आत्म प्रदेश शरीर के दो तिहाई अवगाहना में स्थित हो जाते है। अर्थात् फिर आत्म प्रदेशों का शरीर में भ्रमण भी बन्द हो जाता है।
- अन्त में संपूर्ण कर्म क्षय करके एवं शरीर का त्याग करके वह जीव शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है।
- सम्यक् पराक्रम नामक- इस अध्ययन के इन स्थानों में साधक को यथाशक्ति यथासमय सम्यक्तया पराक्रम करते ही रहना चाहिए। ऐसा करने से ही संयम में उपस्थित होने वाला वह साधक आत्म कल्याण साध कर सदा के लिए कृत्य-कृत्य बन जाता है।

तीसवां अध्ययन (तप स्वरुप)-

- इस अध्ययन में तप स्वरूप और उसके भेद-प्रभेदों का वर्णन है ।

1. जिस प्रकार महा सरोवर में पानी आने के मार्ग बंद कर देने पर एवं पानी को बाहर निकालते रहने से , सूर्य के

ताप से क्रमशः उसका पानी खाली किया जा सकता है उसी प्रकार श्रमणों के संपूर्ण नए पाप कर्मों का निरोध हो जाता है। फिर उत्तरोत्तर तप का आचरण करते रहने से करोड़ों भवों के संचित कर्म भी क्षय हो जाते हैं।

अर्थात् -हिंसा, चोरी, झूठ, कुशील, परिग्रह रात्रि भोजन से सर्वथा निवृत्त पांच समिति तीन गुप्ति से युक्त,कषायों से मुक्त, जितेन्द्रिय, तीन गर्व और तीन शल्य से रहित, मुनि कर्माश्रव रहित हो जाता है।

अनशन आदि 6 प्रकार के ब्राह्य तप तथा प्रायश्चित स्वाध्याय ध्यान आदि आभ्यंतर तप का अधिकाधिक आचरण करने से मुनि क्रमशः कर्मों से रहित हो जाता है।

1. नवकारसी, पोरिसी, निवी, आयंबिल, उपवास से लेकर 6 मास तक का तप एवं अन्य अनेक श्रेणी, प्रतर तप इत्वरिक अनशन तप है।

आजीवन संथारा करना भी शरीर के ब्राह्य परिकर्मयुक्त और परिकर्म रहित दोनों प्रकार का होता है।

2. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और पर्याय के भेद से ऊणोदरी तप पांच प्रकार का है। भूख से कम खाना, द्रव्य उणोदरी है। शेष चार भेद अभिग्रह संबंधी है ।

3. पेटी, अर्ध पेटी आदि आठ प्रकार की गोचरी या सात प्रकार की पिंडेषणा या अन्य अनेक नियम अभिग्रह में से कोई भी अभिग्रह करके भिक्षा के लिए जाना 'भिक्षाचर्या' तप है।

4. पांच विगय में से किसी भी एक या अनेक विगय का त्याग करना अथवा अनेक मनोज्ञ खाद्य पदार्थों का त्याग करना, 'रस परित्याग' तप है।

5. वीरासन आदि अनेक कठिन आसन करना, रात्रि भर एक आसन करना, लोच करना, परीषह आदि सहन करना, ये सब 'कायक्लेश' तप है।

6. अरण्य, वृक्ष, पर्वत, गुफा, श्मशान, झोपड़ी आदि एकान्त स्थान में आत्मलीन होकर रहना अथवा कषाय, योग, इन्द्रियों, के प्रवर्त्तन का परित्याग करना, 'प्रतिसंलीनता' तप है।

7. दस प्रकार के प्रायश्चित में यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करना, 'प्रायश्चित्त' तप है।

8. खड़े होना, आसन निमंत्रण करना, हाथ जोड़कर मस्तक झुकाना आदि गुरु भक्ति और भाव सुश्रुषा करना 'विनय' तप है।

9. आचार्य स्थविर रुग्ण साधु या नवदीक्षित आदि दस की यथाशक्ति सेवा 'वैयावृत्य' तप है।

10. स्वाध्याय-1

- नये नये श्रुत के मूल एवं अर्थ की वाचना लेना, कठंस्थ करना

* शंकाओं को पूछकर समाधान करना
* श्रुत का परावर्त्तन करना
* अनुप्रेक्षा करना
* धर्मोपदेश देना 'स्वाध्याय' तप है।

11. आत्म स्वरुप का, एकत्व, अन्यत्व, अशरण भावना आदि का, लोक स्वरुप का एकाग्र चित्त से आत्मानुलक्षी सूक्ष्म-सूक्ष्मतर चिन्तन करते हुए उसमें तल्लीन हो जाना 'ध्यान' तप है। प्रथम अवस्था 'धर्मध्यान' है और उससे आगे की अत्यंत सूक्ष्म अवस्था 'शुक्ल ध्यान' है।

व्युत्सर्ग- मन वचन काया के व्यापारों का निर्धारित समय के लिये पूर्ण रुप से परित्याग कर देना, योग व्युत्सर्ग है। इसे प्रचलन की भाषा में कायोत्सर्ग कहा जाता है। इसी तरह कषायों का, कर्मों का, समूह गण का, व्युत्सर्जन कर एकाकी रहना, ये 'व्युत्सर्जन' तप के द्रव्य एवं भाव भेदों के प्रकार हैं।

इन बाह्य और आभ्यन्तर तपों का यथाशक्ति जो मुनि सम्यक् आराधना करता है एवं इनके उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए आगे बढ़ता है, वह शीघ्र ही संसार से मुक्त हो जाता है।

इकत्तीसवां अध्ययन (चरण विधि)-

इस अध्ययन में एक से लेकर तेतीस बोल तक आचार के विषयों का कथन है। जिसमें कई ज्ञेय है, कई उपादेय है और कई हेय हैं।

समिति, गुप्ति, महाव्रत, श्रमण, धर्म, प्रतिमा आदि उपादेय हैं।

कषाय, दण्ड, असंयम, बंधन, शल्य, गर्व, संज्ञा, भय, मद आदि हेय हैं।

छः काया, भूत ग्राम, परमाधामी, सूत्रकृ तांग-सूत्र, ज्ञातासूत्र, दशाश्रुत स्कंध सूत्र आदि के अध्ययन ज्ञेय है।

अंत में गुरु रत्नाधिक की तेंतीस आशातनाएं हैं।

बत्तीसवां अध्ययन (प्रमाद से सुरक्षा)-

इस अध्ययन में मैथुन भाव एवं पांच इन्द्रिय विषयों के संबंध में विस्तार से कथन करते हुए इन्हें प्रमादाचरण समझाते हुए इनसे आत्मा को सावधान एवं सुरक्षित रहने की प्रेरणा की गई है एवं सुरक्षित रहने की विधि भी सूचित की है।

1. सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकट करने से अज्ञान और मोह का त्याग करने से और राग-द्वेष को क्षय करने से एकान्त सुख के स्थान रुप मोक्ष की प्राप्ति होती है।

2. इसके लिए 1 वृद्ध गुरुजनों की सेवा 2 बाल जनों की संगतिवर्जन 3 स्वाध्याय 4 एकान्त सेवन 5 सूत्रार्थ चिन्तन 6 परिमित आहार 7 योग्य साथी 8 जनाकुलता रहित स्थान इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

3. कदाचित् ऐसी रुचि का सहायक न मिले तो पापों का वर्जन करता हुआ और कामासक्त न होता हुआ अकेला ही विचरण करे।

4. लोभ तृष्णा एवं मोह के त्याग से दुःखों का नाश शीघ्र सम्भव है।

5. राग- द्वेष और मोह ये कर्मों के मूल हैं और कर्म दुःख संसार के मूल हैं।

6. मैथुन- भाव के त्यागी को रसों का, विगयों का, अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना, पेट भर कर कभी नहीं खाना, स्त्री आदि के सम्पर्क रहित, निवास रहित एकान्त सथान में रहना, स्त्री के हास्य, विलास, रुप, लावण्य आदि का श्रवण या अवलोकन नही करना, स्त्री संबंधी चिन्तन नहीं करना।

7. विभूषित देवांगनाएं भी ब्रह्मचर्य लीन मुनि को स्खलित करने में समर्थ न हो, ऐसे साधक के लिए भी भगवान ने स्त्री आदि से रहित स्थान में ही रहना एकान्त हितकर कहा है।

8. किंपाक फल रस में, वर्ण में, खाने में, मनोज्ञ होता है किन्तु परिणाम उसका विषमय होता है। वैसे ही काम भोगों का परिणाम महा दुःखदायी है।

9. स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष पर पक्षी भ्रमण करते रहते हैं, उसी प्रकार पौष्टिक भोजन करने वाले के चित्त में विकार वासना के संकल्प आते रहते हैं।

10. जिस प्रकार अति ईंधन वाले वन में लगी अग्नि शान्त होना कठिन है, उसी प्रकार अति-भोजन करना कामाग्नि की वृद्धि कराने वाला होने से ब्रह्मचारी के लिए किंचित भी हितकारी नहीं है।

11. बिल्ली के निवास स्थान पर चूहों का निवास प्राणों के संहार के लिये होता है उसी प्रकार स्त्री के स्थान में साधु का निवास अर्थात् साथ-साथ रहना, गमनागमन करना, सर्वथा अनुचित होता है।

12. पांचों इन्द्रियों के विषय में आसक्त बना जीव अनेक प्रकार के पापाचरण करता है। उन विषयों के संग्रह में लालायित होकर रात-दिन दुःखी अशांत रहता है, झूठ-कपट, चोरी आदि करता है और अनेक प्रकार के कर्मबंध कर संसार वृद्धि करता है।

13. पांचों इन्द्रिय और काम-भोग की आसक्ति से जीवन नाश करने वाले प्राणियों का दृष्टांत देकर उसके द्वारा विषयों से विरक्ति धारण करने की प्रेरणा की गई है।

14. श्रोत्रेन्द्रिय में हिरण, चक्षुइन्द्रिय के पतंगा, घ्राणेन्द्रिय में सर्प, रसेन्द्रिय में मच्छ, स्पेन्द्रिय में भेंसा और काम-भोग में- हाथी, प्राण गंवा देते हैं।

15. मोक्षार्थी मुनि जल में कमलवत् इन सब विषयों से विरक्त रहकर संसार में अलिप्त रहता है।

16. विरक्त, ज्ञानी और सतत् सावधान साधक के लिए ये इन्द्रिय विषय कुछ भी दुःखदायी नही होते अर्थात् वह इनमें लुभावित होता ही नहीं है क्योंकि वह सदा इनके प्रति वीतराग भावों को उपस्थित रखता है।

अतः दुःख इन विषयों में नहीं है किन्तु आत्मा के राग-द्वेष जन्य परिमाणों में एवं आसक्ति और अज्ञान में ही दुःख भरा हुआ है। ज्ञानी, विरक्तात्मा के लिये ये सब विषय किंचित भी पीड़ाकारी नहीं हो सकते। ये इन्द्रिय-विषय तो स्वतः सदा उस विरक्तात्मा से दूर ही भागते हैं।

इस प्रकार मुनि निरन्तर विरक्त भावों की वृद्धि करके संकल्प-विकल्पों से ऊपर उठे और सम्पूर्ण तृष्णा इच्छाओं से मुक्त बने।

तेतीसवां अध्ययन (अष्ट कर्म)-

1. इस अध्ययन में मूल कर्म प्रकृति आठ और उत्तर प्रकृति इकहत्तर कही (71) है। वेदनीय और नाम कर्म के दो-दो भेद कह कर इनके पुनः अनेक भेद होना भी सूचित किया है।

1. ज्ञानावरणीय के - 5 | 2. दर्शनवरणीय के -9
3. वेदनीय के - 2 | 4. मोहनीय के - 28
5. आयुष्य के - 4 | 6. नामकर्म के - 2
7. गौत्रकर्म के - 16 | 8. अंतरायकर्म के -5

1. ज्ञानावरणीय के - 5	2. दर्शनवरणीय के -9
3. वेदनीय के - 2	4. मोहनीय के - 28
5. आयुष्य के - 4	6. नामकर्म के - 2
7. गौत्रकर्म के - 16	8. अंतरायकर्म के -5

ये कुल = 71 भेद हैं।

एक समय में अनन्त कर्म स्कन्ध ग्रहण होते हैं, छहों दिशाओं से ग्रहण किये जाते हैं और सर्व आत्म प्रदेशों पर उनका बंध समान होता है।

1. आठ कर्मों की बंधस्थिति इस प्रकार है।

जघन्य	उत्कृष्ट
1. ज्ञानावरणीय अंतुर्मुहूर्त	तीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम
2. दर्शनावरणीय अंतुर्मुहूर्त	तीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम
3. वेदनीय अंतुर्मुहूर्त	तीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम
4. मोहनीय अंतुर्मुहूर्त	सित्तर क्रोडा-क्रोड सागरोपम
5. आयुष्य अंतुर्मुहूर्त	तेंतीस सागरोपम
6 नाम अंतुर्मुहूर्त	बीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम
7 गौत्र अंतुर्मुहूर्त	बीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम
8 अंतराय अंतुर्मुहूर्त	तीस क्रोडा-क्रोड सागरोपम

मोक्षार्थी साधक को इन कर्मों को जानकर इनका बंध नहीं करना एवं पूर्व बद्ध को तप संयम से क्षय करने में यत्न करना चाहिए।

चौतीसवां अध्ययन (लेश्या स्वरुप)-

कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या अशुभ है और तेजो, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या शुभ है। अथवा ये तीन अधर्म लेश्याएं हैं वे जीव को दुर्गति में ले जाने वाली है और तीन धर्म लेश्याएं हैं वे जीव को सद्‌गति में ले जाने वाली है।

लेश्याएं द्रव्य और भाव दोनों प्रकार की होती है। भाव लेश्या तो आत्मा के परिणाम अर्थात् अध्यवसाय रुप है, जो अरुपी है। द्रव्य लेश्या पुद्‌गल मय होने से रुपी है उसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, परिणाम, स्थान, स्थिति आदि का यहां वर्णन किया गया है।

भाव लेश्या की अपेक्षा-लक्षण, गति, आयुबंध का वर्णन किया गया है।

1. कृष्ण लेश्या का लक्षण-पांच आश्रवों में प्रवृत्त, अगुप्त, अविरत, तीव्र भावों से आरम्भ में प्रवृत्त, निर्दय-क्रूर, अजितेन्द्रिय, ऐसे व्यक्ति के परिणाम कृष्ण लेश्या के समझना चाहिए।

2. नील लेश्या का लक्षण-ईर्ष्यालु, कदाग्रही, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, गृद्ध, धूर्त, प्रमादी, रस-लोलुप, सुखैशी, अविरत, क्षुद्र स्वभावी, ऐसे व्यक्ति के परिणाम नील लेश्या के समझना चाहिए।

3. कापोत लेश्या का लक्षण-वक्र, वक्राचरण वाला, कपटी, सरलता से रहित, दोषों को छिपाने वाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, हंसोड़, दुष्ट वादी, चोर, मत्सर भाव वाला, ऐसे व्यक्ति के परिणाम कापोत लेश्या के समझना चाहिए।

4. तेजो लेश्या का लक्षण-नम्रवृत्ति, अचपल, माया रहित, कुतूहल-रहित, विनयवन्त, दमितात्मा, समाधिवान, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, पापभीरु, मोक्षार्थी, ऐसे व्यक्ति के परिणाम तेजो लेश्या के समझना चाहिए।

5. पद्म लेश्या का लक्षण-क्रोध, मान-माया-लोभ अत्यन्त अल्प हों, प्रशान्त चित्त, दमितात्मा, तपस्वी, अत्यल्प भाषी, उपशान्त, जितेन्द्रिय, ऐसे व्यक्ति के परिणाम पद्म लेश्या के समझना चाहिए।

6. शुक्ल लेश्या का लक्षण-आर्त्त रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म और शुक्ल ध्यान में लीन, प्रशान्त चित्त, दमितात्मा, समितिवंत, गुप्ति वंत, उपशान्त, जितेन्द्रिय, इन गुणों से युक्त, सराग हो या वीतराग ऐसे व्यक्ति के परिणाम शुक्ल लेश्या के समझना चाहिए।

पैतीसवां अध्ययन (मुनि धर्म)-

1. गृहवास का त्याग कर संयम स्वीकार करने वाले मुनि को हिंसादि का, इच्छा लोभ का त्याग करना चाहिए।

2. मनोहर घरों में रहने की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए।

3. किसी भी प्रकार के मकानों के निर्माण कार्य में किंचित भी भाग नहीं लेना चाहिए। यह कार्य त्रस-स्थावर अनेक प्राणियों का संहारक होता है। इसकी अनुमोदन एवं प्रेरणा भी महान पाप कर्मों को पैदा करने वाली है।

4. उसी प्रकार आहार-पानी पकाने, पकवाने के कार्य भी अनेक पापों से युक्त है अर्थात् बहुत प्राणियों के विनाशकारी है। अतः मुनि उसमें भाग न ले एवं मुनि के लिए कोई आहार पानी पकावे तो उसे ग्रहण करने की मन से भी चाहना न करे।

5 मुनि धन-सम्पत्ति रखने की मन से भी चाहना न करे। पत्थर और सोने में समान भाव रखे। कुछ भी खरीदें या खरीदावें नहीं क्योंकि ऐसा करने वाला वणिक (गृहस्थ) होता है।

6. मुनि सामुदानिक (अनेक घरों से भ्रमण कर) प्राप्त भिक्षा से जीवन निर्वाह करे, लाभालाभ में संतुष्ट रहे। स्वाद के लिये कुछ भी न खावे। पूजा, प्रतिष्ठा, वंदन, सम्मान की मन से भी चाहना नहीं करे अर्थात् इनके लिए कोई प्रवृत्ति नहीं करे। निर्ममत्वी और निरहंकारी होकर साधना करे। मृत्यु समय में आहार त्याग कर शरीर का ममत्व छोड़, देहातीत होकर शुक्ल ध्यान में लीन बने। इस प्रकार आराधना करने वाला केवल ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करता है।

छत्तीसवां अध्ययन (जीव-अजीव)-

1. इस अध्ययन में अरुपी और रुपी अजीव के भेद प्रभेद के साथ उनका स्वरुप बताया है। फिर जीव का वर्णन प्रारम्भ करते हुए सिद्धों के भेद और स्वरुप का कथन है। साथ ही सिद्धी स्थान, सिद्ध शिला का वर्णन है। अंत में सिद्धों की अवगाहना एवं उनके अतुल सुखों का कथन किया है।

2. पृथ्वीकाय का वर्णन करते हुए खर-पृथ्वी के 36 और मृदु-पृथ्वी के सात भेद कहे हैं। फिर इनकी स्थिति, कायस्थिति और अन्तरकाल कहा है।

3. पृथ्वीकाय के वर्णन के अनन्तर शेष चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, नैरयिकजीव, तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय जलचर आदि, मनुष्य एवं चारों जाति के देवों के भेद-प्रभेद, नाम स्थिति, कायस्थिति एवं अन्तर काल बताया गया है।

4. यह जीव अजीव का स्वरुप जानकर एवं श्रद्धान करके मुनि संयम में रमण करे। क्रमशः संलेखना करे। वह संलेखना (संथारा करने के पूर्व की साधना) जघन्य 6 महिने, मध्यम एक वर्ष और उत्कृ ष्ट 12 वर्ष की होती है।

5. मुनि किसी प्रकार का निदान न करे। हास्य विनोद वाली कांदर्पिक वृत्ति, मंत्र निमित्त प्रयोग रुप अभियोगिक वृत्ति, केवली-धर्माचार्य-संघ या साधु के अवर्णवाद रुप किल्विषिक वृत्ति, रौद्र भाव रुप आसुरी वृत्ति और आत्मघात रुप मोही वृत्ति करके संयम की विराधना न करे।

6. जिन वचन में अनुरक्त होकर भाव पूर्वक भगवदाज्ञा का पालन करने से जीव कर्म मल रहित एवं संक्लेश रहित होकर क्रमशः सिद्ध बुद्ध मुक्त होता है।

।। उत्तराध्ययन सूत्र का सारांश समाप्त ।।

सूत्रगत उपदेशी गाथाएं एवं अर्थ

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होई, अस्सिं लोए परत्थ य ।।1।।

आत्मा का ही दमन करना चाहिए, आत्मा ही दुर्दम है, आत्मा का दमन करने वाला ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है।

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणि य जन्तुणो।
माणुसत्तं सुईं सद्धा, संजममि य वीरियं च ।।2।।

मोक्ष के हेतु चार अंग परम दुर्लभ है, मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम में पराक्रम।

सोही उज्जूय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाणं परमं जाइ घाय सित्तिव्व पावए ।।3।।

जो पूर्ण सरल होता है उसी की शुद्धि होती है। धर्म वहीं ठहरता है जो शुद्ध हो। घृत से अभिषिक्त अग्नि की भांति परिनिर्वाण को वहीं प्राप्त होता, जहां धर्म ठहरता है।

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इंमति लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अनन्त मोहे, नेयाउयं दट्ठु मदट्ठुमेव ।।4।।

प्रमत्त मनुष्य इस लोक में अथवा पर लोक में धन से त्राण नहीं पाता, अंधेरी गुफा में जिसका दीप बुझ गया हो उसकी भांति अनंत मोह वाला प्राणी पार ले जाने वाले मार्ग को देखकर भी नहीं देखता।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहो लोहो पवड्ढइ।
दो मासकयं कंज्ज, कोडीए वि न निट्ठियं ।।7।।

जैसे लाभ बढ़ता जाता है वैसे लोभ बढ़ता जाता है, दो माशे सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ों से भी पूरा नहीं हुआ।

कुसग्गे जह ओसबिन्दुए थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ।।10-2।।

कुश की नोक पर लटकते हुए ओस बिन्दु की अवधि जैसे थोड़ी होती है वैसे ही मानव जीवन की गति है, इसलिए हे गौतम! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

दुलहे खलु माणुसे भवे, चिर कालेण वि सव्व पाणिणं।
गाढ़ा य विवाग कम्मुणों, समयं गोयम मा परमाए ।।10-4।।

बहुत लम्बे काल तक मनुष्य भव प्राणी को नहीं मिल पाता है क्योंकि अनेक संचित कर्मों के प्रगाढ़ विपाक के कारण वह नाना योनियों में जन्म मरण करते हुए विश्राम ही नहीं पाता है अतः हे गौतम प्राप्त इस अवसर में अब समय मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

खण मित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा, पगाम दुक्खा अणिगामा सुक्खा।
संसार मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण हु काम भोगा ।।14-13।।

काम भोग क्षण भर के लिये सुख देने वाले हैं और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। ये अनर्थों की खान है एवं मोक्ष के अर्थात् कर्म संसार से मुक्त होने के ये पक्के विरोधी है क्यों कि भोगासक्त व्यक्ति संसार बढ़ाता है।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुण माणस्स, अफला जंति राइओं ।।14-24।।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं चु कुण माणस्स, सफला जंति राइओ ।।14-25।।

जो-जो रात्रियां बीत रही है वे लौट कर नहीं आती, अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल हैं। धर्म करने वाले की रात्रियां सफल होती है।

देव दानव गन्धव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा ।
बम्भयारिं नमंसंति दुक्करं जे करन्ति तं ।।16-16।।

देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस, किन्नर भी उन्हें नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्संति तहावरे ।।16-17।। तिब्बेमि

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव, नित्य, शास्वत और अर्हत द्वारा उपदिष्ट है, इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं, और भविष्य में होंगे।

लाभा लाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दा पसंसासु, तहा माणावमाणओ ।।19-90।।

लाभ अलाभ, जीवन मरण, सुख-दुःख, निन्दा प्रशंसा, मान अपमान, में सदा सम परिणामी रहने वाले सफल साधक होते हैं।

अणिस्सिओ इहं लोए, पर लोए अणिस्सिओ ।
वासी चण्दणकप्पो य, असणे अणसणे तहा ।।19-91।।

इस लोक और परलोक में अनासक्त, वसूले से काटने या चंदन लगाने पर तथा आहार मिलने या न मिलने पर सम रहने वाले मुनि सफल साधक होते हैं। अर्थात् वे चंदन वृक्ष के समान स्वभाव वाले होते हैं। चंदन काटने वाले को एवं पूजने वाले को दोनों को सुगंध ही देता है, समान व्यवहार रखता है वैसे ही श्रमण भी सम परिणाम एवं व्यवहार ही सदा रखता है।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूडसामली।
अप्पा काम दुहा धेणु, अप्पा मे नन्दणं वणं ।।20-36।।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाणय सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पअ्ठिय सुपट्ठिओ ।।20-37।।

आत्मा ही वेतरणी नदी है, और आत्मा की कूट शाल्मलीवृक्ष है, आत्मा ही काम दुधा धेनु है, और आत्मा ही नंदनवन है। आत्मा ही दुःख सुख को पैदा करने वाली और उनका क्षय करने वाली है, सत्यवृत्ति में लगी आत्मा ही मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में लगी आत्मा ही शत्रु है।

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वाया विद्धो व्व हड़ो, अट्ठि अप्पा भविस्सइ ।।22-44।।

यदि तू स्त्रियों को देखकर उनके प्रति इस प्रकार राग भाव करेगा, तो वायु से आहत हड वृक्ष की तरह सदा अस्थिरात्मा हो जायेगा।

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्व सत्तू जिणामहं ।।23-36।।

एक मन आत्मा को काबू में करने पर चार कषाय पांच इन्द्रिया यों कु ल 10 काबू में हो जाते है और दस पर विजय होने पर सभी आत्म शत्रुओं पर विजय हो जाती हैं।

कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कु म्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कुम्मणा ।।25-31।।

कर्त्तव्यों से ही मानव ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होता है। जाति का महत्व केवल व्यवहार मात्र का होता है। आत्मोन्नति में वह बाधक नहीं हो सकता।

जीवा जीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा।
संवरो निज्जरा भावाणं, संतेए तहिया नव ।।28-14।।

तहियाण तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेणं सद्दहन्तस्स, सम्मतं तं वियाहियं ।।28-15।।

जीवादि तत्वों के सद्‌भाव (वास्तविक अस्तित्व) के निरुपण में जो अन्तःकरण से श्रद्धा करता है, उनका ज्ञान करता है उसे सम्यक्त्व होता है, उस अन्तः करण की श्रद्धा को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है।

पंच समिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइन्दिओ।
अगारवो य निसल्लो, जीवो होइ अणासवो ।।30-3।।

जहा महातलायस्स, सन्निरुद्धे जला गमे।
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ।।30-5।।

एवं तु संजयस्सावि पावकम्म निरासवे।
भव कोडी संचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ।।

पांच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, अकषायी, जितेन्द्रिय, अगौरव (गर्व रहित) और निःशल्य जीव अनाश्रव होता है।

जिस प्रकार कोई बड़ा तालाब, जल आने के मार्ग का निरोध करने से, जल को उलीचने से, सूर्य के ताप से, क्रमशः सूख जाता है। उसी प्रकार संयमी पुरुष के पास कर्म आने का मार्ग निरोध होने से करोड़ों भवों के संचित कर्म तपस्या के द्वारा निर्जीर्ण हो जाते हैं।

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएंण, एगंत सोक्खं समुवेइ मोक्खं।।

सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान और मोह का नाश तथा राग और द्वेष का क्षय होने से आत्मा एकान्त सुखमय मोक्ष को प्राप्त होता है।

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाई मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइ मरणं वयंति।।

क्योंकि राग और द्वेष ये कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है और वह कर्म जन्म मरण का मूल है। जन्म मरण को दुःख का मूल कहा है।

ठाणांग-सूत्र

यह तीसरा अंग सूत्र है। मौलिक रुप से यह गणधर कृत है। इसमें एक से दस तक की संख्या को लेकर अनेक विषयों का संग्रह है। अतः संख्या से संबंधित विषय, इसमें समय-समय पर सम्पादित संवर्धित किये गये है। ऐसा आगम आदि के अनुप्रेक्षण से ज्ञात होता है।

इसमें कहीं किसी अन्य अपेक्षा से और कहीं किसी अन्य अपेक्षा के बिना भी केवल संख्या की मुख्यता को लेकर विशिष्ट रचना पद्धति स्वीकार की गई है अर्थात एक ही विषय में यदि नौ या दस संख्या है तो उसे पाँच, छः सात, आठ, नौ और दस संख्या में भी कहा गया है। यथा क्रियाएं पच्चीस है, उन्हें एक पद्धति से दूसरे ठाणे में दो-दो संख्या से ही कह दिया गया है और पुनः उन्हें पांचवें ठाणे में पांच-पांच की संख्या से कह दिया गया है।

इस प्रकार इस सूत्र में संख्या के आलंबन से अनेक तत्त्वों का, आचारों का, क्षेत्रों का, कथानकों के अन्तर्गत के विषयों का उम्र का एवं अनेक प्रकीर्ण विषयों का संकलन है। नौवें ठाणे में श्रेणिक राजा के भावी दो भवों का कथन करके विस्तृत कथानक भी दिया गया है।

पहले ठाणे (स्थान) का सारांश

1. एक संख्या का आधार लेकर यहां संग्रह नय से या जाति वाचक कथन की अपेक्षा से अनेक तत्त्वों को एक संख्या में कहा है।

2. आत्मा, लोक, कर्म, क्रिया, नव तत्त्व, षट् द्रव्य, 18 पाप और उनका त्याग, वेदना, तीन योग, पुद्गल, काल-अवसर्पिणी आदि एवं अलोक, चौबीस दंडक, दृष्टि तीन एवं छः लेश्या है। चार गति और उसमें जीवों का गमनागमन है एवं अनेक प्रकार के देवों का अस्तित्व है।

3. सिद्धों के पन्द्रह भेदों को भी एक-एक वर्गणा के आधार से कहा है।

4. भगवान महावीर स्वामी अकेले ही मुक्त हुए।

5. अणुत्तर विमान के देव उत्कृष्ट एक हाथ की ऊंचाई वाले होते है।

6. आर्द्रा, चित्रा, स्वाति नक्षत्रों के एक-एक तारा ही है।

दूसरे ठाणे (स्थान) का सारांश

प्रथम उद्देशक-

1. इसमें अनेक अपेक्षाओं से जीवों को दो भेदों में समाविष्ट किया गया है यथा त्रस स्थावर, सइन्द्रिय-अनिंद्रिय, सायुष्य-निरायुष्य, सिद्ध संसारी आदि।

2. क्रियाओं के अनेक भेद-प्रभेद दो-दो की संख्या में कहे गये हैं।

यथा- 1. जीव क्रिया, 2. अजीव क्रिया

जीव क्रिया के दो भेद- 1. सम्यक्त्व क्रिया, 2. मिथ्यात्व क्रिया

अजीव क्रिया के दो भेद- 1. सांपरायिक क्रिया, 2. इरियावहि क्रिया।

तदनन्तर कही गई 22 क्रियाएं-

1. कायिकी	2. अधिकरणिकी	3. प्रादेषिकी	4. परितापनिकी
5. प्राणातिपातिकी	6. अप्रत्याख्यानिकी	7. आरंभिकी	8. परिग्रहिकी
9. माया प्रत्यया	10. मिथ्यादर्शन प्रत्यया	11. दृष्टिजा	12. स्पर्शजा
13. प्रातीत्यकी (पडुच्चिया)	14. सामंतोपनिपातिकी	15. स्वहस्तिकी	16. नैसृष्टिकी
17. आज्ञापनिकी	18. वैदारिणी	19. अनवकांक्षिकी	20. अनाभोगिकी
21. राग प्रत्ययिकी	22. द्वेष प्रत्ययिकी।		

3. मन से भी पच्चक्खाण हो जाता है और वचन से भी।

4. ज्ञान और चरित्र से सम्पन्न जीव मुक्त हो सकता है।

5. आरम्भ और परिग्रह में आसक्त जीव धर्म को या ज्ञान दर्शन चारित्र को एवं मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।

6. जीव किसी से सुनकर या बिना सुने स्व- क्षयोपशम से धर्म आदि को प्राप्त कर सकते हैं।

7. नंदी सूत्र वर्णित पांचों ज्ञान के भेद- प्रभेद कहे गये हैं।

8. धर्म दो प्रकार का है यथा- 1. श्रुत धर्म, 2. चारित्र धर्म अथवा, 1. अगार धर्म, 2. अणगार धर्म।

संयम भी दो प्रकार का है- 1. सराग, 2. वीतराग।

9. पांच स्थावर के पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म-बादर, परिणत-अपरिणत, स्थान प्राप्त या वाटेवेहता आदि दो-दो भेद है।

10. आलोचना, प्रतिक्रमण, दीक्षा, बड़ी दीक्षा, स्वाध्याय एवं संथारा (आजीवन अनशन) करते समय सदा पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ ही मुख करना चाहिए।

दूसरा उद्देशक-

1. जीव इस भव में किये पाप कर्म का फल इस भव में भी भोगते हैं और आगे के भव में भी भोगते हैं।

2. जीव को जो भी ज्ञान होते हैं वे समवहत-असमवहत दोनों अवस्था में रहते है।

3. इन्द्रियों के विषयों का ग्रहण जीव के एक देश से भी होता हैं एवं सर्व से भी ग्रहण होता है।

4. देव दो शरीर वाले होते हैं- 1. भवधारणीय, 2. उत्तरवैकिय।

तीसरा उद्देशक-

1. भाषा शब्द दो प्रकार के हैं- 1. अक्षर संबद्ध 2. नौ अक्षर संबद्ध।

नो भाषा शब्द अनेक प्रकार के हैं- तत, वितत, धन, झुसिर, ताल, लत्तिका, भूषण आदि के शब्द।

2. शब्द की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है- 1 पुद्‌गलों के जुड़ने या टकराने से 2 पुद्‌गलों के बिखरने से-भेदन होने से अर्थात्त बांस, वस्त्र के फटने से या फाड़ने से भी शब्द उत्पत्ति होती है।

3. सामायिक दो प्रकार की है- 1. आगार2. अणगार।

4. तदनंतर क्षेत्र, पर्वत, नदी, आदि अनेक विषयों का कथन करते हुए 64 इन्द्रों का कथन किया गया है।

5. जम्बू द्वीप में बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि एवं सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि का दो-दो की संख्या से कथन किया गया है।

चौथा उद्देशक-

1. समय आवलिका आदि काल, ग्रामादिक क्षेत्र तथा छाया, अंधकार आदि को जीव से संबंध रखने के कारण जीव भी कहा जाता है और उनके अजीव रुप एवं पुद्‌गल रुप होने से अजीव भी कहा जाता है।

2. आयुष्य समाप्त होने पर आत्मप्रदेश शरीर के एक विभाग से भी निकलते हैं और संपूर्ण शरीर से भी निकलते हैं। संसारी जीवों के एक देश से निकलते है और मोक्ष जाते समय सारे शरीर से एक साथ निकलते है।

3. कर्मों के क्षय से अथवा क्षयोपशम से, इस प्रकार दोनों तरह से बोधि, चारज्ञान एवं संयम की प्राप्ति होती है।

4. क्रोध आदि पाप स्वयं के लिए या अन्य के लिए किये जाते हैं।

5. सयोगी-अयोगी, ज्ञानी- अज्ञानी, आहारक-अनाहारक, भाषक- अभाषक, सशरीरी-अशरीरी आदि दो-दो भेद जीवों के कहे गये हैं। बारह प्रकार के आत्मघात अर्थात् आर्तध्यान से स्वयं ही मरने रुप बालमरण कहे हैं।

6. आठो ही कर्मों के दो-दो भेद कहे हैं। ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय के देश और सर्व ये दो भेद हैं। आयुकर्म के कायस्थिति और भवस्थिति रुप दो भेद हैं और अंतराय कर्म के- 1. वर्तमान लाभ को नष्ट करने वाले और 2. भावी लाभ को रोकने वाले, इस प्रकार दो भेद हैं।

7. दो चक्रवर्ती सातवीं नरक में गये- सुभूम और ब्रह्मदत्त।

8. तीर्थकरों के वर्ण, देवों की स्थिति एवं परिचारणा का कथन किया गया है।

9. दो तारों वाले चार नक्षत्र कहे हैं। दो भाद्रपद, दो फाल्गुनी।

10. लोक में द्वि-प्रदेशी, द्वि-प्रदेशावगाढ और द्विसमय स्थितिक पुद्गल स्कंध अनंत है।

अन्य भी अनेक तत्वों की दो की संख्या से यहां कथन किया गया है।

तीसरे ठाणे (स्थान) का सारांश

प्रथम उद्देशक-

1. जीव बाह्य अथवा आभ्यंतर पुद्गलों को ग्रहण करके या ग्रहण किये बिना भी विविध क्रियाएं रुप विकुर्वणा कर सकता है।

2. देव लोक में देव- 1. अपनी देवी, 2. विकुर्वित देवी एवं 3. अन्य देवों की देवी के साथ परिचारणा करने वाले भी होते हैं।

3. तीव्र परिणामों से हिंसा एवं झूठ का सेवन करने वाले अल्पायु का एवं अशुभ दीर्घायु का बंध करते हैं।

श्रमण निर्ग्रंथ को मोह या अज्ञान वश अकल्पनीय आहार देने से अल्पायु का बंध होता है और उनकी हीलना निन्दा करने से अशुभ दीर्घायु का बंध होता है।

4. देव आकाश में विकु र्वणा करे या संघर्ष करे अथवा तारा विमान को अन्यत्र ले जावे तो आकाश में तारा टूटता हुआ सा दिखाई देता है।

5. तथारुप के श्रमण के सामने अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन करने के लिए देव गर्जना, बिजली आदि करते हैं।

तीर्थंकर के जन्म, दीक्षा और केवल ज्ञान उत्पन्न होने के समय भी देवों का अंगस्फुरण आवागमन आदि होता है एवं लोक में प्रकाश होता है।

तीर्थंकर के मोक्ष गमन के समय, धर्म के विच्छेद होने पर एवं पूर्व ज्ञान के विच्छेद होने पर लोक में अंधकार होता है।

6. माता-पिता की गुरु की और स्वामी संरक्षक की अनुपम सेवा, सुश्रुसा करने पर भी उनका सम्पूर्ण ऋण नहीं उतरता है, उन्हें उन्मार्ग से सन्मार्ग में लगाकर धर्म की आराधना कराने में उनका अवलंबन भूत होने पर उनका ऋण उतरता है।

7. 1. निदान नहीं करने से 2. समझ शुद्ध रखने से 3. उत्कृष्ट ज्ञानाराधना और 4. काम क्रोध आदि से रहित समाधि-वंत होकर चित्त में शान्ति समाधि रखने से जीव शीघ्र संसार सागर को तिर जाता है।

8. 1. कर्म 2. शरीर और 3. उपकरण ये तीन प्रकार की उपधि और परिग्रह जीवों के होते हैं।

9. कूर्मोन्नत योनि में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि जन्म लेते हैं।

शंखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न के होती है। उसमें जीव जन्मते-मरते हैं। किन्तु गर्भ से बाहर नहीं आते। वंशीपत्रा योनि में सामान्य जन जन्म लेते हैं।

10. धान्यों की योनि तीन वर्ष बाद, द्विदलों (चना, मूंग आदि) की योनि पाँच वर्ष बाद और बीजों की योनि सात वर्ष के बाद नष्ट हो जाती है। उसके बाद ये अचित हो जाते हैं और स्वाभाविक रुप से उगते भी नहीं हैं अर्थात प्रयोग विशेष से रखने एवं उगाने से उग भी सकते हैं। जिस प्रकार आगम में श्रोतेन्द्रिय का विषय अल्प बताया होने पर भी प्रयोग विशेष से हजारों मील दूर से भी उसी क्षण सुना जाता है।

11. जम्बुद्वीप, सातवीं नरक का अप्रतिष्ठान नरकवास और सर्वासिद्ध विमान तीनों एक लाख योजन के हैं और एक सीध में हैं।

12. प्रथम नरक का सीमांतक नरकावास, समय क्षेत्र और सिद्ध शिला ये तीनों 45 लाख योजन के हैं एक सीध में हैं।

13. कालोदधि समुद्र, पुष्कर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र का पानी शुद्धपानी के स्वाद एवं गुण वाला है। शेष समुद्रों के पानी स्वाभाविक पानी के समान नहीं है।

14. लवण समुद्र कालोदधि समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र में कच्छ मच्छ अत्यधिक भरे हैं।

15. मांडलिक राजा, सामान्य राजा और महारंभी-महापरिग्रही ये तीनों धर्माचरण (श्रावक व्रत या साधु व्रत पालन) न करें तो नरक में जाते हैं।

16. चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति और द्वीप सागर प्रज्ञप्ति का विशिष्ट योग्यता एवं विशिष्ट तप के साथ अध्ययन किया जाता है।

दूसरा उद्देशक–

1. ज्ञान, दर्शन, चारित्र-लोक ऊंचा, नीचा, तिरछा यो तीन-तीन प्रकार का लोक कहा गया है। देवों के इन्द्र, सामानिक, त्रायत्रिशंक और लोकपाल इन चारों के तीन-तीन प्रकार की परिषद होती हैं।

2. कोई भी समय एवं कोई भी उम्र में जीव बोध, सम्यक्त्व और केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

3. प्रव्रज्या अनेक हेतुओं, निमित्तों और स्थितियों से ली जाने के कारण अनेक प्रकार की हैं। परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होने पर भी प्रव्रज्या ग्रहण की जाती है।

4. सुमन-दुर्मन को लेकर अनेक विकल्प किये हैं। जिसमें जाना, आना, खाना, बोलना, सुनना, देखना, खड़े रहना, बैठना, देना-लेना आदि तथा मारना, छेदन-भेदन, काटना आदि अनेक क्रियाओं से भी दो-दो विकल्प (सुमन-दुर्मन) किए है।

5. सुव्रती का यह भव परभव और भव-भव प्रशस्त होता है।

6. लोक में वायु, आकाश के आधार से है और जल, वायु केआधार से है और पृथ्वी, जल के आधार पर सिथत है, यह लोक संस्थिति है।

7. तीन दिशाएँ हैं- 1. ऊपर, 2. नीचे, 3. और तिरछे। तीन त्रस काय हैं। 1. तेउ काय, 2. वायु काय, 3 त्रस काय

8. समय, प्रदेश और परमाणु ये तीनों अछेद्य, अभेद्य, अग्राह्य, अनर्द्ध, अविभाजित और अप्रदेश हैं।

9. समस्त प्राणियों को दुःख का भय लगा रहता है। वह दुःख स्वयं के प्रमादजन्य कृत कर्मों से उत्पन्न होता है और उसका क्षय स्वयं के अप्रमाद से होता है।

तीसरा उद्देशक–

1. यश-कीर्ति के कम होने या अपयश अकीर्ति होने के भय से अथवा दोष सेवन का त्याग न करना हो तो भी प्राणी अपने दोषों को आलोचना नहीं करते हैं।

यह लोक और परलोक दोनों सुन्दर होगा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्ध आराधना होगी, आत्म समाधि प्राप्त होगी, यह सोचकर सरलात्मा अपने दोषों की आलोचना, प्रतिक्रमण, आत्मनिन्दा, गर्हा करके प्रायश्चित ग्रहण करते हैं।

2. कई साधक मूल सूत्रों को (कंठस्थ)धारणा करते हैं, कई अर्थ को और कई साधक मूल एवं अर्थ दोनों को (कंठस्थ) धारणा करते हैं। सूत्र को धारण करने वाले गीती और अर्थ को धारण करने से अर्थी कहे जाते हैं, किन्तु सूत्रार्थ (उभय) को धारण करने वाले गीतार्थ या बहुश्रुत कहे जाते हैं।

3. लकड़ी, तुम्बा और मिट्टी ये तीन जाति के पात्र साधु रख सकता है।

4. लज्जा निवारण के लिए, घृणा निवारण के लिये एवं सहनशीलता की कमी के कारण भिक्षु वस्त्र धारण करता है।

5. तीन आत्म रक्षक हैं- (1) साथियों की सारणा, वारणा कर गुण धारण कराने वाला, (2) अवसर न हो तो उपेक्षा या मौन भाव से रहने वाला, (3) प्रतिकूलता लगने पर वहां से स्वयं को अलग कर लेने वाला।

6. किसी को बड़े दोषों का गुप्त सेवन करते हुए स्वयं देख ले या विश्वस्त व्यक्ति देख ले और वह शुद्धि न करे तो उसके साथ आहार का संबंध बन्ध किया जा सकता है। झूठ का तीन बार प्रायश्चित लेकर चौथी बार झूठ बोले वह भी संबंध रखने योग्य नहीं है।

7. तीन आवश्यक एवं मुख्य पदवियां है- (1) आचार्य, (2) उपाध्याय, (3) गणी कुछ साधुओं के विभाग का नेतृत्व कर विचरने वाला अर्थात् विशाल गच्छ को इन पद वालों के बिना रहना नहीं कल्पता है।

8. तीन कारणों से अल्प वृष्टि होती है- (1) पानी के जीवों और पुद्गलों का चय, उपचय कम होने से, (2) देवता, बादल आदि का अन्यत्र सहरण कर लें। (3) बादलों को हवा बिखेर दे। इनसे विपरीत प्रकृति होने पर अधिक वर्षा होती है या देव अन्यत्र से बादल लाकर अधिक वर्षा कर सकते हैं।

9. तीन कारण से देव मनुष्यलोक में आ सकते हैं- (1) अपने गुरु आदि की भक्ति करने, (2) ज्ञानी तपस्वी एवं दुष्कर साधना करने वालों की वंदना या सेवा करने (3) अपने माता-पिता आदि प्रियजनों को ऋद्धि बताने।

तीन कारणों से देवता मनुष्य लोक नहीं में आते हैं। (1) देव लोक के सुखों में लीन हो जाने से (2) प्रयोजन या रुचि न होने से (3) थोड़ी देर से जाऊंगा ऐसा सोचते-सोचते सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने से।

10. कई देव भी मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र एवं उत्तम-कुल की प्राप्ति की चाहना करते हैं।

11. देवों का पश्चात्ताप -(1) अहो मैंने सुन्दर स्वस्थ शरीर और अनुकूल संयोग होते हुए भी श्रुत का विशाल अध्ययन नहीं किया (2) दीर्घ संयम पर्याय का पालन नहीं किया (3) संयम का शुद्ध रीति से आराधन नहीं किया।

12. (1) विमान एवं आभूषणों के निष्प्रभ दिखने से (2) कल्प वृक्ष म्लान दिखने एवं (3) शरीर की कांति न्यून दिखने से देव अपने मरण समय को जान लेते हैं।

13. तीन बातों का देव दुःख अनुभव करते हैं- (1) दैवी सुख छोड़ने का (2) मनुष्य जन्म के शुक्र शोणित भय आहार का एवं (3) गर्भावास का।

14. देवों का विमान तीन तरह के होते हैं- (1) स्थाई रहने वाले (2) मनुष्य लोक में आने के लिए उपयोग में आने वाले (3) वैक्रिय से बनाए हुए।

15. उपवास बेले, तेले में धोवण पानी पीना साधुओं को कल्पता है- (1) चावल का मांड, (2) छाछ का आछ, (3) शुद्ध राख, लोंग आदि का पानी भी साधु तेले में पी सकता है।

16 एक वस्त्र या एक पात्र रखना भी ऊणोदरी हैं एवं कल्पनीय आगम सम्मत उपधि ही रखना और अकल्पनीय नहीं रखना यह भी उपकरण ऊणोदरी ही है।

17 क्रंदन (विलाप) करना, बड़बड़ाट (प्रलाप) करना एवं आर्त्तरौद्रध्यान करना यह साधु के लिए योग्य (उचित) नहीं है।

18. चौविहार त्याग युक्त तपस्याएं करने से लब्धियां उत्पन्न होती हैं अर्थात् तपस्या में पानी का त्याग करना महत्वशील आचार है।

19. साम, दाम, दण्ड एवं भेद नीति ये राजनीतियां हैं।

20. तीन प्रकार का विशिष्ट अविनय (1) स्थान छोड़कर चले जाना (2) पूर्ण संबंध छोड़ देना (3) राग-द्वेष फैलाना।

21. श्रमण निर्ग्रन्थों की सेवा में शान्ति से बैठने से अर्थात् पर्यूपासना करने से धर्म श्रवण का लाभ होता है जिससे ज्ञान, श्रद्धान् एवं व्रत, पच्चक्खाण आदि की प्राप्ति होती हैं एवं इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए तप-संयम की आराधना से मोक्ष का लाभ होता है। अतः सांसारिक कृत्यों से कुछ समय बचाकर अवश्य धर्म लाभ प्राप्त करना चाहिए।

चौथा उद्देशक-

1. उद्गम दोष, उत्पादना दोष और ऐषणा दोष ये संयम के उपधातक (दूषित करने वाले) है।

2. अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचारों की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा रुप प्रायश्चित करना चाहिए। अनाचारों की आलोचना आदि के साथ तप आदि ग्रहण रुप विशेष प्रायश्चित करना चाहिए।

3. तीन कारणों से पृथ्वी में सामान्य कम्पन होता हैं- (1) पृथ्वी में कुछ पुद्गलों के क्षय (नष्ट) होने से (2) पृथ्वी के अन्दर रहने वाले विशाल काय महोरग के विशेष हलन-चलनादि क्रिया करने से। (3) व्यंतर एवं नवनिकाय आदि देवों का पृथ्वी पर संग्राम होने से।

तीन कारणों से सम्पूर्ण पृथ्वी में सामान्य कम्पन होता हैं- (1) पृथ्वी के आधार भूत घनवात आदि के क्षुभित होने से (2) कोई महर्द्धिक देव किसी श्रमण निर्गन्थ को अपनी ऋद्धि सामर्थ्य दिखाते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी को कम्पित करे (3) देवों (वैमानिक) और असुरों में पृथ्वी पर संग्राम होने से।

4. सौधर्म-ईशान देवलोक में तीन पल्योपम की स्थिति वाले ''प्रथम किल्विषी'' हैं। सनत्कुमार- माहेन्द्र देवलोक में तीन सागरोपम का स्थिति वाले ''दूसरे किल्विषी'' हैं। लांतक (छठवें) देवलोक में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले ''तीसरे किल्विषी'' हैं।

5. तीन पर्वत चूड़ी के आकार वलयाकार हैं- (1) माणुषोत्तर (2) कुण्डलवर (3) रुचकवर।

6. तपस्वी, रोगी और नवदीक्षित ये तीनों अनुकम्पा के पात्र हैं, जो इनके प्रतिकूल आचरण करता है वह अनुकम्पा का प्रत्यनीक (विरोधी) कहा जाता है।

7. शरीर में अस्थि (हड्डी), मज्जा और केश, मूंछ, दाढ़ी, रोम, नख पिता के अंग हैं। माँस, खून और मस्तिष्क ये माता के अंग हैं।

8. श्रमण-निर्ग्रन्थ के तीन मनोरथ- (1) अल्प या बहुत जितना भी श्रुत उपलब्ध है उसका सम्पूर्ण अध्ययन करूं। (2) एकल विहार प्रतिज्ञा धारण करके विचरण करूं। (3) संलेखना- संथारा धारण कर पण्डित मरण प्राप्त करूं।

9. श्रमणोपासक (श्रावक) के तीन मनोरथ - (1) अल्प या बहुत जितना भी परिग्रह हैं उसका त्याग करूं। (2) संयम स्वीकार करूं (3) संलेखना -संथारा धारण कर पण्डित मरण प्राप्त करूं।

मन, वचन एवं काया से युक्त होकर उक्त तीनों भावना करने से महान् कर्म निर्जरा होती है एवं वह साधु या श्रावक संसार का अंत करने वाला होता है।

10. परमाणु पुद्‌गल की गति (1) परमाणु पुद्‌गल से (2) अत्यन्त रुक्षता से एवं (3) अलोक से प्रतिहत होती है अर्थात् इन तीन के अतिरिक्त परमाणु की गति में विरोध नहीं होता है।

11. सामान्य मनुष्य एक चक्षु है, अवधिज्ञानी दो चक्षु वाला है और केवल ज्ञानी तीन चक्षु वाला कहा जाता है।

12. अवधिज्ञान होने पर जीव पहले ऊपर देखता हैं, फिर तिरछे देखता है तत्पश्चात् नीचे देखता है।

13. सम्यक् प्रकार से अध्ययन किया हुआ, सम्यक् प्रकार से चिन्तन किया हुआ और सम्यक् प्रकार से तप-संयम का आचरण कर अनुभव किया हुआ धर्म सुआख्यात होता है।

14. पाप त्याग तीन प्रकार से होता हैं- (1) ज्ञान पूर्वक (2) बिना ज्ञान केवल श्रद्धा से देखा-देखी (3) सन्देह पूर्वक ।

15. जिन-अवधिज्ञानी, मनः पर्यव ज्ञानी और केवल ज्ञानी ये तीनों ही जिन कहे जाते हैं। ये तीनों केवली भी कहे जाते हैं और अर्हन्त भी कहे जाते हैं।

16. जिन प्रवचन में, महाव्रतों में और छः काया में इन तीनों में निःशक होकर श्रद्धा प्रतीति करते हुए, परीषहों को जीतना, श्रमण निर्ग्रन्थ के लिए हितकर एवं कल्याण कर होता है।

17. सभी नरक पृथ्वी पिण्ड के चारों तरफ तीन वलय हैं- (1) घनोदधि का (2) घनवाय का और फिर (3) तनुवाय का।

18. पांच स्थावर को छोड़कर सभी दण्डक की विग्रह गति उत्कृष्ट तीन समय की है।

19. तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती पद प्राप्त कर फिर तीर्थंकर बने।

तीन की संख्या से संबंधित अन्य भी अनेक विषय इस अध्ययन में कहें गये हैं, जिसमें से कई विषय अन्य आगमों से विस्तार से वर्णित हैं। जिसमें वेद, लेश्या, जीवों के भेद, योनि, काल चक्र, प्रव्रज्या, शैक्ष, स्थविर, पुरुषों की विभिन्न मनोभावना, शल्य, दर्शन प्रयोग, सुगति, दुर्गति, वचन, आराधना, मिथ्यात्व, संक्लेश, नदी, द्रह, पर्वत, क्षेत्र, द्वीप, समुद्र, प्रव्रज्या आदि के अयोग्य, प्रत्यनीक, ऋद्धि गर्व, करण, मरण, नक्षत्र, ग्रेवैयक, पाप-कर्म, पुद्‌गल आदि विषय हैं।

चौथे ठाणे (स्थान) का सारांश

1. अल्प कष्ट और अल्प दीक्षा पर्याय से मुक्त - (1) मरु देवी माता (2) अल्प कष्ट अधिक दीक्षा पर्याय से मुक्त- भरत चक्रवर्ती (3) अधिक कष्ट अल्प दीक्षा पर्याय से मुक्त- गजसुकुमाल। (4) अधिक कष्ट अधिक दीक्षा पर्याय से मुक्त- सनत्कुमार चक्रवर्ती।

2. मनुष्य शरीर से उच्च होने के साथ-(1) गुणों से (2) भावों से (3) रुप से (4) उदारता से (5) संकल्पों से (6) बुद्धि से (7) दृष्टि से (8) शीलाचार से (9) व्यवहार से एवं (10) पुरुषार्थ से भी उच्च होना चाहिए। इसके लिए दस चौभंगिया वृक्ष के साथ तुलना करके कही है। इस प्रकार अन्य भी दस- दस चौभंगियां हैं।

शरीर से सरल होने के साथ उक्त गुणों से भी सरल होना चाहिए। इसकी भी दस चौभंगी है।

3. (1) आहार, वस्त्रादि की याचना करने के लिए (2) सूत्र, अर्थ या मार्ग पूछने के लिये, (3) मकान आदि की आज्ञा लेने के लिये (4) प्रश्न का उत्तर देने के लिये। ये चार कारण से प्रतिमाधारी साधु बोलते हैं।

4. (1) पुत्र- पिता से अच्छे (2) पिता के समान (3) पिता से हीन एवं (4) कुल का यश आदि नाश करने वाले भी होते हैं।

5. सेवा का फल बेल (लता) शीघ्र देती है, आम यथा समय देता हैं, ताल वृक्ष दीर्घकाल से देता है और मिढ़-विषाण नहीं फलता है7 वैसे ही मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं।

6. नरक-दुःख से घबराकर नैरयिक मनुष्य लोक में जाना चाहता हैं किन्तु कर्मक्षय और आयुक्षय हुए बिना नहीं आ सकता है। कोई देव भी नहीं ला सकता।

7. क्रोधादि चारों कषाय- स्वयं पर, अन्य पर दोनों पर या केवल मन से भी होते हैं। ये कषाय जमीन-जायदाद, मकान, शरीर और उपकरणों के निमित्त से होते हैं। इन कषायों की तीव्रता मंदता की अपेक्षा चार प्रकार है- (1) अनंतानुबंधी (2) अप्रत्याख्यानी (3) प्रत्याख्यानावरण (4) संज्वलन अथवा आभोग-अनाभोग, उपशान्त-अनुपशांत ये चार भेद भी होते हैं। इन कषायों से जीव कर्म बन्ध एवं उनका संग्रह करता है।

8. प्रतिज्ञा चार प्रकार की होती हैं- (1) आत्मसमाधि या संयम समाधि रुप (2) तपस्या रुप (3) विवेक (त्याग) एवं सावधानी रुप (4) व्युत्सर्जन (कायोत्सर्ग) रुप।

9. आयु और श्रुताभ्यास के साथ मधुर भाषी होना श्रेष्ठ है।

10. अपने अवगुणों को देखना एवं उन्हें दूर करना श्रेष्ठ है।

11. सूत्र और अर्थ दोनों को धारण करने वाला श्रेष्ठ होता है।

12. सभी (64) इन्द्रों के चार-चार लोकपाल होते हैं।

13. चतुर्याम धर्म में चौथा महाव्रत है- सर्व बाह्य वस्तुओं को ग्रहण करने का त्याग।

14. चारों गति में दुर्गतिक होते हैं- चार सुगति हैं- देव, मनुष्य, सिद्ध, सुकुल।

15. काष्ठ, सूत, लोहा और पत्थर -पत्थर में जैसे भिन्नताएं होती हैं, वैसे ही मनुष्यों में भी भिन्नताएं होती हैं।

16. नौकर चार प्रकार के होते हैं- (1) दैनिक वेतन लेने वाले (2) यात्रा में साथ चलने वाले (3) ठेका लेकर कार्य करने वाले (4) नियत कार्य से वेतन लेने वाले।

17. भवनपति व्यंतर ज्योतिष, इन्द्रों के चार-चार अग्रमहिषियां हैं।

18. चार गोरस विगय- दूध, दही, घी, मक्खन।
चार स्नेह विगय -घी, तेल, वसा, मक्खन।
चार महाविगय-शहद, मक्खन, मद्य, मांस।

19. गुप्त और गुप्त द्वार वाली कूड़ागार शाला के समान स्त्रियों को गुप्त और गुप्त इन्द्रिय वाली होना चाहिए।

दूसरा उद्देशक-

1. दीन पुरुष की अपेक्षा 17 चौभंगी कही गई हैं, 10 पूर्ववत् एवम् 11 जाति, 12 वृत्ति, 13 भाषी, 14 अवभाषी, 15 सेवी, 16 पर्याय 17 परिवार।

आर्य-अनार्य की 17 चौभंगिया हैं। अठारहवीं चौभंगी आर्य भाव के साथ है।

2. जाति, कुल, बल, रुप सम्पन्न बैल की उपमा से 6 चौभंगी हैं, गुणों की उत्कृष्टता मंदता भीरु और मिश्र गुण वाले हाथी से उपमा देते हुए चार चौभंगी है और चारों प्रकार के हाथियों के लक्षण भी गाथा द्वारा बताये हैं।

3. विकथा- (1) स्त्री की जाति, कुल, रुप एवम् वेष-भूषा की चर्चा वार्ता करना (2) खाद्य पदार्थों की अपक्व-पक्व अवस्था, पकाने की विधि साधन और खर्च आदि की वार्ता। (3) देशों के विधि, विधान, गढ़, कोट, परिधि, विवाहादि के रीति-रिवाजों एवं वेष-भूषा की चर्चा-वार्त्ता अथवा उनके बलाबल, जय-पराजय, सम्यक्-असम्यकता की चर्चा-वार्त्ता करना। (4) राजा के शरीर, वैभव, भण्डार, सेना एवं वाहनादि की चर्चा करना।

4. धर्म कथा- (1) साधु श्रावक के आचार में आकर्षित करने वाली, संदेह दूर करने वाली विभिन्न नयों से समझाने वाली कथा करना। (2) परमत के मिथ्या तत्त्वों को समझाते हुए स्वमत के सम्यक् तत्त्वों को पुष्ट करना। (3) संसार की असारता शरीर की अपवित्रता का स्वरुप समझाना।

(4) कर्म एवं कर्म फल को समझाना।

5. शरीर और भावों की कृशता, दृढ़ता की चौभंगी कहकर उसमें ज्ञान दर्शन की उत्पत्ति की चौभंगी कही है।

6. चार कारण से अतिशय ज्ञान अर्थात् विशिष्ट श्रुत ज्ञान एवम् अवधि ज्ञान आदि उत्पन्न होता हैं- (1) उक्त चारों विकथाएं नहीं करने से (2) विवेक एवम् व्युत्सर्ग में सम्यक् वृद्धि करने से (3) सोते उठते धर्म जागरण (आत्मचिंतन) करने से (4) आहार पानी की शुद्ध गवेषणा करने से। इसके विपरित आचरण करने से अतिशय ज्ञान नहीं होता है।

7. चार प्रतिपदा (कार्तिक, मिगसर, वैशाख और श्रावण वदी एकम) और चार संध्या में स्वाध्याय नहीं करना। चारों पहरों में स्वाध्याय करना- प्रथम और अन्तिम प्रहर दिन के एवम् रात्रि के।

8. कई मनुष्य केवल स्वयं का आत्म कल्याण करते हैं और कई उपदेश आदि के द्वारा अन्य का भी कल्याण करते हैं। इसी प्रकार खेद, दमन और समर्थ की अपेक्षा चौभंगी है।

9. सरलता भी दिखाने की और वास्तविक दोनों तरह की होती है।

10 शंख के आवर्तन की चौभंगी कह कर मनुष्य के स्वभाव को उपमा दी गई है।

11. तमस्काय के 12 नाम हैं। उसने चार देवलोकों को आवरित किया है।

12. लवण समुद्र में 42000 योजन जाने पर चार दिशाओं में वेलंधर नाग कुमारों के आवास पर्वत हैं और विदिशाओं में अणुवेलंधर नाग कुमारों के आवास पर्वत हैं।

13. नंदीश्वर द्वीप के अंजन पर्वत आदि का विस्तृत वर्णन है।

14. आजीविका (गौशालक मत) के भी चार प्रकार के तप हैं-(1) उपवास बेला आदि (2) सूर्य आतपना के साथ तपस्या (3) निवी आयंबिल (4) जिह्वेन्द्रिय-प्रतिसंलीनता-मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में राग-द्वेष रहित होकर रहना।

15. संयम, त्याग एवम् अकिंचनता चार प्रकार की हैं- मन, वचन, काया और उपकरण। यहां संयम से समिति, त्याग से गुप्ति और अकिंचनता से व्युत्सर्जन की सूचना है।

तीसरा उद्देशक-

1. (अ)-क्रोध चार प्रकार का हैं- (1) पत्थर की लकीर (2) भूमि की दरार (3) बालू रेत की लकीर और (4) पानी की लकीर के समान। ये चारों क्रम से अनंतानुबंधी आदि रुप हैं और इन अवस्थाओं में काल करने पर जीव क्रमशः नरकादि गतियों में जाता है।

(ब) चार प्रकार की मान- (1) वज्रस्तंभ के समान (2) अस्थि या हड्डी स्तंभ के समान (3) काष्टस्तंभ के समान (4) तिनके के स्तम्भ के समान।

(स) चार प्रकार की माया- (1) बांस की जड़ के समान (2) मेंढे के सींग के समान (3) बैल के मूत्र के समान (4) बांस के छिलके के समान।

(द) चार प्रकार की लोभ- (1) किरमची रंग (2) कर्दभ रंग (3) खंजन रंग (4) हल्दी का रंग इनके समान।

ये चारों प्रकार क्रम से अनंतानुबंधी आदि के हैं और इनमें प्रविष्ट जीव काल करने पर क्रम से नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देव-गति में जाता है।

2. जीवों के भाव 4 प्रकार के होते हैं (1) कीचड़ वाले जल के समान अत्यन्त मलीन (2) खंजन या अन्य कचरा मिट्टी युक्त जल के समान (3) बालू- रेत के जल के समान (4) पर्वतीय जल के समान अत्यन्त निर्मल। इनकी गति क्रम से नरक आदि की समझना।

3. स्वर और रुप से सम्पन्न की चौभंगी से यह समझना कि मयूर के समान उभय गुण सम्पन्न मनुष्य श्रेष्ठ है शेष मनुष्य कौवे, कोयल और तोते के समान है।

4. चार प्रकार के वृक्ष की उपमा- (1) पत्र सम्पन्न=स्वयं गुण सम्पन्न (2) पुष्प सम्पन्न=अपने गुणों को या सूत्र ज्ञान को देने वाला (3) फल सम्पन्न =धन या सूत्रार्थ विस्तार दूसरों को देने वाला (4) छाया सम्पन्न=अपने आश्रय में अनेकों की आजीविका या चरित्र रक्षण करने वाला।

5. भार वाहक के चार विश्रामों के समान श्रावक के भी संसार बोझ के चार विश्राम हैं। (1) एक कंधे से दूसरे कंधें पर या एक हाथ से दूसरे हाथ में भार लेना=अनेक त्याग, नियम, व्रत, धारण करना एवम् पालन करना। (2) मल-मूत्र त्यागने के समय भार नीचे रखना= सामायिक 14 नियम धारण करना। (3) मार्ग में मन्दिर आदि में रात्रि निवास करना= छः पौषध करना। (4) नियम स्थान पर पहुंच कर भार रखना=मारणांतिक संलेखना कर भक्त प्रत्याख्यान आदि आजीवन अनशन स्वीकार करना।

6. उन्नत और अवनत पुरुष की चौभंगी में- 1. भरत चक्रवर्ती, 2. ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, 3. हरिकेशी मुनि, 4. कालशौकरिक ये चार उदाहरण रुप है।

7. कुल से, वैभव से, उच्च पुरुष, उच्च विचार, उदारता सम्पन्न हो तो श्रेष्ठ होते हैं। कृपणता वाले, निम्न या संकीर्ण विचार वाले श्रेष्ठ नहीं होते।

8. (1) जाति (2) कुल (3) बल (4) रुप (5) श्रुत (6) शील (7) चारित्र से सम्पन्न, असम्पन्न पुरुष की इक्कीस चौभंगिया कही हैं जिसमें उभय सम्पन्न तीसरा भंग श्रेष्ठ है।

9. आंवला, द्राक्ष, दूध और शक्कर यों चार प्रकार की मधुरता की आचार्यों को उपमा दी गई है।

10. वैयावृत्य एवम् गण कृत्य करने वालों की चौभंगियां कही गई हैं उनमें कर्तव्य करके मान नहीं करने वाला श्रेष्ठ होता है। गुरु, शिष्य की एवम् दृढ़-धर्मी आदि की ये चौभंगिया व्यवहार सूत्र के समान हैं।

11. साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका की व्रत-पर्याय एवम् आराधक-अनाराधक की चौभंगियां कही हैं।

12. साधु के प्रति श्रावक- 1. माता-पिता का, 2. भाई का 3. मित्र का और 4. सौत का कर्तव्य करने वाला भी होता है अर्थात् विभिन्न व्यवहार प्रवृत्ति वाले श्रावक होते हैं।

कांच के समान निर्मल चित्त, पताका के समान अस्थिर चित्त, ठूंठ के समान नम्रता रहित दुराग्रही और कंटक के समान कलुषता युक्त दुःखदाई स्वभाव के श्रमणोपासक भी होते हैं।

13. मनुष्य लोक 400-500 योजन ऊपर गन्ध आने से भी देवता मनुष्य लोक में नही आते हैं।

मनुष्य भव में किसी को संकेत या वचन दिया हो तो देवता मनुष्य लोक में आते हैं। तीन-तीन कारण तीसरे ठाणे में हैं। कु ल मिलाकर चार बताये गये हैं।

14. तीर्थंकर के निर्वाण प्राप्त होने पर भी लोक में प्रकाश होता है और अग्नि के विच्छेद होने पर भी अन्धकार होता है। इनके भी तीन-तीन कारण तीसरे ठाणे में कहे हैं।

15. संयमी की चार दुःखशय्या=दुःख अवस्था हैं- 1. निर्ग्रन्थ प्रवचन में अश्रद्धा होने से 2. स्वयं के लाभ एवम् सुख में सन्तुष्ट होने से 3. काम भोगों की अभिलाषा रखने से 4. शरीर परिकर्म की अभिलाषा करने से मन ही मन संकल्प, विकल्पों से भिक्षु दुःखी होता है।

संयमी की चार सुखशय्या=प्रसन्नचित्त आनन्दमय अवस्था है-(1) दृढ़ श्रद्धा से संयम पालन करना (2) स्वयं के लाभ या सुख में संतुष्ट होने से (3) काम भोगों की अभिलाषा से मुक्त रहना, विरक्त रहना। (4) उत्पन्न हुई सभी अशातावेदनाओं को समभाव एवं महान् निर्जरा समझ कर उत्साह पूर्वक सहन करना, इस प्रकार करने वाला साधक संकल्प-विकल्पों से रहित होकर सदा सुखी प्रसन्न रहता हैं।

16. दीक्षित प्रव्रर्जित होने वाले चार प्रकार के होते हैं- (1) उत्कृष्ट वैराग्य से संयम लेकर उत्कृष्ट आराधन करने वाले इत्यादि भंग समझ लेना, इस प्रकार वीरता और कायरता से चार भंग होते हैं।

17. प्रथम देवलोक का उडु नामक मध्य विमान 45 लाख योजन लम्बा-चौड़ा है और समय क्षेत्र की सीध में है। (तीसरे ठाणे में तीन कहे हैं।)

18. पृथ्वी, पानी, अग्नि और साधारण वनस्पति जीवों का एक शरीर आँखों से नहीं दीखता है।

19. आंख के सिवाय चार इन्द्रियां अपने विषय को स्पष्ट होने पर ही जानती हैं।

20. चार कारण से अलोक में जीव पुद्गल नहीं जा सकते- (1) गति अभाव (2) धर्मास्तिकाय का अभाव (3) रुक्षता हो जाने से (4) लोक स्वभाव-मर्यादा होने से।

21. उदाहरण अनेक प्रकार के होते हैं तथा दोष युक्त एवं निर्दोष भी होते हैं। मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं- (1) सामान्य (2) एक देशीय (3) दोष युक्त (4) खण्डन में दिया जाने वाला विरोधी

22. औदारिक शरीर जीव रहित भी रहता है एवम् दिखता है और शेष चार शरीर जीव रहित नहीं रहते एवम् नहीं दिखते।

23. हेतु-तर्क प्रमाण के 12 प्रकार कहे गये हैं।

24. अन्धकार करने वाले चार-नरक, नैरयिक, पाप, अशुभ पुद्गल। देवलोक में प्रकाश करने वाले चार-देव, देवी, विमान, आभूषण। तिरछा लोक में प्रकाश करने वाले चार-चन्द्र, सूर्य, मणि, अग्नि।

चौथा उद्देशक-

1. अप्राप्त भोगों और सुखों के लिये तथा प्राप्त के संरक्षण के लिये जीव प्रयत्नशील होकर भटकते रहते हैं।

2 नैरयिकों का आहार अत्यंत उष्ण या अत्यन्त शीतल पुद्गलों का होता है। तिर्यञ्च का आहार शुभ, अशुभ और मांसादि विभिन्न तरह का होता है। मनुष्य का आहार चार प्रकार का है- अशन, पान, खादिम, स्वादिम। देवता का आहार चार प्रकार का है- उत्तम वर्णादि वाला।

3. बिच्छु का उत्कृष्ट विष अर्द्ध भरत क्षेत्र प्रमाण हो सकता है, वैसे ही मेंढ़क का- भरत क्षेत्र-प्रमाण, सर्प का जम्बूद्वीप प्रमाण, मनुष्य का अढाईद्वीप प्रमाण। यह सामर्थ्य की अपेक्षा है।

4. सभी रोग-वात, पित्त या कफ से होते हैं अथवा तीनों के संयुक्त प्रकोप से होते हैं। वैद्य, औषध, रोगी और परिचर्या करने वाले के सुमेल से चिकित्सा सफल होती है। स्वयं की अथवा अन्य की चिकित्सा करने वाले के चार भंग होते हैं।

5. कई श्रमण कथन करते हैं, किन्तु उंछ जीविका एवम् माधुकरी वृत्ति का पालन नहीं करते और कई कहते है वैसा ही पालन करते हैं।

6. बादल के गरजने-बरसने की, बिजली के चमकने की और योग्य सुयोग्य समय एवं क्षेत्र की चौभगियां बनती है अर्थात् सभी विकल्प बन सकते हैं। तत्संबंधी कोई एकान्त नियम नहीं है। इसी प्रकार पुरुष भी सभी तरह के हो सकते हैं। मेघ और माता-पिता की संबंधित चौभंगी में बताया है कि कई माता-पिता जन्म देते हैं पर संरक्षण, भरण-पोषण नहीं करते। एक देश में या सर्व क्षेत्र में वर्षा करने वाले बादल को राजा की उपमा दी गई है।

7. चार प्रकार के मेघ (बादल) होते हैं- (1) दस हजार वर्ष तक के लिये भूमि को स्निग्ध कर देने वाले इसी प्रकार (2) एक हजार वर्ष (3) दस वर्ष और (4) एक वर्ष के लिये भूमि को स्निग्ध कर देने वाले।

8. (1) अल्प ज्ञान वाले आचार्य भंगी की छबड़ी के समान हैं। (2) अल्प ज्ञान होते हुए भी वचन चातुर्य वाले वेश्या के करण्क के समान हैं। (3) स्वसमय पर समय के ज्ञाता चारित्रनिष्ट आचार्य सेठ की आभूषणों, सोने, रत्नों की पेटी के समान हैं। (4) आचार्य के योग्य सर्व गुण सम्पन्न आचार्य राज भण्डार के समान श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार विशाल छाया परिवार वाले वृक्ष के समान उपमा वाले आचार्य श्रेष्ठ हैं।

9. मार्ग गमन की अपेक्षा भिक्षाचरों के चार प्रकार हैं।

10. मोम, लाख, लकड़ी, मिट्टी के गोले के समान मनुष्य के हृदय की कोमलता, कठोरता का अन्तर होता है। लोहे आदि के गोलों के समान मनुष्य भारी कर्मा आदि होते हैं। सोने, चांदी, आदि के गोलों के समान गुण संपन्नता एवं हृदय की निर्मलता आदि मनुष्यों में उच्च, उच्चतर होती है।

11. देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यणी का भी परस्पर सहवास-संभोग हो सकता है।

12. शरीर कृश और कषाय का भी कोई एकान्त संबंध नहीं हैं, सभी भंग संभव है। इसी प्रकार ज्ञान-विवेक, आचरण-विवेक हृदय विवेक में भी सभी विकल्प संभव हैं।

13. चारित्र पालन करते हुए- (1) क्रोधी होने से, (2) कलह स्वभावी होने से (3) आहारादि के लिए तपस्या करने से (4) निमित्त हानि लाभ आदि बताने से जीव असुरत्व को प्राप्त करता है।

1. स्व-प्रशंसा- 1. आत्मोत्कर्ष, 2. पर निन्दा-परदोष कथन, 3. भूति (भस्म) कर्म-रक्षा पोटली आदि करना, 4. कौतुक कर्म-मंत्रित जल आदि प्रयोग करने वाला साधक अभियोगिक नौकर देव होता है।

1. मिथ्या मार्ग का उपदेश, 2. मुक्ति मार्ग में अंतराय, 3. काम भोगों की अभिलाषा, 4. निदान करण से जीव मोह कर्म वृद्धि कर ''दुर्लभ बोधि'' होता है।

1. अरिहंत, 2. अरिहंत धर्म, 3. आचार्यादि और 4. संघ आदि का अवर्णवाद करने से जीव किल्विषिक देव अवस्था को एवं कालांतर में मूक पशु योनि को प्राप्त करता है।

14. संकल्पों एवं परिस्थितियों की अपेक्षा 28 प्रकार की प्रव्रज्या कही गई है।

15. चार संज्ञा उत्पन्न होने के चार-चार कारण हैं जिसमें एक-एक विशेष कारण हैं-

1. पेट खाली होने से- 1. आहार संज्ञा, 2. कमजोर मन से-भय संज्ञा, 3. खून, मांस, वीर्य की वृद्धि से=मैथुन संज्ञा, 4. परिग्रह के संचय से या उसका त्याग न करने से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है और सामान्य कारण हैं- तत्संबंधी कर्मोदय से एवं देखने, सुनने, चिंतन करने, वार्ता करने से उक्त विशेष कारण न होने पर भी ये संज्ञाए उत्पन्न होती हैं।

16. पूर्ण-अपूर्ण, सुरुप-कुरुप, प्रिय-अप्रिय कुम्भ के समान मनुष्य भी गुणों से पूर्ण-अपूर्ण आदि होते हैं। 1. फूटा, 2. पुराना, 3. झरने वाला और 4. लक्षण संपन्न घट के समान चारित्र भी चार प्रकार के हैं यथा- 1. मूल प्रायश्चित के योग्य, 2. छेद प्रायश्चित योग्य, 3. सूक्ष्म अतिचार, 4. निरतिचार-सर्वथा शुद्ध चारित्र।

17. मधु और विष से युक्त कुंभ या ढक्कन के समान मनुष्यों के हृदय और जिह्वा भी मिष्ट एवं कटु होते हैं। हृदय और वचन दोनों ही मिष्ट होना एवं कलुषता रहित होना श्रेष्ठ है।

18. आकस्मिक घटनाओं को आत्मकृत उपसर्ग समझना चाहिए। देव, मनुष्य और तिर्यञ्च कृत उपसर्ग से भिन्न होने से यह चौथे प्रकार का उपसर्ग (विशेष कष्ट) हैं। आंख में रज और पांव में कांटे को छेड़ने से, कहीं से गिर जाने से, अंगोपांग शून्य हो जाने से, संधि स्थलों के जकड़ जाने से, होने वाला कष्ट भी आत्म समुत्थ उपसर्ग है।

1. देवता- कुतूहल, द्वेष, परीक्षा या मिश्र हेतु से उपसर्ग करते हैं।

2. मनुष्य- कुतूहल, द्वेष, परीक्षा और कु शील सेवन के लिए उपसर्ग करते हैं।

3. तिर्यञ्च- भय, द्वेष, आहार, अपने बच्चे या स्थान के रक्षणार्थ उपसर्ग करते हैं।

4. स्वतः - कर्मों के उदय से।

19. चार संघ हैं- 1. श्रमण, 2. श्रमणी, 3. श्रावक, 4. श्राविका अर्थात् चारों मिलकर संघ कहलाता है।

20. द्रव्य से परिग्रह मुक्त और भाव से आसक्ति, ममत्व रहित साधु ही मुक्त और मुक्त रुप होता है।

21. सम्यग दृष्टि को मिथ्यात्व की क्रिया के अतिरिक्त सभी क्रियाएं लग सकती है।

22. क्रोध से, ईर्ष्या से उपकार न मानने से अर्थात् अकृतज्ञा होने से, दुराग्रह से गुणों का नाश हो जाता है। गुण ग्रहण के अभ्यास से, स्वच्छन्दता के त्यागने से, उपकार करने से और प्रत्युपकार करने से गुणों की वृद्धि होती है।

23. धर्म के चार द्वार हैं- 1. क्षमा भाव, 2. सरलता, 3. लघुता-नम्रता (निरभिमानता) और 4 निर्लोभता ।

24. 1. महारंभ से , 2. महापरिग्रह से, 3. मांसाहार से, 4. पंचेन्द्रियवध से नरकायु का बंध होता है। 1. कपटाई, 2. ठगाई, 3. झूठे वचन और 4. झूठे लेख करने से तिर्यञ्चायु का बंध होता है। 1. भ्रदता, 2. विनीतता, 3. दयालुता, सहृदयता और 4. मत्सर भाव रहित होने से मनुष्यायु का बंध होता है। 1. सराग संयम (छठवें, सातवें गुणस्थान के संयम) से 2. श्रावकपन से, 3. बाल (अज्ञान) तप से, 4. अकामनिर्जरा (अनिच्छा से भूख प्यास सहन करने, ब्रह्मचर्य पालने आदि) से देवायु का बंध होता है।

25. वाद्य, नृत्य,गीत, माला, अलंकार, नाटक आदि चार-चार प्रकार के हैं।

26. काव्य चार प्रकार का है- 1. गद्य काव्य (छन्द रहित) मुक्तक काव्य आदि 2. पद्य काव्य छन्द युक्त श्लोक, दोहा आदि 3. कथ्य काव्य ढ़ाल चौपाई 4. गेय काव्य-गायन आदि।

27. पांचवें से आठवें तक के देवलोक पूर्ण गोलाकार हैं, शेष आठ देवलोक अर्द्ध चन्द्राकार हैं।

28. चार समुद्र का पानी स्वतंत्र रस वाला है- लवण, वरुण, क्षीर, घृत, समुद्र का पानी क्रमशः नमक, सुरा दूध और घी के समान स्वाद एवं गुण वाला है।

वृक्ष, शुद्ध-वस्त्र, सत्यवादी, शुचिवस्त्र, दीन-पुरुष, यान, घोड़ा, सूर, युग्म, जुम्मा, सारथी, घोड़ा, हाथी, पुष्प आदि से पुरुष के साथ उपमा युक्त अनेक चौभंगियां कही गई हैं।

घाव संबंधी एवं श्रेष्ठ और पापी, प्रज्ञापक-प्रभावक, मित्र-अमित्र, संवास, जल तैराक संबंधी चौभंगिया है।

समवसरण, देवों के वर्ण अवगाहना, गतागत, गर्भ, कर्म, बंध, बेइन्द्रियादि की हिंसा, अहिंसा से संयम, असंयम, आवर्त्त नक्षत्रों के तारा एवं पुद्गल से संबंधित चार-चार संख्या वाले वर्णन हैं।

चार ध्यान और उनके चार-चार भेद, आलम्बन, लक्षण, भावना आदि का विस्तृत वर्णन है।

द्वीप, क्षेत्र, पर्वत, नदी, द्रह एवं 56 अन्तरद्वीपों का विस्तृत वर्णन है।

तृण वनस्पति, अस्तिकाय, अजीव, अस्वाध्याय, प्रायश्चित, काल आदि विविध विषयों का कथन भी है।

इस प्रकार यह चौथा अध्ययन सैद्धान्तिक, भौगोलिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक अनेक विषयों का भण्डार है।

पांचवे ठाणे (स्थान) का सारांश

1. पांच कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ हैं- (1) भद्रा, (2) सुभद्रा, (3) महाभद्रा, (4) सर्वत्तोभद्रा, (5) भद्रोत्तरा। इनमें दिशाओं विदिशाओं में मुख करके या जाकर के निर्धारित समय का या अहोरात्र का कायोत्सर्ग किया जाता है।

2. इन्द्र, ब्रह्मा, शिल्प, सम्मति, प्रजापत्य ये पांच स्थावर काय के अधिपति देव हैं।

3. अवधिज्ञान उत्पन्न होने पर यदि भय, विस्मय आदि से चलचित्त हो जाय तो उसी समय वह ज्ञान नष्ट हो जाता है। चित्त चंचल होने के कारण है- अत्यधिक जीव, भयानक, विकराल जीव, देव की ऋद्धि, निधान आदि।

4. प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासन में- धर्म को समझना, पालन करना, परीषह सहना दुष्कर होता है और मध्यम तीर्थकरों के शासन में सुगम होता है।

5. (1) महादोष स्थान का सेवन करने पर, (2) आलोचना न करने पर, (3) प्रायश्चित स्वीकार न करने पर, (4) प्रायश्चित वहन न करने पर और (5) दुःस्साहस पूर्वक मर्यादाओं का उल्लंघन करने पर, उस भिक्षु के साथ संबंध विच्छेद किया जा सकता है।

6. कुल, गण, संघ के भेद डालने की दूषित मनोवृत्ति, हिंसक वृत्ति, छिद्रोन्वेषिवृत्ति एवं बारम्बार प्रश्न कुतूहल निमित्त वृत्ति करने से, दसवां प्रायश्चित आता है।

7. (1) आचार्य- उपाध्याय गच्छ में सम्यक अनुशासन (आज्ञा धारणा का पालन) न कर सके (2) विनय व्यवहार का पालन न करा सके (3) यथा- समय वाचना न दे सके (4) बीमार की सेवा बराबर न करवा सके (5) अपनी इच्छानुसार करे, किसी की सलाह न ले, न सुने, तो गच्छ अशांत एवं छिन्न-भिन्न हो जाता है।

8. सामान्यतः पांच प्रकार से बैठा जा सकता है- (1) दोनो पांवों पर (2) दोनो पंजो पर (3) दोनां पांव और पुत को भुमि पर लगाकर (4) पलांथी (पालथी) लगाकर (5) अर्द्धपलांथी एक घुटना ऊपर रखकर (अथवा 4 पद्मासन 5 अर्द्धपद्मासन)।

9. कुशील सेवन की संतुष्टी पांच प्रकार से होती हैं- (1) मैथुन सेवन, (2) आलिंगन, (3) काम भाव से रुप में तल्लीन होना, (4) काम भाव से शब्द में तल्लीन होना, (5) काम भाव के चिंतन में तल्लीन होना।

10. देवों के भी पांच-पांच संग्रामिक सेना और सेनापति होते हैं।

11. जाति, कुल, कर्म, शिल्प बताकर एवं लिंग के द्वारा आजीविका करने वाले पांच आजीवक होते हैं।

12. पांच राज चिह्न हैं- छत्र, चमर, खड्ग, मुकुट और जूते।

13. निम्न संकल्पों से परीषह सहन करना। (1) यह पुरुष कर्माधीन या उन्मत्त के समान है, अज्ञानी हैं, इसलिए प्रतिकू ल आचरण कर रहा है (2) यह पुरुष यक्षाविष्ट है या दया पात्र नासमझ है (3) मेरे ही कर्म उदय में आये हैं उन्हें, भोगना ही होगा, यह पुरुष तो निमित्त मात्र है। (4) यदि साधु होकर भी सम्यक् सहन नहीं करुंगा तो एकांत पाप कर्मों का उपार्जन होगा। (5) सम्यक् सहन कर लेने पर मेरे कर्मों की महानिर्जरा होगी। अतः मुझे ही एकांत लाभ होगा। (6) मेरे सहन करने से अन्य साधु भी आदर्श रखकर सहन कर निर्जरा लाभ प्राप्त करेंगे।

14. केवली के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य ये पांचों अणुत्तर होते हैं।

दूसरा उद्देशक-

1. पांच कारण से नौका आदि द्वारा गंगा आदि बड़ी नदियां साधु पार कर सकता है-

(1) किसी प्रकार का भय हो, (2) दुर्भिक्ष हो, (3) कोई जल में फेंक दे, (4) बाढ़ आ जाने पर, (5) अनार्यो का उपद्रव होने पर।

2. चातुर्मास में विहार करने के दस कारण- 1-5. उपरोक्त 6-8. ज्ञान, दर्शन, चारित्र के लिये 9. आचार्यादि काल कर जाने पर 10. वैयावृत्य के लिये।

3. आवश्यक कार्य या परिस्थिति से भिक्षु, राज-अंतपुर में जा सकता है।

4. मैथुन सेवन के किये बिना गर्भ धारण के पांच कारण- (1) शुक्र पुद्गल प्रक्षिप्त हो उस स्थान पर अविधि से बैठ जाने से, (2) शुक्र युक्त वस्त्र के योनि में प्रविष्ट हो जाने से, (3) स्वयं ही कोई स्त्री शुक्र पुद्गल को योनि में प्रविष्ट कर लें, (4) दूसरा प्रविष्ट करा दे, (5) नदी में स्नान करते वक्त शुक्र पुद्गल योनि में प्रविष्ट हो जाये।

5. मैथुन सेवन करते हुए भी गर्भ धारण नहीं करने के कारण- (1) अप्राप्त सेवन, (2) अतिक्रांत योवन, (3) जाति वंध्या (बांझ स्त्री), (4) रोग से पीड़ित, (5) शोकादि से व्याप्त, (6) सदा ऋतुमति रहने वाली, (7) ऋतुमति न

होने वाली, (8) नष्ट गर्भाशय वाली, (9) क्षीण शक्ति गर्भाशय वाली, (10) अनंग क्रीड़ा करने वाली, (11) देवता आदि के श्राप, (शाप) से इत्यादि।

6. मकानाभाव से देव, मनुष्य, तिर्यञ्च संबंधी भय के कारण कभी साधु-साध्वी एक ही मकान में एक दो-दिन के लिये ठहर सकते हैं।

7. नग्न या सवस्त्र पागल, यक्षाविष्ट या बालक साधु को कारणवश साध्वियाँ अपने पास रख सकती है एवं वैसी साध्वी को साधु भी कारणवश अपने पास रख सकते हैं।

8. मिथ्यात्वादि पांच आश्रव और समकित आदि पांच संवर हैं। क्रियाएं 25 हैं- (1) प्रयोग क्रिया, (2) सामुदान क्रिया और (3) इरियावही क्रिया शेष (बावीस) 22 क्रिया दूसरे स्थान में देखे।

9. पांच व्यवहारों का योग्य क्रम से एवं अनाग्रह भाव से उपयोग करना चाहिए तभी आराधना होती है, देखें- व्यवहार सूत्र सारांश।

10. शरीर और उपकरणों के परिकर्म (धोना, सीना आदि) से एवं अधिक उपाधि रखने से भी संयम का उपघात होता है और प्रमाद में समय व्यतीत होता है।

11. धर्म, धर्मीजन और धर्म फल की निन्दा करने से जीव दुर्लभ बोधि होता है, इसके विपरीत गुण कीर्तन करने से सुलभ बोधि होता है।

12. वनस्पति के उगने के पांच स्थान- 1. अंग, 2. मूल, 3. स्कंद, 4. पर्व, 5. बीज।

13 पांच आचार प्रकल्प हैं- (निशीथ सूत्र के 5 विभाग हैं) (1) लघु मासिक प्रायश्चित स्थान, 2. गुरु मासिक, 3. लघु चौमासी, 4. आरोपणा। इनमें क्रमशः चार, एक, आठ, छः एवं एक निशीथ सूत्र के उद्देशक हैं।

14. आरोपणा के पांच प्रकार हैं- (1) वहन कराई जाने वाली, (2) स्थापित रखने वाली, (3) कुछ समय कम की जाने वाली, (4) परिपूर्ण (मास आदि) दी जाने वाली, (5) शीघ्र वहन कराई जाने वाली।

15. ऋषभ देव भगवान, ब्राह्मी, सुन्दरी , भरत, बाहुबली इन पांचों की 500 धनुष की ऊंचाई थी।

16. आवाज से, स्पर्श से, भूख लगने से, स्वप्न देखने से और नींद पूरी होने से सोया हुआ व्यक्ति जाग जाता है। मल-मूत्र की बाधा होने से एवं वेदना होने से भी व्यक्ति जाग जाता है।

17. कोई पशु या पक्षी, साध्वी को संस्त्रत कर रहा हो तो साधु उसे सहारा दे सकता हैं, पकड़ कर सुरक्षित कर सकता है अन्य और कारण वृहत्कल्प सूत्र में देखे।

18. आचार्य उपाध्याय पांच कारण से गच्छ छोड़ सकते हैं- (1) अनुशासन बराबर न चलने से , (2) गण में विनय प्रतिपत्ति बराबर न करा सकने से, (3) वाचनादान प्रवृत्ति बराबर न हो सकने से, (4) किसी निर्ग्रंथी के प्रति

आसक्ति भाव असंयम भाव हो जाने से, (5) मित्र कुटुम्बी आदि के गण से निकल जाने पर उन्हें पुनः लाने या संभालने के लिए।

तीसरा उद्देशक–

1. पांच द्रव्य अस्तिकाय हैं और उनके द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव और गुण के पांच-पांच भेद हैं। काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है।

2. मुण्डन दस हैं- पांच इन्द्रिय मुण्डन (निग्रह), चार कषाय मुण्डन और दसवां शिर मुंडन।

3. पांच अग्नि– (1) अंगार-धधकता अग्नि पिंड, (2) ज्वाला छिन्न-शिखा, (3) मुर्मर-भस्म (राख) युक्त अग्नि कण, (4) अर्चि अच्छिन्न ज्वाला, (5) अलाव-जलते हुए लकड़ी कंडे।

4. पांच अचित वायु– (1) किसी भी पदार्थ को पटकने-झटकने से उत्पन्न वायु, (2) धौकनी, फूंकणी से उत्पन्न वायु, (3) किसी चीज वस्त्रादि को दबाने-निचोड़ने से निकलने वाली वायु, (4) शरीरगत वायु- उच्छवास, निःश्वास, डकार, वायु निःसर्ग, छींक आदि गत वायु, (5) पंखे चलने, हिलने से उत्पन्न वायु।

5. संयम पालन में उपकारक (आलंबन) पांच है- 1. छःछाया, 2. गण (गच्छ), 3. राजा, 4. गृहस्थ, 5 शरीर

6. समय पर या सदा काम आने वाली वस्तु निधि कही जाती है वे पांच है- 1. पुत्र, 2. मित्र, 3. शिल्प-कला, 4. धन धान्य।

7. शुद्धि पवित्रता पांच प्रकार की होती है- 1. मिट्टी से-अशुचि की, 2. पानी से मैल की, 3. अग्नि से (या राख से) बर्तनों की, 4. मंत्र से-मन की, 5. ब्रह्मचर्य से आत्मा की शुद्धि होती है।

8. अचेल होने से पांच श्रेष्ठ लाभ- (1) अल्प प्रतिलेखन, (2) लघुता-उपकरणों का संभालना विहार में उठाना अल्प, (3) परिग्रह रहितता से रुप की विश्वस्तता, (4) विपुल तप होता है और जिनानुमत तप होता है, (5) महान इन्द्रिय निग्रह परीषह जय होता है।

9. मृत्यु समय जीव पांच स्थान से निकलता है- (1) पांव से निकलने वाला नरक में जाता है, (2) उरु (घुटने के ऊपर के पांव) से निकलने वाला तिर्यञ्च में, (3) सीने से निकलने वाला मनुष्य में, (4) मस्तक से निकलने वाला देव में और (5) सर्वांग से निकलने वाला मोक्ष में जाता है।

10. पच्चक्खाण शुद्धता- (1) श्रद्धा पूर्वक ग्रहण (2) विनय युक्त ग्रहण (3) वचन से स्वीकार एवं अंतिम उच्चारण (4) शुद्ध निरतिचार पालन (5) भाव शुद्ध-रुचिपूर्वक, समझ पूर्वक, उत्साह युक्तग्रहण, धारण, पालन।

11. सूत्र अध्ययन के हेतु अथवा लाभ- (1) तत्त्वों का ज्ञान, विज्ञान होता है (2) श्रद्धान शुद्धि होती हैं (3) चारित्र आराधन के परिणामों को बल मिलता है (4) प्राप्त शुद्ध ज्ञान कदाग्रह मिटाने में, सुलझाने में सहायक होता है (5) पदार्थों के यथार्थ भाव का ज्ञाता होता है।

12. सूत्र अध्यापन (वाचना) के हेतु अथवा लाभ- (1) श्रुत संपन्न शिष्यों की वृद्धि होती हैं (2) शिष्य को योग्यता सम्पन्न बनाने से उस पर उपकार होता है एवं अपना कर्तव्य पालना होता है (3) कर्मों की निर्जरा होती है (4) स्वयं का ज्ञान पुष्ट होता है (5) श्रुत परम्परा जिन शासन में अविच्छिन्न चलती है।

13 पांच तीर्थंकर कुमार वास में- (राजा बने बिना) दीक्षित हुए (1) वासुपूज्य (2) मल्ली (3) अरिष्ट नेमि (4) पार्श्व (5) महावीर ।

पांच की संख्या से संबंधित अन्य आगमों में आए या नहीं आए अन्य भी अनेक विषय हैं यथा- महाव्रत, समिति, आश्रव- संवर, पांच इन्द्रियों के विषय शब्दादि, पांच स्थावर, शरीर, रस-त्याग तप, काय क्लेश तप, भिक्षाचरी, ज्योतिषी, परिचारणाएं, अग्रमहिषियां, स्थितियां, अजीव, हेतु अहेतु, अणुत्तर, जिन कल्याणक, अनुद्घातिक, दंड, परिज्ञा, सुप्त-जागृत, दत्ति, उपघात, विशुद्धि, प्रतिसंलीनता, संवर-असंवर, आचार, निर्ग्रन्थ, द्रह, पर्वत, क्षेत्र, अवगाहना, ऋद्धिमंत, गति, इन्द्रियार्थ, बादर, उपधि, छद्मस्थ के अज्ञात- तत्व, महानरक, महाविमान, सत्व, भिक्षाचर, गति-अगति, बीज योनि, संवत्सर छेदन, अनंतर, अनंत, ज्ञान, प्रतिक्रमण, विमानों के वर्ण, ऊंचाई, नदियाँ, सभा, नक्षत्र-तारे, कर्मचयादि और पुद्गल आदि।

छठवें ठाणे (स्थान) का सारांश

1. व्यवहार सूत्र के तीसरे उद्देशक के प्रथम सूत्र में गुण सम्पन्न भिक्षु को गण धारण करना कल्पनीय बताया है और जो गुण सम्पन्न न हो तो उसे गण धारण करके (सिंघाड़ा प्रमुख बनकर) विचरण करना अकल्पनीय कहा है। यहां वे गुण छः बताये गये हैं-

(1) शुद्ध श्रद्धा सम्पन्न (2) पूर्ण सत्यवादी (3) बुद्धिमान (4) बहुश्रुत (5) शारीरिक शक्ति सम्पन्न (6) कलह रहित स्वभाव वाला अर्थात शांत स्वभावी, धैर्यवान एवं गंभीर। कई व्याख्या करने वाले इन्हें आचार्य से संबंधित करते हैं किन्तु आचार्य की आठ संपदा रुप भिन्न गुण कहे गये हैं। अतः ये सिंघाड़ा प्रमुख की योग्यता के लक्षण समझना चाहिए। इन गुणों के अभाव में साधुओं को प्रमुख बनकर विचरण करना या चातुर्मास करना नहीं कल्पता है। उसे अन्य गुण संपन्न साधु-साध्वी की निश्रा में ही विचारणादि करना चाहिए। गण प्रमुखों को भी चाहिए कि वे इन गुणों से रहित किसी भी साधु-साध्वी को प्रमुख बनाकर विचरण करने की आज्ञा न देवें।

2. कालगत साधु या साध्वी के लिए ये कृ त्य किये जा सकते हैं-

(1) उस मृत शरीर को कमरे के अन्दर से बाहर ला सकते हैं (2) मकान के बाहर ला सकतें हैं (3) गृहस्थ कुछ करे तो उससे उपेक्षा भाव रखना अथवा शरीर वस्त्रों का प्रतिलेखन करना। (4) शव के पास रात्रि व्यतीत करना (5) गृहस्थों को सौंपना (6) स्वयं मौन पूर्वक एकान्त में विसर्जित करने जाना।

3. वनस्पति बिना बीज के भी समुर्च्छिम (स्वतः) उत्पन्न होता है।

4. यदि आत्म जागृति- आत्मार्थीपन नहीं है तो (1) संयम पर्याय ज्येष्ठता (2) शिष्य परिवार (3) श्रुत -ज्ञान सम्पन्नता (4) तप- संपन्नता (5) अंतराय कर्म के क्षय से लब्धिवान होना और (6) पूजा, सत्कार, यश आदि ये सभी उसके लिए अहितकर ही होते हैं और आत्मार्थीपन एवं आत्म -जागृति भाव हो तो ये सभी हितकर होते हैं। आत्मार्थी साधक इनके निमित्त से निर्जरा ही करता है। अनात्मार्थी इन से मोह, घमण्ड आदि करके कर्म बंध कर अहित कर लेते हैं।

5. (1) अरिहंत (2) अरिहंत प्रज्ञप्त धर्म (3) आचार्य-उपाध्याय। (4) संघ का अवर्णवाद बोलने से तथा (5) यक्ष के प्रवेश से एवं (6) मोह कर्म के उदय से, जीव उन्माद को प्राप्त होता है अर्थात् पागल हो जाता है।

6. छः प्रमाद (1) मद्य (2) विषय (3) कषाय (4) निन्द्रा या निंदा (5) द्युत और (6) प्रतिलेखन-प्रमाद।

7. शास्त्रार्थ के ये अंग हैं- (1) वादी (2) प्रतिवादी (3) अध्यक्ष (4) निर्णायक (5) सभ्य-गण और (6) दर्शक गण। शास्त्रार्थ के दो हेतु होते हैं- (1) हार-जीत और (2) सत्य तत्त्व निर्णय। प्रथम अप्रशस्त विवाद हैं एवं अकल्पनीय है और दूसरा यथा अवसर कल्पनीय है। विवाद में छल अनैतिकता का अवलंबन लिया जाता है यथा (1) उत्तर न आने पर विषयांतर में जाना (2) फिर विषय में आना (3) अध्यक्ष को अनुकू ल बनाना। (4) उनके प्रति असद्-व्यवहार करना (5) उनकी सेवा कर प्रसन्न करना (6) निर्णायकों का बहुमत अपने पक्ष में करना।

8. छः ऋतु हैं- (1) प्रावृट्-ऋतु, आषाढ़-श्रावण (2) वर्षा-ऋतु-भादवा, आसोज (3) शरद् ऋतु-कार्तिक, मिगसर (4) हेमन्त-ऋतु, पौष-माघ (5) बसन्त-ऋतु, फाल्गुन-चैत्र (6) ग्रीष्म-ऋतु, वैशाख, ज्येष्ठ।

9. तिथि-क्षय- (1) आषाढ़ वदी में (2) भादवा वदी में (3) कार्तिक वदी में (4) पौष वदी में (5) फाल्गुन वदी में (6) वैशाख वदी में ।

10. तिथि-वृद्धि- (1) आषढ़ सुदी में (2) भादवा सुदी में (3) कार्तिक सुदी में (4) पौष सुदी में (5) फाल्गुन सुदी में (6) वैशाख सुदी में

11. आहार के सुपरिणाम- (1) आनन्दित करने वाला (2) रसोत्पादक (3) धातुपूर्त्ति करने वाला (4) धातुवृद्धि करने वाला (5) मद-मस्ती देने वाला (6) शरीर पोषक-उत्साह वर्धक।

12. छः प्रकार के जहर- (1) किसी के काटने पर (2) स्वयं विष खाने पर (3) किसी के स्पर्श करने पर (4) मांस तक असर करने वाला (5) खून में असर करने वाला (6) हड्डी एवं मज्जा में असर करने वाला।

13. आयु बन्ध के समय 6 बोलों का बन्ध(या पूर्वबद्ध का संबंध निकाचित) होता है- (1) जाति (2) गति (3) कर्मों की स्थितियां (4) शरीर की अवगाहना (5) कर्म प्रदेश और (6) उनके विपाक- पूरे भव के लिये ये बोल निश्चित संबंधित हो जाते हैं अर्थात् गति, जाति, अवगाहना उस आयु के अनुसार संबंधित हो जाती है और सभी कर्मों की स्थितियां प्रदेश और विपाक आयुष्य के साथ निश्चित (तद्नुसार संबंधित) हो जाते हैं।

14. नारकी, देवता और युगलिए छः मास आयु शेष रहने पर आयु बन्ध करते हैं।

15. प्रश्न पूछने के हेतु- (1) संशय दूर करने के लिए (2) अपने अभिनिवेश को रखते हुए, दूसरों के पराभव के लिये (3) अर्थ व्याख्या जानने के लिये (4) अपने चित्त की प्रसन्नता सन्तुष्टी के लिये (5) जानते हुए दूसरों का ज्ञान वृद्धि के लिये (6) स्वयं के जानने के लिये।

16. भाव छः - (1) उदय भाव-क्रोधादि (2) उपशम भाव- सम्यक्त्वादि (3) क्षायिकभाव कर्म क्षय केवलज्ञानादि (4) क्षयोपशम भाव चार ज्ञान, इन्द्रियादि (5) अनादि स्वभाव आत्मा का जीवत्वादि (6) मिश्र भाव-द्विसंयोगी आदि।

17. प्रतिक्रमण- मल-मूत्र आदि व्युत्सर्जन का, गोचरी का, प्रतिलेखन का, निद्रा का, दिवस रात्रि आदि का, अत्यल्प भूल का और मृत्यु समय का।

इनके अतिरिक्त इस अध्ययन में अन्य आगामों में आये हुये विषय ही अधिक हैं एवम् कुछ अन्य भी विषय हैं वे इस प्रकार हैं- निर्ग्रंथ-निर्ग्रंथी परस्पर आलम्बन, ज्ञेय-अज्ञेय, सम्भव-असम्भव, छः काया, संसारी-जीव, गति-आगति, ज्ञान, शरीर, इन्द्रियार्थ, अवग्रहादि के भेद, संवर-असंवर, प्रायश्चित, तप, मनुष्य, द्वीप, क्षेत्र, पर्वत, नदी द्रह, कुट, काल, ज्योतिष-ग्रह, नक्षत्र, तारे, संघयण, संस्थान, ऊंचाई, आर्य, लोक-स्थिति, दिशाएं, आहार करने एवं न करने के कारण प्रतिलेखन के गुण-दोष, लेश्या, अग्रमहिषी दिशाकुमारियां, क्षुद्र-प्राणी, गोचरी, महानरकावासा, महाविमान, शलाका पुरुष, चन्द्र-नक्षत्र का संबंध, संयम-असंयम, अवधिज्ञान, भिक्षु के अवचन, कल्प प्रस्तार, संयम नाशक, कल्पस्थिति, अन्तर-विरह काल, नक्षत्रों के तारे एवं पुद्गल आदि छः संख्या से संबंधित विषय हैं।

सातवें ठाणे (स्थान) का सारांश

1. गणापक्रमण- गण का परित्याग-रुचि अनुसार अध्ययन या अध्यापन रुप ज्ञान लाभ प्राप्त न हो, रुचि अनुसार चरित्र एवं चित्तसमाधि की आराधना न हो अथवा अपनी रुचि क्षमता से अत्यधिक आचरण का आग्रह हो, तो भाव समाधि के लिये एक गण का परित्याग कर अन्य गण को स्वीकार करना गणापक्रमण है। सामूहिक जीवन से, संयम या चित्तसमाधि में असन्तोष होने से, अकेले-गच्छ मुक्त होकर विचरण करना हो तो गुरु से निवेदन कर गच्छ का त्याग करना भी गणापक्रमण है।

पडिमाएं, जिनकल्प, परिहार विशुद्ध चारित्र अचेलत्व प्रतिज्ञा आदि अनेक साधनाएं करते हुए अकेले विचरण करना गणापक्रमण नहीं हैं, वे तो आचार्य की सम्पदा में ही गिने जाते हैं। वे उसे पूर्ण करके आवें तब उनका सम्पूर्ण संघ सम्मान करता है। गणापक्रमण पारिस्थितिक एवं असन्तुष्टि पूर्वक गच्छ त्याग है और पंडिमाएं विशिष्ट विशिष्टतर तपाराधना है।

2. विभंग ज्ञान के प्रकार- (1) एक दिशा का, (2) पांच दिशा का, (3) जीव क्रिया से ही आवृत्त है कर्म कुछ नहीं हैं, (4-5) पुद्‌गल मय ही जीव है या जीव अपुद्‌गल मय ही है अथवा सभी जीव सुखी हैं या सभी जीव दुःखी हैं। (6) जीव रुपी ही हैं। (7) हलचल करने वाले पुद्‌गलों और जीवों को देखकर यह समझना कि ये सब जीव ही जीव हैं।

3. आचार्य उपाध्याय का कर्तव्य होता है कि वे गण के साधु-साध्वियों के आवश्यक वस्त्रादि उपकरणों की प्राप्ति एवं संरक्षण करें।

4. (1) किंचित भी हिंसा करे, (2) झूठ बोले (3) अदत्त ग्रहण करे, (4) शब्दादि में आनन्दित होवे या खिन्न होवे, (5) पूजा-सत्कार में प्रसन्न होवे, (6) यह सावद्य है ऐसा कह कर भी उसका सेवन करे एवं जैसा कहे वैसा न करे, तो वह केवली नहीं किन्तु छद्मस्थ है ऐसा जानना चाहिए।

5. सात नय- (1) भेद-अभेद दोनों को ग्रहण करने वाला-नैगमनय, (2) केवल अभेद को ग्रहण करने वाला संग्रह नय, (3) केवल भेद को ग्रहण करने वाला व्यवहार नय, (4) वर्तमान पर्याय को स्वीकार करने वाला-ऋजुसूत्र नय, (5) लिंग, वचन, कारक के भेद से वस्तु को भिन्न स्वीकार करने वाला-शब्द नय, (6) पर्यायवाची शब्दों के भेद से वस्तु को भिन्न स्वीकार करने वाला-समभिरुढ़ नय (7) वर्तमान क्रिया में परिणित वस्तु को ही वस्तु स्वीकार करने वाला एवंभूत नय।

6. सात स्वर है, सात स्वर के स्थान हैं। ये स्वर जीव और अजीव दोनों के होते हैं। इन स्वर वालों के लक्षण (स्वभाव) एवं लाभ भी भिन्न-भिन्न होते हैं। स्वरों की मूर्च्छनाएं आदि अनेक प्रकार के वर्णन हैं।

7. भूतकाल की उत्सर्पिणी में, वर्त्तमान अवसर्पिणी में और भविष्य काल की उत्सर्पिणी में सात कुलकर हुए और होंगे।

8. इस अवसर्पिणी के प्रथम कुलकर विमलवाहन के समय सातवां कल्पवृक्ष उपभोग में आता था और छः प्रकार के वृक्ष काम में आते थे।

9. सात दण्ड नीति- 1. हकार, 2. मकार, 3. धिक्कार, 4. नजर कैद, 5. नियत क्षेत्र बन्धन, 6. जेल, 7. अंगोपांग छेदन।

10. चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं, सात एकेन्द्रिय और सात पंचेन्द्रिय।

11. दुःषम काल का प्रभाव जानने के बोल- 1. अकाल में वर्षा होना, 2. समय पर वर्षा नहीं होना, 3. असाधुओं को आदर अधिक देना। 4. साधुओं का आदर कम होना। 5. गुरुजनों के प्रतिभावों में कमी आना, 6. मानसिक दुःखों की वृद्धि, 7. वाचिक दुर्व्यवहार वृद्धि। इसके विपरित होने पर यह समझना कि दुःषम काल का प्रभाव मन्द हैं।

12. अकाल मरण के सात निमित्त- (1) हर्ष, शोक, भय आदि के परिणामों की तीव्रता से (2) शस्त्राघात से (3) आहार की विपरीतता से (4) रोगांतक की तीव वेदना से (5) गिरने पड़ने से या दुर्घटना से (6) सर्प आदि के काटने या खाने से (7) श्वास रुंधने से।

13. (1) करुण रस आदि युक्त कथा (2) दर्शन और (3) चारित्र का विघात करने वाली कथा, इन तीनों को भी विकथा समझाना चाहिए। ज्ञान का विघात तो सभी विकथाओं से होता ही है, इसलिए अलग भेद नहीं कहा है।

14. (1) प्राप्त आहार एवं (2) उपकरणों में से आचार्य उपाध्याय को उत्तम मनोज्ञ उपकरण एवं आहारादि दिया जाता है। ये दो अतिशय जोड़ कर यहां सात अतिशय कहे हैं। पांचवें ठाणे में और व्यवहार सूत्र में पांच अतिशय कहे हैं।

15. प्रत्येक लोकांतिक देव में कुछ प्रमुख देव होते है और कुछ सभा के सदस्य देव भी होते हैं।

16. इन्द्रों की सात सेना (1) हाथी (2) घोड़ा (3) महिष (4) रथ (5) पैदल (6) नर्तक और (7) गंधर्व सेना और इनके अधिपति भी होते हैं। पैदल सेना की सात कक्षाएं होती हैं।

17. पाप रहित निर्दोष पवित्र मन रखना एवं वचन बोलना प्रशस्त मन, वचन, विनय है। यतना पूर्वक बैठना, सोना, करवट बदलना खड़े होना, करवट बदलना चलना, उल्लघंन करना एवं सभी इन्द्रियों का व्यापार यतना, पूर्वक करना प्रशस्त काय विनय है।

18. लोकोपचार=व्यवहार विनय- (1) गुरु आदि के समीप रहना (2) उनके अभिप्राय के अनुसार चलना (3) किसी का भी कार्य कर देना (4) प्रत्युपकार करना (5) कौन दुःखी है, रुग्ण है, यह ध्यान रखना (6) देश काल को जानकर योग्य प्रवृत्ति करना (7) सभी प्रकार से अनुकूल प्रवर्तन करना।

11. तीर्थंकर प्ररुपित अमुक सिद्धान्त गलत हैं, ऐसा कह कर या मानकर भिन्न प्ररुपणा करने वाले को 'निह्नव' कहा गया है।

क्र.सं.	नाम	वर्ष	विषय
1	जमाली	वीरनिर्वाण 16 वर्ष पूर्व	प्रतिक्षण कार्य नहीं होता, अन्तिम समय में होता है।
2	तिष्यगुप्त	वीरनिर्वाण 14 वर्ष पूर्व	वस्तु का अन्तिम अंश ही वस्तु है, शेष अंश अवस्तु है।
3	आषाढ़ भूति के शिष्य	वीरनिर्वाण 214 वर्ष बाद	सब कुछ संदेहशील है, निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहना।
4	अश्वमित्र	वीरनिर्वाण 220 वर्ष बाद	एक पर्याय के विनाश में वस्तु का सर्वथा नाश होता है।
5	गंग	वीरनिर्वाण 228 वर्ष बाद	एक समय में दो क्रिया का वेदन होता है।
6	षडुलूक	वीरनिर्वाण 544 वर्ष बाद	जगत में जीव अजीव और मिश्र तीन राशि हैं।
7	गोष्ठामहिल	वीरनिर्वाण 584 वर्ष बाद	कर्म आत्मा को केवल स्पर्श करते हैं किन्तु लोली भूतबद्ध नहीं होते।

अन्य भी अनेक सात संख्या से संबंधित विषयों का कथन इस अध्ययन में है यथा-योनि संग्रह, गति-आगति, प्रतिमा, आचार-चूला, अधोलोक स्थिति, बादर वायु, संस्थान, भय, गोत्र, कायक्लेश, क्षेत्र, पर्वत, जीव, उत्तम पुरुष, दर्शन सूत्र, छद्मस्थ-केवली, संयम-असंयम, स्थिति, अग्रमहिषी, देव, नन्दीश्वर द्वीप, श्रेणियां, वचन-विकल्प, विनय के भेद-प्रभेद, समुद्घात, नक्षत्र-द्वार, पुद्गल आदि।

आठवें ठाणे (स्थान) का सारांश

1. प्रमुख बनकर विचरण करने वाले के लिये कहे गये श्रद्धा, सत्य, बुद्धिमत्ता आदि छः गुण और 7 धैर्यवान एवं 8 उत्साहशील ये आठ गुण अकेले विहार करने वाले साधु को धारण करना आवश्यक है, तभी वह एकल विहार करने के योग्य है।

भोले- भद्रिक, क्रोधी, घमण्डी, कलहशील, उत्साहहीन, धैर्यहीन, अबहुश्रुत व्यक्ति एकल विहार के योग्य नहीं हैं।

2. अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज, औपपातिक ये आठ प्रकार के जीव योनि-संग्रह हैं।

3. आठ समितियां हैं- पांच समिति और तीन गुप्ति।

4. आलोचना सुनने के योग्य- (1) आचार सम्पन्न (2) अतिचारों का अनुभवी (3) पांच व्यवहार के उपयोग का अनुभवी (4) आलोचना में साहस उत्पन्न करने वाला (5)शुद्धि कराने में योग्य (6) किसी के आगे किसी भी रुप में दोष को प्रकट न करने वाला (7) दिए प्रायश्चित को वहन करवा सके अथवा सामर्थ्य का ज्ञाता। (8) दोष सेवन एवं प्रायश्चित भंग करने के दुष्परिणामों को समझाने में समर्थ।

5. (1) धर्मास्तिकाय (2) अधर्मास्तिकाय (3) आकाशस्तिकाय (4) शरीर रहित जीव (5) शब्द (6) गंध (7) हवा और (8) परमाणु पुद्गल को आंखों से नहीं देखा जा सकता। केवली पूर्णतया जानते देखते हैं।

6. भरत चक्रवर्ती के राज्य पर बैठने वाले उत्तराधिकारी आठ राजा क्रमशः मोक्ष गये।

7. भगवान महावीर के समीप में समय-समय पर दीक्षित होने वाले राजाओं की संख्या कुल आठ हुई।

8. सभी लोकांतिक देवों की आठ सागरोपम की ही स्थिति होती है।

9. तीन अस्तिकाय के और जीव के आठ मध्य (रुचक) प्रदेश कहे गये हैं।

10. योजन आठ हजार धनुष का होता हैं।

11. भिक्षु निम्न बोलों में प्रयत्नशील रहे- (1) नहीं सुने धर्म तत्त्वों को सुनने-जानने में (2) सुने हुए को धारण करने में (3) नवीन कर्मबंध रोकने में (4) तप द्वारा पूर्व कर्म क्षय करने में (5) नये-नये योग्य मुमुक्षुओं को संयम ग्रहण कराने में (6) नवदीक्षितों की यथायोग्य संभाल करने में (7) ग्लानि-रोगी वृद्ध साधु की सेवा करने (8) कलह उपशान्ति करने में।

12. केवली समुद्घात आठ समय की होती है। वह किसी-किसी केवली के होती है, सभी के नहीं।

अन्य भी आठ की संख्या से संबंधित अनेक विषय इस अध्ययन में हैं यथा-गति- आगति, कर्म, आलोचना, संवर-असंवर, स्पर्श, लोक, संस्थिति, गणि-संपदा, महानिधि, प्रायश्चित, मद, वादी, महानिमित्त, विभक्तियों का स्वरुप, आयुर्वेद, महाग्रह, अग्रमहिषी, सूक्ष्म, दर्शन, काल, आहार, कृष्णराजी, पूर्व, गति, द्वीप, समुद्र, द्वार, कूंट, कांकणि-रत्न, जगती, दिशाकुमारियों, देवलोक, प्रतिमा, संयम, पृथ्वी, विमान, अणुत्तरोपपातिक, ज्योतिष, बंध-स्थिति, कु ल-कोड़ी, पाप कर्म, पुद्गल आदि।

नवमें ठाणे (स्थान) का सारांश

1. आचार्य आदि के प्रतिकूल प्रवर्त्तन करने वाले एवं ज्ञान दर्शन चारित्र के विपरीत आचरण प्ररुपणा करने वाले को श्रमण मंडली से पृथक किया जा सकता है।

2. संयम साधना में ब्रह्मचर्य पालन आवश्यक है और ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए (1) स्त्रियों से संसक्त स्थान (2) स्त्री संबंधी कथा वार्ता (3) स्त्रियों के रुप-सौन्दर्य एवं अंगोपांगों का अवलोकन (4) उनके हास्य गीत आदि का श्रवण (5) मधुर एवं गरिष्ट भोजन (6) अति भोजन (7) शरीर वस्त्रादि के सौंदर्य वृद्धि रुप विभूषा अर्थात् नहाना धोना आदि प्रवृत्तियां (8) सुखशीलता एवं इन्द्रियों का स्व विषय में यथेच्छ प्रवर्त्तन इत्यादि का परित्याग करना नितांत आवश्यक है। (9) पूर्व गृहस्थ जीवन के सुख एवं भोगों का स्मरण भी नहीं करना चाहिए।

3. रोगों से सुरक्षित रहने के लिए रोगोत्पत्ति के नौ स्थानों को समझ कर ध्यान रखना चाहिए- (1) अधिक बैठे रहने से या एक साथ अधिक खाने से अथवा बारम्बार खाते रहने से (2) अपनी अनुकूलता के विपरीत या स्वास्थ्य के नियमों से विपरीत आसन से बैठने से और विपरीत खान-पान करने से (3) अधिक सोने से या निद्रा लेने से (4) अधिक जागने से (5-6) मल-मूत्र आदि शरीर की बाधाओं के वेग को रोकने से (7) अधिक विहार करने से अर्थात् अधिक चलने से (8) समय-असमय में खाने से या भूखे रहने से (9) इन्द्रियों का अति उपयोग करने से या अति काम विकार सेवन से।

4. जम्बू द्वीप में लवण समुद्र से नौ योजन के मच्छ आ-जा सकते हैं।

5. विगय और महाविगय मिलकर कुल नौ विगय हैं।

6. शरीर में नौ स्त्रोत स्थान हैं- दो आंख, दो कान, दो नाक, मुंह, गुदा और मूत्रेन्द्रिय।

7. निमित्त, विद्या, मंत्र, वास्तु विद्या, चिकित्सा, कला, शिल्प और कु प्रावचनिक सिद्धान्त आदि को पाप श्रुत में बताया गया है अर्थात् केवल आत्म कल्याण को अहिंसा प्रधान आगम ही धर्म शास्त्र में गिने जाते हैं। आत्म कल्याण साधन करने वालों के लिए उक्त सभी पाप श्रुत त्याज्य हैं। इन्हें स्वीकार करने वाला साधक आत्मा की साधना से दूर हो जाता है।

8. श्रमण भगवान महावीर स्वामी के11 गणधरों के नौ गण थे।

9. श्रमण निर्गन्थों के नौ कोटि शुद्ध आहार होता है। (1) जीव हनन (फल या बीज आदि का भेदन) (2) अग्नि आदि से पकाना (3) मूल्य देकर खरीदना इन तीनों क्रिया के 1. करने, 2. करवाने और 3. अनुमोदन (अर्थात् कृत का उपयोग करने) से रहित आहार करते हैं। अपने लिए या अन्य साधार्मिक साधुओं के लिए छेदन-भेदन किए, पकाये और खरीदे आहार को खाने वाले श्रमण नव कोटि से अशुद्ध आहार करने वाले होते हैं।

10. भगवान महावीर के शासन में नौ जीवों ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था- 1. श्रेणिक, 2. सुपार्श्व, 3. उदायी, 4. पोटिल अणागार, 5. दृढ़ायु, 6. शंख श्रावक, 7. शतक श्रावक, 8. सुलसा श्राविका, 9. रेवती श्राविका।

11. श्रेणिक राजा का जीव प्रथम नरक में 84000 वर्ष का आयु पूर्ण कर महापद्म के रुप में जन्म लेगा। वहां उसके अनेक नाम होंगे। फिर भगवान महावीर के समान तीस वर्ष में दीक्षा 42 वर्ष में केवल ज्ञान होगा। 72 वर्ष की सम्पूर्ण उम्र होगी। प्रथम तीर्थंकर बनकर सम्पूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध होंगे। यहां विस्तृत वर्णन किया गया है।

12. प्रथम कुलकर विमल वाहन नौ सौ धनुष के ऊंचे थे।

इनके अतिरिक्त नौ की संख्या से संबंधित अन्य अनेक विषय इस अध्ययन में कहे गये हैं यथा- आचारांग के अध्ययन, तीर्थंकर, जीव, गति-आगति, दर्शनावरणीय कर्म, अवगाहना, ज्योतिषि, बलदेव-वासुदेव, निधि, शरीर, पुण्य, निपुणता, देव वर्णन, नव ग्रैवेयक देव, आयुपरिणाम, प्रतिमा, प्रायश्चित, कूट, नक्षत्र, विमान ऊंचाई, अन्तरद्वीप, शुक्र ग्रह, नो कषाय (हास्यादि), कुल कोडी, पाप कर्म चय, पुद्गल आदि।

दसवें ठाणे (स्थान) का सारांश

1. संसार और पाप कर्म कभी समाप्त नहीं होते, जीव अजीव नहीं होता, अजीव जीव नहीं होता, स्थावर और त्रस जीव दोनों सदा रहेंगे। लोक के बाहर जीव नहीं, गमनागमन भी नहीं। जीव बारम्बार जन्म और मरण करते रहते हैं। सभी दिशाओं के लोकांत में पुद्गल रुक्ष होते हैं और अन्य आने वाले पुद्गलों को भी अत्यन्त रुक्ष भाव में परिणत कर देते हैं। इस कारण आगे गति नहीं होती है, ये सब लोक स्वभाव हैं।

2. दस कारण से पुद्गल चलते हैं।

3. क्रोध की उत्पत्ति- 1. मनोज्ञ विषयों का कोई वियोग करे, अमनोज्ञ विषयों का संयोग करे।
2. सम्यग् व्यवहार करने पर भी कोई प्रतिकूल व्यवहार करे तो क्रोध आवे।

4. दस संवर- पांच इन्द्रिय निग्रह, तीन योग विग्रह, उपकरण संवर और सुई कुशाग्र संवर। ये दशों प्रतिपक्ष के असंवर है।

5. पांच महाव्रत और पांच समिति ये 10 समाधि स्थान हैं।

6. मद दस हैं- देवागमन का और विशिष्ट अवधिज्ञान आदि ज्ञान का। शेष आठ मद जाति आदि के होते हैं।

7. दीक्षित होने के भी विभिन्न कारण होते हैं- (1) स्वयं के वैराग्य के परिणामों से (2) रोष में आकर (3) दरिद्रता के कारण (4) स्वप्न के निमित्त से (5) प्रतिज्ञा को निभाने के लिये (6) पूर्व जन्मों के स्मरण होने से (7) रोग के निमित्त (8) अपमानित होकर (9) देव सूचना से (10) पिता, पुत्र, मित्र आदि से निमित्त से भी मनुष्य गृहत्याग कर साधु बनता है।

8. (1-4) गुस्सा, घमण्ड, कपट, लालच नहीं करना किन्तु क्षमा, नम्रता, सरलता निर्लोभता धारण करना, (5) लघु-भूत रहना (6) सत्य-भाषी एवं सत्यनिष्ट ईमानदार होना (7) इन्द्रिय मन को नियंत्रित रखना (8) यथाशक्ति तप वृद्धि करना (9) त्याग प्रत्याख्यान एवं आहारादि दान करना (10)नियमोपनियमों सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करना ये दस श्रमण के धर्म हैं,

9. आचार्य आदि की एवं रोगी, तपस्वी, नव दीक्षित आदि की भी वैयावृत्य करनी चाहिए।

10. गाज बीज धूअर आदि की दस आकाश संबंधी अस्वाध्याय है हड्डी, मांस, खून, सूर्य ग्रहण आदि दस औदारिक अस्वाध्याय हैं। इन अस्वाध्याय प्रसंगों से सूत्र पाठ नहीं करना चाहिए।

भरत क्षेत्र में 10 महानदियां गंगा सिन्दु नदी में मिलती है।

1. जमुना 2. सरयू 3. आवी 4. कोशी 5. मही 6. शतद्रु

7. वितरता 8. विपासा 9. ऐरावती 10. चंद्रभागा।

11. प्रतिसेवना-दोष सेवन दस कारणों से होता हैं- (1) उद्धत भावों से (2) प्रमाद वश (3) उपयोग शून्यता (4) पीड़ित होने से कारण (5) आपत्ति आने पर (6) कल्प्याकल्प्य के भ्रम-शंका से (7) भूल से अकस्मात् (8) भय से (9) द्वेष भाव से (10) परीक्षार्थ।

12. आलोचना के दोष- (1) कांपते हुए (2) अल्प प्रायश्चित का अनुनय करके (3) केवल दूसरों के द्वारा देखे दोष की आलोचना करे (4) बड़े-बड़े दोष की आलोचना करे। (5) छोटे-छोटे दोष की आलोचना करे। (6)अत्यन्त धीमे बोले (7)अत्यन्त जोर से बोले (8) अनेको के पास बारम्बार आलोचना करे (9) अस्पष्ट बोले या अयोग्य अगीतार्थ के पास आलोचना करे। (10) वैसे ही दोष के सेवन करने वाले के पास आलोचना करे।

13. प्रिय धर्मी दृढ़ धर्मी आदि दस गुण युक्त के पास आलोचना करनी चाहिए (आठवें स्थान में आठ गुण कहे हैं।)

14. आलोचना, प्रतिक्रमण आदि दस प्रायश्चित हैं।

15. दस मिथ्यात्व- (1) धर्म-अधर्म (2) उन्मार्ग-सन्मार्ग (3) जीव-अजीव (4) साधु-असाधु (5) मुक्त-अमुक्त के विषय में विपरित समझ एवं श्रद्धा रखना।

16. दस भवनपतियों के दस चैत्य वृक्ष हैं- (1) असुर-कुमार-पीपल (2) नागकुमार-सप्तपर्ण (3) सुपर्ण कुमार-सेमल (शाल्मलि) (4) विद्युत कुमार-गूलर (उम्बर) (5) अग्निकुमार-सिरीस (6) दीपकुमार-दधिपर्ण (7) उदधि कुमार=अशोक (8) दिशाकुमार-पलाश (9) वायु कुमार-लाल एरण्ड (10) स्तनिकुमार-कनेर।

17. दस सुख हैं- (1) पहला सुख स्वस्थ शरीर (2) लंबी उम्र (3) धन सम्पन्नता (4-5) इन्द्रिय विषयों के सुख (6) संतोषवृति (7) आवश्यक वस्तु की उपलब्धि यथा समय (8) सुख भोग के सुन्दर साधन (9) संयम ग्रहण का संयोग (10) सम्पूर्ण कर्म क्षय

18. (1) उपाधि (2) उपाश्रय (3) कषाय (4) आहार (5-7) मन, वचन, काया (8) ज्ञान (9) दर्शन (10)चारित्र के निमित्त से संक्लेश की उत्पति हो सकती है। अतः सदा असंक्लेश भावों में सावधान रहते हुए साधना करनी चाहिए।

19. (1) क्रोध (2) मान (3) माया (4) लोभ (5) राग (6) द्वेष (7) हास्य (8) भय से झूठ बोला जाता है। (9) कथावार्त्ता आदि को सरस बनाने या अपना उत्कर्ष दिखाने के लिए झूठ बोला जाता है। (10) दूसरों का अहित करने के लिए झूठ बोला जाता है अथवा दूसरों के अहितकर सत्य वचन भी मृषावचन है। ये सभी झूठ कर्म बंध कराने वाले हैं ऐसा जान कर सत्य भाषण करना चाहिए।

20. सत्य और असत्य से मिश्रित भाषा भी त्याज्य है। अतः सोच विचार कर निर्णय कर शुद्ध सत्य भाषा बोलनी चाहिए।

21. दस शस्त्र- (1) अग्नि (2) विष (3) लवण (4) स्निग्ध पदार्थ (5) क्षार पदार्थ (6) खट्टे पदार्थ (7-9) दुष्ट मन, वचन, काया (10) अविरति-पाप त्याग न करना या व्रत धारण न करना, यह आत्मा के लिए, जीवों के लिए या शरीर के लिए शस्त्रभूत है।

22. सभा में भूल जाना, पक्षपात करना, वाद में छल करना, दोषयुक्त बोलना, गलत तर्क देना, विषयांतर में जाना, असभ्य व्यवहार करना इत्यादि वाद के दूषण हैं।

23. दस दान- (1) अनुकम्पा भाव से (2) सहायता के लिए (3) भय से (4) मृतक के निमित्त (5) लोक लाज से (6) यज्ञ के लिए, बड़प्पन बताने के लिए (7) जिससे हिंसादि का पोषण हो ऐसा शस्त्रादि का दान (8) धार्मिक व्यक्ति को देना या धर्म सहायक पदार्थ देना (9) कृतज्ञता प्रगट करने के लिए देना (10) किसी की आज्ञा से देना।

24. सम्यग् दर्शन दस प्रकार का है- (1) बाह्य निमित्त के बिना होने वाला (2) उपदेश सुन कर होने वाला (3) सर्वज्ञ की आज्ञा के पालन से (4) सूत्र अध्ययन से (5) अनेक अर्थों के बोधक एक वचन के चिंतन से उत्पन्न (6) सूत्रार्थ के विस्तृत ज्ञान से (7) प्रमाण नय भंग आदि के सूक्ष्मतम ज्ञान से उत्पन्न (8) धार्मिक क्रियाओं के आचरण से उत्पन्न (9) संक्षिप्त धर्म पद के सुनने, समझने मात्र से उत्पन्न (10) श्रुत धर्म चारित्र धर्म के ज्ञान श्रद्धान् से उत्पन्न।

25. नरक में दस वेदना- (1) भूख (2) प्यास (3) ठंडी (4) गर्मी (5) खुजली (6) परतंत्रता या परजन्य कष्ट (7) भय (8) शोक (9) जरा (बुढ़ापा) (10) रोग

26. दस तत्त्व को छद्मस्थ पूर्णतया नहीं जान सकते हैं- (1-3) तीन अस्तिकाय (4) शरीर रहित जीव (5) परमाणु (6) शब्द (7) गंध (8) वायु (9) यह जीव केवली होगा (10) यह मोक्ष जायेगा। आठवें आदि स्थानों में आठ बोल आदि कहे हैं।

27. दस आगमों की दस दशाएं हैं उनमें दस अध्ययन हैं- (1) उपासक दशा (2) अंतकृत दशा (3) अणुत्तरोपपातिक दशा (4) प्रश्न व्याकरण दशा (5) आचार दशा (दशा श्रुतस्कंध) 6 (6) (कर्म) विपाक दशा (7) बंध दशा (8) द्विगृद्धि दशा (9) दीर्घ दशा (10) संक्षेपिक दशा। इसमें चार तो अप्रसिद्ध सूत्र हैं तथा अंतकृत, अणुत्तरोपपातिक, प्रश्न व्याकरण इन तीन सूत्र के उपलब्ध अध्ययनों से पूर्णतया भिन्न ही नाम है, विपाक सूत्र के भी कुछ नाम भिन्न हैं और संक्षेपिक दशा के जो दस अध्ययन कहे गये हैं उन्हीं को नंदी सूत्र में और व्यवहार सूत्र में दस आगमों के रुप में गिनाया गया है। सम्भवतः ये भूलें लिपि कर्ताओं से या किसी के समझ भ्रम से हो गई हैं।

28. अच्छे सुखकर कर्मों का उपार्जन- (1) तप करके भौतिक चाह न करने से या निदान न करने से (2) सम्यक् समझ श्रद्धान रखने से (3) योगों की शुद्धि एवं लघुता (अल्प व्यापार) से (4) समर्थ होकर भी अपराधी को क्षमा करने से (5) इन्द्रिय विषयों से विरक्ति भाव रखने से (6) पूर्ण सरलता रखने से (7) संयम में शिथिलाचार वृत्ति न करने से अर्थात् पार्श्वस्थ आदि अवस्था में न जाने से (8) श्रमण धर्म का शुद्ध आराधन से (9) जिन प्रवचन में एवं जिन शासन के प्रति अनन्य भक्ति अनुराग होने से (10) जिन शासन की प्रभावना करने से।

29. त्यागने योग्य आकांक्षाएँ- (1) सुखों की (2) भोगों की (3) लाभ की (4) जीवन की (5) मरण की (6) प्रशंसा (7) सत्कार (8) सन्मान की।

30. पुत्र भी अनेक प्रकार के होते हैं यथा- (1) वास्तविक (माता-पिता से उत्पन्न) पुत्र (2) दत्तक (गोद लिया) पुत्र (3) स्नेह से किया पुत्र-औरस पुत्र (4) वचन प्रयोग मात्र से पुत्र (5) अनाथ का पोषण करने से हुआ पुत्र (6) देवता के निमित्त से उत्पन्न पुत्र, (7) औषध प्रयोग से उत्पन्न पुत्र (8) धर्म अन्तेवासी शिष्य रुप पुत्र (9) विद्या गुरु का शिष्य रुप पुत्र (10) वीरता के कारण माना हुआ पुत्र।

31 दुःस्सम काल की उत्कटता पहिचानने के दस बोल- (1) अकाल वृष्टि होना (2) समय पर वृष्टि न होना (3) असाधुओं का सम्मान वृद्धि (4) साधुओं का अल्प आदर (5) गुरुजनों के प्रति लोगों का असद्व्यवहार (6-10) शब्द आदि पांचों विषयों में अमनोज्ञता की वृद्धि (सातवें स्थान में सात कहे हैं)।

इनके विपरीत अवस्था हो तो दुःस्समकाल की मंदता जानना अर्थात् समय-समय पर या भिन्न-भिन्न क्षेत्र में दुःस्समकाल की उत्कृटता मंदता (उतार-चढ़ाव) के परिवर्तन होते रहते है।

32. उत्सर्पिणी काल में 10 कुलकर हुए थे और कुलकर आगे की उत्सर्पिणी काल में भी होंगे। (सातवें स्थान में सात कहे है।) संभवतः सात प्रमुख होते हैं तीन उनके लगभग समकालीन हैं।

33. बारह देवलोक में 10 इन्द्र हैं और सभी के स्वतंत्र पालक, पुष्पक आदि यान-विमान है।

34. तेजो-लब्धि वाले श्रमण या देव की आशातना करने वाले व्यक्ति पर उनके कुपित होने पर उनके शरीर से तेज निकलता है- (1) उससे वह व्यक्ति भस्म हो जाता है या (2) उसके शरीर में फोड़े होकर फूट कर भस्म हो जाता है या (3) फोड़े में से फुन्सियां निकल कर फूटने से वह भस्म हो जाता है। (4) कोई व्यक्ति लब्धि सम्पन्न श्रमण की आशातना करते हुए स्वयं ही मुनि पर तेजो लेश्या फेंकता है किन्तु वह लेश्या सभी दिशाओं से प्रतिहत (निष्फल) होकर उस फेंकने वाले के शरीर में प्रवेश कर उसे ही भस्म कर देती हैं।

35. दस अच्छेरे- (1) तीर्थंकर पर उपसर्ग (2) तीर्थंकर का गर्भहरण (3) तीर्थंकर का स्त्री होना (4) प्रथम देशना में तीर्थंकर के तीर्थ की स्थापना न होना (5) कृष्ण का धातकी खण्ड में जाना (6) चन्द्र-सूर्य का विमान सहित पृथ्वी पर आना (7) हरिवर्ष क्षेत्र के युगलिए का राजा बन कर नरक में जाना (8) चमरेन्द्र का प्रथम देवलोक में जाकर उपद्रव करना (9) एक समय में 108 उत्कृष्ट अवगाहना वालों का सिद्ध होना। (10) नौ से 15 वे तीर्थंकर के शासन में श्रुत धर्म चारित्र धर्म का विच्छेद होना। ये दस अच्छेरे इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में हुए। जो घटनाएं सामान्य रुप से सदा नहीं होती हैं। विशेष कारण से एवं चिरकाल से होती हैं या अल्पतम होती है उन्हें आश्चर्यकारक होने से आश्चर्य, अच्छेरे कहा गया है। ये अनन्त काल से कभी किसी अवसर्पिझाी काल में होते हैं। इनकी संख्या भी अनिश्चित है अर्थात् दस या उससे हीनाधिक भी हो सकती हैं। इसे हुण्डावसर्पिणी कहते हैं।

36. दस नक्षत्रों के चन्द्र संयोग के समय अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए क्योंकि वे ज्ञान वृद्धि करने वाले नक्षत्र हैं यथा- 1. मृगशीर्ष, 2. आर्द्रा, 3. पुष्य, 4. मूल, 5. अश्लेषा, 6. हस्त, 7. चित्रा और तीन पूर्वा (फाल्गुनी, आषाढ़ा, भाद्रपद) ये दस हैं।

इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक दस की संख्या से संबंधित विषय इस अध्ययन में कहे गये हैं यथा- लोक संस्थिति, देश से और सर्व से इन्द्रिय विषयों का ज्ञान, शब्दों के प्रकार, संयम-असंयम, संवर-असंवर, समाधि-असमाधि, जीव-अजीव, परिणाम (गति आदि), सूक्ष्म, नदी, राजधानियां- राजा, मन्दर मेरु, दिशाएं, लवण, समुद्र, पाताल कलश, द्वीप, पर्वत, क्षेत्र, द्रव्यानुयोग के भेद, उत्पात पर्वत, अवगाहना, अनन्त, तीर्थंकर, पूर्व, आलोचना करने वाले की योग्यता, शलाकापुरुष, उपघात-विशोधि, बल, सत्य, मिश्र-वचन, दृष्टिवाद के नाम, दोष, शुद्ध वाचनानुयोग, गति,मुण्डन, गणित, पच्चक्खाण, समाचारी, श्रमण-भगवान महावीर के दस स्वप्न एवं उनके परिणाम, संज्ञा कालचक्र, नरक, स्थिति, धर्म, स्थविर, केवली के दस अणुत्तर, जम्बुसुदर्शनादि महाद्रुम युगलिक क्षेत्र के 10 वृक्ष, वक्षस्कार पर्वत, प्रतिमा, संसारी जीव, उम्र की दस दशाएं, वृक्ष के विभाग, श्रेणियाँ, विमान, काण्ड-विस्तार समुद्र-नदी की गहराई, नक्षत्र, कुलकोडी पापकर्मचय और पुद्गल।

पूर्व अध्ययनों में आये अनेक विषयों में कुछ संख्या वृद्धि करके भी दस की संख्या से ,कई विषय इस अध्ययन में कहे गये हैं।

उपसंहार–

संख्या प्रधान इस सूत्र में दो स्थान विशेष मननीय है-

1. तीसरे ठाणे के दूसरे उद्देशक का अन्तिम दुःख विषयक सूत्र।

2. नवें ठाणे में श्रेणिक (महापद्म) का वर्णन ।

इन दोनो विषयों का इन ठाणों की वर्णन पद्धति अर्थात् तीन और नौ की संख्या से कोई संबंध नहीं है।

सम्भावना यह है कि जा सकती है कि लिपिकाल में भगवती सूत्र के किसी पन्ने के इन अंशों की नकल स्थानांग सूत्र के साथ जुड़ गई हो। अतः यह लिपि-कर्त्ता के असावधानी के कारण हुई भूल हो, ऐसा समझा जा सकता है। इन चर्चित सूत्रों के प्रारम्भिक उच्चारण से भी ऐसा ही आभास होता है।

इन दो प्रकरणों के सिवाय आदि से अन्त तक सम्पूर्ण वर्णन संख्या से और अध्ययन से संबंधित है।

नोट– विस्तृत जानकारी के लिए ब्यावर, लाडनू आदि से प्रकाशित ठाणांगसूत्र के विवेचन का अध्ययन करना चाहिए।

निवेदन–

केवली प्रथम पद में है या पांचवें पद में है-

शास्त्रों में अलग-अलग जगह अलग-अलग अपेक्षा से अरिहन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। कही एकांत तीर्थंकर की अपेक्षा से ही अरिहन्त शब्द प्रयोग हुआ है तो कहीं समुच्चय केवली के लिये भी प्रयोग हुआ है।

इसी तरह जिन शब्द का अर्थ भी रागद्वेष को जीतने वाले अर्थात् केवली होता है। उसका भी प्रयोग लोगस्स में सिर्फ तीर्थकरों के लिये ही हुआ है और अन्यत्र अवधि ज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी और विभंगज्ञानी को भी जिन कहा गया है। अतः शब्दार्थ की अपेक्षा से अरिहंत और जिन शब्द से केवली और तीर्थंकर दोनों को ग्रहण किया जा सकता है इसमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु जहां शास्त्रकार एकान्त तीर्थंकर की अपेक्षा से अरिहंत या जिन शब्द का प्रयोग करें वहां पर अन्य केवली आदि को भी मान लेना उचित नहीं होता है। यथा- अरिहंतों के जन्मने पर दीक्षा के समय और केवल ज्ञान के समय लोक में प्रकाश होता है वहां अरिहंत शब्द केवल तीर्थंकर के लिए ही है, यदि वहां केवली भी ले लेंगे तो अनुचित होगा। ठीक उसी तरह नवकार मंत्र में भी तीर्थंकर की ही अपेक्षा है क्योंकि सिद्धों से पहले स्थान देने में जो हेतु है वह तीर्थ प्रणेता उपकारी तीर्थंकर के लिये ही उपयुक्त होता है। जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग-7 में भी इस विषय में प्रश्नोत्तर देकर यही समझाया है कि तीर्थकरों को उपकार की मुख्यता से प्रथम स्थान दिया है। जब कि णमोत्थुण में गुण

कीर्त्तन की मुख्यता से पहले सिद्धों का फिर अरिहन्तों का गुण कीर्त्तन किया जाता है। अतः अरिहंत शब्द से शब्दार्थ की अपेक्षा केवली अर्थ भी होता है तो भी नवकार मंत्र, लोगस्स और णमोत्थुण आदि पाठों में अरिहंत शब्द मात्र तीर्थंकर की अपेक्षा ही हैं, इसमें किंचित भी सन्देह को स्थान नहीं है। ठाणांगसूत्र में भी अनेक जगह शास्त्रकार ने एकान्त तीर्थंकर की अपेक्षा ही अरिहंत शब्द का प्रयोग किया है।

अरिहंत शब्द से केवली अर्थ मान्य होते हुए भी सर्व अरिहंत शब्द में केवली ग्रहण करना आगम आशय से विपरीत होगा क्योंकि नवकार मंत्र में सिद्धों से पहले प्रथम पद में अरिहंत को स्थान देने से लोगस्स में आगे 24 तीर्थकरों का ही नाम आया होने से और णमोत्थुणं में वर्णित गुण स्वरुप के तीर्थकरों में ही घटने वाले होने से नवकार मंत्र लोगस्स और णमोत्थुण में अरिहंत शब्द से केवल तीर्थंकर को ही लेना आगम सम्मत है। अतः इन स्थानों में केवली को लेना सर्वथा अनुचित है। पांच पदों की भाव वंदना के प्रथम पद में भी केवली नहीं समझना यह भी इससे स्वतः ही सिद्ध हो जाता है क्योंकि यह भाव वंदना नवकार मंत्र के पांच पदों का ही विस्तार है।

पहले पद की भाव वंदना के गुण भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। प्रतिक्रमण सूत्र में यों तो भाव वंदना खुद ही कुछ सैकड़ों वर्षो से प्रक्षिप्त है क्योंकि वह आगम का मूल पाठ है ही नहीं। और उसमें भी जो प्रथम पद में 2 क्रोड व 9 क्रोड केवली का पाठ है वह तो और भी बाद में स्वच्छंद मति से या भ्रम से प्रक्षिप्त किया गया है। इसका कारण यह है कि अनेक स्थलों से छपी प्रतिक्रमण की पुस्तकों में, इस विषय में मत-भेद देखने को मिलते हैं यथा- (1) गुजरात राजकोट से वि.सं. 2022 में (2) शाहपुरा से वि.सं. 1998 में (3) अजमेर से वि.सं. 2020/2024 में (4) धर्मदास जैन मित्र मण्डल रतलाम से वि.सं. 1993 में (5) धूलिया- अमोलक ऋषि जी म. सा. द्वारा वि.सं. 2008/2030 (6) गुलाबपुरा से दसवीं आवृत्ति वि.सं. 2033 में, इन छः प्रतियों में प्रथम पद में 2 क्रोड 9 क्रोड का पाठ नहीं है। इसके विपरित कई प्रतियों में अर्थात् (1) अजमेर (2) रतलाम (3) धूलिया (4) गुलाबपुरा इन चार प्रतियों में पांचवे पद में 2 क्रोड 9 क्रोड केवली पाठ भी विशेष रुप से स्पष्ट अलग कहा गया है। इस तरह मारवाड़, मालवा व महाराष्ट्र के ये उक्त प्रमाण देखने को मिले हैं। जिससे अनेक साधु और श्रावक भी (हुकम मुनि आदि संत और धींगड़मलजी, डोसीजी आदि श्रावक भी) प्रमाण रुप में है जिनको कि प्रथम पद में केवली का पाठ याद नहीं है।

सार यह है कि भाव वन्दना के अशुद्ध प्रचार से ही यह विषय कुछ असमंजस में पड़ा है किन्तु शास्त्रकार के अलग-अलग आशय को ध्यान में लेकर समझ लेने से समाधान हो सकता है कि नमस्कार मंत्र के प्रथम पद में तो तीर्थंकर ही है।

प्रश्न- केवल ज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है, उस ज्ञान वालों को आचार्य, उपाध्याय से पीछे अंतिम पद में बताना कै से योग्य हो सकता है।

उत्तर- पद व्यवस्था में मुख्य रुप से ज्ञान की अपेक्षा नहीं होती है। कार्यक्षेत्र, कार्य क्षमता आदि की मुख्यताः से पद व्यवस्था की जाती है। ज्ञान ज्यादा होते हुए भी किसी भी शारीरिक-क्षमता, अनुशासन-क्षमता, अध्यापन-क्षमता ज्यादा होवे ही, यह जरुरी नहीं हैं, और पद व्यवस्था तो जवाबदारी संभालने की अपेक्षा से और कार्यक्षमता की योग्यता की मुख्यता

से ही होती है। सिद्ध भगवान आत्मगुणों में बड़े होते हुए भी सांसारिक जीवों के उपकार रुप कार्य क्षेत्र में तीर्थंकर के महान् होने से उन्हें भी प्रथम पद में कहा गया है, तो भी सिद्धों का अपमान नहीं है और प्रथम पद हो जाने से भी सिद्धों से अरिहंत बड़े भी नहीं कहे जा सकते। क्योंकि वे भी सिद्धों को वन्दन करते हैं। श्री जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य में इस विषयक प्रश्न उठाकर उत्तर दिया है जिसमें उन्होंने भी तीर्थंकर को ही प्रथम पद में मान्य किया है। आचार्य, उपाध्याय अपने कार्य क्षेत्र में अपनी व्यवस्था चलाते है, फिर भी वे अपने से पूर्व दीक्षित पांचवें पद वाले साधुओं को बड़ा ही मानते एवं वंदन करते हैं।

समाज में मुखिया और पदाधिकारी अपनी अमुक योग्यताओं के कारण से बनाये जाते हैं। फिर भी वे अपने माता-पिता, बुजुर्गों व गुरुओं (अध्यापकों)को अपने से बड़ा समझ कर विनय करते हैं और अपने कार्यक्षेत्र में अपनी जिम्मेदारी, कर्त्तव्य को अधिकार पूर्वक निभाते हैं। एक संघ में चार-पांच व्यक्ति को पद दिया जाता है तो अन्य अनेक गुणवानों का अपमान नहीं हो जाता है। उस पदाधिकारी से भी अनेक विशिष्ट ज्ञानी, तपस्वी श्रावक भी होते ही हैं जो कई तो पद लेते नहीं हैं और कई पद देने के योग्य नहीं होते हैं। ज्ञान बढ़ जाने से पद बढ़ जाता हो ऐसा कोई नियम नहीं होता है। पद तो उस प्रकार की व्यवस्था से एवं कार्य क्षमता की योग्यता से प्राप्त होता है जो कि यथा-समय दिया व लिया जाता है।

तीसरे पद वाले को 2 ज्ञान हो और पांचवे पद वाले को तीसरा चौथा ज्ञान उत्पन्न हो जाय तो वह स्वतः आचार्यों का आचार्य नहीं हो जायगा। ज्यादा दीक्षा पर्याय वाला अल्पज्ञानी हो और कम दीक्षा पर्याय वाला कोई सर्व बहुश्रुत भी हो जाय तो भी ज्यादा ज्ञान से उसकी वन्दन व्यवस्था या विनय व्यवस्था नहीं पलटती है। किसी शिष्य को केवल ज्ञान हो जाय तो सामान्य ज्ञानी गुरु उसे वन्दना करना शुरु नहीं करेगा, वह केवली ही छद्मस्थ गुरु का विनय करेगा, यह बात आगम से सिद्ध है, **यथा-**

जहाहि अग्गि जलणं नमंसे, णाणाहुई मंत पयाभिसित्तं।
एरायरियं उवचिट्ठइज्जा, अणंतणाणोवगओवि संतो।। -दशवै अ.9 उ.1 गा.11

अनन्त ज्ञानी शिष्य भी गुरु का विनय करे यह इस गाथा में शास्त्रकार का स्पष्ट आशय है। अतः वन्दन व्यवहार और रत्नाधिकता में भी ज्ञानरत्न की मुख्यता नहीं होती है किन्तु चारित्र पर्याय की मुख्यता है। इसी प्रकार पंच परमेष्ठी पद क्रम में एकान्त ज्ञान गुणाधिकता की मुख्यता नहीं समझनी चाहिए किन्तु पद के प्रायोग्य कार्य क्षेत्र, क्षमता आदि गुणों की मुख्यता है। ऐसा समझना चाहिए। पांचवें पद वाले कई स्थविर आदि का क्षुत ज्ञान आचार्य उपाध्याय से भी विशाल हो सकता है। आत्मिक गुणों में भी 5 वे पद वाले आचार्य से बढ़ कर हो सकते हैं। भगवान के समय में गणधरों से भी धन्ना मुनि का नम्बर संयम गुणों में आगे हो गया था। फिर भी धन्ना मुनि पांचवें पद में थे और गौतम गणधर तीसरे पर में थे। अतः केवल ज्ञान प्राप्त हो जाने पर 5 वे पद वाले को पहले पद में नहीं गिनने से और पांचवें पद में ही गिनने से उसका कोई अपमान नहीं हो जाता है। ज्ञान वृद्धि और पद व्यवस्था संबंधी स्वरुप को गहरी दृष्टि से नहीं समझ कर केवल ऊपरी दृष्टि से सोचने के कारण से ही यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है परन्तु ज्ञान वृद्धि और पद व्यवस्था इन दोनों के वास्तविक स्वरुप

एवं संबंध को समझ लेने से व दशवैकालिक की उपरोक्त गाथा के अर्थ भाव को समझ लेने से इस प्रश्नोक्त शंका का समाधान हो सकता है।

''**चउसरण पइण्णा**'' नामक सूत्र में साहू सरण में केवली का स्वरुप स्पष्ट किया है। किन्तु ''अरिहन्त शरणं'' के विस्तार में केवल तीर्थंकर संबंधी वर्णन ही किया है। केवली का कथन उसमें नहीं किया है। इस सूत्र का नाम नन्दी सूत्र में उत्कालिक सूत्रों को सूची में गिनाया गया हैं एवं यह सूत्र एक पूर्वधारी के द्वारा रचित शास्त्र है।

पंच परमेष्ठी के स्तवनों में वर्तमान युगों के रचनाकार भी प्रथम पद में तीर्थंकर को ही लक्ष्य में रखकर अपनी रचना करते हैं यथा- 1. मनाऊँ मैं तो श्री अरिहंत महंत-युग प्रधान आचार्य माधव मुनि, 2. भविक जन नित जपिये-अज्ञात मुनि, 3. एक सौ आठ बार परमेष्टी-पारसमुनि-गीतार्थ, 4. आनन्द मंगल करु आरती-विनयचन्द मुनि, 5. नित वन्दू सौ सौ बार पंच परमेष्ठी को-समर्थ शिष्य रतनमुनि, 6. घणो है सुखकारी या परमेष्ठी को जाप बहुश्रुत श्रमण श्रेष्ठ।

सारांश यही है कि पंच परमेष्ठी के णमों अरिहांताणं में तीर्थंकर का ही ग्रहण है। अन्यत्र जहां उपयुक्त हो वहां अरिहंत शब्द से केवली अर्थ भी समझ सकते हैं।

इसी प्रकार लोगस्स एवं णमोत्थुणं के पाठ में भी अरिहंत या जिन शब्द से तीथकर ही समझना चाहिये।

अतः जहां कभी भी अरिहंत शब्द केवल तीर्थंकर की अपेक्षा से हो, वहां केवली होने का अर्थ करना असत्य आग्रह है, ऐसा समझ कर उसे छोड़ देना चाहिए।

तदनुसार पांच पद की भाव वन्दना के प्रथम पद में सामान्य केवली को नहीं बोल कर पांचवें पद में बोलना एवं समझना ही सत्य ग्रहण करना है। आशा है जिज्ञासु ज्ञानी सरलात्माएं सही तत्त्व समझ कर हृदयंगम करेंगे।

समवायांग सूत्र

यह चौथा अंग सूत्र है। ठाणांग सूत्र के समान यह भी संख्याबद्ध विषय संकलन सूत्र है। अतः इसका परिचय स्थानांग सूत्र के समान ही समझना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थानांग में एक से दस संख्या तक में अनेक विषयों का विशाल संग्रह है, किन्तु इस सूत्र में एक से सौ संख्या तक क्रम बद्ध वर्णन है, बाद में अनेक संख्या वृद्धि करते हुए वर्णन है। तदनन्तर बारह अंग सूत्रों का परिचय वर्णन है और अंत में अनेक प्रकीर्णक विषयों के साथ तीर्थंकर आदि का विस्तृत परिचयात्मक संकलन हैं

स्थानांग के अध्ययनों का नाम 'ठाणा' (स्थान) कहा गया है और समवायांग के विभागों का नाम 'समवाय' कहा गया है।

समवायांग के इन विभागों में स्थानांग जितना विशाल संकलन नहीं है। इसका कारण यह है कि संख्या संबंधी अधिकांश विषयों का संकलन ठाणांग सूत्र में कर दिया गया है।

अल्प विषयों के इस संकलन में कुछ विषय स्थानांग से विशेष भी दिए गए हैं तो भी अनेक विषयों का इसमें पुनः संकलन हुआ है।

इस प्रकार इस सूत्र में भी संख्या के आलंबन से स्थानांग के समान ही तत्त्वों का, आचारों का, क्षेत्र, उम्र, जीवों, अजीवों एवं अनेक परिणामों आदि प्रकीर्णक विषयों का संकलन है, एवं अंत में संख्या का आलंबन छोड़ कर अनेक प्रकीर्णक विषय भी हैं।

प्रथम समवाय का सारांश-

1. द्रव्यार्थिक संग्रह नय की अपेक्षा यहां आत्मा आदि को एक संख्या में कहा गया है। आत्मा-अनात्मा, दंड, अदंड, क्रिया अक्रिया, पुण्य पाप, आश्रव-संवर आदि पक्ष-प्रतिपक्ष के तत्त्वों को एक संख्या में कहा गया है।

2. नरक, भवनपति, व्यंतर आदि की एक पल्योपम और एक सागरोपम की स्थिति कही है।

3. प्रथम-द्वितीय देवलोक गत सागर, सुसागर, मनु, मानुषोत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले देवों की एक सागरोपम की स्थिति होती है। वे एक पक्ष से श्वासोश्वास लेते है।

4. कितनेक भवसिद्धिक जीव एक मनुष्य का भव करके मोक्ष जाएंगे। अन्य भी यान विमान, जम्बूद्वीप, नक्षत्र तारे आदि का कथन है।

दूसरे समवाय का सारांश-

1. दो की संख्या से संबंधित दंड, राशि, बंधन, नक्षत्र-तारे स्थितियों आदि का वर्णन है।

2. शुभ, शुभकं त, सौधर्मावतंसक आदि विशिष्ट विमानों के देवों की दो सागरोपम की स्थिति होती है।

3. कितनेक भवसिद्धक दो भव करके मोक्ष जाएंगे।

तीसरे समवाय का सारांश-

1. दंड, गर्व, शल्य गुप्ति, विराधना के तीन-तीन प्रकार है।

2. नक्षत्रों के तीन तीन तारे, तीन पल्योपम और तीन सागरोपम की स्थिति कहते हुए तीसरे चौथे देवलोक के विशिष्ट विमान-आभंकर प्रभंकर चंद्र, चंद्रावर्त्त आदि में देवों की तीन सागरोपम की स्थिति कही गई है।

3. कितनेक भवसिद्धिक जीव तीन भव करके सिद्ध होंगे।

चौथे से दसवें समवाय का सारांश-

1. एक योजन में चार कोश (गाऊ) होते हैं।

2. कषाय, ध्यान, विकथा आदि चार-चार बोल हैं।

3. नक्षत्रों के तारे, पल्योपम, सागरोपम की स्थितिएं उतने ही पक्षों से श्वासोश्वास, विशिष्ट विमान की स्थिति और भवसिद्धिक के भव इत्यादि चार से लेकर दस की संख्या तक से कहे गए हैं।

4. मिथ्यात्वादि पांच आश्रव है, सम्यक्त्वादि पांच संवर है, प्राणातिपात विरमणादि पांच निर्जरा स्थान है, पांच अस्तिकाय है।

5. पांच क्रिया, महाव्रत, समिति एवं काम गुण है।

6. लेश्या, काया, आभ्यंतर तप, बाह्य तप, छद्‌मस्थिक समुदघात, अर्थावग्रह, छः हैं।

7. भय, समुद्‌घात, जम्बूद्वीप में वर्षधर पर्वत और क्षेत्र सात-सात हैं।

8. मद, समिति, व्यंतरों के चैत्य वृक्ष, जम्बूद्वीप की जगती की ऊंचाई योजन केवली समुद्‌घात के समय आदि आठ-आठ हैं।

9. ब्रह्मचर्य की वाड, आचारांग के अध्ययन, नक्षत्र-योग आदि नव नव के कथन हैं। ज्योतिषी तारा विमान उत्कृष्ट 900 योजन तक ऊंचे हैं। व्यंतरों की सुधर्मा-सभा नव योजन की ऊंची है।

10. श्रमण धर्म-क्षमा आदि, चित्तसमाधि स्थान, ज्ञान वृद्धि करने वाले नक्षत्र, युगलिक क्षेत्रों के वृक्ष आदि दस-दस है। नेमिनाथ भगवान, कृष्ण और बलराम दस धनुष के ऊंचे थे।

ग्यारहवें से बीसवें समवाय का सारांश-

1. श्रावक पडिमा ग्यारह है। गणधर इन्द्रभूति आदि ग्यारह हैं। मेरू से ज्योतिषी का अंतर 1121 योजन हैं और लोकांत से 1111 योजन का अंतर है।

स्थिति 11 से 20 पल्योपम की, सागरोपम की, उतने पक्ष से श्वासोश्वास, विशिष्ट विमान स्थिति और भवसिद्धिक मोक्ष का कथन इन सभी समवायों में है।

2. भिक्षु प्रतिमा बारह हैं।

3. साधुओं के पारस्परिक व्यवहार (संभोग बारह है- 1. उपधि देना, 2. श्रुत देना, 3. आहार-पानी साथ करना, 4. हाथ जोड़ना, 5. आहार आदि देना एवं 6. निमंत्रण करना, 7. विनय हेतु खड़े होना, 8. विधि से वंदन करना, 9. सेवा करना, 10. एक स्थान- उपाश्रय में रहना, 11. एक आसन पाट पर बैठना, 12. एक साथ व्याख्यान देना)

जिनके साथ ये 12 संभोग-पारस्परिक होते हैं वे एक होते हैं कहे जाते हैं। आहार एक साथ एक मांडलिक करना जिनके साथ न हो वे 'असांभोगिक साधु' कहे जाते हैं।

जिन साधुओं की समान समाचारी है, आदेश-निर्देश-नेतृत्व एक होता है। उनका आहार एक मांडलिक (सम्मिलित आहार) होता है।

जिन साधुओं की समाचारी भिन्न होती हैं आदेश-निर्देश-नेतृत्व भिन्न होता है वे परस्पर असांभोगिक या अन्यसांभोगिक श्रमण कहे जाते हैं। उनका आहार पानी सम्मिलित नहीं होता है एवं सम्मिलित आहार के अतिरिक्त ग्यारह व्यवहार उन शुद्धाचारी श्रमण समुदाय के साथ रखे जाते हैं।

अशुद्धाचारी-शिथिलाचारी श्रमण समुदाय के साथ एवं भिन्न लिंगी जैन साधुओं के साथ इन ग्यारह व्यवहारों में से क्षेत्र काल के योग्य कोई भी सभ्य व्यवहार रखा जा सकता है।

4. कृति कर्म का अर्थ है- विधिपूर्वक उत्कृष्ट वंदन। इसमें दो बार खमासमणा के पाठ से वंदन किया जाता है। जिसमें 12 आवर्त्तन होते हैं, 4 बार शिर झुकाना (तीन-तीन आवर्त्तन के बाद एक बार), 2 बार नमन (नमस्कार), 'अणुजाणाह में मिंउग्गहं', उच्चारण के साथ, 2 बार प्रवेश- (बैठना)1 बार निकलना (खड़े होना), 1 उकडू आसन, 3 गुप्ति से गुप्त होना, ये 25 वंदना के अंग हैं। यह उत्कृष्ट वंदन प्रतिक्रमण के समय ही किया जाता है। शेष समय में तीन आवर्तन युक्त वंदन करने का ही वर्णन आगमों में जगह-जगह आता है। तीर्थंकरों एवं साधुओं को प्रतिक्रमण के अतिरिक्त समय में तीन आवर्त्तन (प्रदक्षिणा) से वंदन करना चाहिए। वर्त्तमान में नव आवर्त्तन की परम्परा भी प्रचलित है। उसके लिए आगमाधार नहीं हैं।

5. कृष्णजी के भाई बलराम जी की उम्र 1200 वर्ष की थी।

6. छोटा से छोटा दिन या रात 12 मुहूर्त का होता है अर्थात् 9 घंटे 36 मिनट। (भरत क्षेत्र के प्रथम खंड के मध्य केन्द्र स्थान की अपेक्षा यह काल मान है ऐसा समझना चाहिए। अन्यत्र इससे भी छोटा दिन होना संभव है।)

7. सर्वार्थ सिद्ध विमान से सिद्ध शिला 12 योजन ऊपर हैं। उसके 12 नाम हैं।

8. तेरह क्रिया स्थान हैं, प्रथम देवलोक में तेरह पाथडा (प्रस्तट) है। तिर्यंच में 13 योग होते हैं।

9. कुल कोडी, पूर्व, सूर्यमण्डल आदि के 13 की संख्या से कथन है।

10. जीव के 14 भेद, 14 पूर्व, 14 गुणस्थान, 14 चक्रवर्ती के रत्न होते हैं। भगवान महावीर के 14 हजार साधु सम्पदा थी। जंबूद्वीप में चौदह बड़ी नदियां हैं जो लवण समुद्र में मिलती हैं।

11. परमाधामी देव की 15 जाति है। ध्रुवराहु सदा चंद्र के साथ रहता है। मनुष्यों के 15 योग होते हैं। नक्षत्र योग, दिवस मान, पूर्ववस्तु संख्या आदि 15-15 हैं।

12. सौलह कषाय हैं। सूत्रकृ तांग के सौलह अध्ययन है। मेरु के 16 नाम हैं। पार्श्वनाथ भगवान के 16 हजार साधु सम्पदा थी। लवण समुद्र का पानी समभूमि से 16 हजार योजन ऊंचा है।

13. सत्रह प्रकार का संयम और असंयम है। लवण समुद्र पार करने वाले जंघाचारण आदि को 17 हजार योजन ऊपर उड़ना पड़ता है।

पर्वतों की ऊंचाई, उत्पात पर्वत, तिगिच्छकूट, कर्मप्रकृति बंध आदि 17 की संख्या से वर्णन है।

14. सत्रह प्रकार के कुल मरण कहे हैं- 1. आवीचि मरण (समय-समय मरणा), 2. अवधिमरण, 3. आत्यंतिक मरण (फिर उस स्थान में नहीं जन्मना), 4. गला मोड़ कर दबा कर मरना, 5. दुःख से हाय त्राय करते मरना, अथवा वियोग संयोग के निमित्त छाती माथा कूट कर मरना, 6. तीर भाला आदि चुभाकर मरना, 7. काशी करवत लेना, 8. बाल मरण, 9. पंडित मरण, 10. बाल पंडित मरण, 11. छद्मस्थ मरण, 12. केवली मरण, 13. फांसी लगाकर मरना, 14. गृद्ध आदि से खाये जाकर मरना, 15. भक्तप्रत्याख्यान अनशन, 16. इंगिनी मरण अनशन, 17. पादपोपगमन अनशन।

15. 18 प्रकार का ब्रह्मचर्य (देव संबंधी और मनुष्य संबंधी) है। 18 संयम स्थान है। 18 लिपियां हैं। बड़े से बड़े दिन रात 18 मुहूर्त के होते हैं। (मध्य भरत क्षेत्र की अपेक्षा) पूर्व वस्तु, सूत्र पद, नरक पृथ्वी पिंड आदि 18 संख्या से कहे गए हैं।

16. ज्ञाता सूत्र के 19 अध्ययन हैं। सूर्य उत्कृष्ट 19 सौ योजन ऊपर नीचे तपता है। 19 तीर्थंकरों ने राज्य करने के बाद दीक्षा ली।

17. बीस संयम के असमाधि स्थान है अर्थात् सामान्य दोष हैं। 20 कोडाकोडी सागरोपम का कालचक्र होता है। सभी नरक पृथ्वी पिंड के नीचे घनोदधि 20 हजार योजन की है।

इक्कीस से तैंतीस समवायों का सारांश-

1. इक्कीस संग्रम के सबल दोष है अर्थात् प्रबल दोष है। इनमें संयम की अत्यधिक विराधना होती है।

2. चरित्र मोहनीय की (अर्थात् चरित्र की बाधक) 21 प्रकृतियां है।

3. उत्सर्पिणी काल का पहला दूसरा आरा और अवसर्पिणी काल का पांचवां छठा आरा 21 हजार वर्ष का होता है।

4. इक्कीस पल्योपम सागरोपम की नारक देव की स्थिति, इक्कीस पक्ष से श्वासोश्वास, 21 सागरोपम से 33 सागरोपम तक की स्थिति के विशिष्ट विमान एवं 21 से 33 भव करके मोक्ष जाने वालों का वर्णन इन समवायों में है।

5. बाईस परीषह, बाईस पुद्गल परिणाम हैं जिसमें- बीस वर्णादि, 21वां अगुरु लघु स्पर्श, 22वां गुरु लघु स्पर्श।

6. सूत्रकृतांग दोनों श्रुतस्कंध के 23 अध्ययन हैं। तेबीस तीर्थंकरों को पूर्वाह्न में केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था। तेबीस तीर्थंकर पूर्व भव में ग्यारह अंग के ज्ञाता थे। ऋषभदेव स्वामी चौदह पूर्वी थे। तेबीस तीर्थंकर पूर्व भव में मांडलिक राजा थे। प्रथम तीर्थंकर पूर्व भव में चक्रवर्ती थे।

7. 24 तीर्थंकर हैं। 24 देव स्थान है यथा- 10 भवनपति, 8 व्यंतर, 5 ज्योतिष, 1 वैमानिक।

8. सूर्य प्रथम मण्डल में होता है तब 24 अंगुल की पोरिषी छाया होती है।

9. जीवा, नदी प्रवाह-विस्तार 24 की संख्या से कहे गए हैं।

10. पांच महाव्रत की 25 भावनाएं हैं।

11. आचारांग सूत्र के कु ल 25 अध्ययन हैं।

12. तीन छेद सूत्र (दशा-कप्प व्यवहार) के 26 उद्देश्य हैं।

13. साधु के 27 गुण कहे गए हैं - नक्षत्र मास 27 दिन का होता है।

14. प्रायश्चित आरोपण रूप आधार प्रकल्प 28 हैं। यहां प्रतियों में पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है और व्याख्याकारों ने भी इसका कोई ऊहापोह नहीं किया है। वास्तव में पांच रात्रि के प्रायश्चित से प्रारम्भ कर एक मास तक 6 विकल्प और चारों मास तक 24 विकल्प कहने चाहिए। यही प्रायश्चित की विधि भाष्यादि से भी सिद्ध है।

15. मतिज्ञान के अवग्रहादि 28 भेद हैं। मोहनीय कर्म के 28 भेद हैं।

16. 29 पाप सूत्र हैं। आषाढ़ आदि 4 महीने 29 दिन के होते हैं।

17. तीस मोहनीय (महामोहनीय) कर्म बंध के स्थान हैं।

18. एक दिन के 30 मुहूर्त होते हैं। इनके 30 अलग-अलग नाम हैं।

19. तेबीसवें चौबीसवें तीर्थंकर 30 वर्ष गृहवास में रहे।

20. सिद्धों के 31 गुण हैं।

21. अंतिम मंडल में सूर्य का चक्षुस्पर्श 31831 $\frac{30}{61}$ योजन होता है।

22. 32 योग संग्रह हैं इनके आचरण से संयम की आराधना सुचारू रूप से सम्पन्न होती है।

23. बत्तीस प्रकार के नाटक कहे गए हैं। रेवती नक्षत्र के 32 तारे हैं।

24. गुरु की तैंतीस आशातनाएं होती हैं।

25. चमरचंचा राजधानी के एक द्वार की द्वार शाखा पर 33-33 भवन हैं।

इसके अतिरिक्त विमानावास, नरकावास का विस्तार, कर्म प्रकृति के भेद या बंध तीर्थंकर आदि की अवगाहना आदि, पूर्वों की वस्तु संख्या आदि विषय भी यथास्थान समवायों मे है।

चौंतीस से सित्तर समवाय तक का सारांश-

1. तीर्थंकर के चौंतीस अतिशय- 1. केश, मूछ रोम नख का मर्यादित ही बढ़ना, फिर नहीं बढ़ना, 2. रोग रहित शरीर एवं निरूपलेप निर्मल देह 3. रक्त-मांस सफेद, 4. श्वासोच्छवास सुगन्धी, 5. आहार निहार अदृश्य प्रच्छन्न, 6. चक्र, 7. छत्र, 8. चमर, 9. सिंहासन, 10. इन्द्र ध्वज, 11. अशोक वृक्ष, 12. भामंडल, 13. विहार में समभूमि, 14. कांटो का अधोमुख होना, 15. ऋतु प्रकृ ति का शरीर के अनुकूल होना। 16. एक योजन भूमि प्रमार्जन, 17. जलसींचन, 18. पुष्पोपचार, 19. अमनोज्ञ शब्दादि का अपहार, 20. मनोज्ञ का प्रादुर्भाव, 21. योजन गामी स्वर, 22. एक भाषा में धर्मोपदेश, 23. जीवों की अपनी-अपनी भाषा में परिणमन, 24. देव मनुष्य जानवर सभी वैर भूल कर धर्म श्रवण, 25. अन्य तीर्थिकों द्वारा वंदन, 26. निरुत्तर होना, 27. 25 योजन तक उपद्रव शांति, 28. मरि-मारी आदि बीमारी नहीं होती। 29. स्वचक्र का भय रहित, 30. परचक्र का भय रहित। 31. अतिवृष्टि नहीं होती, 32. अनावृष्टि नहीं होती। 33. दुर्भिक्ष दुष्काल नहीं होता। 34. पूर्वोत्पन्न व्याधि उपद्रव की शांति।

2. जंबूद्वीप में चक्रवर्ती विजय, वैताढय पर्वत, उत्कृ ष्ट तीर्थंकर 34-34 होते हैं। चमरेन्द्र के चौंतीस लाख भवनावास है।

3. तीर्थंकर के पैंतीस सत्यवचनातिशय होते हैं यथा- 1 से 7. शब्द सौदर्य के अतिशय हैं। 8. महान अर्थ वाले वचन, 9. पूर्वा पर विरोधी, 10. शिष्ट वचन, 11. असंदिग्ध, 12. दूषण निवारक, 13. हृदयग्राही, 14. अवसरोचित, 15. विवक्षित तत्त्व के अनुरूप, 16. निरर्थक विस्तार रहित, 17. परस्पर अपेक्षित वाक्य, 18. शालीनता सूचक, 19. मिष्ट वचन, 20. मर्म रहित, 21. अर्थ धर्म के अनुकूल, 22. उदारता युक्त, 23. परनिंदा स्वप्रशंसा रहित, 24. प्रशंसनीय वचन, 25 व्याकरण दोषों से रहित, 26. कौतुहल युक्त आकर्षण वाले, 27. अद्‌भुत वचन, 28. धारा प्रवाही, 29. मन विक्षेप, रोष भय आदि से रहित, 30. अनेक प्रकार से कथन करने वाले, 31. विशेष वचन, 32. साकार, 33. साहस पूर्ण 34. खेद रहित 35. विवक्षित अर्थ की सिद्धि करने वाले।

4. कुंथुनाथ तीर्थंकर, दत्त वासुदेव, नंदन बलदेव 35 धनुष के ऊंचे थे।

5. उत्तराध्ययन के 36 अध्ययन हैं, भगवान महावीर के 36 हजार साध्वियां थीं।

6. कुंथुनाथ भगवान के 37-37 गण और गणधर थे।

7. पार्श्वनाथ भगवान के 38 हजार साध्वियां थीं।

8. क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति सूत्र के प्रथम वर्ग के 37, द्वितीय वर्ग के 38 उद्देश्क हैं।

9. तीर्थंकर सम्बंधी कथन, पर्वत, पोरिषी, दया, भवनावास, नरकावास, पर्वतों का विस्तार आदि वर्णन इन समवायों में है।

10. नाम कर्म की 42 प्रकृ तियां हैं। कालोदधि समुद्र में 42 सूर्य 42 चंद्र हैं।

11. महत् विमान प्रविभक्ति सूत्र के प्रथम वर्ग के 41, द्वितीय वर्ग के 42, तीसरे वर्ग के 43, चौथे वर्ग के 44, पांचवें वर्ग के 45 उद्देश्क हैं।

12. ऋषिभाषित (सूत्र के) 44 अध्ययन हैं।

13. ब्राह्मी लिपि के 46 मातृका पद मूल अक्षर हैं।

14. चक्रवर्ती के 48 हजार पाटण होते हैं।

15. पंद्रहवें तीर्थंकर के 48 गणधर थे।

16. 49 दिन में युगलिये यौवन को प्राप्त हो जाते हैं तेइन्द्रिय की उत्कृष्ट उम्र 49 दिन की होती है। तिमिस्त्रगुफा और वैताढ्य पर्वत 50 योजन के हैं। गोस्थूभ आवास पर्वत के अंतर इन 42 से 52, 57, 58 समवायों में कहे हैं।

17. आचारांग के 9 अध्ययनों के 51 उद्देशक हैं।

18. मोहनीय कर्म के 52 नाम हैं।

19. भगवान महावीर के 53 साधु एक वर्ष की दीक्षा पालकर पांच अणुत्तर विमान में देव बने।

20. उत्तम पुरुष चौपन होते हैं। 24 + 12 + 9 + 9 = 54

21. एक दिन एक आसन से ही श्रमण भगवान महावीर ने 54 बार वागरणा उपदेश दिया, व्याख्यान किया।

22. श्रमण भगवान महावीर ने अंतिम दिन में 55-55 दुःख और सुख विपाक वाली धर्म कथा कही और मोक्ष गये।

23. निशीथ सूत्र आचारांग की चूलिका रूप अध्ययन है। उसको जोड़कर आचारांग के 25 अध्ययन कहे है (अर्थात् 'विमुक्ति' अध्ययन नहीं गिना जाता है इसलिए यह निशीथ सूत्र को अलग करने के बाद अध्ययन संख्या पूर्ति के लिए जोड़ा गया होना संभव लगता है।)

24. तिरेसठ दिन से युगलिक मनुष्य यौवन प्राप्त कर लेते हैं।

25. निषध पर्वत पर 63 सूर्योदय होते हैं।

26. दधिमुख पर्वत 64 हजार योजन के लंबे-चौड़े, ऊंचे हैं।

27. चक्रवर्ती के 64 लड़ा हार होता है।

28. श्रमण भगवान महावीर ने चौमासे के एक मास बीस दिन बीतने पर और सित्तर दिन शेष रहने पर पर्युषण किया।

29. पार्श्वनाथ तीर्थंकर की दीक्षा पर्याय सित्तर वर्ष की थी।

इकहत्तर से सौ समवाय तक का सारांश-

1. वीर्य प्रवाद पूर्व के 71 पाहुड़ अध्याय है।

2. पुरुष की 72 कला- 1. लेखन कला, 2. गणित, 3. चित्रकला, 4. नृत्य, 5. गीत, 6. वाद्य, 7. स्वर-राग, 8. मृदंग ज्ञान, 9. समताल बजाना, 10. द्यूत कला, 11. किंवदंतिएं जानना, 12. शीघ्र कवित्व, 13. शतरंज, 14. जलशोधन, 15. अन्न संस्कार, 16. जल संस्कार, 17-18. गृह शय्या निर्माण, 19. आर्य छंद बनाना, 20. पहेली, 21. मागधिका छंद, 22. गाथा, 23. श्लोक, 24. सुगंधित करने की कला, 25. मोम प्रयोग कला, 26. अलंकार बनाने पहनने की कला, 27. तरुणी प्रसाधन कला, 28. स्त्री लक्षण, 29-41. पुरुष घोड़ा, हाथी, बैल, कुर्कुट, मेढा के लक्षण तथा चक्र छत्र दंड, तलवार, मणि काकणि चर्म (रत्नों) के लक्षण। 42-45. चन्द्र सूर्य राहु ग्रह का विज्ञान, 46. सौभाग्य, 47. दुर्भाग्य जानने का ज्ञान, 48. रोहिणी प्रज्ञप्ति आदि विद्या, 49. मंत्र विज्ञान, 50. गुप्त वस्तुओं को जानने की कला, 51. वस्तुओं को प्रत्यक्ष जानने की कला, 52. ज्योतिष चक्रगति, 53. चिकित्सा विज्ञान, 54. व्यूह रचने की कला, 55. प्रतिव्यूह, 56. सैन्य माप, 57. नगर माप, 58. मकान माप, 59-61. सेना, नगर, मकान, को बनाने की कला, 62. दिव्यास्त्र ज्ञान, 63. खड्ग शास्त्र, 64. अश्व शिक्षा, 65. हस्ति शिक्षा, 66. धनुर्वेद, 67. चांदी सोना मणि धातु की सिद्धि की कला, 68. बाहु, दंड, मुष्टि, अस्थि आदि युद्ध कला, 69. क्रीड़ा, पासा, नालिका खेल, 70. पत्र-छेद कला, 71. धातु को सजीव, निर्जीव करने की कला और पुनः मौलिक रूप में लाना, 72. शकुन शास्त्र, ज्ञाता सूत्र, उववाई सूत्र, राजप्रश्नीय सूत्र, जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र आदि अन्य आगमों में भी ये 72 कलाएं हैं। कहीं-कहीं नाम और क्रम की भिन्नता है।

3. एक मुहूर्त में 77 लव होते हैं। अंग-वंश में 77 राजा परम्परा से दीक्षित हुए।

4. भगवती सूत्र के पिछले छह शतकों में (35-41) 81 महायुग्म कहे गए हैं। एकेन्द्रिय के 12, बेइन्द्रिय के 12, तेइन्द्रिय के 12, चौरेन्द्रिय के 12, असन्नि पंचेन्द्रिय के 12, सन्नि पंचेन्द्रिय के 21।

5. 82 दिन बीतने पर भगवान महावीर का गर्भ संहरण हुआ।

6. भरत चक्रवर्ती 83 लाख पूर्व गृहवास में रहकर केवली हुए।

7. भरत बाहुबली, ब्राह्मी सुन्दरी एवं ऋषभदेव भगवान की 84 लाख पूर्व की उम्र थी।

8. सभी बाह्य मेरु और सभी अंजन पर्वत चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं।

9. ऋषभदेव भगवान के चौरासी हजार प्रकीर्णक थे। चौरासी गणधर और चौरासी गण थे। चौरासी हजार की श्रमण सम्पदा थी।

10. चौरासी लाख जीव योनि है।

11. चार मेरु और रुचक मंडलिक पर्वत, पचासी हजार योजन सर्वाग्र वाले हैं।

12. इक्यानवें विनय वैयावृत्य के विकल्प है।

13. बानवें कुल पडिमाएं हैं। तिरानवें मंडल में सूर्य के आने पर समान दिन रात विषम होने लगते हैं।

14. चक्रवती के राज्य में 96 करोड़ ग्राम होते हैं।

15. दंड धनुष, युग नालिका, अक्ष, मूसल 96-96 अंगुल के होते हैं।

16. शतभिषक नक्षत्र के सौ तारे हैं।

17. पार्श्वनाथ, आर्य सुधर्मा के 100 वर्ष की उम्र थी।

18. सभी कांचनक पर्वत 100 योजन के ऊंचे हैं।

प्रकीर्णक समवायों का सारांश-

1. असुर कुमारों के प्रासाद 250 योजन के ऊंचे हैं।

2. वैमानिक देवों के विमानों के कोट तीन सौ योजन के ऊंचे हैं।

3. सभी वर्षधर पर्वतों के कूट 500 योजन के ऊंचे हैं। हरि हरिस्सह दो कू ट के अतिरिक्त वक्षस्कार पर्वतों के कूट भी 500 योजन के ऊंचे हैं।

4. बल कूट के अतिरिक्त नंदनवन के सभी कूट 500 योजन के ऊंचे हैं।

5. कुलकर अभिचंद्र 600 धनुष के ऊंचे थे। विमल वाहन 900 धनुष के थे।

6. भगवान महावीर के 700 केवली थे।

7. 800 योजन में व्यंतरों का भोमेय विहार है।

8. हरि, हरिस्सह और बल ये तीन कूट, सभी वृत वैताढ्य पर्वत, जमक पर्वत, चित्र विचित्र कूट एक हजार योजन के ऊंचे हैं।

9. अरिष्टनेमि भगवान 1000 वर्ष की उम्र में मोक्ष गए।

10. श्रमण भगवान महावीर ने पोट्टिल भव में एक करोड़ वर्ष संयम पालन किया।

बारह अंगों के परिचय का सारांश

आचारांग सूत्र-

1. इस सूत्र में श्रमण निर्ग्रंथ का आचार- गोचर विनय-व्यवहार, बैठना चलना खड़े रहना बोलना आदि प्रवर्त्तन समिति-गुप्ति, शय्या, उपधि, आहार-पानी की गवेषणा, उद्‌गम आदि दोषों की शुद्धाशुद्धि, व्रत-नियम, तप उपधान का वर्णन है।

2. वह साध्वाचार पांच प्रकार का है- 1. ज्ञानाचार-श्रुतज्ञान के अध्ययन का व्यवहार। 2. दर्शनाचार-सम्यक्त्वी का व्यवहार दृष्टिकोण। 3. चारित्राचार-समिति गुप्ति रुप व्यवहार। 4. तपाचार-बारह प्रकार के तप का अनुष्ठान। 5. वीर्याचार-ज्ञान के अर्जन में शक्ति का अगोपन अर्थात् यथाशक्ति पुरुषार्थ प्रयत्न वृद्धि।

3. 1. यह प्रथम अंग सूत्र है। 2. दो श्रुतस्कंध हैं, 3. पच्चीस 9+16 अध्ययन है, 4. पचासी 85 उद्देशक काल-पाठ देने के विभाग है 5. पचासी समुद्देशन काल (उन्हें ही सुनकर शुद्ध कंठस्थ कराना) हैं।

6. अठारह हजार पद (शब्द) है।

बारह ही अंग सूत्रों में-

1. इस सूत्र में परिमित (नियम) वाचनाएं (अर्थ समझाने के विभाग) हैं। संख्याता व्याख्या पद्धतिएं है, संख्याता मतमतांतर है, संख्याता वेष्टक अतिदेश (भलावण के पाठ) हैं, संख्याता श्लोक (परिमाण) है एवं गुरु परंपरा से प्राप्त व्याख्याएं भी संख्याता है।

2. संख्याता अक्षर, अनंत अर्थ अनंत पर्यायें, असंख्य त्रस एवं अनंत स्थावर के संरक्षक जिनप्रज्ञप्त भावों का सामान्य कथन, विशेष कथन, भेद-प्रभेद युक्त कथन, हेतु दृष्टांत युक्त कथन किया गया है एवं स्पष्ट समझाया गया हैं।

3. ऐसे सूत्र का अध्ययन करने वाले ''एवं आत्मा'' हो जाता है अर्थात् आचार मय हो जाता है, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है। इस प्रकार इस सूत्र में चरण (पांच महाव्रत दस यतिधर्म सत्तरह संयम) करण (समिति गुप्ति तप) का एवं उसकी सम्यक आराधना का वर्णन है।

नोट- इतना अंश (नं-4) सभी अंग सूत्रों के साथ में समझ लेना।

सूत्रकृतांग सूत्र-

1. इस सूत्र में स्वसमय-परसमय जीवाजीव लोकालोक का सूचन है। जीवादि नव तत्त्वों की 363 अन्य दृष्टियों की संक्षेप में सूचना की गई है। स्वसमय (जिनमत) की स्थापना की गई है।

2. अनेक दृष्टांत आदि के द्वारा कुसिद्धांतों की निस्सारता का सम्यक् प्रदर्शन किया गया है।

3. ये वर्णन मोक्ष पथ के अवतारक, उदार, अज्ञानांधकार को दूर करने वाले, सिद्धि रुप उत्तम प्रासाद के लिए सोपान (सीढ़िये-मार्ग के तुल्य) हैं।

4. यह दूसरा अंग सूत्र है दो श्रुत स्कंध है तेबीस (16+7) अध्ययन है। तेतीस उद्देशन काल, समुद्देशक काल है और छत्तीस हजार पद है।

ठाणांग सूत्र-

1. इस सूत्र में स्वसमय-परसमय, जीवाजीव, लोकालोक का वर्णन है। द्रव्य गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों वर्णन है।

2. इसमें पर्वत, छोटी-बड़ी, नदी-समुद्र, सूर्य, भवन, विमान, निधि पुरुषों के प्रकार, स्वर, गोत्र, ज्योतिष चक्र का संचरण आदि वर्णन किये गये हैं।

3. इस सूत्र में एक से लेकर इस तक की संख्या से जीव पुद्गल आदि लेकर गत पदार्थों धर्मों की प्ररुपणा की गई है।

4. यह तीसरा अंग सूत्र है एक श्रुतस्कंध है, दस अध्ययन हैं। इक्कीस उद्देशन समुद्देशन काल हैं, 72 हजार पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

समवायांग सूत्र-

1. इस सूत्र में स्वसमय-परसमय जीवाजीव लोकालोक का सूचन है। एक से लेकर क्रमशः सौ तक की संख्या से अनेक तत्त्वों का कथन है।

2. आगे बिना क्रम करोड़ की संख्या तक के विषयों का प्रमाण है। द्वादशांगी का सार-गर्भित विषय परिचय दिया गया है।

3. चार गति के जीवों का आहार, उच्छवास, लेश्या, आवासो की संख्या, लम्बाई- चौड़ाई, उपपात च्यवन, अवगाहना, अवधिज्ञान, वेदना, भेद, उपयोग, योग, इन्द्रिय और कषाय का वर्णन है।

विविध प्रकार की जीव योनियों, पर्वतों का विस्तार आदि कुलकर तीर्थंकर, गणधर, वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती का वर्णन है इत्यादि अन्य भी अनेक ऐसे विषयों का वर्णन है।

4. यह चौथा अंग सूत्र है, एक श्रुत स्कंध है, एक अध्ययन है, एक उद्देशक समुद्देशन काल है और एक लाख चौवालीस हजार पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

भगवती सूत्र-

1. इस सूत्र में स्वसमय-परसमय, जीवाजीव, लोकालोक का व्याख्यान है। इसका आगमिक नाम व्याख्या प्रज्ञप्ति है।

2. इसमें देव नरेन्द्र गणधर और राजर्षि आदि के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का भगवान महावीर के द्वारा दिये गये उत्तरों का प्रतिपादन किया गया है। ये प्रश्न एवं समाधान भव्य जनों के हृदय को आनंदित करने वाले हैं, अंधकार का नाश करने वाले है, दीप के समान प्रकाशन है एवं अर्थ बोध रुप गुण की प्राप्ति कराने के लिए सिद्धहस्त हैं।

3. यह पांचवां अंग सूत्र है, एक श्रुत स्कं ध है, सौ से अधिक अध्ययन हैं, (41 शतक हैं) दस हजार उद्देशक समुद्देशक है, छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर है, चौरासी हजार (दो लाख अठासी हजार) पद हैं।

नोट- यहां मूल पाठ में पद संख्या लिपि से अशुद्ध हो गई, ऐसा प्रतीत होता है।

क्योंकि 36 हजार प्रश्नोत्तर में 84 हजार पद का कथन सत्य नहीं हो सकता।

ज्ञाता धर्म कथा सूत्र-

1. इस सूत्र के प्रथम विभाग में उन्नीस दृष्टांत हैं जिसमें कुछ घटित है ,कुछ उपमा रुप है और कुछ कल्पित रुपक है।

द्वितीय विभागों में दस अध्ययन धर्म कथा युक्त है।

2. इसमें नगर, उद्यान, देवालय, वनखंड, राजा, माता-पिता, समवसरण (भगवान आदि का पदार्पण) धर्माचार्य, धर्म कथा, ऋद्धि, भोग, उनका त्याग, दीक्षा ग्रहण, श्रुतग्रहण, श्रुत निमित्तक तप एवं अन्य तपस्याएं दीक्षापर्याय संलेखना, आजीवन अनशन, देवलोक, गमन, पुनरागमन, बोधिलाभ एवं मुक्ति आदि विषयों का कथन है।

3. धर्म को प्राप्त कर उसमें च्युत होने एवं विराधना करने वालों के संसार भ्रमण के दुःख का आख्यान किया गया है, एवं धीर, वीर, कषायों और परीषहों पर विजय प्राप्त करने वाले संयम में उत्साही, आराधक जीवों के संसार सुख एंव मोक्ष प्राप्ति का प्ररुपण किया गया है।

4. इसमें संयम मार्ग से विचलित या अपरिपक्व मुनियों में धैर्य उत्पन्न करने वाले, बोध और अनुशासन भरने वाले तथा गुण और दोष का संदर्शन देने वाले दृष्टांतों का निरुपण किया गया है।

5. यह छठा अंग सूत्र है, दो श्रुत स्कं ध है उन्नतीस (19+10) अध्ययन है, द्वितीय श्रुतस्कंध में दस कथाओं के वर्ग है, उसमें साढ़े तीन करोड़ कथाएं समाविष्ट हैं। उन्नतीस उद्देशन काल हैं, संख्याता लाखों पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

उपासक दशा सूत्र-

1. इस सूत्र में दस श्रावकों का वर्णन है उसमें उन श्रावकों के नगर, उद्यान देवालय, वनखंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, श्रावकों की ऋद्धि, व्रत प्रत्याख्यान, पौषध, श्रुत ग्रहण, श्रुत का उपधान (तप) श्रावक प्रतिमा धारण, उपसर्ग, संलेखना, आजीवन अनशन, देवलोक, गमन, पुनरागमन, बोधिलाभ, भोगत्याग मोक्ष प्राप्ति इत्यादि विषयों का आख्यान किया गया है।

2. विस्तार से धर्म परिषद्, धर्म श्रवण, पांच अभिगम, सम्यक्त्व विशुद्धि, व्रतों के अतिचार, व्रत पर्याय, निवृत्त-साधना तपस्वी जीवन का शरीर आदि वर्णन है।

3. यह सातवां अंग सूत्र है, एक श्रुतस्कं ध है, दस अध्ययन है, दस ही उद्देशन समुद्देशन काल है, और संख्याता लाख पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

अंतकृत-दशा सूत्र-

1. इस सूत्र में वर्णित 90 जीवों (सभी जीवों) ने उसी भव में संयम तप का आराधन कर कर्मों का (संसार का) अंत कर दिया है।

2. इसमें उन जीवों के नगर आदि का वर्णन है। संयम ग्रहण, श्रुतग्रहण और उसके उपधान तप का वर्णन है। अनेक प्रकार की प्रतिमाएं क्षमा आदि यति धर्म, सत्तरह प्रकार का संयम, ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप, त्याग, समिति, गुप्ति, अप्रमत्त योग, स्वाध्याय, संयम पर्याय , केवल ज्ञान, परीषह, उपसर्ग आदि का आख्यान है।

3. यह आठवां अंगसूत्र है, एक श्रुतस्कंध है दस अध्ययन है आठ वर्ग है, दस उद्देशन समुद्देशन काल है, संख्याता लाख पद है।

नोट- यहां पर अध्ययन एवं वर्ग का पाठ भी लिपि दोष से अशुद्ध हो गया प्रतीत होता है। उपलब्ध सूत्र के आठ वर्ग और 90 अध्ययन है।

शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

अणुत्तरोपपातिक सूत्र-

1. अणुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले जीवों के नगर आदि एवं संयम ग्रहण, श्रुत ग्रहण, श्रुत का तप, संयम पर्याय, संलेखना, अनशन, अणुत्तर विमान में उत्पत्ति, पुनरागमन, बोधिलाभ, संयम पालन और अंतक्रिया का आख्यान किया गया है।

2. तीर्थंकर के समवसरण, अतिशय, गंधहस्ति के समान श्रेष्ठ परीषह विजेता यशस्वी एवं अनेक प्रशस्त गुणों से संयुक्त उनके शिष्य अणगार महर्षियों का वर्णन है। देवासुर मनुष्य परिषद का आना, उपासना करना, धर्म देशना, हलुकर्मी जीवों का संयम धर्म स्वीकार करना अनेक वर्षों तक संयम तप का पालन ज्ञान दर्शन चारित्र और अप्रमत्त योग, स्वाध्याय, ध्यान आदि का वर्णन है।

3. यह नवमां अंग सूत्र है, एक श्रुतस्कंध है, तीन वर्ग है, दस अध्ययन है, दस उद्देशन, समुद्देशन काल हैं, संख्याता लाख पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

प्रश्न व्याकरण सूत्र-

1. इस सूत्र में 108 प्रश्न विद्या है- यह विद्या देवाधिष्ठित ही होती है इसमें अंगुष्ठ आदि को देखकर शुभाशुभ फल का निर्देश किया जाता है।

2. 108 अप्रश्न विद्या है- यह मंत्र के विधिपूर्वक जाप करने पर सिद्ध होती है और बिना प्रश्न किए ही व्यक्ति को शुभाशुभ का निर्देश करती है।

3. 108 प्रश्नाप्रश्न विद्या है- यह अंगुष्ठ आदि के सद्भाव में या अभाव में भी शुभाशुभ का कथन करती है, निशीथ भाष्य चूर्णि में इसे स्वप्न विद्या कहा है अथवा विद्या से अभिमंत्रित घंटिका कानों के पास बजाई जाती है, तब देवता शुभाशुभ का कथन करते हैं। इसे इंखिनी विद्या भी कहते हैं। इसमें देवता, भूत, भविष्य की पृच्छा करने पर हानि, लाभ, जन्म, मरण आदि का भी कथन करते है।

4. इस प्रकार सैकड़ों विद्याओं स्तंभन, स्तोत्र, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषीकरण आदि (महाविद्याओं) वचन द्वारा पूछने पर ही उत्तर- देने वाली देवाधिष्ठित विद्या, मन प्रश्न विद्या- मन में उठे प्रश्नों का उत्तर देने वाली देवाधिष्ठित विद्या का वर्णन है।

5. नागकुमार और सुपर्ण कु मार देवों के दिव्य संवाद का आख्यान किया गया है। विविध अर्थों में प्रत्येक बुद्धों द्वारा भाषित, आचार्यों द्वारा विस्तार से कथित, वीर महर्षियों द्वारा विविध विस्तार से कथित जगत हितकर तत्त्व कहे गये है। दर्पण, अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, वस्त्र और सूर्य से संबंधित विद्याओं के अधिष्ठायक देवों की प्रमुखता से विस्मय करने वाली, तत्त्व का प्रत्यय कराने वाली विद्याओं के महान अर्थों का आख्यान किया गया है।

6. यह दसवां अंग सूत्र है, एक श्रुतस्कंध हैं, पेंतालीस अध्ययन है पेंतालीस उद्देशक समुद्देशन काल हैं और संख्यात लाख पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

विमर्श-

टीका चूर्णी भाष्य आदि व्याख्याकारों के पूर्व ही इस सूत्र का यह स्वरुप लुप्त हो चुका था या लुप्त कर दिया गया था। इसमें कहे गये ऋषि भाषित, अध्ययन प्रत्येक बुद्ध और आचार्य भाषित, अध्ययन, वर्तमान में ऋषि भाषित और उत्तराध्ययन नामक दो स्वतंत्र सूत्रों में उपलब्ध हैं। शेष सम्पूर्ण विद्याओं वाले अध्ययन अज्ञात में विलीन हो गये हैं।

वर्तमान में इस सूत्र में दो श्रुत स्कंध है, दस अध्ययन है और उनमें आश्रव, संवर, अशुभकर्म परिणाम, नरक दुःख एवं संयम विधियों, महाव्रतों का विस्तार से वर्णन है।

ठाणांगसूत्र में इसके दस अध्ययन कहे है और विषय वर्णन तो उपरोक्त विद्याओं युक्त ही कहा है। नंदी सूत्र में भी विषय वर्णन समवायांग के सदृश ही है किन्तु कुछ भिन्नता है।

इस प्रकार ठाणांग, समवायांग और नंदी सूत्र में कहे गये विषयों में भी कुछ भिन्नता है और वर्त्तमान में उपलब्ध सूत्र इन तीनों से पूर्ण ही भिन्न है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल (लेखनकाल के पूर्व सूत्र रचना या परिवर्तन संबंधी कोई भी इतिहास लिखने या सूचित करने की परम्परा नहीं थी) इतिहास संकलन की परम्परा देवर्द्धिगणी के लेखन समय से भी बहुत बाद में प्रारम्भ हुई होगी जिसका अधिक प्रवाह बारहवीं तेरहवीं विक्रम शताब्दि में हुआ है। अतः बहुत कुछ इतिहास मन कल्पित भी बनाया गया है इसी कारण इतिहासज्ञो के चिंतन में वे इतिहास अनेक विरोध से एवं असमंजसो से परिपूर्ण दिखाई देते हैं।

विपाक सूत्र-

1. इस सूत्र में सुकृत दुष्कृत कर्मों के फल विपाक का आख्यान किया गया है।

2. इसमें सुखपूर्वक मोक्ष जाने वाले एवं दुःख पूर्वक जीवन व्यतीत कर दुर्गति में जाने वाले जीवों के नगर आदि का वर्णन किया गया है।

3. दुःख विपाक में उन जीवों के हिंसादि पाप, महातीव्र, कषाय, इन्द्रिय प्रमाद, अशुभ अध्यवसाय से पाप बंध एवं उनका परिणाम स्वरुप नरकादि के दुःख एवं अवशेष दारुण कर्म फल मनुष्य भव में भोगने का वर्णन है।

अंगोपांगों के छेदन-भेदन, अग्नि से विविध प्रकार के कष्ट, हाथी आदि पशुओं द्वारा कष्ट, बांधना, पकाना, चमड़ी उधेड़ना आदि दारुण दुःखों का अख्यायन किया गया है।

4. सुख विपाक में उन जीवों के धर्माचार्य समवसरण, धर्म कथा ऋद्धि विशेष, भोग परित्याग संयम ग्रहण, श्रुत ग्रहण उसका उपधान, संयम पर्याय, संलेखना और आजीवन अनशन, देवलोक-गमन, पुनरागमन, बोधि लाभ, संयमाराधन, एवं मोक्ष प्राप्ति का आख्यान है।

शील, संयम, नियम, गुण, उपधान को धारण करने वाले सुविहित साधुओं को आदर सहित तीव्र शुभ अध्यवसयायों वाले व्यक्ति के द्वारा विशुद्ध आहार पानी देकर संसार परित्त करने का आख्यान है।

संसार परित्त करके देवायु बंध करने का, अनुपम-सुख प्राप्त करने का पुनः मनुष्य लोक में आकर आयु, शरीर, वर्ण, जाति, कुल, रुप, आरोग्य, बुद्धि और प्रशस्त प्राप्त करने का तथा मित्र स्वजन धन-धान्य, वैभव-समृद्धि आदि उत्तम सुख साधनों को प्राप्त करने का आख्यान है। अंत में भोगों का त्याग कर संयम धर्म स्वीकार करने एवं परम्परा से मुक्त होने का आख्यान किया गया है।

यह ग्यारहवां अंग सूत्र है। दो श्रुतस्कंध हैं, बीस अध्ययन है बीस उद्देशन समुद्देशन काल हैं और संख्यात लाख पद है।

नोट- शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

दृष्टिवाद अंग सूत्र-

इस सूत्र में सर्व भावों की प्ररुपणा की गई है। इसके पाँच विभाग है।

1. परिकर्म- जिस प्रकार गणित शास्त्र के अभ्यास के लिए जोड़-बाकी, गुणा, भाग आदि प्रारंम्भिक ज्ञान आवश्यक होता है वैसे ही दृष्टिवाद श्रुत के अध्ययन की योग्यता का प्रारम्भिक ज्ञान 'परिकर्म' है। इस परिकर्म के मूल भेद सात है और भेदानुभेद ८८ है।

2. सूत्र- इसके मूल विभाग बाईस है और उसके स्वमत, अन्य मत, विभिन्न नये विभाग प्ररुपण से कु ल ८८ सूत्र विभाग है।

3. पूर्व- इसके चौदह विभाग है उन्हें चौदह पूर्व कहते है उनके उत्पाद पूर्व कर्म प्रवाद पूर्व आदि 14 नाम है और पहला पूर्व दूसरा पूर्व आदि नौवा पूर्व दसवां पूर्व आदि नाम भी आगम में कहे जाते है। इन पूर्वों के विभाग उपविभाग भी है उन्हे वस्तु और चूलिका वस्तु कहा गया है। प्रथम के चार पूर्वों में चूलिका वस्तु है शेष में केवल वस्तु ही है।

क्र.	पूर्व के नाम	वस्तु	चूलिका वस्तु
1.	उत्पाद पूर्व	10	4
2.	अग्रेणीय पूर्व	14	12
3.	वीर्य-प्रवाद	8	8
4.	अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व	18	10
5.	ज्ञान प्रवाद पूर्व	12	-
6.	सत्य प्रवाद पूर्व	2	-
7.	आत्म प्रवाद पूर्व	16	-
8.	कर्म प्रवाद पूर्व	30	
9.	प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व	20	-
10.	विद्यानु प्रवाद पूर्व	15	-
11.	अवंध्य पूर्व	12	-
12.	प्राणायु पूर्व	13	-
13.	क्रिया विशाल पूर्व	30	-
14.	लोक बिंदुसार पूर्व	25	-

4. अनुयोग- इसके दो विभाग है- 1. मूल पढ़माणु और 2. गंडिकानुयोग।

प्रथम विभाग में तीर्थकरों के पूर्व भव एवं अंतिम भव का मुक्ति प्राप्ति तक का विस्तृत वर्णन होता है। शिष्यादि की विभिन्न संपदा का भी विस्तृत वर्णन होता है।

दूसरे विभाग में कुलकर, गणधर, चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव हरिवंश, भ्रद्रबाहु, तप, उत्सर्पिणी आदि की गंडिकाएं होती है।

गंडिका का अर्थ है समान वक्तव्यता के अर्थाधिकार का अनुसरण करने वाली वाक्य पद्धति-

चित्रांतर कंडिया में ऋषभ तथा अजितनाथ भगवान के अंतराल काल में हुए उनके वंशज राजाओं के संयम ग्रहण, देवलोक (अणुत्तर विमान) गमन आदि वर्णन है।

5. चुलिका- प्रथम चार पूर्वों में चूलिका है शेष में चूलिकाएं नहीं हैं। सूत्र में अनुक्त विशिष्ट चूलिका में कहा जाता है। पर्वत आदि के शीर्षस्थ स्थान को चूलिका कहा जाता है।

यह बारहवां अंग सूत्र है एक श्रुतस्कंध है, चौदह पूर्व है (225) दो सौ पच्चीस वस्तु है, चौतीस चूलिका वस्तु है, संख्याता प्राभृत्य है। संख्याता प्राभृत्य-प्राभृत्य है और संख्याता लाखों पद है।

नोट– शेष वर्णन आचारांग के समान हैं।

इस द्वादशांग रुप गणि पिटक की आराधना (श्रद्धा और आचरण) करने वाले संसार अटवी से पार हुए है होते है और होंगे एवं विराधना (अश्रद्धा और अशुद्ध आचरण) करने वाले संसार में भटके है भटकते हैं और भटकेंगे।

यह द्वादशांग गणिपिटक सदा शाश्वत है अर्थात् पांच महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से सभी आगम और नमस्कार मंत्र आदि शाश्वत है।

इसमें अनंत भाव अनंत अभाव है, अनंत हेतु-अहेतु, कारण-अकारण, जीव अजीव, भवसिद्धिक, सिद्ध-असिद्ध का आख्यान है एवं विस्तार से स्वरुप समझाया गया है।

प्रकीर्णक वर्णन का सारांश–

1. जीव और अजीव दो राशि है इनका विस्तार प्रज्ञापना सूत्र में देखें।

2. नरकों का पृथ्वी पिंड और नेरयिकों का रहने का क्षेत्र एवं कर्कश अशुभ आदि नरक वेदना का वर्णन किया गया है।

नरक क्रमांक	पृथ्वी पिंड (ऊपर से नीचे)	नरकावास
1.	एक लाख अस्सी हजार योजन	तीस लाख
2.	एक लाख बत्तीस हजार योजन	25 लाख
3.	एक लाख अट्ठाईस हजार योजन	15 लाख
4.	एक लाख बीस हजार योजन	10 लाख
5.	एक लाख अठारह हजार योजन	3 लाख
6.	एक लाख सोलह हजार योजन	99995
7.	एक लाख आठ हजार योजन	5

इन पृथ्वी पिंडों में ऊपर नीचे एक हजार योजन की ठीकरी (छत और भूमि) छोड़कर शेष 1 लाख 70 हजार आदि क्षेत्र में नरक के आंतरे और पाथड़ें है आंतरो का क्षेत्र हीनाधिक है और पाथड़े सभी तीन हजार योजन के होते है उनके मध्य के हजार योजन ऊंचाई वाले पोलार क्षेत्र में नैरयिक रहते हैं।

सातवीं नारकी की छत और भूमि (ठीकरी) साढ़े बावन हजार योजन की है अंतरा नहीं है और एक पाथड़ा तीन हजार योजन का है।

3. भवनपति- प्रथम नरक पृथ्वी पिंड के ऊपर से अर्थात् समभूमि से 40 हजार योजन जाने पर भवनपतियों के आवास है अर्थात् प्रथम नरक के तीसरे आंतरे में असुर कुमारों के आवास है और इस प्रकार क्रमशः बारहवें आंतरे में स्तनित कुमारों के आवास है।

1. असुर कुमारों के 64 लाख 2 नागकु मारों के 84 लाख

3. सुपर्ण कुमार 72 लाख 4 वायु कुमार 96 लाख

शेष छहों के 76-76 लाख भवनावास है।

4. पृथ्वीकाय से लेकर मनुष्य तक के असंख्य आवास स्थान है।

5. व्यंतर- प्रथम नरक पृथ्वी पिंड की ऊपर की एक हजार योजन की ठीकरी (छत और भूमि) के मध्य के आठ सौ योजन में व्यतंरों के असंख्य भोमेय नगर है।

6. ज्योतिषी- सम भूमि भाग से 790 योजन ऊपर 110 योजन क्षेत्र में अर्थात 900 योजन ऊंचे तक सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र तारा के विमान हैं। ये विमान सभी (पांचों के) असंख्य -असंख्य हैं।

7. वैमानिक- ज्योतिषी से असंख्य क्रोड़ा-क्रोड़ योजन ऊपर वैमानिक देवलोकों के 94 लाख 97 हजार 23 विमान है। वे इस प्रकार है।

बारह देवलोक में-	1. बत्तीस लाख	2. अट्ठाईस लाख	3. बारह लाख
	4. आठ लाख	5. चार लाख	6. पचास लाख
	7. चालीस लाख	8. छह हजार	9-10. चार सौ
	11-12. तीन सौ।		

नवग्रैवेयक में-

प्रथमत्रिक में- 111, दूसरी में-107, तीसरी में 100

अणुत्तर देवलोक में 5 विमानवास है।

8. शरीर पांच हैं विस्तृत प्रज्ञापना सूत्र पद इक्कीस में देखें। इसी प्रकार स्थिति भी।

9. आहारक शरीर ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत मनुष्य के ही होता है।

10. तेजस कार्मण शरीर की अवगाहना मारणंतिक समुद्घात की अपेक्षा कही जाती है।

11. अवधिज्ञान- क्षायोपशमिक और भव प्रत्ययिक दो प्रकार का होता है इत्यादि संपूर्ण वर्णन प्रज्ञापना पद 33 से जानना।

12. वेदना तीन प्रकार की होती है- शीत, उष्ण, शीतोष्ण इत्यादि वर्णन प्रज्ञापना सूत्र पद 35 से जानना।

13. इसी प्रकार लेश्या का वर्णन प्रज्ञापना पद 17 से जानना।

14. आयुष्य कर्म एक आकर्ष से बंधता है और उत्कृष्ट आठ आकर्ष से बंधता है।

15. आहार, संहनन, संस्थान, विरह, वेद का वर्णन दंडक विभाग से यथा स्थान प्रज्ञापनासूत्र से जानना।

16. कुलकर सात कहे गए हैं और दस भी कहे गए हैं- अतीत और आगामी उत्सर्पिणी में दस कुलकर कहे गए हैं और अवसर्पिणी में सात कहे हैं। वर्तमान अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए एवं उनके एक-एक भार्या स्त्री थी।

तीर्थंकर-

17. एक देव दूष्य वस्त्र लेकर सभी तीर्थंकर दीक्षित होते हैं अन्य कोई लिंग नहीं होता है।

18. प्रथम तीर्थंकर की दीक्षा नगरी विनीता है और बाईसवें तीर्थंकर की दीक्षा नगरी द्वारिका है शेष सभी तीर्थंकर अपनी जन्म नगरी में ही दीक्षित हुए।

19. दीक्षा परिवार- भगवान महावीर अकेले दीक्षित हुए। पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ तीन सौ पुरुषों के साथ, वासुपूज्य छह सौ, ऋषभदेव चार हजार और शेष उन्नीस तीर्थंकर एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए। सभी तीर्थंकरों की विशिष्ट दीक्षा शिविका होती है सूत्र में उसके नाम कहे हैं जिसे देव और मनुष्य उठाते हैं।

दीक्षा तप-

20. पांचवें तीर्थंकर- आहार करके, बारहवें-उपवास में, उन्नीसवें, तेईसवें-तेले में और शेष बीस तीर्थंकर बेले की तपस्या में दीक्षित हुए थे।

21. भिक्षा प्राप्ति- प्रथम तीर्थंकर को एक वर्ष बाद प्रथम भिक्षा मिली शेष सभी तीर्थंकरों को दीक्षा के दूसरे दिन भिक्षा प्राप्त हुई थी।

22. भिक्षा वस्तु- प्रथम तीर्थंकर को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला, शेष को खीर (परमान्न) की भिक्षा प्राप्त हुई थी।

23. सभी तीर्थंकरों के पारणे के समय पुरुष प्रमाण सोनैया की वृष्टि हुई।

24. प्रथम तीर्थंकर का चैत्यवृक्ष अर्थात् केवलज्ञान वृक्ष तीन कोश ऊंचा था अंतिम तीर्थंकर का 32 धनुष का (अशोक वृक्ष सहित साल वृक्ष) था। शेष तीर्थंकरों का अपनी अवगाहना से बारह गुना चैत्यवृक्ष था।

25. नवमें तीर्थंकर से पंद्रहवें तीर्थंकर के शासन में कालिक श्रुत का (शासन का) विच्छेद हुआ था। तीर्थ विच्छेद काल पाव पल्योपम या पौन पल्योपम का हुआ था। सभी तीर्थंकरों के शासन में दृष्टिवाद का विच्छेद होता है।

26. बलदेव- वासुदेवों के गुण ऋद्धि आदि का विस्तृत वर्णन है। इनके शरीर में एक सौ आठ शुभ लक्षण कहे हैं। इनके पूर्व भव, पूर्व भव के धर्माचार्य (दीक्षा गुरु), वासुदेवों की निदान भूमि एवं निदान कारणों का स्पष्ट उल्लेख है।

27. वासुदेवों के शत्रुरूप नौ चक्रधर प्रतिवासुदेव होते हैं। वे अपने ही चक्र से वासुदेव के द्वारा मारे जाते हैं। वासुदेव और प्रतिवासुदेव दोनों ही नरक में जाते हैं। आठ बलदेव मोक्ष में गए और एक (कृ ष्ण के भाई) पांचवें देवलोक में गए। दस चक्रवर्ती मोक्ष गए और दो चक्रवर्ती (आठवें, बारहवें) नरक में गए।

28. भारत क्षेत्र के भावी तीर्थंकर, उनके माता-पिता, पूर्वभव आदि तथा भावी चक्रवर्ती वासुदेव बलदेव आदि के भी वर्णन हैं।

29. ऐरावत क्षेत्र के वर्त्तमान तथा भावी तीर्थंकर का भी वर्णन है।

30. एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल में एक भरत क्षेत्र में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 बलदेव, 9 प्रतिवासुदेव होते हैं। एक महाविदेह क्षेत्र में 4 तीर्थंकर, 4 चक्रवर्ती, 4 वासुदेव, 4 बलदेव सदा मिलते हैं और उत्कृष्ट हो तो 32 तीर्थंकर, 28 चक्रवर्ती, 28 वासुदेव, 28 बलदेव हो सकते हैं। बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव तीनों समकाल में होते हैं। चक्रवर्ती इनसे भिन्न काल में होते हैं। बलदेव वासुदेव के पिता एक होते हैं माताएं भिन्न-भिन्न होती हैं।

31. सूत्र में तीर्थंकरों के माता-पिता, पूर्व भव, भिक्षा दाता, चैत्यवृक्ष, प्रथम शिष्य, प्रथम शिष्या इत्यादि नाम दिए गए हैं। तीर्थंकरों के वादी संख्या, अवधिज्ञानी, मनःपर्यव ज्ञानी, केवली एवं मोक्षगामी जीवों की संख्या अलग-अलग समवायों में कही गई है।

सूचना-

नोट- 1. ठाणांग समवायांग में संक्षेप में सूचित अनेक विषयों का स्पष्टीकरण अन्य आगमों (में जहां विस्तृत वर्णन है उस आगम) के सारांश में देखना चाहिए।

2. विमान द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदी, कूट, द्रह, आवास, नरकावास, पृथ्वीकांड, पाताल कलश, अवगाहना, स्थिति, ज्योतिष मंडल चार, अंतर आदि अनेक गणित विषयों का वर्णन है उनका स्पष्ट उल्लेख जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि सूत्रों के सारांश में यथा स्थान देखें।

सूत्र में आए अवशेष विषयों की तालिका-

क्र.	चक्रवर्ती का नाम	उम्र	शरीरमान	नगरी	समय
1.	भरत	84 लाख पूर्व	500 धनुष	विनिता	प्रथम तीर्थंकर के समय
2 .	सागर	7 लाख पूर्व	450 धनुष	अयोध्या	दूसरे तीर्थंकर के समय
3.	माधव	5 लाख वर्ष	$42\frac{1}{2}$ धनुष	श्रावस्ती	15वें के बाद
4.	सनत कुमार	3 लाख वर्ष	$41\frac{1}{2}$ धनुष	हस्तिनापुर	15वें के बाद
5.	शांतिनाथ	1 लाख वर्ष	40 धनुष	गजपुर	16वें तीर्थंकर थे
6.	कुंथुनाथ	95000 वर्ष	35 धुनुष	गजपुर	17वें तीर्थंकर थे
7.	अरहनाथ	84000 वर्ष	30 धनुष	गजपुर	18वें तीर्थंकर थे
8.	सुभूम	60,000 वर्ष	28 धनुष	हस्तिनापुर	18वें के बाद
9.	महापद्म	30,000 वर्ष	20 धनुष	बनारस	20वें के समय
10.	हरिषेण	10,000 वर्ष	15 धनुष	कंपिलपुर	21वें के समय
11.	जयषेण	3,000 वर्ष	12 धनुष	राजग्रही	21वें के बाद
12.	ब्रह्मदत्त	700 वर्ष	7 धनुष	कंपिलपुर	22वें के बाद

बलदेव-

क्र.	चक्रवर्ती का नाम	उम्र	शरीरमान	नगरी	समय
1.	अचल	85 लाख वर्ष	80 धनुष	पोतनपुर	11वें के समय
2.	विजय	75 लाख वर्ष	70 धनुष	द्वारिका	12वें के समय
3.	भद्र	65 लाख वर्ष	60 धनुष	बारावई	13वें के समय
4.	सुप्रभ	55 लाख वर्ष	50 धनुष	बारावई	14वें के समय
5.	सुदर्शन	17 लाख वर्ष	45 धनुष	अश्वपुर	15वें के समय
6.	आनंद	85,000 वर्ष	29 धनुष	चक्रपुर	18वें के बाद
7.	नंदन	65,000 वर्ष	26 धनुष	बनारस	18वें के बाद
8.	पद्म (रामचंद्र)	15,000 वर्ष	16 धनुष	राजग्रही	20वें के समय
9.	बलभद्र	1200 वर्ष	10 धनुष	मथुरा	22वें के समय

वासुदेव-

क्र	नाम	उम्र	गति	प्रतिवासुदेव
1.	त्रिपृष्ट	84 लाख वर्ष	सातवीं नरक	सुग्रीव
2.	द्विपृष्ट	72 लाख वर्ष	छठी नरक	तारक
3.	सयंभू	60 लाख वर्ष	छठी नरक	नेरक
4.	पुरुषोत्तम	30 लाख वर्ष	छठी नरक	मधुकैटभ
5.	पुरुषसिंह	10 लाख वर्ष	छठी नरक	निशुंभ
6.	पुरुषपुंडरीक	65,000 वर्ष	छठी नरक	वलिवति
7.	दत्त	59,000 वर्ष	पाचवीं नरक	प्रहलाद
8.	लक्ष्मण (नारायण)	12,000 वर्ष	चौथी नरक	रावण
9.	कृष्ण	1000 वर्ष	तीसरी नरक	जरासंध

सुभूम और ब्रह्मदत्त नरक में गए शेष चक्रवर्ती मोक्ष में गए।

बलभद्र-बलदेव पांचवें देवलोक में गए शेष बलदेव मोक्ष में गए। बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव तीनों की अवगाहना समान होती है। बलदेव और प्रतिवासुदेव की उम्र समान होती है। वासुदेव की उम्र छोटी होती है।

पांचवां, छठा, सातवां, चक्रवर्ती ही सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें तीर्थंकर हुए।

सूत्र में आए अवशेष विषयों की तालिका-

क्रसं.	तीर्थंकर नाम	शरीरमान धनुष	जन्मनगरी	गणधरगण	साधुसंपदा	मोक्ष परिवार
1.	ऋषभ	500	इक्ष्वाकु (विनीता)	84	84000	10000
2.	अजित	450	अयोध्या	95	1 लाख	1000
3.	संभव	400	श्रावस्ति	102	2 लाख	1000
4.	अभिनंदन	350	अयोध्या	116	3 लाख	1000
5.	सुमति	300	अयोध्या	100	3 लाख 20 हजार	1000
6.	पद्मप्रभ	250	कोशांबी	107	3 लाख 30 हजार	308
7.	सुपार्श्व	200	वाराणसी	95	3 लाख	500
8.	चंद्रप्रभ	150	चंद्रपुरी	93	250000	1000

9.	सुविधि	100	काकंदी	88	2 लाख	1000
10.	शीतल	90	भद्दिलपुर	81	1 लाख	1000
11.	श्रेयांस	80	सिंहपुर	76	84000	1000
12.	वासुपूज्य	70	चम्पा	66	72000	600
13.	विमल	60	कंपिलपुर	57	68000	6000
14.	अनंत	50	अयोध्या	50	66000	7000
15.	धर्म	45	रत्नपुर	43	64000	108
16.	शांति	40	गजपुर	36	62000	900
17.	कुंथु	35	गजपुर	35	60000	1000
18.	अर	30	गजपुर	33	50000	1000
19.	मल्लि	25	मिथिला	28	40000	500
20.	मुनिसुव्रत	20	राजगृही	18	30000	1000
21.	नमि	15	मिथिला	17	20000	1000
22.	अरिष्टनेमि	10	शौर्यपुर (द्वारिका)	11	18000	536
23.	पार्श्व	हाथ 9	वाराणसी	10	16000	33
24.	वर्धमान	हाथ 7	कुंडपुर	11 (9)	14000	एकाकी

तीर्थंकर क्रमांक	**उम्र**	**दीक्षा पर्याय**	**छद्मस्थ काल**
1.	84 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व	1000 वर्ष
2.	72 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व एक पूर्वांग कम	12 वर्ष
3.	60 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व चार पूर्वांग कम	14 वर्ष
4.	50 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व आठ पूर्वांग कम	18 वर्ष
5.	40 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व 12 पूर्वांग कम	20 वर्ष
6.	30 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व 16 पूर्वांग कम	6 मास
7.	20 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व 20 पूर्वांग कम	9 मास
8.	10 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व 24 पूर्वांग कम	3 मास

9.	02 लाख पूर्व	एक लाख पूर्व 28 पूर्वांग कम	4 मास
10.	01 लाख पूर्व	25 हजार पूर्व कम	3 मास
11.	84 लाख वर्ष	21 लाख वर्ष कम	2 मास
12.	72 लाख वर्ष	54 लाख वर्ष कम	1 मास
13.	60 लाख वर्ष	15 लाख वर्ष कम	2 मास
14.	30 लाख वर्ष	साढ़े सात लाख वर्ष	3 वर्ष
15.	10 लाख वर्ष	ढाई लाख वर्ष	2 वर्ष
16.	01 लाख वर्ष	25 हजार वर्ष	1 वर्ष
17.	95 हजार वर्ष	23750 वर्ष	16 वर्ष
18.	84 हजार वर्ष	21 हजार वर्ष	3 वर्ष
19.	55 हजार वर्ष	54900 वर्ष	1 अहोरात्र
20.	30 हजार वर्ष	7500 वर्ष	11 मास
21.	10 हजार वर्ष	2500 वर्ष	9 मास
22.	1 हजार वर्ष	700 वर्ष	54 दिन
23.	100 वर्ष	70 वर्ष	84 दिन
24.	72 वर्ष	42 वर्ष	साढ़े बारह वर्ष

जैन धर्म मोक्ष प्राप्ति का सच्चा और शुद्ध मार्ग है। ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप यह मोक्ष मार्ग है अर्थात् ये चार मोक्ष के उपाय हैं।

इन चारों को जैन धर्म का प्राण समझना चाहिए।

(1) **ज्ञान-** यद्यपि वर्तमान में सिंधु में बिंदु जितना ज्ञान शेष रहा है तथापि इतना जैन साहित्य उपलब्ध है कि आज के लिए मानव को पर्याप्त साधन है। कई संत-सतियां आगम अभ्यास चिंतन मनन और उसका प्रवचन विवेचन समाज को भिन्न-भिन्न रूप में देने में सतत् अनवरत प्रयत्नशील है। वे स्वयं भी पढ़ते हैं अन्य के लिए सरल साहित्य तैयार करते हैं। कंठस्थ करने में और वाचन करने में भी आगम प्रकाशन के निमित से साधु समाज व श्रावक समाज में जागृति मौजूद है। कई संत सतियों का श्रावक-श्राविकाओं का जीवन आगम वाचन में लगा हुआ है। जनता में अनेक तरह से स्वाध्याय की प्रेरणा और प्रवृत्ति चालू है। सैकड़ों धार्मिक पाठशालाएं, धार्मिक विभिन्न शिविर, धार्मिक पत्र-पत्रिकाएं, कथा साहित्य, प्रचारक मंडलों के भ्रमण चालू हैं। चारों ही तीर्थ जैन अजैन को यथायोग्य ज्ञान देने में पुरुषार्थरत हैं। साधु-साध्वी

के सिवाय सैकड़ों व्याख्याता श्रावक तैयार हुए हैं और जनता में जैन धर्म का प्रचार करते हैं। संत-संती भी भ्रमण कर धर्म प्रचार में ही बहुत समय का भोग देते हैं। यह जैन धर्म का ज्ञान प्राण है।

2. **दर्शन-** आज जिन शासन में अवधिज्ञानी नहीं, मनः पर्यवज्ञानी नहीं, केवल ज्ञानी नहीं पूर्वों के पाठी नहीं, कोई चमत्कारी विद्याएं लब्धियें भी नहीं, फिर भी जैन समाज की धर्म के प्रति श्रद्धा निष्ठा भक्ति भाव गुरुओं के प्रति आदर भक्ति भाव और आगमों के प्रति श्रद्धा भक्ति आज भी मौजुद है। प्राणों से भी प्रिय लगने वाली अपनी संपति को धर्म व गुरुओं के इशारे में ही लाखों की तादाद का ममत्व छोड़ देते हैं। कई पर्यूषण के दिनों में घर का त्याग कर समय का भोग देने को तत्पर है। कई निवृत्तिमय सेवा देने में तत्पर है। प्रायः सभी जैन फिरकों वाले अपने गुरुओं व धर्म के प्रति तनमन धन से बढ़ रहे हैं। संयम लेने में भी पीछे नहीं रहते हैं। सैकड़ों शिक्षित युवक-युवतियां दीक्षा लेकर अपने को धन्य मानते हैं, सैकड़ों युवक संसार में रहते हुए भी पर्यूषण में साधु के समान पाट पर बैठने में नहीं डरते और सैकड़ों हजारों लोगों को संत सती की पूर्ति का आभास कराते हैं।

जैन धर्म में अपने तीर्थंकरों के प्रति, नवकार मंत्र के प्रति, व्रत नियमों के प्रति, श्रावक व्रतों व संयम जीवन के प्रति भी सैकड़ों हजारों लाखों मनुष्यों की श्रद्धा बनी हुई हैं। सैकड़ों प्रहारों के आते हुए भी और विज्ञान की चकाचौंध में भी जैनों की धर्म निष्ठा और उन्नति देख अन्य लोग भी प्रभावित होते हैं देश के अनेक नेता भी जैन धर्म के कई प्रसंगों में उपस्थित होते हैं और जैन धर्म के प्रति, जैन संतों के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट करते हैं। यह जैन धर्म का दर्शन श्रद्धान प्राण है।

3. **चारित्र-** आज के मानव को संपूर्ण कर्मों से मुक्ति इस भव में नहीं हो सकती है। फिर भी जैन समाज में धर्म आचरण की प्रवृत्ति दिनों दिन वृद्धि होते जा रही है। जैन धर्म के आचरण मार्ग के दो विभाग है। 1 सर्व विरति (संयम) 2 देश विरति श्रावक व्रत। सर्व विरति धारक संत -सतियों का समाज में अभाव नहीं हआ है और नये धारण करने वाले का सिलसिला भी चालू है। उसमें भी युवक-युवाओं का नंबर वृद्धों से भी आगे हैं। साथ ही शिक्षित अनेक डिग्री हासिल किए हुए युवक भी नंबर रखते है। कई परिवार के परिवार अग्रसर हैं तो कई छोटी उम्र में सजोड़े दीक्षित होने में भी पीछे नहीं रहते हैं। देशविरति धारण करने में भी समाज में व्यक्ति पीछे नहीं है। हजारों जैनी व्रत-प्रत्याख्यान, नित्य नियम, सामायिक 14 नियम, पोषध आदि करते हैं। 12 व्रत धारी भी बनने वालो का प्रवाह चालू हैं। पूर्ण निवृत्ति जीवन वालों का भी अभाव नहीं है। संत सतियों का चातुर्मास प्राप्त करके प्रसन्नतापूर्वक धर्माराधन में अजोड़ वृद्धि करते है।

4. **तप-** आभ्यंतर बाह्य रुप से दो प्रकार का है उसके भी श्रावक व साधु समाज सुस्त नहीं हुआ है। आभ्यंतर तप में आज ज्ञान, ध्यान, शिविर प्रवृत्तियें, गुरुओं के प्रति दर्शन करने, विनय करने की प्रवृत्तियों भी चालू है। साधुओं में सेवा विनय के अनूठे प्रमाण समाज के सामने समय-समय पर आते हैं। साधुओं के स्वाध्याय ज्ञान का प्रचार भी अनेक जगह देखने को मिलता है। ध्यान की विचारणा में भी संत सतियां अग्रसर हो रहे है।

बाह्य तप में श्रावक-श्राविकाओं में जो तप की वृद्धि इस निस्सार खान पान के समय में भी हो रही है वह अनुपम है, वर्णनीय है। चातुर्मास आदि के वर्णनों को देखने पढ़ने वालों से कुछ छिपा नहीं है। अधिक उम्र के संत संती भी तप में मास खामण तक बढ़ जाते है।

गांव-गांव में तपस्या की झड़ियें लगती है। आयंबिल की ओलियां, एकांतर तप (वर्षी तप) करने वालों के उत्साह की भी कमी नहीं दिखती है। कई तो वर्षों से एकांतर तप, आयंबिल, एकासन आदि करते है कोई वर्ष भर बेले, तेले और पंचोले, पंचोले पारणा करते है तो कोई महिनों तक निरंतर निराहार रह जाते है। कोई साधु श्रावक संलेखना, संथारा युक्त पंडित मरण प्राप्त करते हैं। वे दो तीन मास तक के संथारे को भी प्राप्त करते है। यह चौथा तप प्राण हैं।

जैन धर्म के जीवन की कसौटी करने का यह श्रेष्ठ दर्पण हैं किन्तु जनसंख्या की अपेक्षा तो बहुमत जैन धर्म का दुनिया में तीर्थंकरों के समय भी नहीं होता है। अनेकता एकता और बहुतता यह जैन धर्म के प्रमाण की सही कसौटी नहीं है। तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवन समय में दो तीर्थंकर और उनके श्रावक समाज का अस्तित्व और वातावरण दुनिया के सामने था। सैकड़ों लब्धिधारी और भगवान स्वयं अतिशयवान थे। सैकड़ों हजारों देव भी आते थे। तो भी अनेकता न रुकी। जमाली ने अपने को छद्मस्थ होते हुए भी भगवान के सामने केवली होने का स्वांग धर कर अलग पंथ चलाया। भगवान के जीवन काल में धर्म की अनेकता में भी धर्म जीवित था, मोक्ष चालु था तो अब 2000 वर्ष के भस्मीग्रह के प्रभाव के बाद हुंड़ावसर्पिणी काल प्रभाव में और विशिष्ट ज्ञानियों लब्धियों के अभाव में भी धर्मरूपता अवस्थित है।

तीर्थंकरों के सत्ता काल से भी सारे विश्व को जैन धर्म पढ़ाना सुनाना मनाना इन्द्रों के हाथ में भी नही था। स्वयं भगवान महावीर के प्रमुख श्रावक के घर भी मांसाहार हो जाना असंभव नहीं था। भगवान के समवसरण में निरपराध भिक्षुओं को एक अन्यायी व्यक्ति जलाकर भस्म की दें या अन्यत्र सैकड़ों साधुओं को एक अन्यायी जलाकर भस्म कर दे या अन्यत्र सैकड़ों साधुओं को कोई घाणी में पील दे, कृष्ण की राजधानी का एक व्यक्ति उसके भाई साधु के प्राण समाप्त कर दे तो भी धर्म जीवन में शंका नहीं की जाती थी तो आज बिना केवल ज्ञानियों के भी ज्ञान दर्शन चारित्र तप रुप प्राण अवस्थित है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र
का
सारांश
(वैज्ञानिक परिशिष्ट युक्त)

प्रस्तावना–

चौदह राजू प्रमाण यह लोक हैं। इस में जीव परिभ्रमण करता रहता हैं। ऊंचा लोक तिर्च्छा लोक और नीचा लोक में भी जीव परिभ्रमण करता रहता हैं। तिर्च्छा लोक में भी असंख्याता द्वीप समुद्र है उनमें भी जीव जन्म मरण करते रहते है किन्तु उन द्वीप समुद्रों के मध्य में ढाई द्वीप एवं दो समुद्र है उनमें जीव जन्म मरण भी करते रहते है और मुक्त भी हो सकते हैं। इसी ढाई द्वीप के बीचों बीच में अथवा सभी द्वीप समुद्रों के बीचो बीच केन्द्र स्थान में जम्बूद्वीप हैं। यह सम्पूर्ण तिर्च्छा लोक के भी मध्य में और इसी में हमारा निवास स्थान दक्षिण भरत का प्रथम खंड है। अतः मुक्ति प्राप्त करने योग्य इस क्षेत्र रूप हमारे निवास स्थान से संबंधित भौगोलिक जानकारी भी होना आवश्यक हैं। आगमों में आध्यात्मिक ज्ञान के साथ अन्य विषय लोक स्वरूप, जीवादि स्वरूप आदि के ज्ञान को भी महत्व पूर्ण स्थान दिया गया हैं। इसे भी अपेक्षा से आध्यात्म के सहयोगी ज्ञान माना गया हैं। लोक अलोक क्षेत्र एवं जगत पदार्थो का सत्य सात्विक ज्ञान भी आत्मा में परम संतुष्टि एवं आनंद देने वाला होता हैं। सम्यक श्रद्धान को पुष्ट करने वाला भी होता हैं।

सूत्र नाम– इसी उपक्रम में यह जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आगम के रूप में उपलब्ध हैं। यह अंग बाह्य कालिक सूत्र हैं। नंदी सूत्र की आगम सूची में इसकी परिगणना की गई हैं। जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में विविध प्रकार का ज्ञान कराने वाला होने से इस सूत्र का सार्थक नाम भी जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति रखा गया हैं।

रचनाकार– इस सूत्र का रचनाकाल और रचनाकार अज्ञात है फिर भी यह सूत्र आगम लेखन काल के पूर्व का रचित है एवं सर्व सम्मत प्रमाणिक शास्त्र हैं। परम्परा से यह सूत्र पूर्वधर ज्ञानी बहुश्रुत भगवंत द्वारा रचित माना जाता हैं।

आकार स्वरूप- इसके अध्यायों को वक्स्कार कहा गया है, जिनकी संख्या 7 हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कोई विभाग प्रतिविभाग नहीं हैं। यह सम्पूर्ण सूत्र एक ही श्रुतस्कंध रूप है और इस सूत्र का परिमाण 4146श्लोक तुल्य माना गया हैं।

सूत्र विषय– इस सूत्र में जम्बूद्वीप सम्बन्धी विस्तृत वर्णन एक साथ उपलब्ध है। जिसमें भरत क्षेत्र, काल चक्र के 6-6 आरे, चक्रवर्ती का छः खंड साधन एवं उसकी ऋद्धि, जम्बूद्वीप में रहे सभी पर्वत, नदी, क्षेत्र, द्रह, कूंट, बावडियां, भवन, जम्बूसुदर्शन एवं कूटशाल्मलि नाम के शाश्वत वृक्ष तथा इन सभी का गणित योग, तीर्थंकर का जन्माभिषेक आदि विषयों का विस्तृत स्पष्ट वर्णन हैं। अंत में सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र तारा सम्बन्धी ज्योतिष ज्ञान भी दिया गया है जो कि ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति (सूर्य प्रज्ञप्ति) का संक्षिप्त सार मात्र हैं। इस प्रकार इस सूत्र में जम्बूद्वीप के क्षेत्रीय, पर्वतीय एवं ज्योतिषी मंडल सम्बन्धी विषयों का सुन्दर संकलन हैं। इस एक ही सूत्र से आत्म साधक को अपने क्षेत्र सम्बन्धी विविध प्रकार के तत्त्वों का परिबोध हो सकता हैं।

विविध संस्करण– इस सूत्र पर प्रचीन आचार्यो ने चूर्णि टीका रूप व्याख्या लिखी थी किन्तु वे आज उपलब्ध नहीं हैं। आचार्य मलयगिरी की भी टीका इस सूत्र पर उपलब्ध नहीं हैं। विक्रम संवत् 1660 में शांतिचन्द्र गणि के द्वारा संस्कृत टीका रची गई है वह कलकत्ता एवं बम्बई से प्रकाशित उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. श्री अमोलक ऋषि जी म. सा. द्वारा संपादित यह शास्त्र प्रकाशित उपलब्ध हैं। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से भी इसका हिन्दी विवेचन युक्त संस्करण निकाला हैं। जिसमें संपादक महोदय ने प्रायः सरलार्थ ही किया है। विवेचन नहीं दिया है।

प्रस्तुत संस्करण– आधुनिक युग की संक्षिप्त रूचि के अनुसंधान में आगम के संक्षिप्त हिन्दी सारांशों का प्रकाशन किया गया है जो जैन स्वाध्यायी जगत में एक विशिष्ट उपयोगी उपलब्धि हैं। उसी के क्रम में यह जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारांश पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है इसमें विषय के प्रतिपादन के अतिरिक्त विषय को समझने के लिए एवं शीघ्र जानने देखने की सुविधा के लिये जगह जगह चार्ट भी दिये गये हैं। जिसका अध्ययन करके आगम प्रेमी तत्त्व जिज्ञासु पाठक पूर्ण संतुष्ठी का अनुभव कर सकेंगे। इसी आशा के साथ।

विमल कुमार नवलखा

जम्बू-द्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्र

पहला वक्षस्कार-

सम्पूर्ण लोक के तीन विभाग है ऊर्ध्वलाक अधोलोक और तिर्च्छालोक। तिर्च्छेलोक में रत्नप्रभा नरक पृथ्वी पिंड के छत का ऊपरी भाग ही तिर्च्छालोक का समभूमि भाग है। इसी पर असंख्याता द्वीप समुद्र है जो एक के बाद दूसरा यों क्रमशः गोलाई में घिरे हुए हैं। जिसमें पहला मध्य का द्वीप पूर्ण चन्द्र के आकार, थाली के आकार गोल है। शेष सभी द्वीप समुद्रों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में किया गया है। बीचों बीच थाली के आकार का जो गोल द्वीप है, वही जम्बुद्वीप है। यही सम्पूर्ण तिर्च्छालोक का मध्य केन्द्र बिन्दु है। चारों दिशाओं का प्रारम्भ भी इसी द्वीप के बीचों बीच में स्थित मेरूपर्वत से होता है। इस जम्बूद्वीप का वर्णन इस प्रकार है।

जम्बूद्वीप-

तिर्च्छालोक के बीचों बीच समभूमि पर स्थित यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा, एक लाख योजन चौड़ा परिपूर्ण गोल चक्राकार थाली के आकार अथवा पूर्ण चन्द्रमा के आकार वाला है। इसमें मुख्य 6 लम्बे पर्वत है जो इस द्वीप के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे तक लम्बे हैं। जिससे इस द्वीप के मुख्य सात विभाग (क्षेत्र) होते हैं यथा- 1. भरत क्षेत्र 2. हेमवंत क्षेत्र 3. हरिवर्ष क्षेत्र 4. महाविदेह क्षेत्र 5. रम्यकवास क्षेत्र 6. हेरण्यवंत क्षेत्र 7. एरावत क्षेत्र। इनमें पहला भरत क्षेत्र दक्षिण दिशा में हैं। उसके बाद दूसरा तीसरा क्रमशः उत्तर दिशा में हैं। अंत में ऐरावत क्षेत्र इस द्वीप के अंतिम उत्तरी भाग में स्थित हैं। इन के चार्ट आगे चौथे वक्षस्कार के अंत में देखें।

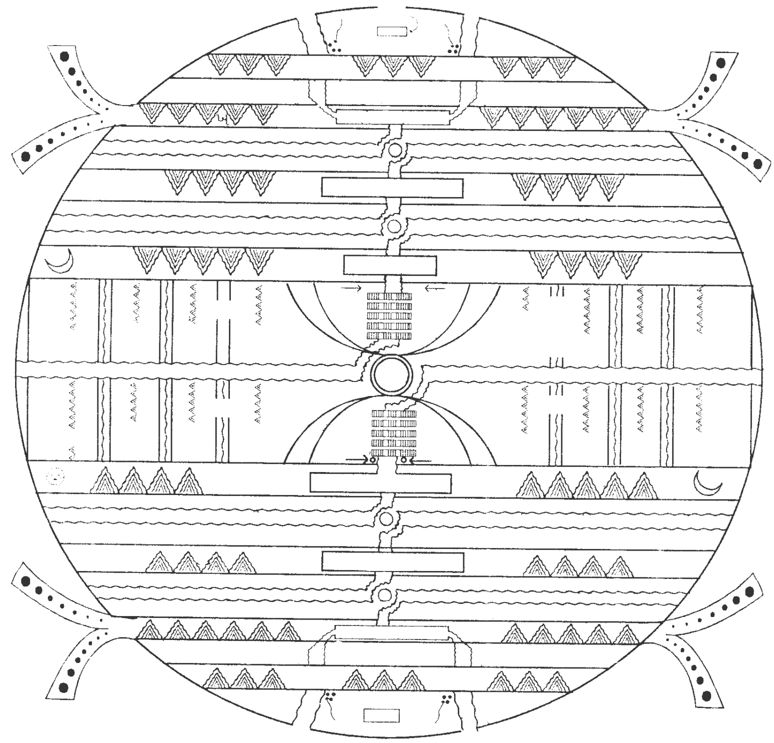

जगती- जम्बूद्वीप के किनारे चौतरफ परकोटा है जिसे ''जगती'' कहा गया है। यह जगती 3, 16, 27 योजन 3 कोश 128 धनुष 13 अंगुल गोल परिधि (परिक्षेप) वाली हैं। आठ योजन की इसकी ऊंचाई हैं। ऊचाई के मध्य भाग में ही चौतरफ

भित्ति है इसे गवाक्ष कटक (जालीमय गोखडा) कहा गया है। यह भित्ति सर्वत्र 500 धनुष चौड़ी आधा योजन उंची एंव तीन लाख सौलह हजार दो सौ सतावीस योजन तीन कोश एक सौ अठाइस धनुष साडे तेरह अंगुल गोलाई (परिधि) वाली है।

पद्मवर वेदिका– जगती के ऊपरी शिखर तल पर बीचो बीच में एक भिति है, वह भी परकोटे के समान है, उसे पद्मवर वेदिका कहा गया है। यह वेदिका 500 धनुष चौड़ी (जाडी) और आधा योजन ऊंची हैं। इसकी गोलाई जगती की परिधि के समान हैं। जगती के शिखर तल के बीच में यह वेदिका होने से जगती के दो विभाग हो गये हैं इन दोनों विभागों को पद्मवर वेदिका का भीतरी भाग और बाह्य भाग कहा गया है। यह वेदिका तो 500 धनुष की जाड़ी ठोस है पोल वाली नहीं है फिर भी भीतरी भाग कहने का मतलब यह है कि जम्बूद्वीप के अंदर की तरफ वाला भाग और दूसरा जम्बूद्वीप के बाहरी लवण समुद्र की तरफ वाला विभाग। इस वेदिका वर्णन में स्तंभ आदि का भी कथन है जिससे यह ज्ञात होता है कि इसके पास भीतरी एवं बाहरी बरामदे रूप विभाग भी है जिसमें अनेक रूपों के युगल जोड़े बने हुए हैं।

वनखंड– इस पद्मवर वेदिका के भीतरी और बाह्य दोनों विभागों में इस वेदिका के नितंब में दो योजन चौड़ाई वाले वनखंड (बगीचे के रूप में) हैं वे भी परिधि में जगती जितने हैं। ये वन मणि तृणों से सुशोभित हैं। इन वनखंडो में पुष्करणियां (जल स्थान) पर्वत, गृह, मंडप, बैठने सोने के आसन, शिलापट्ट (कुर्सियां) आदि पृथ्वीकाय के हैं। यहां बहुत से वाणव्यंतर देव घूमने फिरने, मौज-शौक करने, आते रहते हैं, भ्रमण करते रहते हैं।

वेदिका के गवाक्ष कटक आदि– पद्मवर वेदिका रूप उस भित्ति पर गवाक्ष कटक के समान विविध जालियां जालघर हैं यथा- हेम जाल, गवाक्ष जाल, खिंखिणि (घटिकाएं) जाल, मणि जाल, कनक जाल रयण जाल, ये चौ तरफ घिरे हुए हैं। वे जालधर आदि विविध मणि रत्न हार आदि से सुसज्जित हैं। वे आपस में स्पर्श किये हुए नहीं हैं। किन्तु बहुत नजदीक (समीप) में मंद मंद हवा के चलने पर आपस में स्पर्श टकराव होने से उनमें अत्यंत सुरीली मधुर ध्वनियें होती रहती हैं।

जगती के मध्य भाग में गवाक्ष कटक

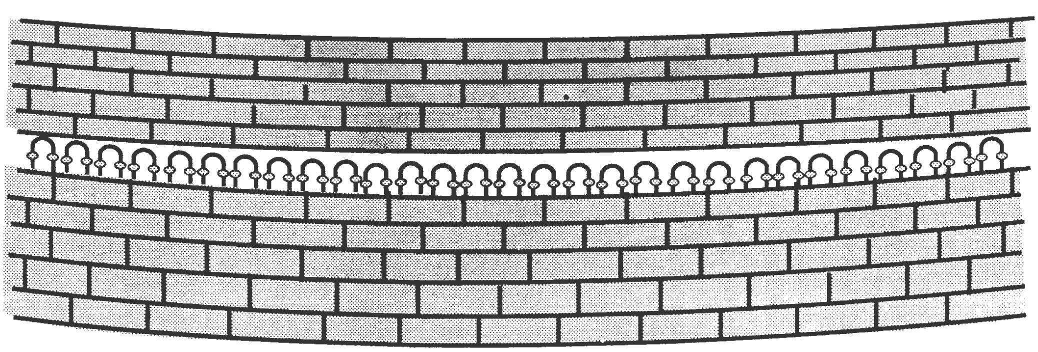

गवाक्ष कटक 2 गाऊ ऊंचा और 500 धनुष विस्तार युक्त है, यह समुद्र तरफ बाहर के भाग में है।

पद्मवर वेदिका पर अनेक वृक्ष एवं लताएं हैं– अनेक पद्म कमल जगह जगह पर रहे हुए हैं। इसलिए इसे पद्मवर वेदिका कहा गया है। इस प्रकार सुन्दर भव्य जंबूद्वीप की यह जगती सम भूमि पर 12 योजन चौड़ी, मध्य में आठ योजन और शिखर तल पर चार योजन चौड़ी हैं, अर्थात् ऊपर की तरफ चौड़ाई (जाडाई) क्रमशः घटती गई हैं। आठ योजन ऊंचाई तक चौड़ाई आठ योजन घट गई हैं। इसे गोपुच्छ संस्थान कहा गया हैं।

जगती में चार द्वार– जम्बूद्वीप की इस जगती में पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण चारों दिशाओं में चार द्वार (दरवाजे) हैं। इनका आपसी अंतर 79052 योजन और देशोन दो कोश का हैं। इन द्वारों का भीतरी और बाह्य वर्णन जीवाभिगम सूत्र में देखें। चारों द्वारों के विजय देव आदि एक एक मालिक देव है। उनकी विजया आदि एक एक राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में हैं। राजधनी का एवं वहां विजय देव के जन्म आदि का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में हैं जो कि सूर्याभि देव के समान हैं। अतः राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव वर्णन को देखना चाहिए। द्वार एवं मालिक देवों के नाम एक सरीखें हैं। यथा-1. विजय 2. वेजयंत 3. जयंत 4. अपराजित। राजधानी के नाम विजया, वेजयंता, जयंता अपराजिता हैं।

जम्बूद्वीप की जगती के 4 द्वार

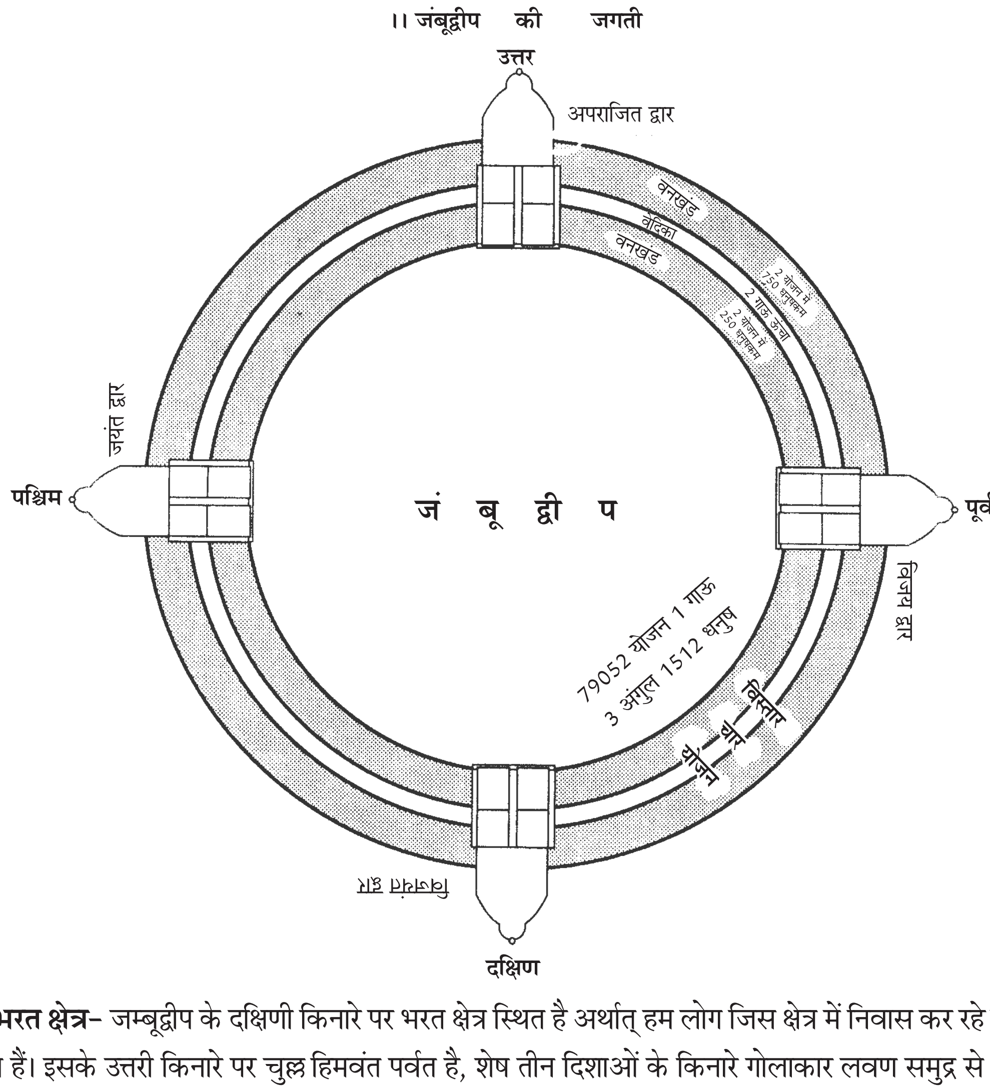

भरत क्षेत्र– जम्बूद्वीप के दक्षिणी किनारे पर भरत क्षेत्र स्थित है अर्थात् हम लोग जिस क्षेत्र में निवास कर रहे है यही यह भरत क्षेत्र हैं। इसके उत्तरी किनारे पर चुल्ल हिमवंत पर्वत है, शेष तीन दिशाओं के किनारे गोलाकार लवण समुद्र से घिरे हुए है अर्थात् परिशेष तीन दिशाओं में लवण समुद्र हैं। समुद्र और भरत क्षेत्र के बीच में आठ योजन की ऊंची जगती हैं। फिर भी जगती

में रहे छिद्रों से समुद्री जल भरत क्षेत्र में किनारों पर आया हुआ हैं। उसी समुद्री जल में तीनों दिशाओं में एक एक करके तीन तीर्थ आये हुए है, उनके नाम पूर्व में मागध तीर्थ, दक्षिण में वरदाम तीर्थ और पश्चिम में प्रभास तीर्थ हैं। इन तीनों तीर्थों में इनके अधिपति देव रहते हैं। इसी लवण समुद्री जल को वर्तमान व्यवहार में लवण की खाडी, प्रशांत महासागर, हिन्द महासागर आदि कहा जाता हैं।

वैताढ्य पर्वत- इस भरत क्षेत्र के मध्य में वैताढ्य पर्वत है, जो पूर्व पश्चिम लंबा हैं। इसके दोनों किनारे जगती को भेद कर लवण समुद्र को स्पर्श किये हुए हैं। यह पर्वत चांदी मय पृथ्वी का 50 योजन चौड़ा (जाड़ा) 25 योजन ऊंचा है। इसके मध्य में स्थित होने से 526 $\frac{6}{19}$ योजन चौड़ा भरत क्षेत्र दो विभागों में विभाजित हैं। वे प्रत्येक भाग 236 $\frac{3}{19}$ योजन के चौड़े और लम्बाई में किनारे (जगती) तक हैं।

वैताढ्य पर्वत की रुपरेखा

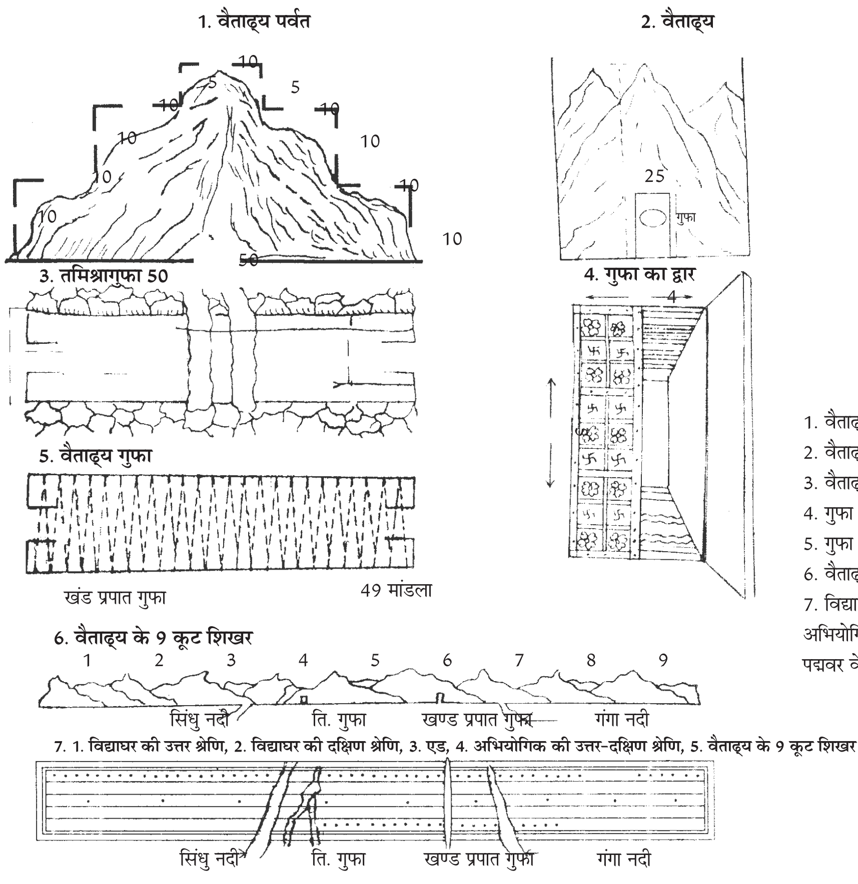

1. वैताढ्य की ऊँचाई मेखला
2. वैताढ्य पर्वत में गुफा
3. वैताढ्य पर्वत में बहती उमग्न, निमग्न जला नदियां
4. गुफा का द्वार
5. गुफा के 49 प्रकाश मांडले
6. वैताढ्य के 9 शिखर कूट
7. विद्याघर की उत्तर-दक्षिण श्रेणि
अभियोगिक देव की उत्तर-दक्षिण श्रेणि
पद्मवर वेदिका वन खंड नगर आदि

वैताढ्य पर्वत की मेखलाएं

दक्षिण तरफ की दो मेखलाओं जैसी ही उत्तर तरफ भी है।

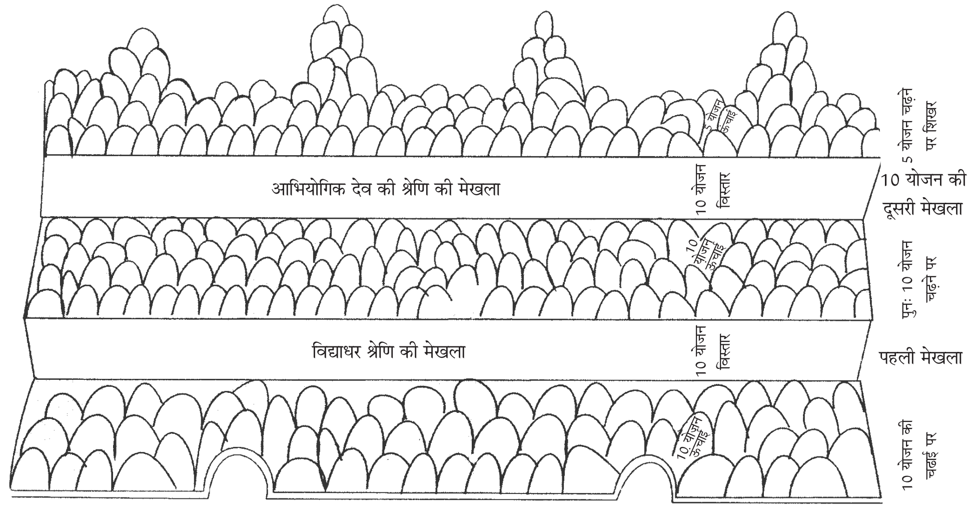

विद्याधर श्रेणी– दस योजन ऊपर जाने पर यह पर्वत दोनों बाजू में चौड़ाई में एक साथ 10-10 योजन घट गया हैं। जिससे 10-10 योजन की दोनों बाजू में समतल भूमि है वहां पर विद्याधर मनुष्यों के नगर हैं एवं विद्याधर मनुष्य वहां निवास करते हैं। अतः इन दोनों क्षेत्रों को विद्याधर श्रेणी कहा गया हैं। उत्तर की विद्याधर श्रेणी में 60 नगर है, दक्षिण की श्रेणी में 50 नगर हैं। यहां मनुष्य विद्या सम्पन्न होते हैं।

आभियोगिक श्रेणी– इसी प्रकार विद्याधर श्रेणी से दस योजन ऊपर जाने पर वहां भी 10-10 योजन चौड़ी समभूमि दोनों तरफ हैं। उसमें वाणव्यंतर जाति के देवों के भवन है और वे देव शक्रेन्द के लोकपालों के आभियोगिक देव हैं। इसलिये इन दोनों श्रेणियों को आभियोगिक श्रेणी कहा गया हैं। व्यंतर में भी मुख्यतया यहां 10 जृभंक देवों का निवास स्थान हैं।

शिखर तल– आभियोगिक श्रेणी से पांच योजन ऊपर जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखर तल आ जाता हैं। जो 10 योजन चौड़ा है, वह शिखर तल पद्मवर वेदिका एवं वन खंड से घिरा हुआ है अर्थात् शिखर तल के दोनों किनारों पर वेदिका (पाली-भित्ति) है, और उन दोनों वेदिकाओं के पास एक-एक वनखंड है उन वन खंडों में बावडियां, पुष्करणियां, आसन, शिलापट्ट मंडप, पर्वत गृह आदि है। वेदिका वन खंडों की चौड़ाई जम्बूद्वीप की जगती के ऊपर कहे गये पद्मवर वेदिका एवं वनखंड के समान है। इनकी लम्बाई एवं शिखर तल की लम्बाई इस पर्वत की लम्बाई जितनी है। दोनों विद्याधर श्रेणी में दोनों आभियोगिक श्रेणी में और समभूमि पर भी दोनों तरफ इसी प्रकार पद्मवर वेदिका एवं वनखंड है।

कूट– शिखर तल पर पूर्व से पश्चिम तरफ क्रमशः 9 कूट इस प्रकार है।

1. सिद्धायतन कूट 2. दक्षिणार्द्ध भरत कूट 3. खंड प्रभात गुफा कूट 4. माणिभद्र कूट 5. वैताढ्य कूट 6. पूर्णभद्र कूट 7. तिमिस्त्र गुफा कूट 8. उत्तरार्द्ध भरत कूट 9. वैश्रमण कूट।

ये कूट 6(योजन ऊंचे हैं एवं मूल में इतनी ही लम्बाई चौड़ाई वाले हैं और उनकी गोलाई (परिधि) चौड़ाई से तीन गुणी साधिक है। ऊपर क्रमशः चौड़ाई कम कम है। अतः गोपुच्छ सस्थान के ये कूट हैं इनके चौतरफ वैताढ्य पर्वत के शिखर तल पर वनखंड और पद्मवर वेदिका है। एवं कूट के शिखर तल पर भी पद्मवर वेदिका एवं वनखंड तथ बावडिया सरोवर आदि देवों के आमोद प्रमोद के स्थान है। कूट शिखरों के मध्य भाग में एक एक प्रासादावतंसक है जिसमें उस कूट के मालिक देव के रहने के

लिए प्रासाद है। वह एक कोश ऊंचा आधा कोश लम्बा चौड़ा गोल है। उसके बीच में 500 धनुष लम्बा 250 धनुष चौड़ा चबूतरा है उस पर सिंहासन आदि है। एक पल्योपम स्थिति का मालिक देव यहां अपने परिवार सहित रहता है। उसके चार अग्रमहिषी 4000 सामानिक देव 16हजार आत्म रक्षक देव, तीन परिषद सात अनिका (सेना) एवं सेनापति आदि परिवार है। इन देवों की राजधानी दक्षिण के अन्य जम्बूद्वीप में उसकी जगती से 12000 योजन अंदर है। राजधानी का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में वर्णित विजयदेव के राजधानी के समान है। मणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र ये तीन स्वर्णमय है शेष रत्नमय है। दो गुफा के नाम वाले कूटों के मालिक देवों के नाम कृतमालक और नृतमालक है। शेष 6देवों के नाम कूंट के समान ही है। सिद्ध कूट पर बीच में एक सिद्धायतन है जो एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा एक कोश ऊंचा है। उसके तीन द्वार तीन दिशा में हैं और एक दिशा बंद है जिस तरफ सिद्धायतन में 108जिन प्रतिमाएं हैं। उनके दोनों तरफ में दो दो चमर धारक प्रतिमाएं है। पीछे छत्र धारक दो दो प्रतिमाएं हैं। आगे दोनों तरफ में नाग, यक्ष, भूत, आदि की मनोरम मूर्तियां हैं। घंटे, कलश, पुष्प, मयूरपिच्छी, धूपदान, आदि भी वहां व्यवस्थित रखे रहते हैं। सिद्ध कूट पर मालिक देव नहीं है। ये कूंट मध्य में कुछ कम 5 योजन चौड़े और ऊपर तल पर 3 योजन साधिक लम्बे चौड़े हैं।

गुफाएं– वैताढय पर्वत के पूर्वी भाग में और पश्चिमी भाग मे यों दो गुफाए है जो वैताढ्य पर्वत के उत्तरी किनारे से दक्षिणी किनारे तक 50 योजन की लंबी हैं, 12 योजन चौड़ी एवं आठ योजन ऊंची है। गुफाओं के उत्तर दक्षिण दोनों तरफ में एक एक द्वार है जिसका प्रवेश 4 योजन का है। पूर्वी गुफा के भीतर पूर्वी किनारे और पश्चिमी गुफा के भीतर पश्चिमी किनारे क्रमशः गंगा, सिंधु नदी भित्ती के अंदर नीचे चलती है। उसके सामने की दिशा की भित्ति में से उमगजला और निमगजला नाम की दो नदियां निकलती है जो पूर्ण गुफा के 12 योजन क्षेत्र को पार कर गंगा सिंधु नदी में गिरती है। ये नदियां 3-3 योजन की चौडी है और इनका आपस मे अंतर 2-2 योजन का है। पूर्वी गुफा का नाम खंड प्रपात है और पश्चिमी गुफा का नाम तमिश्रा गुफा है। दोनों गुफाएं अंधकार पूर्ण एवं सदा बदं दरवाजे वाली है। चक्रवर्ती का सेनापति रत्न इनमें प्रवेश हेतु एक-एक तरफ के दरवाजे को खोलता है और बाहर निकलने हेतु दूसरी दिशा के दरवाजे स्वतः खुल जाते हैं। इन दोनों गुफाओं के एक एक मालिक देव हैं। खंडप्रपात गुफा का कृतमालक देव और तमिश्रा गुफा का नृतमालक देव है।

वैताढ्यनाम– भरत क्षेत्र के दो विभाग करने वाला होने से इसे वैताढ्य कहा गया है अथवा वैताढ्यगिरि कुमार नामक महर्द्धिक देव पल्योपम की स्थिति वाला इसका मालिक देव है अतः यह नाम शाश्वत हैं। किसी के द्वारा दिया हुआ यह नाम नहीं हैं।

गंगा सिन्धु नदी– चुल्ल हिमवंत पर्वत के लम्बाई चौडाई से मध्य में एक पद्मद्रह है। जो पूर्व पश्चिम 1000 योजन का लम्बा, उत्तरदक्षिण 500 योजन चौड़ा हैं। उसके पूर्वी किनारे से गंगा नदी निकलती हे ओर पश्चिमी किनारे से सिन्धु नदी निकलती हैं। वे नदियां 500-500 योजन पर्वत पर सीधी चलती है। फिर गंगावर्त्त कूट और सिन्धु आवर्त्त कूट के पास दक्षिण की और मुड़ कर पर्वत के दक्षिणी किनारे से भरत क्षेत्र में पर्वत के नितंब (तलहटी) में रहे गंगा कुंड एवं सिनधु कुंड में गिरती हैं। गिरने के स्थान पर ये नदियां एक जिव्हाकार मार्ग से निकलती है वह 6 (योजन का चौड़ा, आधा योजन लम्बा आधा कोश मोटा हैं। अर्थात् वह जिव्हा पर्वत से आधा योजन बाहर निकली हुई है उस में से पानी 100 योजन साधिक नीचे पड़ता है।

दोनों कुंडों के दक्षिण तोरण से दोनों नदी 6 (योजन के विस्तार से एवं आधा कोश की जाड़ाई से प्रवाहित होती हैं। दक्षिण की तरफ आगे बढ़ती हुई उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र में चलती हुई वैताढय पर्वत की खंडप्रपात गुफा के नीचे से गंगा नदी और तमिश्रा गुफा के नीचे से सिन्धु नदी निकलती हैं। वैताढ्य पर्वत को उत्तर दिशा से भेद कर दक्षिण दिशा से दोनों नदियां पर्वत से बाहर निकलती

हैं। दक्षिणार्द्ध भरत के आधे भाग तक (बीच तक) सीधी दक्षिण में बहती हुई गंगा नदी पूर्व की तरफ और सिन्धू नदी पश्चिम की ओर मुड जाती हैं। आगे जाकर दोनों नदियां क्रमशः पूर्वी लवण सुद्र और पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती हैं। दोनों नदियां भरत क्षेत्र के कुल 14000 अन्य नदियों को अपने में समाविष्ट करती हुई समुद्र में 62 योजन विस्तार एवं सवा योजन की ऊंडाई से (जाडाईसे) मिलती हैं। नदियों के दोनों किनारे पर वेदिका और वनखंड हैं।

भरत क्षेत्र के छः खंड- इस प्रकार इन दोनों नदियों के भरत क्षेत्र में बहने से उत्तर भरत के और दक्षिण भरत के तीन-तीन विभाग हो जाते हैं। अर्थात् वैताढ्य पर्वत के कारण दो विभाग और नदियों के कारण से कुल 6 विभाग बने है। वे भरत के 6 खंड कहे जाते हैं।

दक्षिणभरत के मध्य में बीचो बीच विनीता नगरी है यही पहला खंड है यही सबसे बड़ा खंड हैं। सिन्धु नदी का निष्कुंट वाला विभाग दूसरा खंड हैं। तीसरा खंड उत्तर भरत में सिन्धु निष्कुंट हैं। चौथा खंड उत्तर भरत का मध्य वाला विभाग हैं। पांचवा खंड गंगा निष्कुंट उत्तर भरत का हैं और छठ्ठा खंड दक्षिण भरत का गंगा निष्कुंट (खुणा) है। इन 6ही खंडों में मनुष्य पशु आदि निवास करते हैं। इनमें से दक्षिण भरत में आये पहले दूसरे छट्ठे खंड पर वासुदेव बलदेव का राज्य चलता है और छहों खंडों पर चक्रवर्ती का एक छत्र राज्य होता हैं। इन 6खंडों में और विद्याधरों की दोनों श्रेणियों में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के 6ही आरों का प्रवर्त्तन होता है। तीसरा और पाचंवा खंड समान है एवं दूसरे चौथे छट्टे खंड से बडे हैं।

ऋषभ कूट पर्वत- उत्तर भरत के बीच के खंड में (चैथे खंड में) बीचों बीच चुल्ल हिमवंत पर्वत के निकट ऋषभ कूट नामक पर्वत हैं। आठ योजन ऊंचा एवं मूल में आठ (12) योजन के विस्तार वाला हैं। उपर क्रमशः चौड़ाई कम कम है। शिखर तल चार योजन का चौड़ा हैं। सर्वत्र गोल है, अतः तिगुणी साधिक परिधि हैं। सम भूमि पर एवं शिखर तल पर पद्मवर वेदिका और वनखंड है। शिखर तल के बीच में एक भवन है जो एक कोश लम्बा आधा कोश चौड़ा और देशोन एक कोश ऊंचा है। इसमें महर्द्धिक देव सपरिवार रहता है जो कि इस ऋषभ कूट पर्वत का मालिक देव है। गोपुच्छाकार कूट के समान आकार वाला होने से इसका नाम कूट शब्द के साथ कहा गया है। यहां कूट के समभूमि पर विष्कंभ के लिए 12 योजन भी पाठांतर लिखा हैं जो लिपि दोष मात्र है। समस्त कूट जितने ऊंचे होते हैं उतने ही मूल में चौड़े होते हैं।

नोट- गंगा सिन्धु नदियों का वर्णन चौथे वक्षस्कार से यहां दिया गया है।

दूसरा वक्षस्कार-

उत्सर्पिणी- अवसर्पिणी- समय आवलिका से लेकर पल्योपम सागरोपम का काल मान अनुयोगद्वार सूत्र में दिया गया है। 10 क्रोडा क्रोड सागरोपम का एक उत्सर्पिणी काल होता है और इतना ही अवसर्पिणी काल होता है। उत्सर्पिणी काल में जीवों का अवगाहना, आयु शारीरिक संयोग आदि क्रमिक बढते जाते हैं एवं पुद्‌गल स्वभाव भी वर्धमान अवस्था को प्राप्त होते रहते हैं इसी कारण इस 10 क्रोड क्रोड सागर काल मान को उत्सर्पिणी (विकास मान) काल कहा गया है।

इसके विपरीत अवसर्पिणी काल में उक्त जीव और पुद्‌गल के गुणों स्वभावों में क्रमिक हास (हानि) होती रहती है।

इसीलिए उस 10 कोडा कोड काल मान को अवसर्पिणी (हायमान) काल कहा गया हैं।

अवसर्पिणी काल-

इसके 6 विभाग है, जिनमें क्रमिक हानि होती ह। इन 6 विभागों को ''6 आरे'' कहा गया है। इन 6 आरों के नाम इस प्रकार है- 1. सुखमा सुखमी 2. सुखमी 3. सुखमा दुःखमी 4. दुःखमा सुखमी 5. दुःखमी 6. दुःखमा दुःखमी।

1. सुखमा सुखमी पहला आरा– यह आरा 4 क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का होता हैं। इस काल में भरत क्षेत्र के पृथ्वी पानी एवं वायु मंडल का तथा प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थों का स्वाभाव अति उत्तम, सुखकारी एवं स्वास्थ्य प्रद होता है। मनुष्यों की तथा पशु पक्षी की संख्या अल्प होती है। जल स्थानों की एवं दस प्रकार के विशिष्ट वृक्षों की बहुलता होती है। ये विशिष्ट वृक्ष 10 जाति के होते हैं इन्हीं से मनुष्यों आदि के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस काल में खेती व्यापार आदि कर्म नहीं होते हैं। नगर मकान वस्त्र-बर्तन आदि नहीं होते हैं। भोजन पकाना, संग्रह करना नहीं होता है। अग्नि भी इस काल में उत्पन्न नहीं होती है नहीं जलती है। इच्छित खाद्य पदार्थ वृक्षों से प्राप्त हो जाते हैं। निवास एवं वस्त्र का कार्य भी वृक्ष एवं वृक्ष छाल पत्र आदि से हो जाता है। पीने के लिए अनेक सुंदर जल स्थान सरोवर आदि होते हैं। दस वृक्षों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में देखें।

युगल मनुष्य– इस समय में स्त्री पुरूष सुन्दर एवं पूर्ण स्वस्थ होते हैं। उन्हें जीवन भर ओषध उपचार वैद्य आदि की आवश्यकता नहीं होती है। मानुषिक सुख भोगते हुए भी जीवन भर में उनके केवल एक ही युगल उत्पन्न होता है अर्थात् उनके एक पुत्र और एक पुत्री एक साथ जन्मती है। ''हम दो हमारे दो'' का आधुनिक समय का सिद्धांत उस समय स्वाभाविक प्रवहमान होता है। उस युगल पुत्र पुत्री की 49 दिन पालना माता पिता द्वारा की जाती है फिर वे स्वनिर्भर स्वावलंबी हो जाते हैं। 6 महीने के होने पर उनके माता पिता छींक एवं उबासी के निमित्त से लगभग एक साथ मर जाते हैं। फिर वह युगल भाई बहिन के रूप में साथ-साथ विचरण करता है और योवन वय प्राप्त होने पर स्वतः पति पत्नि का रूप धारण कर लेता है।

युगल शरीर– उस समय के मनुष्यों की उम्र 3 पल्योपम की होती है और क्रमिक घटते घटते प्रथम आरे की समाप्ति तक 2 पल्योपम की हो जाती है। उन मनुष्यों के शरीर की अवगाहना 3 कोश की होती है। स्त्रियें पुरूष से 2-4 अंगुल छोटी होती है। यह अवगाहना भी घटते घटते पहले आरे के अंत में 2 कोश हो जाती है। इन युगल मनुष्यों के शरीर का वज्रऋषभ नाराच संहनन होता है, सुंदर सुडौल समचौरस संस्थान होता है, उनके शरीर में 256पसलियां होती है।

क्षेत्र एवं युगल स्वभाव– उन युगल मनुष्यों को तीन दिन से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। उनका आहार पृथ्वी, पुष्प और फल रूप होता है। उन पदार्थों का आस्वाद चक्रवर्ती के भोजन से भी अधिक स्वादिष्ट होता है। सोना चांदी एवं जवाहरात जहां तहां होते हैं और पड़े रहते हैं किन्तु किसी के उपयोग में नहीं आते हैं। वे मनुष्य वैर भाव से रहित होते हैं। तीव्र अनुराग प्रेम बंधन भी उनके नहीं होता है। पैदल विहार विचरण करने वाले होते हैं अर्थात् उपलब्ध हाथी घोड़ा आदि पर भी सवारी नहीं करते हैं। पशु के दूध आदि पदार्थों का भी वे मनुष्य उपयोग नहीं करते हैं। हिंसक पशु सिंह आदि की उन मनुष्यों को किंचित भी बाधा-पीड़ा नहीं पहुंचाते। धान्य आदि भी उनके उपयोग में नहीं आते। वहां की भूमि स्वच्छ निर्मल कंटक आदि से रहित होती है। डांस मच्छर खटमल और क्षुद्र जन्तु नहीं होते हैं। सर्प आदि भी भद्र प्रकृति वाले होते हैं। वहां के दस विशिष्ट वृक्षों को ही व्यवहार भाषा में कल्पवृक्ष कहा जाता है। उनके अतिरिक्त भी अनेक जाति के वृक्ष इस काल में होते हैं। ये युगल मनुष्य अल्पेच्छा वाले, भद्र, विनीत, गुप्त, संग्रहवृति रहित एवं वृक्ष की शाखा के बीच निवास करने वाले होते हैं। उस समय कई वृक्ष महल एवं हवेली आदि के सदृश भी होते हैं। राजा, मालिक, नौकर, सेवक आदि उस समय नहीं होते हैं। नाच गान-महोत्सव आदि नहीं होते हैं। वाहन यान आदि नहीं होते हैं। मित्र सखा भाई बहिन माता पिता पति पत्नि पुत्र पुत्री इतने सम्बन्ध ही होते हैं। काका, मामा, नाना, दादा, दौहित्र, पौत्र, पुत्र वधु, भुआ, भतीजा, मौसी आदि संबंध नहीं होते हैं। वाहन यान आदि नहीं होते हैं। मूल पाठ में पुत्र वधु का शब्द लिपि प्रमाद आदि किसी कारण से प्रविष्ट हो गया है। क्योंकि 6महीनों के भाई बहिन में पति पत्नि का भाव नहीं हो सकता है। 6महीने बाद माता पिता जीवित नहीं रहते हैं। वे मनुष्य जीवन में किसी भी प्रकार कष्ट दुःख नहीं देखते। सहज शुभ परिणामों से मरकर वे देव गति में ही जाते है। देवगति में भवनपति से लेकर पहले दूसरे देवलोक तक जन्मते हैं, आगे नहीं जाते, अपनी

स्थिति से कम स्थिति के देव बन सकते है, अधिक स्थिति के नहीं बनते अर्थात् ये युगल 10000 से लेकर 3 पल तक की कोई भी उम्र प्राप्त कर सकते हैं। अन्य किसी भी गति में नहीं जाते। तिर्यच युगल भी इसी तरह जीवन जीते हैं और देवलोक में जाते हैं। उनकी उत्कृष्ट अवगाहना मनुष्य से दुगनी होती है। और जघन्य अनेक धनुष की होती हैं सामान्य तिर्य्च भी अनेक जाति के होते हैं।

यह पहले आरे का वर्णन पूर्ण हुआ। यह काल 4 क्रोडा क्रोड़ सागरोपम तक चलता है। स्त्री पुरूष के शरीर का विस्तृत वर्णन यहां सूत्र में है जो सारांश में देखें।

''**सुखमी**'' **दूसरा आरा–** पहला आरा पूर्ण होने पर दूसरा आरा प्रारम्भ होता है। सभी रूपी पदार्थों के गुणों में अनंत गुणी हानि होती हैं। इस आरे के प्रारम्भ में मनुष्य की उम्र 2 पल्योपम और अंत में एक पल्योपम की होती है। अवगाहना प्रारम्भ में 2 कोश और अंत में एक कोश होती है। उनके शरीर में एक सौ अठाईस पसलियां होती हैं। दो दिन से अहारेच्छा उत्पन्न होती है। माता पिता पुत्र पुत्री की पालना 64 दिन करते हैं। ये सभी परिवर्तन भी क्रमिक होते हैं ऐसा समझना चाहिये। शेष वर्णन प्रथम आरे के समान है। तिर्य्च का वर्णन भी प्रथम आरे के समान जानना। यह आरा तीन क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम तक चलता है।

''**सुखमा दुखमी**'' **तीसरा आरा–** दूसरा आरा पूर्ण होने पर तीसरा आरा प्रारम्भ होता है। सभी रूपी पदार्थों के गुणों में अनंत गुणी हानि होती जाती है। प्रारम्भ में मनुष्यों की उम्र एक पल्योपम की होती है। अंत में एक करोड़ पूर्व की होती है। अवगाहना प्रारम्भ में एक कोश की होती है। अंत में 500 धनुष की होती है। शरीर में पसलियां 64 होती है। एक दिन से आहार की इच्छा होती है एवं पुत्र की पालना 79 दिन की जाती है। शेष वर्णन प्रथम आरे के समान है। इस आरे के दो तिहाई भाग तक उक्त व्यवस्था में क्रमिक हानि होते हुए वर्णन समझना किन्तु पिछले एक तिहाई भाग में पल्योपम का आठवां भाग शेष रहने पर फिर अक्रमिक हानि वृद्धि का मिश्रण काल चलता है। 10 विशिष्ट वृक्षों की संख्या कम होने लगती है। युगल व्यवस्था में भी अंतर आने लग जाता है। इस तरह मिश्रण काल चलते चलते 84 लाख पूर्व का जितना समय इस आरे का रहता हैं तब लगभग पूर्ण परिवर्तन हो जाता है अर्थात् युगल काल से कर्म भूमि काल आ जाता है। तब खान-पान, रहन सहन, कार्य-कलाप, सन्तानोत्पत्ति, शांति, स्वभाव, परलोक गमन, आदि में अंतर आ जाता है। चारों गति और मोक्ष गति में चालू हो जाता है। शरीर की अवगाहना एवं उम्र का भी कोई ध्रुव नियम नहीं रहता है। सहनन संस्थान सभी (छहों) तरह के हो जाते हैं।

कुलकर व्यवस्था– पिछले एक तिहाई भाग के भी अंत में और पूर्ण कर्म भूमि काल के कुछ पूर्व वृक्षों की कमी आदि के कारण एवं काल प्रभाव के कारण, कभी कहीं आपस में विवाद कलह पैदा होने लगते हैं। तब उन युगल पुरूषों में ही कोई न्याय करने वाले पंच कायम कर दिये जाते हैं। उन्हें ''कुलकर'' कहा गया हैं। इन कुलकरों की 5-7-10-15 पीढ़ी करीब चलती है। तब तक तो प्रथम तीर्थंकर उत्पन्न हो जाते हैं। कुलकरों को कठोर दंड नीति नहीं चलानी पड़ती है। सामान्य उपालंभ मात्र से ही अथवा अल्प समझाने ही उनकी समस्या हल हो जाती है। इन कुलकरों की तीन नीतियां कही गई हैं-हकार, मकार, धिक्कार। ऐसे शब्दों के प्रयोग से ही वे युगल मनुष्य लज्जित भयभीत और विनयोवनत होकर शांत हो जाते हैं। इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में होने वाले 14 कुलकरों के नाम ये है-1. सुमति 2. प्रतिश्रुति 3. सीमंकर 4. सीमंधर 5. क्षेमकर 6. क्षेमंधर 7. विमलवाहन 8. चक्षुष्मान 9. यशोवान 10. अभिचन्द्र 11. चन्द्राभ 12. प्रसेनजीत 13. मरूदेव 14. नाभि। इसके बाद तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान भी पहले कुछ समय कुलकर अवस्था में रहे। 83 लाख पूर्व संसारावस्था में रहे। इस प्रकार प्रत्येक अवसर्पिणी के तीसरे आरे की मिश्रण काल की अवस्था व्यवस्था समझनी चाहिए।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव- नाभि और मरूदेवी भी युगल पुरूष और स्त्री ही थे किन्तु मिश्रण काल होने से उनकी अनेक वर्षों की उम्र अवशेष रहते हुए ही भगवान ऋषभ देव का युगल रूप में इक्ष्वाकु भूमि में जन्म हुआ था। उस समय तक नगर आदि का निर्माण नहीं हुआ था। 64 इन्द्र आदि आये यथा विधि जन्माभिषेक किया। बाल्यकाल के बाद भगवान ने योवन अवस्था में प्रवेश किया, कुलकर बने, फिर राजा बने, बीस लाख पूर्व की अवस्था में राजा बने, 63 लाख पूर्व तक राजा रूप में रहे, कुल 83 लाख पूर्व संसारावस्था में रहे। लोगों को कर्म भूमि की योग्यता के अनेक कर्तव्यों कार्यकलापों को बोध दिया। पुरूषों की 72 कला, स्त्रियों की 64 कला, शिल्प व्यापार राजनीति आदि का विविध नैतिक समाजिक व्यवस्थाओं एवं संसार व्यवहारों का ज्ञान विज्ञान प्रदान किया। शक्रेन्द्र ने वैश्रमण देव के द्वारा दक्षिण भरत के मध्य स्थान में विनिता नगरी का निर्माण कराया और भगवान का राज्याभिषेक किया। अन्य भी गांव नगरों का निर्माण हुआ। राज्यों का विभाजन हुआ। भगवान ऋषभ देव के 100 पुत्र हुए थे। उन सभी को अलग अलग 100 राज्य बांट कर राजा बना दिया। भगवान के दो पुत्रियां हुई- ब्राह्मी और सुंदरी। जिनका भरत और बाहुबली के साथ युगल रूप में जन्म हुआ था। भगवान ऋषभ देव के विवाह विधि का वर्णन सूत्र में नहीं है व्याख्या ग्रन्थों में बताया गया है कि मिश्रण काल के कारण सुनंदा और सुमंगला नामक दो कुंवारी कन्याओं के साथ युगल रूप में उत्पन्न बालकों के मृत्यु प्राप्त हो जाने पर वे कन्याएं कुलकर नाभि के संरक्षण में पहुंचा दी गई थी। वे दोनों ऋषभ देव भगवान के साथ में ही संचरण करती थी। योग्य वय में आने पर शक्रेन्द्र ने अपना जीताचार जानकर कि ''अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर का पाणिग्रहरण करना मेरा कर्तव्य है'' भरत क्षेत्र में आकर देव देवियों के सहयोग से सुमंगला और सुनंदा कुंवारी कन्याओं के साथ भगवान की विवाह विधि सम्पन्न की।

भगवान ऋषभ देव की दीक्षा- 83 लाख पूर्व (20+63) कुमारावस्था एवं राज्य काल का व्यतीत होन पर चैत्र वदी 9 ग्रीष्म ऋतु के पहले महीने पक्ष चैत्र वदी नवमी के दिन भगवान ने विनीता नगरी के बाहर सिद्धार्थ वन नामक उद्यान में दीक्षा अंगीकार की। दीक्षा महोत्सव 64 इन्द्रों ने किया। साथ में 4000 व्यक्तियों ने भी संयम अंगीकार किया। एक वर्ष पर्यन्त भगवान ने देवदूष्य वस्त्र धारण किया- कंधे पर रखा। एक वर्ष तक मौन एवं तप अभिग्रह धारण किया। प्रथम पारणा एक वर्ष से राजा श्रेयांस कुमार के हाथ से हुआ। 1000 वर्ष तक तप संयम से आत्मा की भावित करते हुए भगवान ने विचरण किया। 1 हजार वर्ष व्यतीत हाने पर पुरिमताल नगर के बहार शकटमुख उद्यान में ध्यानावस्था में तेले की तपस्या में फागुण वदी 11 को केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुआ।

भगवान ने उपदेश देना प्रारम्भ किया, चार तीर्थ की स्थापना की 84 गण 84 गणधर ऋषभसेन प्रमुख 84000 श्रमण, ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुख 3 लाख श्रमणिया, श्रेयांस प्रमुख तीन लाख पांच हजार श्रावक, एवं सुभद्रा प्रमुख पांच लाख 54 हजार श्राविकाएं हुई। भगवान के असंख्य पाट तक केवल ज्ञान प्राप्त होता रहा, इसे युगान्तरकृत भूमि कहा गया है। एवं भगवान के केवल ज्ञान उत्पत्ति के अंतमूहुर्त बाद मोक्ष जाना प्रारम्भ हुआ, इसे पर्यायान्तर कृत भूमि कहा गया है।

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के प्रथम राजा, प्रथम श्रमण, प्रथम तीर्थंकर प्रथम केवली हुए। पांच सौ धनुष का उनका शरीरमान था। एक लाख पूर्व संयम पर्याय, 83 लाख पूर्व गृहस्थ जीवन, यों 84 लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण कर के माघ वदी 13 के दिन, 10 हजार साधुओं के साथ 6दिन की तपस्या में अष्टापद पर्वत पर भगवान ऋषभदेव ने परम निर्वाण को प्राप्त किया। देवों ने भगवान एवं श्रमणों के शरीर का अग्नि संस्कार किया। उस दिन से तीसरे आरे के 81 पक्ष (3 वर्ष 8 महीना) अवशेष रहे थे। यह ऋषभदेव भगवान का वर्णन कहा गया है। सभी अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अंतिम भाग का वर्णन एवं प्रथम तीर्थंकर का वर्णन यथायोग्य नाम परिवर्तन आदि के साथ उक्त प्रकार से समझ लेना चाहिए। यह तीसरा आरा दो क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का होता है।

दुखमा सुखमी चौथा आरा- प्रथम तीर्थंकर के मोक्ष जाने के 3 वर्ष, साढ़े आठ मास बाद चौथा आरा प्रारम्भ होता है पूर्वापेक्षया पदार्थों के गुण धर्म में अनंतगुणी हानि होती है। इस आरे में मुनष्यों की अवगाहना अनेक धनुष की अर्थात् 2 से 500 धनुष की होती है। उम्र के प्रारंभ में जघन्य अंतमुहुर्त की, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व की होती है और आरे के अंत में जघन्य अंतमुहुर्त की उत्कृष्ट साधिक सौ वर्ष अर्थात् 200 वर्ष से कुछ कम होती है। 6संहनन 6संस्थान एवं आरे के प्रारम्भ से 32, अंत में 16पसलियें मनुष्यों के शरीर में होती है। 72 कला, खेती, व्यापार, शिल्प, कर्म, मोह-भाव, वैर, विरोध, युद्ध-संग्राम, रोग, उपद्रव आदि अनेक कर्मभूमिज अवस्थाएं होती है। इस काल में 23 तीर्थंकर 11 चक्रवर्ती होते है। एक तीर्थंकर और एक चक्रवर्ती तीसरे आरे में हो जाते हैं। 9 बलदेव 9 वासुदेव 9 प्रतिवासुदेव आदि विशिष्ट पुरूष होते हैं। इस काल में जन्में हुए मनुष्य चारों गति में और मोक्ष गति में जाते हैं। इस समय युगल काल नहीं होता है, और हिंसक जानवर एवं डांस मच्छर आदि क्षुद्र जीव जन्तु मनुष्यों के लिए कष्ट प्रद होते हैं। राजा, प्रजा, सेठ मालिक नौकर दास आदि उच्च-निम्न अवस्थाएं होती है। काका, मामा, नाना, दादा, दादी, पौत्र, प्रपौत्र, मौसी, भूआ, आदि कई सम्बन्ध होते हैं। और भी जिन-जिन भवों का प्रथम आरे में निषेध किया गया है वे सभी भाव इस आरे में पाये जाते हैं।

इस आरे के 75 वर्ष साढ़े आठ महिने अवशेष रहने पर 24 वे तीर्थंकर का जन्म होता है। एवं 3 वर्ष साडे आठ महिने रहने पर 24 वें तीर्थंकर निवाण को प्राप्त करते हैं। यह आरा एक क्रोड़ क्रोड़ सागरोपम में 42000 वर्ष कम का होता है।

पांचवां ''दुखमी'' आरा- 24वें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के 3 वर्ष साढ़े आठ महीने बीतने पर पांचवां दुखमी आरा प्रारम्भ होता है। इन आरों के नाम से सुख दुःख का स्वभाव भी स्पष्ट होता है अर्थात् पहला दूसरा आरा सुख मय होता है दुःख की कोई गिनती वहां नहीं है। तीसरे में अल्प दुःख है अर्थात् अंत में मिश्रण काल और कर्मभूमिज काल में दुःख, क्लेश, कषाय, रोग, चिन्ता आदि होते हैं। चौथे आरे में सुख और दुःख दोनों है। अर्थात् कई मनुष्य सम्पूर्ण जीवन भर मानुषिक सुख ही भोगते हैं। पुण्य से प्राप्त अपार धन राशि में हीं संतुष्ट रहते हैं और फिर दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करते हैं अधिक मानव संसार प्रपंच, जीवन व्यवस्था, कषाय क्लेश में पड़े रहते हैं उसके अनंतर पांचवां आरा दुःखमय है अर्थात् इस काल में सुख की कोई गिनती नहीं है मात्र दुःख ही दुःख चौतरफ घेरे रहता है। सुखी दिखने वाले भी दिखने मात्र के होते हैं। वास्वत में वे भी पग-पग पर तन-मन-धन-जन के दुःखों से व्याप्त होते हैं।

पूर्व की अपेक्षा इस आरे में पुद्गल स्वभाव में अनंत गुणी हानि होती है। मनुष्यों की संख्या अधिक होती है। उपभोग परिभोग की सामग्री हीनाधिक होती रहती है। दुष्काल दुर्भिक्ष होते रहते हैं। रोग, शोक, बुढ़ापा, मरीमारी, जन-संसार, वैर-विरोध, युद्ध-संग्राम, होते रहते हैं। जन स्वभाव भी क्रमशः अनैतिक हिंसक क्रूर बनता जाता है। राजा नेता भी प्रायः अनैतिक एवं कर्तव्यच्युत अधिक होते हैं। प्रजा के पालन की अपेक्षा शोषण अधिक करते हैं। चोर डाकु लुटेरे दुर्व्यसनी आदि लोग ज्यादा होते हैं, धार्मिक स्वाभाव के लोग कम होते हैं। धर्म के नाम से ढोंग ठगाई करने वाले भी कई होते हैं।

इस आरे में जन्मने वाले चारों गति में जाते हैं, मोक्ष गति में नहीं जाते हैं। 6संघयण 6संस्थान वाले होते हैं एवं प्रारंम्भ में 16और अंत में 8पसलिये मानव शरीर में होती है। अवगाहना अंत में उत्कृष्ट दो हाथ और प्रारम्भ में मध्य में अनेक हाथ होती है। अनेक हाथ से 7 या 10 हाथ हो सकती है। एक हाथ करीब 1 फुट का माना गया है। उम्र प्रारम्भ में मध्य में उत्कृष्ट 200 वर्ष से कुछ कम हो सकती है। अंत में उत्कृष्ट 20 वर्ष होती है। इस काल में मनुष्यों में विनय, शील, क्षमा, लज्जा, दया, दान, न्याय, नैतिकता, सत्यता, आदि गुणों की अधिकतम हानि होती है और इसके विपरीत अवगुणों की अधिकतम वृद्धि होती है। गुरू और

शिष्य भी अविनीत अयोग्य अल्पज्ञ होते हैं। चारित्रनिष्ट क्रमशः कम होते जाते हैं। चारित्रहीन अधिक होते जाते हैं। धार्मिक सामाजिक और राजकीय मर्यादालोपक बढ़ते जाते हैं और मर्यादा पालक घटते जाते हैं एवं इस आरे में दस बोलों का विच्छेद होता है। भगवान महावीर स्वामी अंतिम तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी तक 12+8+44 = 64 वर्ष तक केवलज्ञान रहा, उसके बाद इस आरे के अंतिम दिन तक साधु साध्वी श्रावक श्राविका धर्म की आराधना करने वाले एवं देवलोक में जाने वाले होते हैं।

विच्छेद के दस बोल– 1. परम अवधिज्ञान 2. मनःपर्यव ज्ञान 3 केवल ज्ञान 4-6 तीन चारित्र 7. पुलाक लब्धि 8. आहारक शरीर 9. जिन कल्प 10. दो श्रेणी उपशम और क्षायिक।

कई लोग भिक्षु पडिमा, एकल विहार, संहनन आदि का भी विच्छेद कहते हैं किन्तु वह कथन आगम से सम्मत नहीं है अपितु विपरीत भी होता है। भगवान महावीर के शासन में 1000 वर्ष बाद सम्पूर्ण पूर्व ज्ञान का मौलिक रूप में विच्छेद हुआ, आंशिक रूपांतरित अवस्था में अब भी उपांग छेद आदि मे विद्यमान है। 21 हजार वर्ष तक भगवान महावीर का यह शासन उतार चढ़ाव के झोले खाता हुआ भी चलेगा। सर्वथा (आत्यंतिक विच्छेद) भगवान के शासन की इस मध्यावधि में नहीं होगा। किन्तु छट्ठा आरा लगने पर पांचवें आरे के अंतिम दिन ही होगा। प्रथम प्रहर में जैन धर्म, दूसरे प्रहर में अन्य धर्म तीसरे प्रहर में राज धर्म, चौथे प्रहर में अग्नि का विच्छेद होगा। इसी प्रकार का वर्णन सभी अवसर्पिणी के पांचवे आरे का समझना। यह आरा 21000 वर्ष का होता है।

छट्ठा दुःखमा दुःखमी आरा– यह आरा भी 21 हजार वर्ष का होताहै। महान दुःख पूर्ण यह काल होता है। इस समय में दिखने मात्र का भी सुख नहीं रहता है वह घोर दुःख वर्णन नरक के दुःखों की स्मृति कराने वाला होता है। इस आरे का वर्णन भगवती सूत्र के श. 7 उ. 6में देखें।

उत्सर्पिणी काल– यह काल भी 10 क्रोडा क्रोड सागरोपम का होता हैं। इसमें भी 6आरे (विभाग) होते हैं। जिनके नाम अवसर्पिणी के समान ही है किन्तु क्रम इनका उल्टा होता है। यथा -पहले आरे का नाम 'दुःखमा दुःखमी' होता है और छट्टे आरे का नाम सुखमा सुखमी होता हैं।

पहला ''दुःखमा दुःखमी'' आरा– उत्सर्पिणी के पहले आरे का वर्णन अवसर्पिणी के छठे आरे के अंतिम स्वभाव के समान है अर्थात् छट्ठे आरे के प्रारम्भ में जो प्रलय का वर्णन है वह यहां नहीं समझना किन्तु उस आरे के मध्य और अंत में क्षेत्र एवं जीवों की दशा है, वही यहां भी समझना । यह आरा 21000 वर्ष का होता हैं।

उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम को होता हैं। शेष आरे किसी भी दिन महिने में प्रारम्भ हो सकते है। उसका कोई नियम नहीं हैं क्योकि आगम में वैसा कथन नहीं है अपितु ऐसा नियम मानने पर आगम विरोध भी होता है। यथा - ऋषभ देव भगवान माघ महीने में मोक्ष पधारे उसके तीन वर्ष साढ़े आठ महिने बाद श्रावण वदी एकम किसी भी गणित से नहीं आ सकती हैं। अतः चौथा आरा किसी भी दिन प्रारम्भ हो सकता है, उसी तरह अन्य आरें भी। मूल पाठ में केवल उत्सर्पिणी का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम से कहा गया हैं। अन्य आरों के लिये मनकल्पित नहीं मानना ही श्रेयस्कर हैं।

दूसरा दुःखमी आरा– 21+21 = 42 हजार वर्ष का महान दुःख मय समय व्यतीत होने पर उत्सर्पिणी का दूसरा आरा प्रारम्भ होता हैं। इसके प्रारम्भ होते ही 1. सात दिन पुष्कर संवर्तक महामेघ मुसलधार जल वृष्टि करेगा। जिससे भरत क्षेत्र की दाहकता ताप आदि समाप्त होकर भूमि शीतल हो जावेगी। 2.फिर सात दिन तक क्षीर मेघ वर्षा करेगा जिससे अशुभ भूमि में शुभ वर्ण गंध रस आदि उत्पन्न होगें। 3. फिर सात दिन निरंतर घृत मेघ वृष्टि करेगा जिससे भूमि में स्नेह स्निग्धता उत्पन्न होगी 4. इसके

अनंतर फिर अमृत मेघ प्रकट होगा वह भी सात दिन रात निरंतर वर्षा करेगा। जिससे भूमि में वनस्पति को उगाने की बीज शक्ति उत्पन्न होगी 5. इसके अनंतर रस मेघ प्रकट होगा वह भी सात दिन मूसलधार वृष्टि करेगा जिससे कि भूमि में वनस्पति के लिए तिक्त कटुक मधुर आदि रस उत्पन्न करने की शक्ति का संचार होगा। इस प्रकार पांच सप्ताह की निरंतर वृष्टि के बाद आकाश बादलों से साफ हो जायेगा। तब भरत क्षेत्र में वृक्ष लता गुच्छ तृण औषधि हरियाली आदि उगने लगेंगें एवं क्रमशः शीघ्र वनस्पति विकास हो जाने पर यह भूमि मनुष्यों के सुख पूर्वक विचरण करने योग्य हो जायेगी। अर्थात् कुछ ही महीनों एवं वर्षो में भरत क्षेत्र का भूमि भाग वृक्ष लता, फल, फूल आदि से युक्त हो जायेगा। यहां कई लोग ऐसे भ्रमित अर्थ की कल्पना भी कर बैठते है कि मानों वृष्टि खुलते ही भूमि वृक्षादि से युक्त हो जाती है, ऐसा कथन अनुपयुक्त है क्योकि वृक्षों से युक्त होने में वर्षो लगते है और अन्य वनस्पति गुच्छ गुल्म लता आदि के फल फूल लगने में भी महिनों लगते हैं। क्योकि वे प्राकृतिक होते है कोई जादू मंतर या करामात तो नहीं है कि एक ही दिन में 42 हजार वर्षो की बंजर दग्ध भूमि में वर्षा बंद होते ही फल फूल वृक्ष तैयार हो जाय।

कालांतर से जब पृथ्वी वृक्ष लता फल फूल आदि से युक्त हो जायेगी तब वैताढ्य पर्वत के गुफा वासी मानव देखेंगे कि अब हमारे लिए क्षेत्र सुख पूर्वक रहने विचरने योग्य हो गया है इस क्षेत्र में जीवन निर्वाह योग्य अनेक वृक्ष लता पौधे बेलें और उनके फल फूल आदि विपूल मात्रा में उपलब्ध होने लग गये हैं। तब उनमें से कई सभ्य संस्कार के मानव कभी आपस में इकट्ठे होकर मंत्रणा करेंगे कि ''अब विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ उपलब्ध होने लगे हैं, अब हम में से कोई भी मानव मांसाहार नहीं करेगा और जो कोई इस नियम को भंग करेगा उसे हमारे समाज से निष्कासित माना जायेगा और कोई व्यक्ति उस मांसाहारी की संगति नहीं करेगा, उसके निकट भी नहीं जायेगा, सभी उससे घृणा नफरत करेंगे, उसकी छाया के स्पर्श का भी वर्जन करेंगे। ''इस प्रकार की एक व्यवस्था वे मानव कायम कर जीवन यापन करते हैं। शेष वर्णन अवसर्पिणी के पांचवे आरे के समान हैं। धर्म प्रवर्त्तन इस आरे में नहीं होते हैं। फिर भी मानव चारों गति में जाने वाले होते हैं। जब कि इसके पूर्व के 42 हजार वर्षो में मानव प्रायः नरक तिर्यञ्च में ही जाते हैं। इस दूसरे आरे में धर्म प्रवर्त्तन नहीं होते हुए भी मनुष्यों में नैतिक गुणों का क्रमिक विकास होता है अवगुणों का ह्रास होता हैं। इस प्रकार यह 21 हजार वर्ष के काल का दूसरा आरा व्यतीत होता हैं।

टिप्पण– इस दूसरे आरे की आगमिक स्पष्ट वर्णन वाली निरंतर पांच साप्ताहिक वृष्टि के लिए जबरन सात साप्ताहिक मान कर एवं कालांतर से मानव द्वारा की जाने वाली मांसाहार निषेध की प्रतिज्ञा को लेकर कई एकतरफा दृष्टि वाले लोग इसी को संवत्सरी का उद्‌गम कह बैठते हैं। कहां तो श्रमण वर्ग के द्वारा निराहार मनाई जाने वाली धार्मिक पर्व रूप संवत्सरी और कहां सचित वनस्पति कंद मूलादि खाने वाले असंयत धर्म रहित काल वाले मानवों का जीवन। संवत्सरी का सुमेल किंचित भी नहीं होते हुए भी शास्त्र के नाम से उन अव्रती सचित भक्षी मानवों द्वारा चलाई गई सामाजिक सामान्य व्यवस्था को संवत्सरी मान कर उसका अनुसरण स्वयं करना साथ ही तीर्थंकर भगवान को गणधरों को और व्रती श्रमणों को उनका ही अनुसरण करने वाला बताकर हंसी करवाने का ही कार्य करते हैं। ऋषि पंचमी का उद्गम तो ऋषि महिर्षियों द्वारा धर्म प्रवर्त्तन के साथ होता है। उसे भुला कर पांच सप्ताह के सात सप्ताह करके और वर्षा बंद होते ही वृक्षों की बेलों की, फलों की, धान्यों की, असंगत कल्पना करके अव्रती सचित भक्षी लोगों की नकल से संवत्सरी को खींचतान कर तीर्थंकर धर्म प्रणेताओं से जोड कर के इस प्रकार की आत्म संतुष्टी करते हैं। पर्व का बहुत बड़ा प्रमाण 49 दिन का खोज निकाला है। किन्तु इन पंचम काल के प्रभाव से ऐसी कई कल्पनाएं भेड़ चाल से प्रवाहित होती रहती है और होती रहेगी। सहीं चितन और ज्ञान का संयोग महान् भाग्यशालियों को ही प्राप्त होगा।

तीसरा दुःखमा सुखमी आरा– अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान यह तीसरा आरा होता है। इसके तीन वर्ष साढ़े आठ महिने बीतने पर प्रथम तीर्थंकर माता के गर्भ में आते हैं। नौ महीने साढ़े सात दिन से जन्म होता है। फिर यथा समय

दीक्षा धारण करते हैं एवं केवलज्ञान होता है। चार तीर्थ की स्थापना करते है। धर्म प्रवर्त्तन करते हैं। तब 84 हजार वर्ष से विच्छेद हुआ जिन धर्म पुनः प्रारम्भ होता है। उपदेश श्रवण करके कई जीव श्रमण बनते हैं। कई गृहस्थ धर्म अंगीकार करते हैं। शेष सम्पूर्ण वर्णन पूर्व वर्णित चौथे आरे के समान समझना चाहिये। यह आरा एक क्रोड़ा क्रोड़ सागर में 42000 वर्ष कम का होता है। इसमें पुद्गल-स्वभाव, क्षेत्र स्वभाव, में क्रमिक गुण वर्द्धन होता है।

चौथा सुखमा दुःखमी आरा– इस आरे के तीन वर्ष साढ़े सात महीना व्यतीत होने पर अंतिम 24वें तीर्थकर का जन्म होता है उनकी उम्र 84 लाख पूर्व होती है 83 लाख पूर्व गृहस्थ जीवन में रहते हैं एक लाख पूर्व संयम पालन करते हैं। सम्पूर्ण वर्णन ऋषभ देव भगवान के समान जानना। किन्तु व्यवहारिक ज्ञान सिखाना, 72 कला सिखाना आदि वर्णन यहां नहीं समझना। क्यों कि यहां कर्म भूमि काल तो पहले से है ही, उसके बाद युगल काल आता है। अंतिम तीर्थकर के मोक्ष जाने के बाद क्रमशः शीघ्र ही साधु साध्वी श्रावक श्राविका एवं धर्म का और अग्नि का विच्छेद हो जाता है। 10 प्रकार के विशिष्ट वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं। मानव अपने कर्म, शिल्प व्यापार आदि से मुक्त हो जाते हैं। यो क्रमिक युगल काल रूप में परिवर्तन होता जाता है। पल्योपम के आठवें भाग तक कुलकर व्यवस्था और मिश्रण काल चलता है। फिर कुलकरों की आवश्यकता भी नहीं रहती है। धीरे धीरे मिश्रण काल से परिवर्तन हो कर शुद्ध युगल काल हो जाता है। पूर्ण सुखमय शान्तिमय जीवन हो जाता है। शेष वर्णन अवसर्पिणी के तीसरे दूसरे और पहले आरे के समान ही अत्सर्पिणी के चौथे पाचवें छट्ठे आरे का है एवं कालमान भी उसी प्रकार है अर्थात् यह चौथा आरा दो क्रोड़ा क्रोड सागरोपम का होता है फिर पांचवा आरा तीन क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का और छट्ठा आरा चार क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का होता है। पांचवे आरे का नाम ''सुखमी'' आरा एवं छट्ठे आरे का सुखमा सुखमी है।

टिप्पण– ये 6आरों रूप उत्सर्पिणी काल, 5 भरत, 5 एरावत इन दस क्षेत्रों में ही होता है। शेष 5 कर्म भूमि रूप पांच महाविदेह क्षेत्र में, 30 अकर्म भूमि में और 56अंतरद्वीपों में यह काल परिवर्तन नहीं होता है। उन 11 क्षेत्रों में सदा एक सरीखा काल प्रवर्त्तमान होता है। यथा-

5. महाविदेह में– अवसर्पिणी के चौथे आरे का प्रारम्भ काल

10. देवकुरू उत्तर कुरू में– अवसर्णिणी के प्रथम आरे का प्रारम्भ काल

11. हरिवर्ष रम्यक वर्ष में– दूसरे आरे का प्रारम्भ काल

10. हेमवंत हेरण्यवंत में– तीसरे आरे का प्रारम्भ काल

56. अंतर द्वीपों में– तीसरे आरे का अंतिम त्रिभाग का शुद्ध युगल काल, अर्थात् मिश्रण काल से पूर्ववर्त्ती काल।

तीसरा वक्षस्कार–

भरत चक्रवर्ती दक्षिण भरत क्षेत्र के मध्य जगती एवं वैताढय पर्वत दोनों से 114 $\frac{11}{19}$ योजन दूर विनीता नगरी थी। जो शक्रेन्द्र की आज्ञा से वैश्रमण देव की बुद्धि द्वारा भगवान ऋषभ देव के लिये निर्माण कराई थी। वह 12 योजन चौडी द्वारिका के समान प्रत्यक्ष देवलोक भूत ऋद्धि समृद्वि से सम्पन्न थी। वहां भगवान ऋषभदेव का ज्येष्ठ पुत्र भरत स्वयं भगवान द्वारा प्रदत्त राज्य का कुशल संचालन एवं राज्य ऋद्धि का भोगोपभोग करते हुए सुख पूर्वक रहता था।

एक समय उस भरत राजा की आयुधशाला में– शास्त्रागार में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ, जो एक हजार देवों द्वारा सेवित था। आयुधशाला के अधिकारी ने भरत राजा को खुशखबर दी। भरत राजा ने सिंहासन से उतर कर पादुका खोलकर मुख पर उत्तरासंग करके हाथ जोड़ कर आयुधशाला की दिशा में 7-8 कदम जाकर बांया घुटना ऊंचा रखते हुए दाहिने घुटने को जमीन

पर रखते हुए चक्र रत्न को प्रणाम किया। फिर आयुधशाला के अधिकारी (खुशखबर लाने वाले) को मुकुट के अतिरिक्त आभूषण एवं विपुल धन प्रीतिदान में दिया। उसे सत्कारित सम्मानित कर अर्थात् धन्यवाद देकर विदा किया। फिर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बैठा।

राजा ने नगरी को सजाने का आदेश दिया एवं सभा विसर्जित की। स्वंय भी स्नानादि करके विभूषित होकर तैयार हो गया। फिर मंत्री मंडल एवं प्रमुख जनों से परिवृत्त होकर ऐश्वर्य के साथ आयुधशाला की तरफ प्रस्थान किया। आयुधशाला में प्रवेश करते हुए भरत राजा को ज्यों ही चक्र रत्न दृष्टिगोचर हुआ तब उसे प्रमाण किया फिर निकट पहुंच कर चक्र रत्न का प्रमार्जन, जल सिंचन, चंदन अनुलेपन किया। पुष्प-माला, वस्त्र, आभूषण आदि समर्पित कर पूजन सम्मान दिया। फिर स्वच्छ सफेद चावलों से स्वस्तिक आदि मंगलों का आलेखन किया। फिर उसके सम्मुख सुगन्धित विविध पुष्पों को अर्पित किया। धूप आदि सम्पूर्ण पूजन विधि पूर्ण कर पूर्वोक्त विधि से बाया घुटना ऊंचा करके प्रणाम किया। उसके बाद वहां से लौटाकर राज सभा में आया। अष्ट दिवसीय प्रमोद की घोषणा की एवं महोत्सव की व्यवस्था करवाई ।

महामहिमा महोत्सव के पूर्ण होने पर वह चक्ररत्न आयुधशाला से स्वतः निकल कर मागध तीर्थ की दिशा में चलने लगा। भरत चक्रवर्ती ने भी पूर्ण तैयारी के साथ दिग्विजय के लिये सैन्य बल सहित प्रस्थान कर दिया। चक्र के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से अपने हस्तिरत्न पर आरूढ होकर, भरत राजा मार्ग में यथास्थान पडाव करते हुए, पूर्व की और बढने लगा। अनेक नगरों राज्यों आदि में अपनी विजय पाताका फहराते हुए, भरत राजा गंगा नदी के किनारे-किनारे होते हुए, जहां गंगा नदी समुद्र में प्रवेश करती है, उसके निकट मागध तीर्थ है, वहां पहुंच गया। चक्र रत्न भी यथास्थान आकाश में स्थिर हो गया । (फिर आयुधशाला बन जाने पर उसमें पहुंच जाता हैं।)

बढ़ई रत्न ने पडाव के रहने की सारी व्यवस्था एवं पौषध शाला की तथा आयुशाला आदि की रचना की। भरत राजा ने पौषध शाला में जाकर यथा विधि तेला किया। फिर अश्व रथ पर आरूढ होकर चतुरंगिणि सेना सहित मागध तीर्थ के पास आया। रथ की धूरी जल में पहुँचे वहां तक जल में प्रवेश किया। फिर धनुष उठाकर प्रत्यंचा खीचं कर इस प्रकार कहा कि-''हे नाग कुमार सुपर्ण कुमार आदि देवो ! जो मेरे इस बाण की मर्यादा से बाहर है, उन्हें मैं प्रणाम करता हूं और मेरे बाण की सीमा में हैं वे मेरे विषयभूत है यों कह कर बाण छोड़ा। जो 12 योजन जाकर मागध तिर्थाधिपति देव के भवन में गिरा उसे दखते ही पहले तो वह देव अत्यंत कुपित हुआ। किन्तु बाण के पास आकर उसे उठाकर देखा उसमें अंकित शब्द पढ़े तो उसका क्रोध शांत हो गया और अपना कर्तव्य जीताचार उसके स्मृति में आ गया। वह शीघ्र विविध भेंटणा लेकर भरत राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। आकाश में रहे हुए हाथ जोड़ कर राजा को जय विजय शब्दों से बधाया, सम्मानित किया और कहा कि में आपके जीते हुए देश का निवासी हूं, आपका आज्ञावर्ती सेवक हूं। फिर भरत राजा ने उसकी भेंट स्वीकार करते हुए उसे सत्कारित सम्मानित कर विदा किया। फिर अपने आवास में जाकर राजा ने पारणा किया। फिर वहां मागध तीर्थ विजय का अष्टान्हिक महोत्सव मनाया। तदनंतर चक्र रत्न ने आयुधशाला से निकल कर दक्षिण दिशा में प्रस्थान किया। भरत चक्रवर्ती भी मार्ग में दिग्वजय करते हुए चक्र के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पार करने लगा। चक्ररत्न वरदाम तीर्थ के पास आकर आकाश में स्थित हो गया। यह तीर्थ दक्षिण दिशा में विनीता नगरी की दक्षिणी सीध में है। और जम्बूद्वीप की जगती के दक्षिणी वैजयंत द्वार की सीध में है। मागध तीर्थ विजय के समान तेला, बाण फेंकना, देव का आना आदि वर्णन उसी प्रकार समझना। अष्ट द्विवसीय महोत्सव के अंनतर चक्ररत्न ने वहां से प्रस्थान कर दिया।

अब चक्र रत्न दक्षिण भरत से पश्चिम भरत की ओर चलने लगा। मार्ग के आस पास के क्षेत्रों में विजय पताका फहराते हुए भरत राजा पश्चिम दिशा में सिन्धु नदी के समुद्र में प्रवेश करने के स्थान के निकट रहे प्रभास तीर्थ के पास पहुंच गया। चक्र रत्न आकाश में स्थिर हो गया फिर वहां प्रभास तीर्थाधिपति का तेला आदि विधि पूर्ण कर भरत राजा ने उसे अपने अधीनस्थ बनाया एवं वहां भी आठ दिवस का महोत्सव मनाया गया।

महोत्सव के पूर्ण होने पर चक्ररत्न पूर्व दिशा में सिन्धु देवी के भवन की तरफ रवाना हुआ। सिन्धु नदी के किनारे-किनारे चलते हुए आस-पास के क्षत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए भरत राजा सिन्धु नदी वैताढ्य पर्वत के नीचे से निकल कर दक्षिण दिशा में विनीता नगरी की सीध तक चलती है फिर पूर्व की तरफ मुड जाती है यहीं मोड पर सिंधु देवी का भवन है। यहां पर पड़ाव डाला गया, तेला किया, सिन्धु देवी का स्मरण करते हुए पौषध पूर्ण किया। देवी का आसन चलायमान हुआ अर्थात् अंग स्फुरण हुआ। अपने ज्ञान में उपयोग लगा कर देवी ने भरत राजा के आगमन को जाना एवं विविध भेंटना लेकर पहुंची और निवेदन किया कि मैं तुम्हारी आज्ञा की सेविका (किंकरी) हूं। फिर भरत राजा ने उस देवी को सत्कारित सम्मानित कर विदा किया।

वहां सिन्धु नदी के उस मोड स्थान से उत्तर पूर्व दिशा में प्रयाण किया यथाक्रम से मार्ग के एवं आस पास के क्षेत्र को अपने विषयभूत बनाते हुए भरत महाराजा वैताढ्य पर्वत के मध्य स्थान के निकट पंहुचे। वैताढ्य-गिरिकुमार का स्मरण करते हुए पौषध युक्त तेला करने पर वह देव भी भरत राजा की सेवा में उपस्थित हुआ एवं आधीनता स्वीकार कर, भेंटणा देकर, यथास्थान चला गया।

वहां से स्कंधावार ने पश्चिम दिशा में प्रयाण किया एवं तिमिश्रा गुफा के निकट पहुंच कर स्थाई पडाव डाला। भरत राजा ने तिमिश्रा गुफा के मालिक देव कृतमाली को मन में अवधारण कर तेला किया। पूर्ववत् आसन कम्पन आदि सम्पूर्ण वर्णन जानना यावत् उसका अट्ठाई महोत्सव मनाया गया ।

इसके बाद राजा ने सुषेण नामक सेनापति रत्न को बुलाकर दो दिशा में सिन्धु नदी से एवं दो दिशा में क्रमशः सागर और वैताढय पर्वत से घिरे हुए निष्कुंट क्षेत्र (दूसरे भरत खंड) में जाकर सभी क्षेत्र को जीत कर अपनी आज्ञा शिरोधार्य करवाने का आदेश दिया। यह भरत क्षेत्र के छः में से दूसरा छोटा खंड हैं। अब तक पहला बडा खंड (मध्य खंड) तीन तीर्थ सिन्धु देवी वैताढय गिरि कुमार देव एवं कृतमाल देव की विजय यात्रा के बीच में आने वाला क्षेत्र लगभग जीत लिया गया था। कुछेक क्षेत्र खंड प्रताप गुफा के आस-पास अवशेष रहते है वे लौटते समय जीते जाते हैं। अतः अब क्रम से दूसरा तीसरा चौथा पांचवा फिर छट्ठा खंड साधन किया जाता हैं। सुर्षेण सेनापति ने आज्ञा पाकर पूर्ण तैयारी के साथ चर्म रत्न आदि लेकर हस्तिरत्न पर आरूढ होकर प्रस्थान किया। सिन्धु नदी के पास पहुंच कर चर्मरत्न को लेकर नावा रूप में तैयार किया सम्पूर्ण स्कंधावार सहित सिन्धु नदी को पार किया। सिन्धु निष्कुंट (दूसरे भरत खंड) में पहुंच कर दिशा विदिशाओं में पडाव करते हुए विजय पताका फहराते हुए उस खंड के ग्राम नगर राज्य देश आदि के अधिपतियों को अपनी आज्ञा में किया अधीनस्थ बनाया एवं भरत चक्रवर्ती की आज्ञा को पूर्ण कर सेनापति सुषेण पुनः लौट आया। चर्म रत्न द्वारा सिन्धु नदी को पार करके भरत राजा के पास पहुंच कर उन्हें जय विजय से बधाया एवं कार्य साधन की खुश खबर दी, साथ ही प्राप्त भेंटों को समर्पित किया। फिर राजा भरत ने सेनापति को सत्कारित सम्मानित कर विसर्जित किया। सेनापति भी वस्त्रमय पडाव वाले निज आवास (तम्बू के डेरे) में पहुंचा एवं स्नान भोजन नृत्य गान आदि विविध मानुषिक काम भोगों का सेवन करते हुए सुख पूर्वक रहने लगा। यहां तक दो खंड साधन रूप कार्य अर्थात् मंजिल पूर्ण हो जाती हैं। अतः चक्रवर्ती यहां कुछ दिन विश्रांति रूप में निवास करते हैं।

कालांतर से भरत चक्रवर्ती ने सुषेण सेनापति को बुलाकर तमिश्रा गुफा द्वार खोलने का आदेश दिया। सेनापति ने पोषधयुक्त तेला किया। सुसज्जित होकर विशाल जन्मेदिनी एवं सेना सहित द्वार के पास पहुंचा, द्वार को देखते ही प्रणम किया, मोर-पिच्छी से प्रमार्जन किया, फिर यथा विधि उसका पूजन किया। पुनः सिरसावर्त्त प्रणाम किया। फिर दंड रत्न हाथ में लिया, सात-आठ कदम पीछे सरक कर, दंड रत्न से द्वार पर तीन बार जोर से प्रहार किया। जिससे महान् आवाज के साथ उस जुडे हुए दरवाजे के दोनों विभाग अंदर की तरफ सरकाते हुए दोनों बाजू में पीछे रही भिति के पास जाकर रूक गये। दोनों तरफ रूके हुए द्वार विभागों का आपसी अंतर एवं द्वार का प्रवेश मार्ग सर्वत्र समान 4 योजन हो गया।

द्वार खोल कर सेनापति भरत चक्रवर्ती के पास आया। जय विजय शब्दों से बधाया एवं द्वार खोले जाने का निवेदन किया। तब भरत चक्रवर्ती का चक्ररत्न आयुधशाला से निकल कर आकाश में चलने लगा। भरत चक्रवर्ती अपने हस्ति रत्न पर आरूढ हुआ। हाथी के मस्तक पर दाहिनी बाजू (गुफा में प्रकाश करने वाला) मणिरत्न बांध दिया। फिर चक्र निर्दिष्ट मार्ग से राजा चलते हुए गुफा के पास पहुंचा और दक्षिणी द्वार से गुफा में प्रवेश किया।

तमिश्रा नामक गुफा सघन अंधकार मय थी, क्योंकि वह 50 योजन लंबी जो थी। अतः चक्रवती ने स्थाई प्रकाश के लिये कांगणि रत्न हाथ में लिया और उसके द्वारा प्रत्येक योजन के अंतर से गुफा की दोनों बाजू की भित्तियों पर कुल 49 मंडल बनाये। वे मंडल चक्र की नेमि के आकार से प्रतिपूर्ण चन्द्र के आकार वाले 500 धनुष की लम्बाई चौड़ाई एवं साधिक तीन गुणी वाले बनाये गये थे। चूड़ी के समान वलयाकार नहीं बनाये गये थे। प्रत्येक मंडल गुफा के एक योजन क्षेत्र को प्रकाशित करता है अर्थात् आधा योजन दोनों बाजू, ऊपर आठ योजन और सामने 12 योजन उस मंडल का प्रकाश फैलता हैं।

पहला मंडल द्वार पर प्रवेश मुख से एक योजन दूरी पर, दूसरा द्वार के पीछे उसे रोकने वाले तोडक पर अर्थात् द्वार की आलंबन भित्ति पर, तीसरा मंडल योजन की समाप्ति पर, चौथा मंडल चौथे योजन की समाप्ति पर गुफा की एक भित्ति पर, पाचंवा मंडल पांचवें योजन की समाप्ति पर दूसरी भित्ति पर यों क्रमशः छट्ठा प्रथम भित्ति पर सातवां दूसरी भित्ति पर इसी प्रकार 8, 10, 12, 14, 16, 18, 20, 22, 24, 26, 28, 30, 32, 34, 36, 38, 40, 42, 44, 46वां मंडल प्रथम भित्ति पर एवं 9, 11, 13, 15, 17, 19, 21, 23, 25, 27, 29, 31, 33, 35, 37, 39, 41, 43, 45, वां मंडल दूसरी भित्ति पर

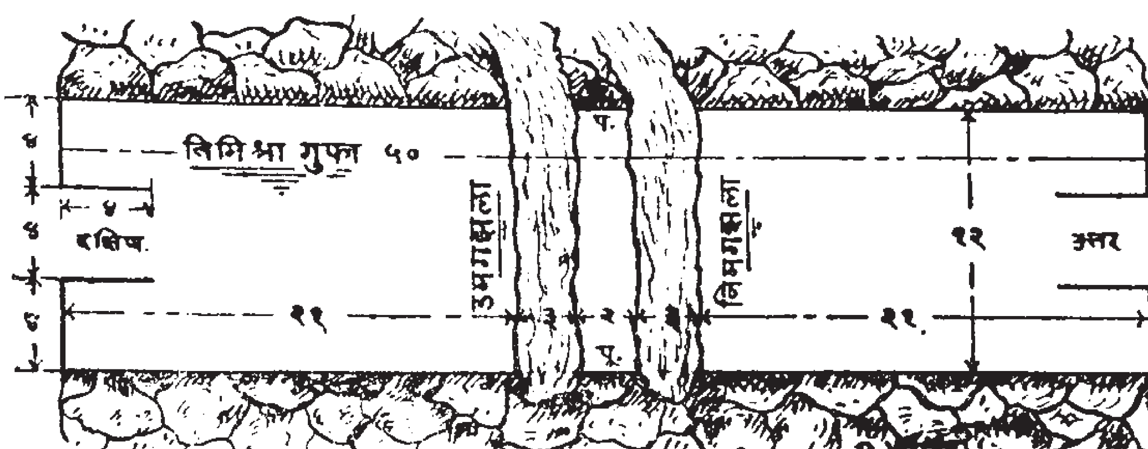

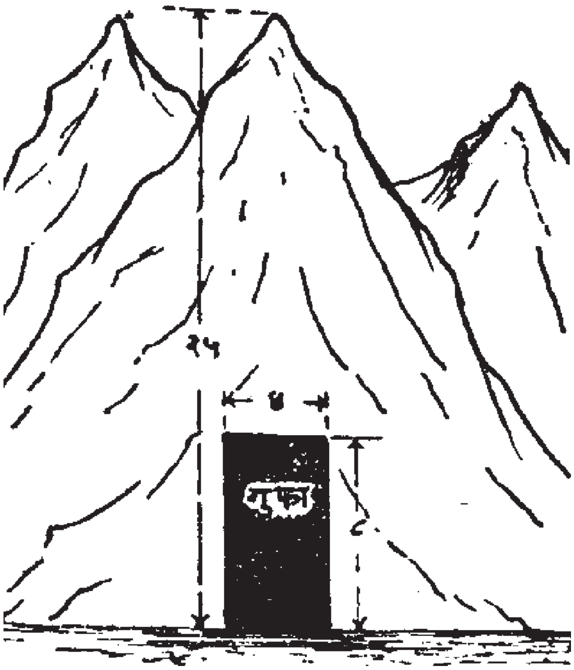

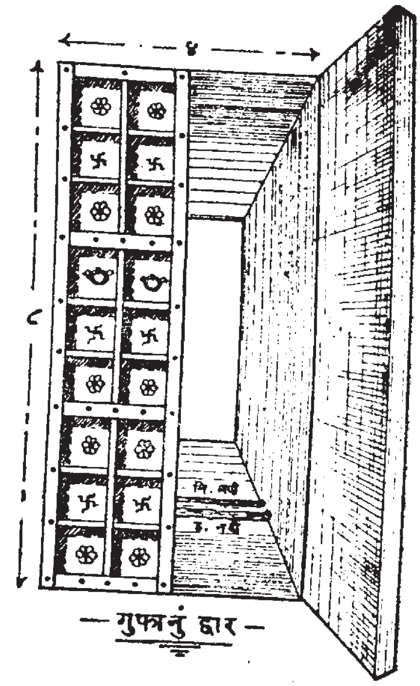

49 मंडल

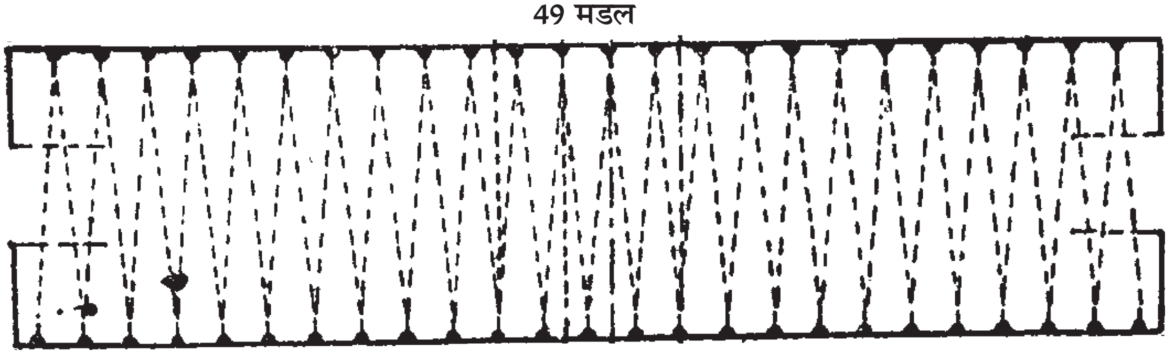

बनाये। 47 वां 48वां उत्तर दिशा के दरवाजे के दोनों तोडक पर एक-एक बनाया। फिर 49 वां मंडल उत्तरी, द्वार के दोनों विभाग के खुल जाने पर एक विभाग पर बनाया।

तमिश्रा गुफा में 12 योजन चलने पर तीन योजन की चौड़ाई (पाट) वाली उमग जला नदी के पास पहुंचे। भरत चक्रवर्ती की आज्ञा से बढई रत्न (श्रेष्ठ शिल्पी) ने उस नदी पर पुल बना दिया। जो सकड़ों खंभों पर स्थित ऊपर दोनों बाजू भित्ति युक्त था। जो यथायोग्य चौड़ा एवं तीन योजन लम्बा था। पुल बनाने पर उस उमगजला नदी को पार कर चक्रवर्ती आगे बढ़ा। दो योजन चलने के बाद फिर 3 योजन के विस्तार की निमगजला नदी के पास पहुंचे। उसी प्रकार पुल बनवाया गया दूसरी नदी को भी पार किया।

ये दोनों नदियां पूर्वी भित्ति में से प्रवाहित होती है और पश्चिमी भित्ती के नीचे चलने वालीसिन्धु नदी में समाविष्ट हो जाती हैं। उमगजला नदी में कोई भी पदार्थ या जीव पड़ जाय तो वह तीनबार घुमाकर बाहर एकांत में फेंक देती हैं और निमगजला नदी तीन बार घुमाकर अंदर नीचे जल में समाविष्ट कर देती हैं। इस कारण दोनों के सार्थक नाम हैं।

इन दोनों नदियों ने मिलकर 3+3+2 कुल आठ योजन क्षेत्र को अवगाहन किया हैं। इन नदियों के स्थान पर चक्रवर्ती गुफा की भित्ति पर वैक्रिय से मंडल कर सकता है अथवा पुल की भित्ति पर भी कर सकता हैं। सूत्र में इसका स्पष्टोल्लेख नहीं हैं।

दोनों नदियों को पार कर के भरत चक्रवर्ती सेना सहित गुफा के उत्तरी द्वार की तरफ बढने लगा। गुफा के उत्तरी द्वार स्वतः खुल गये। चक्रवर्ती के अग्र विभाग की सेना गुफा से बाहर निकलने लगी। तब उस क्षेत्र के म्लेच्छ अनार्य आपात किरात जाति के मनुष्यों ने युद्व करके सामना किया और चक्रवर्ती की अग्रिम भाग की सेना को परास्त कर दिया। फिर सुषेण सेनापति अश्वरत्न पर आरूढ़ होकर असिरत्न लेकर युद्व भूमि में उतरा। आपात किरातों की हार हुई। वे अनेक योजन दूर भाग गये और जाकर आपस में इकट्ठे होकर उन्होने सिन्धु नदी बालू रेत में मेघमुख नामक नागकुमार जाति के कुल देवता का स्मरण करते हुए निर्वस्त्र होकर तेले की आराधना की। देव का आसन चलायमान हुआ, देव आया एवं उनके आग्रह से 7 दिन की घोर वृष्टि चक्रवर्ती की सेना पर की। चक्रवर्ती ने चर्मरत्न से नावा एवं छत्र रत्न से छत्र करके सम्पूर्ण सैन्य की सुरक्षा की । सात दिन बाद भरत राजा को उपद्रव की आशंका हुई तब उन के चिंतन से 16000 देव सावधान हुए और जानकारी कर उन मेघमुख नागकुमार देवों को वहां से भगाा दिया। उपद्रव समाप्त हुआ। अपने कुल देवता मेघमुख नागकुमारों के कहने से उन किरातों ने भरत चक्रवर्ती का आधिपत्य स्वीकार किया। सत्कार सम्मान किया, क्षमा मांगी ।

भरत चक्रवर्ती ने गुफा से बाहर निकल कर यथा स्थान पडाव डाला और सेनापति को उत्तरी भरत क्षेत्र के सिन्धु निष्कुंट को जीतने के लिये भेजा। दक्षिणी भरत के सिन्धु निष्कुंट की विजय यात्रा के समान यहां भी सम्पूर्ण वर्णन जानना। विजय यात्रा के बाद कुछ समय वहां विश्राम लिया ।

फिर यथासमय चक्र रत्न रवाना हुआ भरत राजा उत्तरी भरत क्षेत्र के मध्य खंड में विजय पताका फहराते हुए चुल्ल हिमवंत पर्वत के मध्य भाग में तलहटी में पहुंचे । वहां चक्रवर्ती ने तेला करके चुल्ल हिमवंत कुमार देव के भवन में मागध तीर्थ के समान ही नामांकित बाण फेंका। जो चुल्ल हिमवंत पर्वत के शिखर तल पर रहे भवन में पहुंच गया। देव का वर्णन मागध तीर्थाधिपति देव के समान जानना यावत् उसने कहा कि मैं आपका सीमावर्ती विषयवासी देव हूं, किंकर भूत हूं। राजा ने भी उसे सम्मानित कर विदा किया।

फिर भरत चक्रवर्ती वहीं निकटवर्ती ऋषभकूट पर पहुंचे । जहां पर कि सभी चक्रवर्ती अपना नाम लिखते है उसी परंपरा के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने भी कांगणी रत्न द्वारा अपना नाम एवं परिचय लिखा कि ''मैं भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी के तीसरे आरे का प्रथम चक्रवर्ती राजा ''भरत'' हूं मैने भरत क्षेत्र को जीत लिया हैं। कोई भी मेरा प्रतिशत्रु नहीं हैं।'' उसके बाद तेले का पारणा किया।

चक्र रत्न के प्रस्थान करने पर राजा सैना सहित दक्षिण दिशा में आगे बढा। उत्तर भरत के अनेक क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य करते हुए वैताढ्य पर्वत पहुंचा। यहां पर नमि विनमि नामक विद्याधरों के प्रमुख राजाओं का स्मरण करते हुए तेला किया। विद्याधर राजाओं को अंग स्फुरण एवं मति ज्ञान में उपयोग लगाने से स्थिति का आभास हो गया। दोनों तरफ की विद्याधर श्रेणी के दोनों प्रमुख राजा आपस में मंत्रणा करके भरत चक्रवर्ती की सेवा में भेंटणा लेकर पंहुचे। जिसमें विनमि राजा स्त्री रत्न को लेकर उपस्थित हुआ। चक्रवर्ती ने पूर्वोक्त विधि अनुसार उन्हें विदा किया। तदनंतर चक्र रत्न गंगा नदी की गंगा देवी के भवन की तरफ उत्तर पूर्व में चला । सिन्धु देवी के समान यहां गंगा देवी का वर्णन जानना।

गंगा देवी के अट्ठाई महोत्सव के अनंतर चक्रदेशित मार्ग से भरत चक्रवर्ती गंगा नदी के किनारे चलते हुए दक्षिण दिशा में आगे बढ़ा। क्रमशः विजित क्षेत्र पार करते हुए खंड प्रपात गुफा के पास पहुंचा। वहां लम्बे समय के पड़ाव हेतु बढई रत्न को आदेश दिया।

तदनंतर उत्तर भरत खंड का गंगा निष्कुंट साधन (विजय) करने के लिये सेनापति रत्न को आदेश दिया। सिन्धु निष्कुंट की तरह इस पांचवे खंड को भी सेनापति ने चर्म रत्न से नदी पार कर विजीत किया एवं सर्वत्र विजय पताका फहरा कर भरत चक्रवर्ती की सेवा में निवेदन किया। अर्थात् जय विजय से भरत चक्रवर्ति को बधाया और सफलता की खुश खबर और आज्ञा पालन कर लिया गया यह जानकारी दी।

कुछ दिन विश्रांति के बाद सेनापति रत्न को खंड प्रपात गुफा का द्वार खोलने के लिये आदेश दिया गया। सुषेण सेनापति ने यथावत आदेश का पालन किया। तेला आदि सारा वर्णन तमिश्रा गुफा के द्वार खोलने के समान जानना। इस गुफा में भी उमगजला और निमगजला दो नदियों पर पुल बनाना, 49 मांडले बनाना आदि वर्णन जानना । नदियों को पार कर दक्षिण तरफ बढने पर खंड प्रपात गुफा का दक्षिणी दरवाजा स्वतः खुल जाता हैं।

चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सेना गुफा के द्वार से बाहर निकली और गंगा नदी के पश्चिम किनारे पर सैन्य शिविर स्थापित किया गया। यहां पर भरत चक्रवर्ती ने नौ निधि का तेला किया। तेला एवं स्मरण से वे निधियां चक्रवर्ती के वशवर्ती हो जाती हैं। निधि साधने का अठाई महोत्सव मनाया गया। ये निधियां गंगा नदी के समुद्र में प्रवेश करने के स्थान पर भूमि में स्थित रहती हैं। इनकी साधना खंड प्रपात गुफा से बाहर निकल कर यथा स्थान पर की जाती हैं।

तदनतर दक्षिणी भरत का गंगा निष्कुंट अर्थात् छठ्ठा खंड साधने के लिये सुषेण सेनापति को आदेश दिया। सेनापति की विजय यात्रा एवं गंगा पदी पार करना आदि वर्णन पूर्ण निष्कुंट विजय यात्रा के समान है यावत् वह सेना पति वस्त्र के तम्बू अपने डेरे में सुख पूर्वक रहने लगा।

कुछ समय के बाद चक्र रत्न राजधानी विनिता की तरफ पश्चिम दक्षिण दिशा में रवाना हुआ। आस पास के मार्ग के क्षेत्रों को अपने अधीन करते हुए चक्रवर्ती का विजय स्कंध वार विनिता की तरफ आगे बढने लगा। योजन योजन पड़ाव करते हुए भरत चक्रवर्ती राजा का वह सैन्य समूह विनिता नगरी के निकट पहुंच गया। पड़ाव एवं पौषधशाला तैयार की गई। राजा ने विनीता प्रवेश का तेला किया फिर विशाल जुलुस के साथ नगरी में प्रवेश किया। चतुरंगिणी सेना और नौ निधियां नगरी के बाहर ही रही। शेष सभी मंगल सामग्री एवं ऋद्धि संपदा के साथ राजा भरत चक्रवर्ती हस्तीरत्न पर आरूढ होकर नगरी के राजमार्गों से अपने आवास प्रसादावतंसक राजभवन की तरफ आगे बढ़ा। जय जय के घोष के साथ एवं अनेक विजय के नारों के साथ चक्रवर्ती राजा भरत अपने भवन के द्वार पर पहुंचा। हस्ती रत्न से उतर कर चक्रवर्ती राजा ने यथा क्रम से सभी का सम्मान सत्कार किया। यथा- 16हजार देवों का, 32 हजार राजाओं का, सेनापति रत्न का, गाथापति रत्न, बढ़ई रत्न, पुरोहित रत्न का, 360 रसोइयों का, 18श्रेणी प्रश्रेणि का, बहुत से सामान्य राजा, ईश्वर आदि सार्थवाह पर्यन्त का, स्त्री रत्न का इत्यादि प्रमुख जनों का सत्कार सम्मान कर उन्हें बधाया। फिर अपने भवन में प्रवेश किया। पारिवारिक एवं मित्र जनों से कुशल क्षेम पृच्छा करी। फिर स्नान विश्रांति के अनंतर तेले का पारणा किया।

इस प्रकार यह चक्रवर्ती के 6खंड साधन की विजय यात्रा साठ हजार वर्षो से पूर्ण हुई । जिसमें चार गुफाओं के पास निष्कुंटों की विजय यात्रा के समय ज्यादा लम्बे समय का पड़ाव रहा, उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण समय चलने में एवं थोड़ा ठहरने में ही पूर्ण हुआ।

कुछ समय बाद भरत राजा ने राज्याभिषेक महोत्सव रखा। महोत्सव व्यवस्था का आदेश आभियोगिक देवों को दिया एवं अन्य सभी राजा आदि को निर्देश किया। फिर स्वयं ने पौषध शाला में जाकर अष्टम भक्त पौषध (तेला) अंगीकार किया।

राजा की आज्ञानुसार राजधानी विनीता के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में राज्याभिषेक मंडल तैयार किया गया। देव की बुद्धि एवं शक्ति से निर्मित हजारों स्तम्भों से युक्त वह मंडल समवसरण की भांति अत्यन्त आकर्षण युक्त एवं मनोहर था। पौषध पूर्ण कर भरत चक्रवर्ती मंडप में पहुंचा। वहां उनकी राज्याभिषेक विधि प्रारम्भ हुई। राजाओं आदि से यथा क्रम से वैक्रिय कृत एवं स्वाभविक कलशों में भरे सुगंधी जल द्वारा भरत राजा का राज्याभिषेक किया एवं शुभ शब्दों से मंगल कामनाओं से जय जयकार के शब्दों से, मस्तक पर अंजली करते हुए, भरत चक्रवर्ती की ''स्तुति'' आदि के द्वारा महान सम्मान किया। फिर चन्दन के अनुलेप से, पुष्प मालाओं से सम्मानित किया । उसके अनंतर दो सुन्दर वस्त्र युगल पहनाये और विविध आभूषणों से अलंकृत विभूषित किया। इस प्रकार महान राज्याभिषेक हो जाने पर राजा स्त्री रत्न यूक्त, 64 हजार ऋतु कल्याणिक एवं जनपद कल्याणिक स्त्रियों के साथ अभिषेक मंडप से नीचे उतर कर हस्ती रत्न पर आरूढ हुआ । सम्पूर्ण ऋद्धि सम्पदा के साथ राजा ने नगर में प्रवेश किया। राजमार्गो से होते हुए राजभवनों में पहुंचें। यथा समय भोजन मंडल में सुखसन से बैठ कर राजा ने तेले का पारणा किया। तदनंतर 12 वर्ष का प्रमोद घोषित किया। उसके बाद पुनः स्त्रीरत्न एवं स्त्रियों के अतिरिक्त सब का सत्कार सन्मान कर उन आगंतुकों को विदा किया। विदा करके राजा अपने राज्य ऐश्वर्य का एवं मानुषिक सुखों का उपभोग करते हुए रहने लगा।

भरत की राज्य सम्पदा- पूर्व वर्णित देव और राणियों आदि के अतिरिक्त बतीस विधियों से युक्त 32000 नाटक, 84 लाख अश्व, 84 लाख हाथी 84 लाख रथ, 96करोड़ पैदल सेना, 72000 नगर, 32000 देश, 96करोड़ गांव 99 हजार द्रोणमुख, 48000 पट्टन (पाटण), 24000 कस्बे, 24000 मंडब, 20000 खाने, 16000 खेडे (खेटक), 14000 संबाह, 56जल नगर, 49 जंगली प्रदेश वाले राज्य, छः खंड युक्त सम्पूर्ण भरत क्षेत्र, गंगाा-सिन्धु नदी, चुल्लहिमवंत पर्वत, ऋषभ कूंट, वैताढय पर्वत एवं उसकी दो गुफाए, दो विद्याधर श्रेणियां, मागध-वरदाम-प्रभास तीर्थ, 14 रत्न, 9 निधियां आदि ऋद्धि भरत चक्रवर्ती के पुण्य प्रभाव से उसके आधीन एवं विषय भूत थी।

चौदह रत्न- 1 चक्ररत्न 2. दंडरत्न, 3. असिरत्न 4. छत्ररत्न ये चार एकेन्द्रिय रत्न शस्त्रागार शाला में उत्पन्न होते है अर्थात् देव संहरण करके वहां प्रतिष्ठित करते हैं। 5. चर्मरत्न, 6. मणिरत्न, 7. कांगणि रत्न ये तीन श्रीघर लक्ष्मी भण्डार में उत्पन्न होते हैं। ये कुल सात एकेन्द्रिय रत्नों के स्थान हैं। चर्मरत्न चर्म के समान होता है किन्तु पृथ्वीकायमय होता हैं।

8. सेनापति रत्न 9. गाथापति रत्न, 10. बढई रत्न 11. पुरोहित रत्न ये चार मनुष्य रत्न राजधानी में उत्पन्न होते है अर्थात् विनीता में उत्पन्न हुए।

चक्रवर्ती और वासुदेव के रत्न

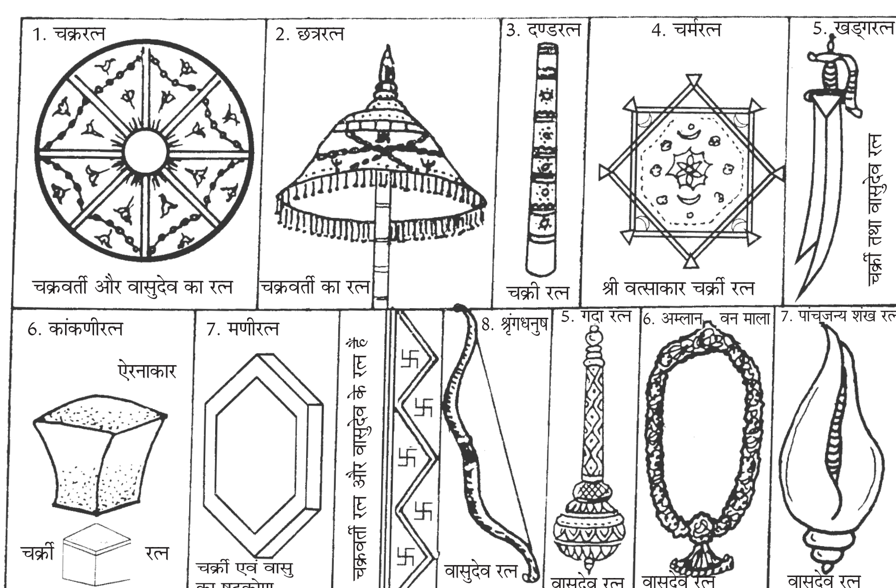

12 . अश्वरत्न 13. हस्तीरत्न ये दो तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय रत्न वैताढय पर्वत की तलहटी में उत्पन्न होते हैं। 14. स्त्रीरत्न विद्याधरों की उत्तरी श्रेणी में उत्पन्न होता हैं।

नौ निधियां- नौ निधियां श्री घर में लक्ष्मी भण्डार में उत्पन्न होती है। छः खंड साधन के बाद निधियों का मुख लक्ष्मी भण्डार में हो जाता हैं। वह मुख सुरंग के समान होता है जो निधियों और लक्ष्मी भण्डार का मिलान करता हैं। ये निधियां शाश्वत हैं। पेटी के आकार की हैं। इनकी लम्बाई 12 योजन, चौड़ाई 9 योजन, एवं ऊंचाई आठ योजन की हैं। यह माप प्रत्येक निधि का हैं। ये नौ निधियां चक्रवर्ती द्वारा तेले की आराधना करने पर अपने अधिष्ठाता देवों के साथ वहां चक्रवर्ती की सेवा में उपस्थित हो जाती हैं। इन शाश्वत निधियों का स्थान गंगामुख समुद्री किनारे पर हैं। निधियों के नाम के अनुसार ही इनके मालिक देवों के नाम होते है और वे एक पल्योपम की उम्र वाले हैं। ये निधियां बाहर से भी अर्थात् इनकी बाह्य भित्तियां भी विविध वर्णों के रत्नों से जडित होती हैं।

1. नैसर्प निधि- ग्राम नगर आदि के बसाने की विधियों एवं सामग्री से युक्त होती हैं।

2. पांडुक निधि- नारियल आदि, धान्य आदि, शक्कर गुड आदि उत्तम शालि आदि के उत्पादन की विधियों, सामग्रियों एवं बीजों से युक्त होती है इन पदार्थे का इसमें संग्रह एवं संरक्षण भी हो सकता हैं।

3. पिंगलक निधि- पुरूषों , स्त्रियों, हाथी, घोड़ों आदि के विविध आभूषणों के भण्डार युक्त एंव इनके बनाने, उपयोग लेने की विधियों से युक्त होती हैं।

4. सर्व रत्न निधि- सभी प्रकार के रत्नों का भण्डार रूप यह निधी हैं।

5. महापद्म निधि- सभी प्रकार के वस्त्रों का भण्डार रूप एवं उनकों उत्पन्न करने की , रंगने, धोने, उपयोग में लेने की विधियों से युक्त होती है एवं तत्सम्बन्धी अनेक प्रकार के साधन सामग्री से युक्त होती हैं।

6. काल निधि- ज्योतिष शास्त्र ज्ञान, वंशों की उत्पत्ति आदि ऐतिहासिक ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्प का ज्ञान एवं विविध कर्मो का ज्ञान देने वाली एवं इनके सम्बन्धी विविध साधनों, चित्रों आदि से युक्त होती है।

7. महाकाल निधि- लोहा, सोना, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि के खानों की जानकारी से युक्त एवं इन पदार्थों के भण्डार रूप होती है।

8. माणवक निधि- युद्ध नीतियों के, राजनीतियों के, ज्ञान को देने वाली एवं विविध शस्त्रास्त्र कवच आदि के भंडार रूप यह निधि है।

9. शंख निधि- नाटक, नृत्य, आदि कलाओं का भण्डार रूप एवं इनके उपयोगी सामग्री आदि से युक्त यह निधि होती है। धर्म अर्थ काम मोक्ष प्रतिपादक काव्यों एवं अन्य अनेक काव्यों, संगीतों, वाद्यों को देने वाली और इन कलाओं का ज्ञान कराने वाली विविध भाषाओं, श्रंगारो का ज्ञान कराने वाली निधि है।

ये सभी निधियां स्वर्णमय भित्तियों वाली रत्नों से जडित होती है। अनेक चित्रों आकारों से परिमंडित भित्तियां होती है। ये निधियां आठ चक्रों पर-पहियों पर अवस्थित रहती है।

भरत चक्रवर्ती को केवल ज्ञान- कथानकों में भरत बाहुबली युद्ध का वर्णन, बाहुबली की दीक्षा, 99 भाईयों की, दो बहिनों (ब्राह्मी सुन्दरी) की दीक्षा, भरत की धार्मिकता, राज्य में अनाशक्ति आदि का विविध वर्णन प्राप्त होता है। वह वर्णन उन्हीं ग्रन्थों से जानना चाहिये। यहां शास्त्र में उक्त वर्णन संक्षिप्तता आदि किन्हीं भी कारणों से नहीं दिया गया होगा।

एक बार भरत चक्रवर्ती स्नान करके एवं विविध श्रृंगार करके सुसज्जित अलंकृत विभूषित होकर अपने कांच महल में पहुंचा और सिंहासन पर बैठ कर अपने शरीर को देखते हुए विचारों में लीन बन गया। कांच महल हो या कला मंदिर हो, व्यक्ति के विचारों का प्रवाह सदा स्वतंत्र है वह किधर भी मोड ले सकता है। भरत चक्रवर्ती अपने विभूषित शरीर को देखते हुए चिंतन क्रम में बढ़ते बढ़ते वैराग्य भावों में पहुंच गये। शुभ एवं प्रशस्त अध्यवसायों की अभिवृद्धि होते होते, लेश्याओं के विशुद्ध विशुद्धतर होने से, उनके मोह कर्म एवं क्रमशः घाति कर्मों का क्षय हो गया। वहीं उन्हें केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हो गया।

भरत चक्रवर्ती कांच महल मे ही भरत केवली बन गये। एक तरफ विचारों का वेग ध्यान में खड़े हुए मुनि को सातवीं नरक में जाने योग्य बना देते हैं तो दूसरी तरफ ये ही विचार प्रवाह व्यक्ति को राज भवन और कांच महल में ही भावों से केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी बना सकते हैं। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि भरत चक्रवर्ती की दादी भगवान ऋषभदेव की माता को तो हाथी पर बैठे हुए ही केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया था।

भरत केवली ने अपने आभूषण आदि उतारे पंच मुष्ठि लोच किया और कांच महल से निकले। अंतःपुर में होते हुए विनीता नगरी से बाहर निकले और 10 हजार राजाओं को अपने साथ दीक्षित कर उस मध्य खंड में विचरण करने लगे। अंत में अष्टापद पर्वत पर संलेखना संथारा पादपोपगमन पंडित मरण स्वीकार किया। इस प्रकार भरत चक्रवर्ती 77 लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे एक हजार वर्ष मांडलिक राजा रूप में, 6लाख पूर्व में हजार वर्ष कम चक्रवर्ती रूप में रहे। कुल 83 लाख पूर्व गृहस्थ जीवन में रहे। एक लाख पूर्व देशोन केवली पर्याय में रहे। एक महिने के संथारे से कुल 84 लाख पूर्व की आयुष्य पूर्ण कर सम्पूर्ण कर्मों को क्षय किया एवं सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए। सब दुखों का अंत किया।

ये भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती राजा भरत हुए। इस क्षेत्र के मालिक देव का नाम भी भरत है। जिसकी एक पल्योपम की स्थिति है। इस प्रकार भरत क्षेत्र का यह नाम शाश्वत है। अनादि कालीन है।

14 रत्नों का विशेष परिचय–

1. चक्ररत्न– चक्रवर्ती का सबसे प्रधान रत्न है, इसका नाम सुदर्शन चक्र रत्न हैं। यह 12 प्रकार के वाद्यों के घोष से युक्त होता हैं। मणियों एवं छोटी छोटी घंटियों के समूह से व्याप्त होता हैं। आरे लाल रत्नों से युक्त होते हैं। आरों का जोड वज्रमय होता हैं। नेमि पीले स्वर्णमय होती हैं। मध्यान्ह काल के सूर्य के समान तेजयुक्त होता हैं। एक हजार यक्षों से (व्यंतर देवों से) परिवृत्त होता हैं। आकाश में गमन करता है एवं ठहर जाता हैं चक्रवर्ती की शास्त्रागार शाला में उत्पन्न होता है एवं उसी में रहता हैं। खंड साधन विजय यात्रा में कृत्रिम शस्त्रागार शाला में अर्थात् तंबू से बनाई गई शाला में रहता हैं। इसी चक्र की प्रमुखता से ही वह राजा चक्रवर्ती कहा जाता हैं। यह रत्न विजय यात्रा में महान् घोष नाद के साथ आकाश में चल कर 6खंड साधन का मार्ग प्रदर्शित करता हैं। सर्व ऋतुओं के फूलों की मालाओं से वह चक्र रत्न परिवेष्टित रहता हैं।

2. दंडरत्न– गुफा का द्वार खोलने में इसका उपयोग होता हैं यह एक धनुष प्रमाण होता हैं। विषम पथरीली भूमि को सम करने के काम आता हैं। वह वज्रसार का बना होता हैं। शत्रु सेना का विनाशक, मनोरथपूरक, शांतिकर शुभंकर होता हैं।

3. असिरत्न– 50 अंगुल लम्बी, 16अंगुल चौड़ी, आधा अंगुल जाडी एवं चमकीली तीक्ष्ण धार वाली तलवार होती हैं यह स्वर्णमय मूठ एवं रत्नों से निर्मित होती हैं। विविध प्रकार के मणियों से चित्रित बेलों के चित्रों से युक्त होती हैं। शत्रुओं का विनाश करने वाली दुर्भेद्य वस्तुओं का भी भेदन करने वाली होती हैं। इसे असिरत्न कहा गया हैं।

4. छत्ररत्न– यह चक्रवर्ती के धनुष प्रमाण जितना स्वाभविक लम्बा चौड़ा होता हैं। 99 हजार स्वर्णमय ताड़ियों से युक्त होता हैं। ये शलाकाएं दंड से जुडी हुई होती हैं। इनके कारण फैलाया हुआ छत्र पींजरे से सदृश प्रतीत होता हैं। छिद्र रहित होता हैं।

स्वर्णमय सुदृढ दंड मध्य में होता हैं। विविध चित्रकारी से मणिरत्नों से अंकित होता हैं। चक्रवर्ती की सम्पूर्ण स्कंधवार सेना की धूप आंधी वर्षा आदि से सुरक्षा कर सकता हैं। उसका पीठ भाग अर्जुन नामक सफेद सोने से आच्छादित होता हैं। सर्वत्रऋतुओं में सुखप्रद होता हैं।

5. चर्मरत्न– चर्म निर्मित वस्तुओं में यह सर्वोत्कृष्ट होता है। चक्रवर्ती के एक धनुष प्रमाण स्वाभाविक होता हैं। फैलाये जाने पर चर्मरत्न और छत्ररत्न 12 योजन लम्बे एवं 9 योजन चौड़े विस्तृत हो जाते हैं। यह जल के ऊपर तैरता हैं। सम्पूर्ण चक्रवर्ती की सेना परिवार इसमें बैठ सकता है एवं नदी आदि पार कर सकता हैं। ये दोनों चर्म और छत्र रत्न चक्रवर्ती के स्पर्श करते ही विस्तृत हो जाते हैं। यह कवच की तरह अभेद्य होता हैं। 17 प्रकार के धान्य की खेती इसमें तत्काल होती हैं। हिल स्टेशन (आबू पर्वत आदि) पर अभी भी मामूली वर्षा में चूने की भित्तियों पर एवं टीण कवेलु के तिरछे छतों पर कितने ही प्रकार की लम्बी वनस्पतियां स्वतः उग जाती है। उसी प्रकार इस चर्म रत्न में कुशल गाथापति रत्न एक दिन में धान्य निपजा सकता हैं। यह अचल अकंप होता है स्वस्तिक जैसा इसका स्वाभाविक आकार होता हैं। यह अनेक प्रकार के चित्रों से युक्त मनोहर होता हैं। छत्र रत्न को इसके साथ जोडकर डिब्बी रूप बनाने योग्य इसके किनारों पर जोड स्थान होते हैं।

6. मणिरत्न– यह मणि रत्न अमूल्य (मूल्य नहीं किया जा सके ऐसा) होता हैं। चार अंगुल प्रमाण, त्रिकोण, छः किनारों वाला होता हैं। एवं यह पांच तला होता हैं। मणिरत्नों में श्रेष्टतम एवं वैडूर्यमणि की जाती का होता हैं। सर्वकष्ट निवारक, आरोग्यप्रद, उपसर्ग व विध्न हारक होता है। इसको धारण करने वाला संग्राम में शस्त्र से नहीं मारा जाता है यौवन सदा स्थिर रहता एवं नख बाल नहीं बढ़ते। द्युतियुक्त एवं प्रकाश करने वाला, मन को लुभावित करने वाला, अनुपम मनोहर होता हैं। इसे हस्तीरत्न के दाहिने मस्तक पर बांध कर चक्रवर्ती गुफा में प्रवेश करता हैं। जिससे आगे का एवं आस पास का मार्ग प्रकाशित होता हैं।

7. कांकणी रत्न– इस रत्न का संस्थान अधिकरणी और समचतुरस्त्र दोनों विशेषणों वाला होता है अर्थात् यह एक तरफ कम चौड़ा और एक तरफ अधिक चौड़ा होता है। 6तले कोने (कर्णिका) 12 तल वाला होता हैं। चार अंगुल प्रमाण, आठ तोले के वजन वाला विष नाशक होता हैं। मानोन्मान की प्रामाणिकता का ज्ञान कराने वाला गुफा के अंधकार को सूर्य से भी अधिक नाश करने वाला होता हें। इसके द्वारा भित्ति पर चित्रित 500 धनुष के 49 मंडलों चक्रों से ही वह सम्पूर्ण गुफा सूर्य के प्रकाश के समान दिवस भूत हो जाती हैं। चक्रवर्ती की छावनी में रखा हुआ यह रत्न रात्रि में भी दिवस जैसा प्रकाश कर देता हैं।

8. सेनापति रत्न– चक्रवर्ती के समान शरीर -मान वाला, अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी, गंभीर, ओजस्वी, तेजस्वी, यशस्वी, म्लेच्छ भाषा विशारद , मधुर भाषी, दुष्प्रवेश्य दुर्गम स्थानों का एंव उसे पार करने का ज्ञाता, चक्रवर्ती की विशाल सेना का वह अधिनायक होता है। सदा अजेय होता हैं। अर्थशास्त्र-नीति शास्त्र आदि में कुशल होता हैं। चक्रवर्ती की आज्ञाओं का यथेष्ट पालन करने वाला भरत क्षेत्र के 6 खंड में से चार खंड को साधने वाला-जीतने वाला होता हैं। चक्रवर्ती के अनेक रत्नों का (अश्व, असि, चर्म, छत्र, दंड आदि का) उपयोग करने वाला होता हैं।

9. गाथापति रत्न– यह भी चक्रवति के बराबर अवगाहना वाला होता हैं। यह चक्रवर्ती के सेठ, भंडारी, कोठरी आदि का कार्य करने वाला होता हैं। ग्रन्थों में इसे खेती करने में कुशल भी बताया गया हैं। जो कि एक दिन में चर्मरत्न पर खेती कर सकता हैं। मूल पाठ में गाथापति रत्न का परिचय अनुपलब्ध हैं।

10. बढ़ई रत्न– ग्राम, नगर, द्रोणमुख, शैन्य-शिविर, गृह आदि के निर्माण करने में कुशल होता हैं। 81 प्रकार की वास्तु कला का अच्छा जानकार होता हैं। भवन निर्माण के सभी कार्य का पूर्ण अनुभवी होता है। काष्ट कार्य करने में कुशल होता हैं।

शिल्प शास्त्र निरूपित 45 देवताओं के स्थानादिक का विशेष ज्ञाता होता हैं। जल गत, स्थल गत, सुरंगों, खाइयों, घटिका यंत्र, हजारों खंभों से युक्त पुल आदि के निर्माण ज्ञान में प्रवीण होता है। व्याकरण ज्ञान में, शुद्ध नामादि चयन लेखन अंकन में, देव पूजागृह, भोजन गृह, विश्रामगृह आदि के संयोजन में प्रवीण होता हैं। यान वाहन आदि के निर्माण में समर्थ होता हैं। चक्रवर्ती के छः खंड साधन विजय यात्रा के समय प्रत्येक योजन पर यह बढ़ई रत्न ही शैन्य शिविर तम्बू एवं पौषधशाला आदि बनाता हैं। शरीर का मान चक्रवर्ती के समान होता है।

11. **पुरोहित रत्न–** ज्योतिष विषय का ज्ञाता तिथि, मुहुर्त्त, हवन-विधि, शांति कर्म आदि का ज्ञाता होता हैं। अनेक धर्म शास्त्रों का ज्ञाता होता हैं। संस्कृत आदि भाषाओं का जानकर होता हैं। शरीर-मान चक्रवर्ती के समान होता है।

12. **गज रत्न–** यह चक्रवर्ती का प्रधान हस्ति होता हैं। चक्रवर्ती अधिकतर हाथी पर बैठकर ही विजय विहार यात्रा एवं भ्रमण आदि किया करता है।

13. **अश्व रत्न–** यह 80 अंगुल ऊंचा, 99 अंगुल मध्य परिधि वाला, 108अंगुल लम्बा, 32 अंगुल के मस्तक वाला, चार अंगुल कान वाला होता है। सुर-नरेन्द्र के वाहन के योग्य, विशुद्ध जाति कुल वाला, अनेक उच्च लक्षणों से युक्त, मेधावी, भद्र, विनीत होता है। अग्नि पाषाण पर्वत खाई विषम स्थान नदियों गुफाओं को अनायास ही लांघने वाला एवं संकेत के अनुसार चलने वाला होता है। कष्टों में नहीं घबराने वाला, मल मूत्र आदि योग्य स्थान देख कर करने वाला, सहिष्णु होता है। तोते के पंख के समान वर्ण वाला होता है। युद्ध भूमि में निडरता से एवं कुशलता से चलने वाला होता है।

14. **स्त्रीरत्न–** यह चक्रवर्ती की प्रमुख राणी होती है। वैताढ्य पर्वत के उत्तरी विद्याधर श्रेणी में प्रमुख राजा विनमि के यहां उत्पन्न होती है। स्त्री गुणों से सुलक्षणों से युक्त होती है। चक्रवर्ती के सदृश रूप लावण्य वान, ऊंचाई में कुछ कम, सदा सुखकर स्पर्श वाली, सर्व रोगों का नाश करने वाली होती है। इसे ''श्रीदेवी'' भी कहा जाता है। भरत चक्रवर्ती की श्रीदेवी स्त्री रत्न का नाम सुभद्रा था।

ये सात पंचेन्द्रिय रत्न है। इन 14 रत्नों के एक एक हजार देव सेवक होते हैं अर्थात् ये 14 ही रत्न देवाधिष्ठित होते हैं।

चक्रवर्ती के खंड साधन के मुख्य केन्द्र और 13 तेले–

तीन तीर्थ, दो नदी की देवी, दो गुफा के देव, दो पर्वत के देव, विद्याधर, नौ निधि, विनिता प्रवेश एवं राज्याभिषेक ये कुल 13 तेले के स्थान चक्रवर्ती के हैं। पौषधयुक्त ये तेले सांसारिक विधि विधान रूप हैं किन्तु इन्हें धर्म आराधना हेतुक नहीं समझने चाहिये।

दो गुफा के द्वार खोलने के लिये दो तेले सेनापति करता है। चुल्लहिमवंत पर्वत के देव के तेले के साथ ही ऋषभकूट पर नामांकन किया जाता है।

दो+दो = चार नदियों पर स्थाई पुल एवं पुल एवं दोनों गुफाओं में 49-49 मांडले स्थाई प्रकाश करने वाले बनाये जाते हैं।

तीन तीर्थ और चुल्लहिमवत पर्वत पर तीर फेंका जाता है। केवल मन में स्मरण युक्त तेले से ही वे देव देवी और विद्याधर उपस्थित हो जाते हैं।

चुल्लहिमवंत पर्वत पर 72 योजन दूर बाण जाता है तब भवन में गिरता है। यहां चक्रवर्ती को एक लाख योजन का वैक्रिय रूप बनाना पड़ता है तभी बाण तिच्र्छा 72 योजन जाता है और उनका शरीर चुल्लहिमवंत पर्वत की ऊँचाई के सदृश शाश्वत 100 योजन का हो जाता है।

इन 14 रत्नों का कुछ वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के 20 वें पद में है, जो सारांश में देखें। एवं श्रीदेवी के के योनी सम्बन्धी वर्णन योनि पद में देखें।

चौथा वक्षस्कार-

जम्बू द्वीप के वर्णन क्रम में भरत क्षेत्र का वर्णन, उत्सर्पिणी के 6-6आरों के वर्णन के साथ एवं प्रथम तीर्थकर प्रथम चक्रवर्ती के वर्णन के साथ पूर्ण हुआ। जिसमें चक्रवर्ती भरत के 6खंडों के साधने का अर्थात् जीतने का विस्तृत वर्णन किया गया। इस प्रकार सर्व मिलकर भरत क्षेत्र का सांगोपांग वर्णन तीन वक्षस्कार में किया गया है। अब इस चौथे वक्षस्कार में अवशेष जम्बूद्वीप के वर्षधर पर्वत एवं क्षेत्रों का वर्णन उनके अंतर्गत आये पर्वतों नदियों क्षेत्रों विभागों आदि के साथ किया जाता है।

जम्बूद्वीप

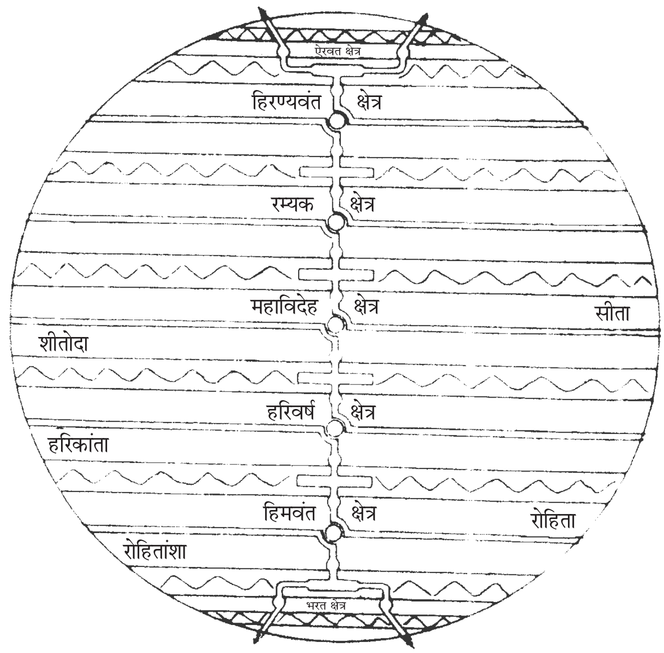

इस वक्षस्कार का विषय क्रम-

1. चुल्लमिंवंत पर्वत-पद्मद्रह, नदी, कूट युक्त 2. हेमवंत युगलिक क्षेत्र 3. महाहिमवंत पर्वत 4. हरिवर्ष युगलिक क्षेत्र 5. निषध पर्वत 6. महाविदेह क्षेत्र के वर्णन में - उत्तर कुरू एवं उसके वृक्ष पर्वत द्रह वक्षस्कार गजदंता आदि 7. पहली विजय से से आठवीं विजय, बीच के पर्वत एवं अंतर नदी युक्त 8. दोनों सीतामुख वन 9. नौवीं विजय से सौलहवीं विजय- अंतर नदी एवं पर्वत युक्त 10. देवकुरू क्षेत्र एवं उसके वृक्ष, द्रह पर्वत नदी गजदंता आदि 11. सत्रहवीं विजय से चौवीसवीं विजय 12. दोनों सीतोदामुखवन 13. पच्चीसवीं विजय से बतीसवीं विजय 14. मेरू पर्वत भद्रशाल आदि चार वन, अभिषेक शिलाएं आदि 15. नील पर्वत 16. रम्यक् वास युगलिक क्षेत्र 17. रूक्मि पर्वत 18. हेरण्यवत युगलिक क्षेत्र 19. शिखरी पर्वत 20. कर्म भूमिज ऐरावत क्षेत्र। इसी क्रम से अब आगे वर्णन किया जा रहा है।

1. चुल्लहिमवंत पर्वत- दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र की सीमा करने वाला, उत्तर दिशा में हेमवंत क्षेत्र सीमा करने वाला, पूर्व पश्चिम में लवण समुद्र के सीमांत प्रदेशों को स्पर्श करने वाला स्वर्णमय चुल्ल हिमवंत नाम का लघु पर्वत है। यह पूर्व पश्चिम समुद्र पर्यंत लम्बा, उत्तर दक्षिण भरत से दुगुना 1052 $\frac{12}{19}$ योजन का चौडा एवं 100 योजन ऊंचा है। समभूमि पर दोनों तरफ एक एक पद्मवर वेदिका एवं वनखंड से सुशोभित है।

2. पद्मद्रह- इस पर्वत का शिखरतल मृदंगतल के समान चिकना समतल रमणीय भूमि भाग वाला है। बहुत से वाणव्यंतर देवी देवताओं के आमोद प्रमोद के योग्य है। इस शिखर तल के लम्बाई चौड़ाई के ठीक मध्य में एक पद्मद्रह है जो 1000 योजन लम्बा, 500 योजन चौड़ा एवं 10 योजन गहरा है। उसमें चारों दिशाओं में सीढ़ियां (पगथिये) है। उसकी भित्तियां रजतमय (अथवा तो रत्नमय) है। द्रह के ऊपरी किनारे पर पद्मवर वेदिका एवं वनखंड है। इसमें दस योजन गहरा पानी भरा

द्रह देवी का कमल

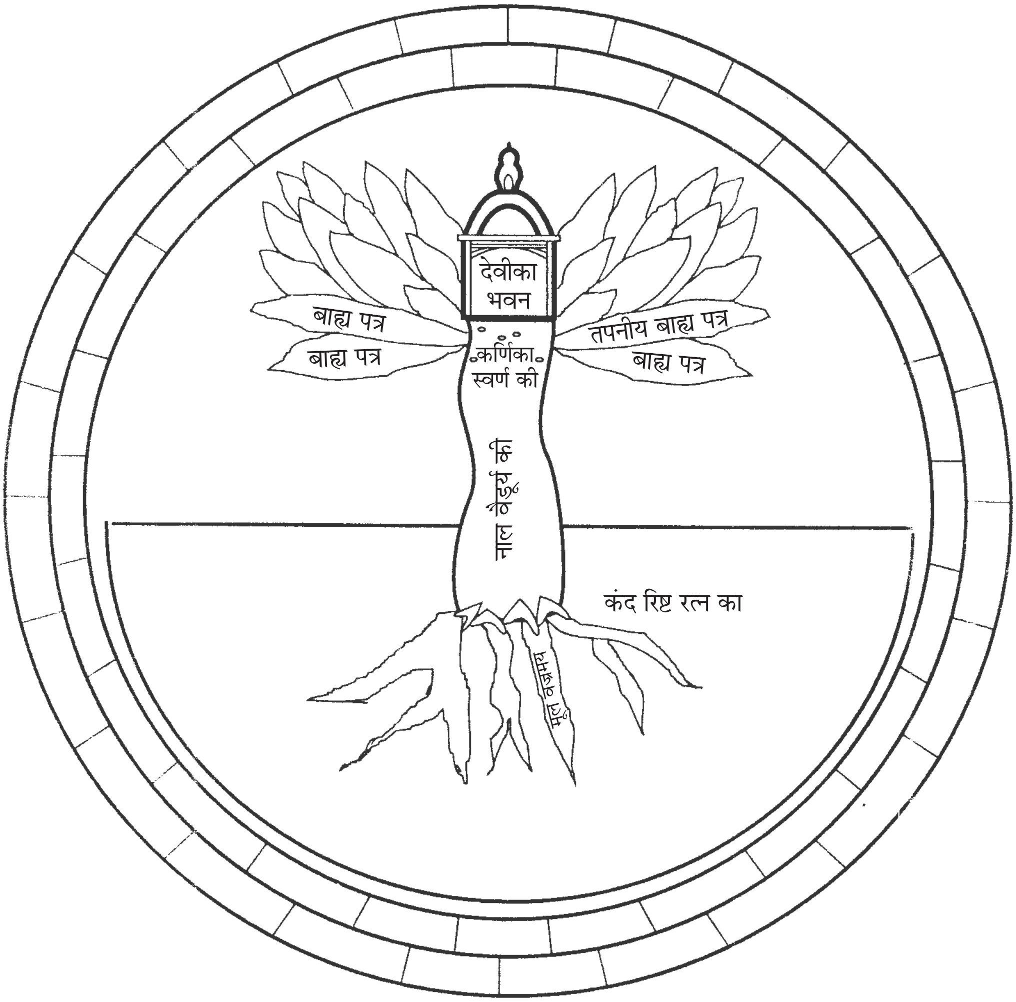

यह कमल जम्बूद्वीप की जगती के बराबर परन्तु 18 योजन ऊँचा जगती से लिपटा हुआ है।

रहता है। तीन नदियों से पानी निकलते हुए भी इस द्रह में नये अप्काय जीवों की एवं पानी के योग्य पुद्‌गलों की उत्पत्ति होती रहती है। जिससे 10 योजन पानी की गहराई में कोई खास अंतर नहीं पड़ता है।

3. पद्मकमल– द्रह के ठीक बीचों बीच एक योजन लम्बा चौड़ा आधा योजन जल से बाहर और 10 योजन जल में रहा हुआ एक प्रमुख पद्म है जो पृथ्वी काय मय है अर्थात् उसका मूल कंद, नाल, बाह्य पत्र, आभ्यंतर पत्र, केसरा, पुष्करास्थि भाग, विविध रत्न-मणिमय है। उसकी कर्णिका-बीच कोश, ऊपरी शिखरस्थ सघन विभाग स्वर्ण मय है। जिसका भूमि भाग समतल चिकना स्वच्छ उज्जवल सर्वथा स्वर्णमय है। यह भूमि भाग आधा योजन (2 कोश) लम्बा चौड़ा गोलाकार है। इस पर ठीक

द्रह देवी के परिवार कमल के 6 वलय

1, 20, 50, 120 कमल

प्रत्येक वलय में अनुक्रम से आधे-आधे प्रमाण वाले कमल

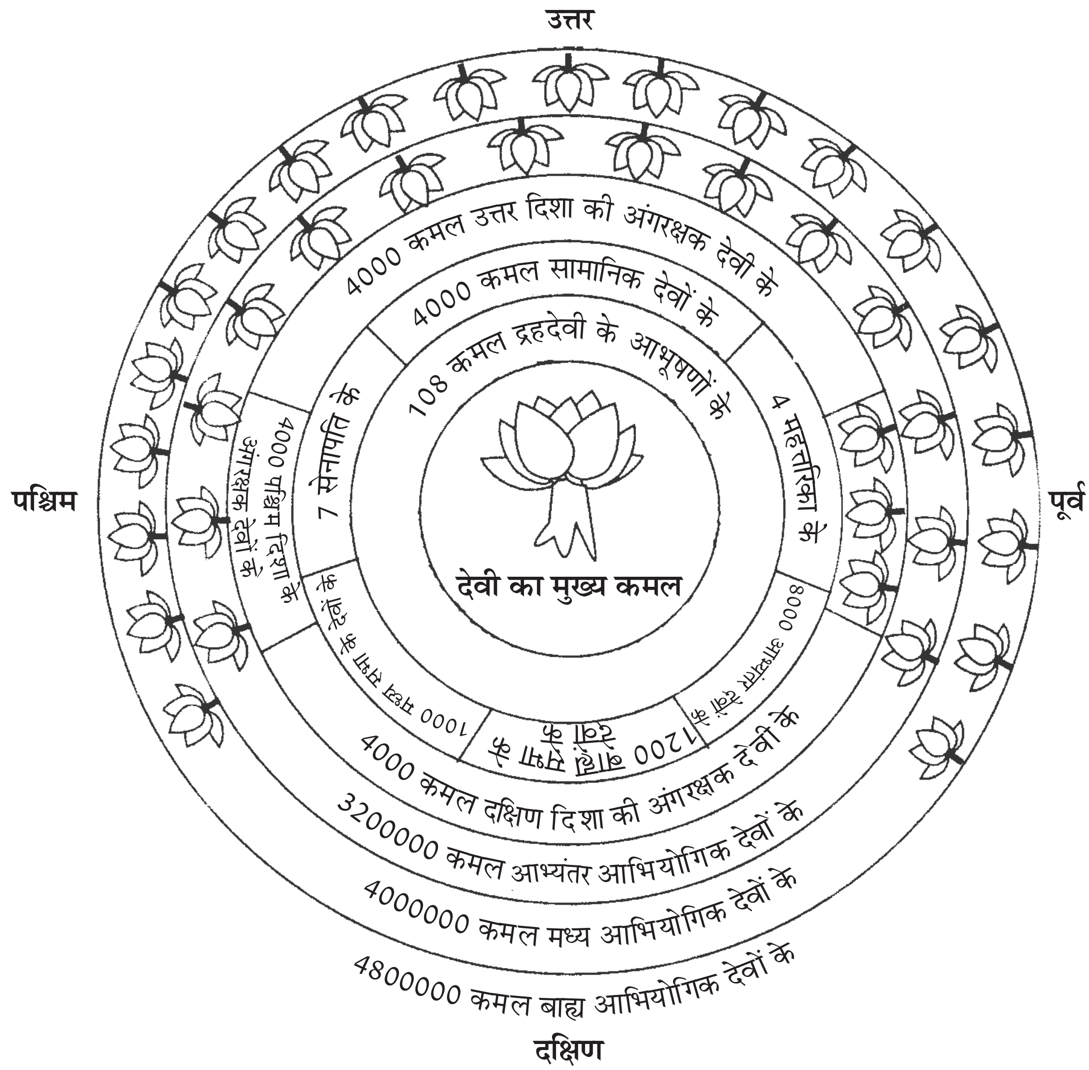

बीच में एक कोश लम्बा आधाकोश चौड़ा कुछ कम एक कोश ऊंचा एक सुंदर विशाल सैकड़ों स्तंभों पर स्थित भवन है। जिसके तीन दिशाओं में पांच सौ धनुष ऊंचे 250 धनुष चौड़े द्वार है। भवन के अंदर मध्य में 500 धनुष लम्बा चौड़ा 250 धनुष ठोस ऊंचा चबूतरा है, उस पर विशाल देव शय्या है। इत्यादि वर्णन भवनों के समान है। यह भवन ''श्री'' देवी का है। उसकी स्थिति एक पल्योपम की है।

पद्मों की संख्या– मुख्य पद्म से कुछ दूर चौतरफ गोलाकार परिधि रूप 108पद्म पंक्ति से आये हुए है। अनेक बाहर मुख्य पद्म कमल- मुख्य पद्म से 1. पश्चिमोत्तर में उत्तर में और उत्तरपूर्व में चार हजार सामानिक देवों के पद्म है 2. पूर्व में - चार महत्तरिकाओं के 4 पद्म है। 3. दक्षिण-पूर्व में आभ्यंतर परिषद के देवों के 8000 पद्म है। 4. दक्षिण में - मध्यम परिषद के 10000 पद्म है। 5. पश्चिम दक्षिण में - बाह्य परिषद के 12000 पद्म है। 6. पश्चिम में - सात अनिकाधिपतियों के सात पद्म है। 7. फिर इन सभी पद्मों को घेरे हुए चौतरफ परिधि रूप गोलाई में आत्मरक्षक देवों के 16000 पद्म है। ये 50 हजार एक सौ उन्नीस पद्म और इनके स्वामी देव देवी भी श्री देवी के परिवार रूप है। इन पद्मों की कर्णिका पर सभी के भवन है।। श्रीदेवी का मुख्य पद्म मिलकार 50120 कुल पद्म होते है। इन सभी पद्मों को घेरे हुए तीन वेदिका परकोटे रूप पद्म हैं जो एक एक वेदिका परकोटे में अंदर से बाहर क्रमशः 32+40+48 लाख है। तीनों मिलकर एक करोड़ 20 लाख है। इसमें उपरोक्त संख्या मिलाने से 1, 20, 50, 120 कुल पद्म होते हैं। ये सभी 10 योजन पानी में हैं। पानी के बाहर का सम्पूर्ण परिमाण मुख्य कमल का जो ऊपर बताया गया है उसे परिवेष्टित करने वाले 108पद्म लम्बाई चौड़ाई जाड़ाई में मुख्य पद्म से आधे परिमाण के हैं। शेष पद्मों का माप भलावण पाठ में छूट जाने से स्पष्ट नहीं है।

सभी पद्मों के कर्णिका विभाग समतल है, उस पर भवन हैं और कर्णिका के किनारे अर्थात् पद्म के ऊपरी भाग पर पद्मवर वेदिका एवं वन खंड है।

तीन नदियां– इस पद्म द्रह के पूर्व से गंगा, पश्चिम से सिन्धू नदी और उत्तर से रोहितांशा नदी निकलती है। रोहितांशा नदी चुल्लहिमवंत पर्वत के उत्तरी शिखर तल को पूर्ण पार कर हेमवंत क्षेत्र में रोहितांश कुंड में गिरती है और उस कुंड के उत्तरी तोरण से निकल कर उत्तर दिशा में जाती है। हेमवंत क्षेत्र के बीचों बीच में स्थित वृत वैताढ्य पर्वत को दो योजन की दूरी रखती हुई पश्चिम में मुड़ जाती है। जो हेमवंत क्षेत्र के चौड़ाई के बीचो बीच चलती हुए जगती को भेद कर लवण समुद्र में गिरती है अर्थात् वहां जगती में नदी के जल प्रवेश जितना स्थाई मार्ग स्वाभाविक शाश्वत है।

शेष दोनों गंगा सिन्धु नदियां 500-500 योजन पर्वत पर चलकर दक्षिण में मुड़ती है फिर पर्वत के दक्षिण किनारे तक चलकर दक्षिण में रहे भरत क्षेत्र में गंगा और सिन्धु नामक कुंडों में गिरती है। जिसका वर्णन भरत क्षेत्र के वर्णन में कर दिया गया है। इस पर्वत एवं नदियों के माप, परिवार आदि आगे चौथे वक्षस्कार में तालिका (चार्ट) में देखें। नदियों के दोनों किनारे पद्मवर वेदिका एवं वनखंड है।

कूट– इस पर्वत के शिखर तल पर चौड़ाई से बीच में क्रमशः पूर्व से पश्चिम तक 11 कूट हैं, उनके नाम इस प्रकार है-

1. सिद्धायतन कूट 2. चुल्लहिमवंत कूट 3. भरत कूट 4. इलादेवी कूट 5. गंगादेवी कूट 6. श्रीदेवी कूट 7. रोहितांश कूट 8. सिधु देवी कूट 9. सुरा देवी कूट 10. हेमवंत कुट 11. वेश्रमण कूट।

सिद्धायतन कूट के अतिरिक्त सभी कूट पर उन नामों के देव या देवी के भवन है। पूर्व में पहला कूट सभी पर्वतों पर सिद्धायतन कूट है। इसका कोई स्वामी देव नहीं है। पश्चिम में अंतिम कूट वैश्रमण देव का है शेष कूट उस पर्वत के दोनों तरफ आए क्षेत्र, पर्वत, नदी, गुफा आदि के मालिक अधिष्ठाता देव देवी के है। इनके मालिक देव देवी की उम्र एक पल्योपम की होती है। कूटों की लम्बाई चौड़ाई आदि चार्ट से जाने।

महाहिमंवत वर्षधर पर्वत की अपेक्षा यह पर्वत छोटा है अतः इसका चुल्ल (छोटा) हिमवंत पर्वत यह शाश्वत नाम है चौकोन लम्बा होने से इस पर्वत का रूचक संस्थान कहा गया है। क्योंकि रूचक नामक गले का आभूषण इसी प्रकार का होता है।

2. हेमवंत युगलिक क्षेत्र- इस क्षेत्र के दक्षिण में चुल्लहिमवंत पर्वत है। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्री सीमांत प्रदेशों को स्पर्श किया हुआ यह चौकोन लम्बा पल्यंक (पर्यंक) संस्थान वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र के लम्बाई चौड़ाई से मध्य में शब्दापाती वृत वेताढ्य पर्वत है। जो एक हजार योजन ऊंचा और एक हजार योजन लम्बा चौड़ा गोल है। उसके सम भूमि भाग पर चौ तरफ पद्मवर वेदिका और वन खंड है। शिखर तल के मध्य में श्रेष्ठ प्राषाद है, जो 62 योजन ऊंचा 31 योजन लम्बा चौड़ा है। शब्दापाती देव यहां सपरिवार रहता है।

द्रहों से निकलती नदियां

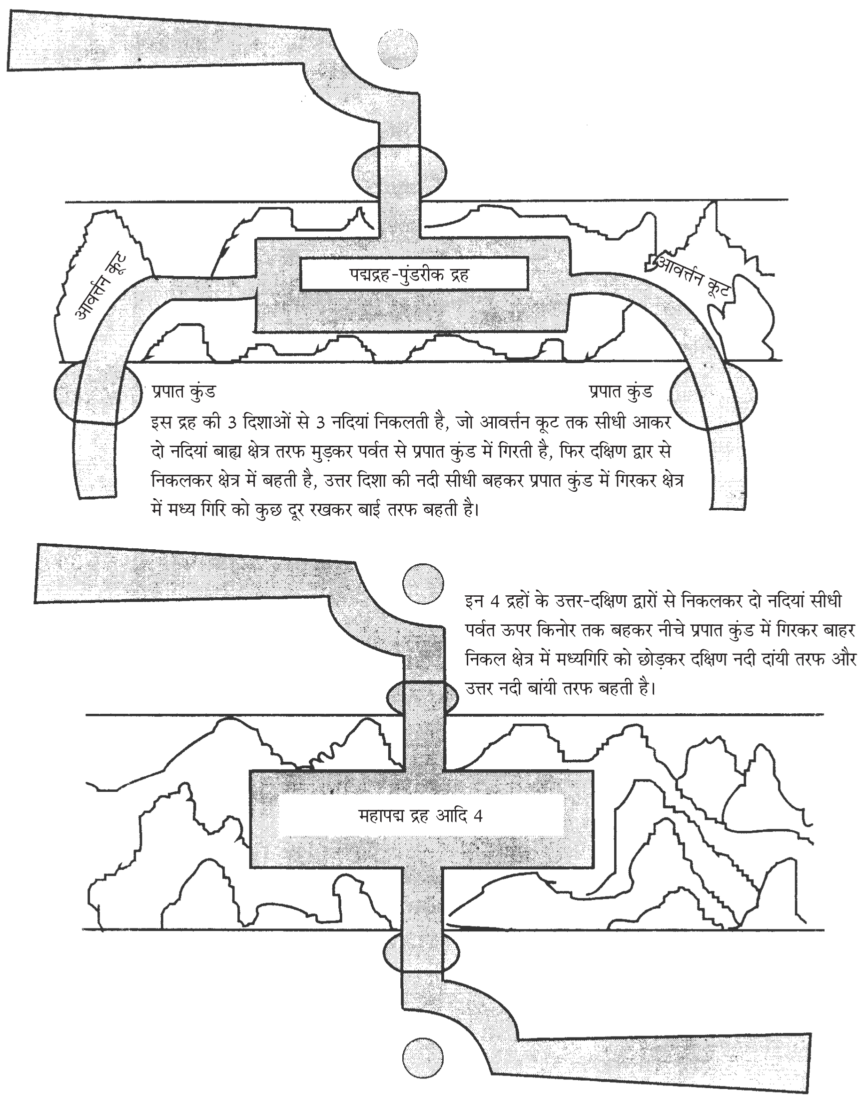

रोहिता और रोहितांशा दो नदियों एवं वृत (गोल) वैताढय पर्वत से इस क्षेत्र के चार विभाग-खंड हैं। इस क्षेत्र की चौड़ाई चुल्लहिमवंत पर्वत की चौड़ाई से दुगुनी 2105-$\frac{5}{19}$ योजन की हैं। इस क्षेत्र में अकर्म भूमिज मनुष्य रहते हैं। अवसर्पिणी के तीसरे आरे के प्रारम्भ के समान भाव वर्तते है। मनुष्यों की उम्र उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है। दस प्रकार के विशिष्ट वृक्षों (प्रचलन में कल्प वृक्षों) से इन मनुष्यों का जीवन निर्वाह होता है, इत्यादि वर्णन तीसरे आरे के वर्णन के समान समझना।

इस क्षेत्र के दोनों तरफ स्वर्णमय पर्वत हैं, वे स्वर्णमय पुद्गल एवं स्वर्णिम प्रकाश इस क्षेत्र को देते रहते हैं। इस क्षेत्र के अधिपति देव का नाम हेमवंत हैं। इसलिए इस क्षेत्र का ''हेमवंत'' यह अनादि शाश्वत नाम है।

3. महाहिमवंत पर्वत– यह पर्वत दक्षिण में हेमवंत क्षेत्र की और उत्तर में हरिवर्ष क्षेत्र की सीमा करता हैं। पूर्व पश्चिम लवण समुद्री चरमांत प्रदेशों को स्पर्शित करता हैं। पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण हेमवंत क्षेत्र से दुगुना 4220 $\frac{10}{19}$ योजन चौड़ा एवं 200 योजन ऊंचा रूचक संस्थान मय हैं। सम्पूर्ण स्वर्ण मय हैं। शेष वर्णन वेदिका द्रह कूट आदि का चुल्ल हिमवंत पर्वत के वर्णन के समान हैं।

यहां महापद्म द्रह है जो पद्म द्रह से दुगुना लम्बा चौड़ा हैं। जल की गहराई पद्म के समान हैं। इसमें मुख्य पद्म आदि की लम्बाई चौड़ाई एवं भवन की लम्बाई चौड़ाई पद्म द्रह के वर्णन से दुगुनी हैं। लम्बाई चौड़ाई के अतिरिक्त सम्पूर्ण वर्णन पद्म के समान हैं। यहां ''ह्री'' नामक देवी रहती हैं। उसी का सारा परिवार पद्मों पर रहता हैं।

इस द्रह में पूर्व पश्चिम से नदी नहीं निकलती है किन्तु उत्तर दक्षिण से नदी निकलती हैं। दक्षिणी तोरण से रोहिता नदी निकली है जो सम्पूर्ण पर्वत पर दक्षिण दिशा में चलती हुई किनारे पर पहुंच कर 200 योजन नीचे हेमंवत क्षेत्र में रहे रोहितप्रपात कुंड में गिरती हैं। और फिर उस कुंड के दक्षिणी तोरण से निकल कर दक्षिण दिशा में हेमवंत क्षेत्र में चलती हुई शब्दापाती वृत वैताढ्य के दो योजन दूर रहते हुए पूर्व की ओर मुड जाती हैं। जो हेमवंत क्षेत्र को लम्बाई में दो विभाग करती हुई पूर्वी समुद्र में जाकर मिलती हैं। समुद्र में जाने के लिये जगती में इन नदियों के शाश्वत मार्ग होते हैं। इन्हीं मार्गो से जगती के नीचे से होकर समुद्र में मिल जाती हैं। ये द्रह से निकलने वाली सभी महानदियां अन्य हजारों छोटी नदियों को अपने में समाविष्ट करती हुई आगे समुद्र तक बढती हैं।

महापद्म द्रह के उत्तरी तोरण से हरिकंता महानदी निकलती है जो उत्तर दिशा में शिखर तल पर चलते हुए पर्वत के किनारे पहंचती हैं। वहां जीव्हाकार बने मार्ग (मोखी) से 200 योजन नीचे हरिवर्ष क्षेत्र में हरिकंत प्रपात कुंड में गिरती हैं। और फिर उस कुंड के उत्तरी तोरण से निकल कर हरिवर्ष क्षेत्र में उत्तर दिशा में चलती हैं। वहां बीचों बीच रहे विकटापाती वृत वैताढ्य के पास होते हुए पश्चिम की ओर मुड जाती हैं। आगे पश्चिम में चलते हुए हरिवर्ष क्षेत्र के लम्बाई में दो विभाग करती हुई किनारे तक जाती हैं। और वहां पश्चिम लवण समुद्र में समाविष्ट हो जाती हैं।

इस महा हिमवंत पर्वत पर आठ कूट हैं। यथा-1. सिद्धायतन कूट 2. महाहिमवंत कूट 3. हेमवंत कूट 4. रोहित कूट 5. ह्री कूट 6. हरिकंत कूट 7. हरिवास कूट 8. वैडूर्य कूट।

चुल्लहिमवंत पर्वत से यह पर्वत सभी अपेक्षाओं से विशाल है एवं महाहिमवंत इसका अधिपति देव यहां रहता हैं। इसलिये इसका महाहिमवंत पर्वत यह शाश्वत नाम हैं।

4. हरिवर्ष क्षेत्र– हेमवंत क्षेत्र के समान ही यह क्षेत्र दो नदियों एवं वृत्त वैताढ्य पर्वत से चार भागों में विभाजित हैं। पूर्व पश्चिम लम्बा, उत्तर-दक्षिण महाहिमवंत पर्वत से दुगुना (8421 $\frac{1}{19}$ योजन) चौड़ा हैं। पल्यंक (पर्यक) संस्थान संस्थित हैं। इसके उत्तर में निषध महा पर्वत हैं दक्षिण में महाहिमंवत पर्वत हैं। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्र हैं। इसमें अकर्मभूमिज युगलिक मनुष्य रहते हैं। 10 प्रकार के विशिष्ट वृक्ष होते है, इत्यादि अवसर्पिणी के दूसरे आरे के प्रारम्भ काल का वर्णन जानना।

लम्बाई-चौड़ाई से बीचों बीच में विकटापाती वृत वैताढय पर्वत है। जिसका वर्णन शब्दापाती वृत्त वेताढ्य के समान हैं। इस वृत वेताढ्य पर भवन में अरूण नामक स्वामी देव रहता हैं।

इस क्षेत्र का हरिवर्ष नामक स्वामी देव है जो महर्द्धिक यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाला हैं। इस कारण इस क्षेत्र का शाश्वत नाम 'हरिवर्ष क्षेत्र' हैं। हरि और हरिकंता नामक दो नदियां इस क्षेत्र में है। हेमवंत क्षेत्र के समान ही इसके भी चार विभाग आदि अवशेष वर्णन हैं।

5. निषध वर्षधर पर्वत– यह पर्वत उत्तर में महाविदेह क्षेत्र की एवं दक्षिण में हरिवर्ष क्षेत्र की सीमा करता हैं। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्री चरमांत प्रदेशों का स्पर्श करता हैं। अर्थात् सभी पर्वत जगती को भेद कर समुद्र तक पहुंचे हुए हैं। यह पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण हरिवर्ष क्षेत्र से दुगुना ($16842\frac{2}{19}$ योजन) चौड़ा एवं 400 योजन ऊंचा रूचक संस्थान संस्थित हैं। शेष वर्णन महाहिमवंत पर्वत के समान हे। इसके शिखर तल पर तिगिच्छ नामक द्रह है। जो महापद्म द्रह से दुगुना हैं। और इसके अंदर ये पद्म और भवन भी दुगुनी लम्बाई चौड़ाई वाले हैं। पद्मों का शेष वर्णन महापद्म द्रह के समान हैं। यहां 'धृति' नामक देवी सपरिवार निवास करती हैं।

इस द्रह के उत्तर दक्षिण से महापद्म द्रह के समान दो नदियां निकलती हैं। दक्षिण से हरि नदी निकलती है जो हरिवर्ष क्षेत्र में हरिप्रपात कुंड में गिरती है और वहां से विकटापाती वृत वैताढ्य तक दक्षिण में चल कर फिर पूर्व दिशा में मुड जाती हैं। वह नदी पूर्वी हरिवर्ष क्षेत्र के लम्बाई में दो विभाजन करती हुई पूर्वी लवण समुद्र में प्रविष्ट होती हैं।

इस द्रह के उत्तर से सितोदा महानदी निकलती है जो उत्तरी शिखर तल पर चलती हुई किनारे पर आकर 400 योजन नीचे देवकुरू क्षेत्र में रहे सितोदाप्रपात कुंड में गिरती है, फिर कुंड के उत्तरी तोरण से निकल कर देवकुरू क्षेत्र को दो भागोंमें विभाजित करती हुई आगे बढती हैं। चित्रकूट पर्वत और विचित्रकूट पर्वतों के बीच में से निकल कर पांचों द्रहों को दो भागों में विभाजित करती हैं। फिर 500 योजन भद्रशाल वन में चल कर उसके भी पूर्व पश्चिम दो विभाग करती हैं। फिर मेरू पर्वत से दो योजन दूर रहते हुए विद्युत्प्रभ गजदंता पर्वत के नीचे से निकल कर पश्चिम की ओर मुड़ जाती है उधर भी पश्चिम भद्रशाल वन में 22000 योजन चलती हुई उसके उत्तरी दक्षिणी दो विभाग करती हुई आगे बढ़ती हैं। इसके बाद पश्चिमी महाविदेह को दो भागों में विभाजित करती हुई उधर की 16 विजयों से आने वाली नदियों को अपने में समाविष्ट करती हुई आगे बढती हैं। अंत में जगती के जयंत द्वार के नीचे (1000 योजन नीचे) से जाकर लवण समुद्र की सीमा में प्रविष्ट करती हैं। क्योकि पश्चिमी महाविदेह आगे से आगे नीचे उतार रूप में रहा हुआ है जिससे 24 वीं 25 वीं विजय नीचा लोक में हैं अर्थात् सम भूमि से 1000 योजन नीचे हैं। पूर्वी महाविदेह इस तरह नहीं हैं।

निषध पर्वत पर 9 कूट है यथा- 1. सिद्धायतन कूट 2. निषध कूट 3. हरिवर्ष कूट 4. पूर्वविदेह कूट 5. हरि कूट 6. धृति कूट 7. सीतोदा कूट 8. पश्चिम विदेह 9. रूचक कूट यह पर्वत सर्व तपनीय स्वर्ण मय है, इस पर्वत पर निषध नामक महर्द्धिक देव रहता है, इसलिये इस पर्वत का 'निषध' यह शाश्वत नाम हैं।

महाविदेह क्षेत्र

इसके उत्तर में नीलवंत पर्वत, दक्षिण में निषध पर्वत सीमा करता हैं। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्र हैं। जम्बू द्वीप के मध्य में यह महाविदेह क्षेत्र पूर्व पश्चिम एक लाख योजन लम्बा, उत्तर दक्षिण 33684 $\frac{4}{19}$ योजन चौड़ा (पल्यंक) संस्थान संस्थित जम्बूद्वीप के सभी क्षेत्रों से विशाल क्षेत्र है।

इसके मुख्य चार बड़े विभाग है- 1. उत्तरकुरू क्षेत्र 2. पूर्व विदेह 3. देवकुरू 4. पश्चिम विदेह।

महाविदेह क्षेत्र की स्थापना

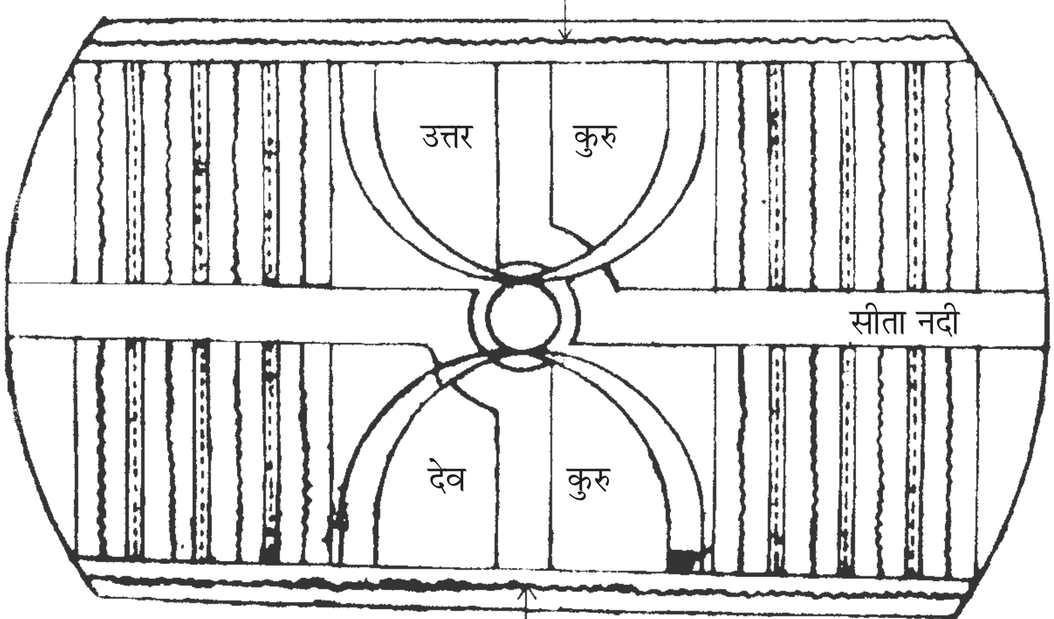

6. उत्तर कुरू क्षेत्र–

यह युगलिक क्षेत्र उत्तर में नीलवंत महापर्वत से एवं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तीन दिशाओं में अर्द्ध गोलाकार में रहे हुए दो गजदन्ताकार वक्षस्कार पर्वतों से, यों चौतरफ पर्वतों से घिरा हुआ क्षेत्र है। यह पूर्व-पश्चिम 53000 योजन लम्बा उत्तर-दक्षिण 11842 $\frac{2}{19}$ योजन चौड़ा अर्द्ध चंद्राकार संस्थान वाला है। जिसकी धनुपृष्ट 60418 $\frac{12}{19}$ योजन की है। इसके बीच में नीलवंत पर्वत के शिखर तल से कुंड में गिर कर दक्षिणी तोरण से निकलने वाली सीता नदी है। जो सीधी मेरू पर्वत के दक्षिणी किनारे तक (दो योजन पूर्व) अर्थात् इस क्षेत्र के उत्तरी किनारे तक गई है। उसके कारण यह क्षेत्र बराबर दो विभागों में विभजित है। यथा- 1. पश्चिमी विभाग, 2. पूर्वी विभाग।

गंधमादन वक्षस्कार पर्वत– उत्तर कुरू के पश्चिमी विभाग के पश्चिमी किनारे गंधमादन गजदंताकार वक्षस्कार पर्वत है। जो नीलवंत पर्वत के पास 500 योजन चौड़ा और 400 योजन ऊँचा है। मेरू पर्वत के पास अंगुल के असंख्यातवें भाग चौड़ा

महाविदेह क्षेत्र की एक विजय

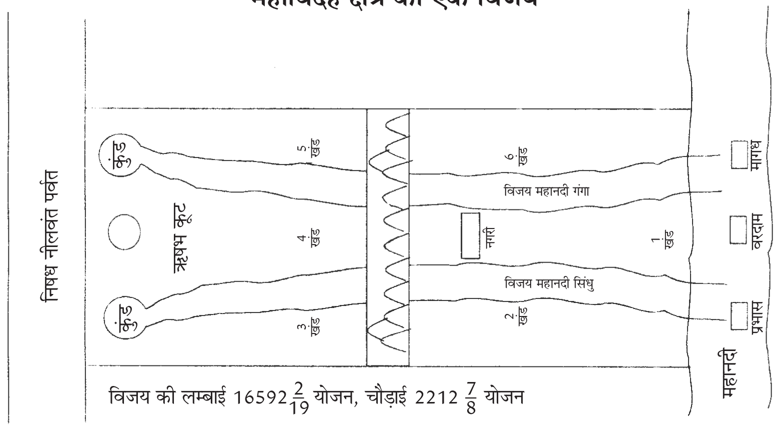

वक्षस्कार पर्वत

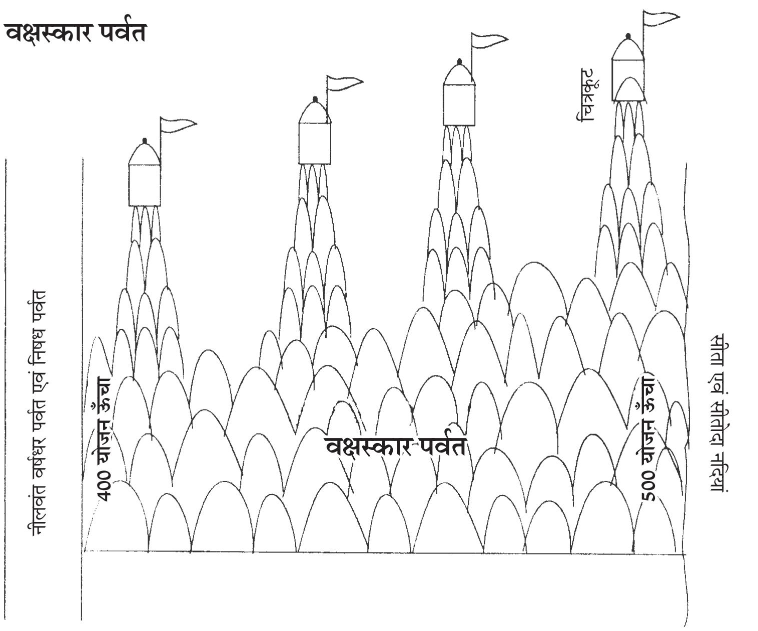

500 योजन ऊँचा है। इस प्रकार यह पर्वत मेरू पर्वत तक क्रमशः में बढ़ता गया है और चौड़ाई में घटता गया है। समभूमि पर इसके दोनों पद्मवर वेदिका एवं वनखंड है।

कूट– इस पर्वत पर सात कूट हैं यथा- 1. सिद्धायतन कूट 2. गंधमादन 3. गंधिलावती कूट 4. उत्तर कुरू कूट 5. स्फटिक कूट 6. लोहिताक्ष कूट 7. आनंद कूट। पहला सिद्धायतन कूट मेरु के निकट है, सातवां आनंद कूट नीलवंत पर्वत के पास है। यों क्रमशः पांचवें, छट्ठे स्फटिक लोहिताक्ष कूट पर भोगंकरा और भोगवती दो देवियां रहती है शेष 4 पर सदृश नाम वाले अधिष्ठाता देव उत्तम प्रासादों में रहते हैं। शेष कूट का वर्णन चुल्लहिमवंत पर्वत के कूटों के ऊंचाई विष्कंभ आदि वर्णन के समान है।

नीलवंत पर्वत से चार कूट दक्षिण दिशा में है और उसके बाद के तीन कूट गोलाई वाले भाग में नीलवंत से दक्षिण पश्चिम मे और मेरू से उत्तर पूर्व में है। इन पर निवास करने वाले देव देवियों की राजधनियां विदिशा में अन्य जम्बूद्वीप में है।

सुगंधी पदार्थ से जैसे मनोज्ञ सुगंध निकलती एवं बिखरती रहती है, उसी तरह इस पर्वत से सदा ईष्ट सुगंध फैलती रहती है, गंधमादन नामक परम ऋद्धि सम्पन्न देव इस पर निवास करता है, इसलिये इस पर्वत का अनादि शाश्वत नाम 'गंधमादन वक्षस्कार' सीमा करने वाला पर्वत है।

उत्तर कुरू क्षेत्र में 3 पल्योपम की उम्र वाले 3 कोश की अवगाहना वाले युगलिक मनुष्य रहते हैं। इस क्षेत्र का एवं मनुष्यों का सम्पूर्ण अवसर्पिणी के प्रथम आरे के प्रारम्भ काल के समान है।

पर्वत	द्रह	देवी	गहराई × चौडाई × लम्बाई	कमल
चुल्ल हिमवंत पर्वत	पद्मद्रह	श्री देवी	10 × 500 × 1000 योजन	1,20,50,120
महाहिमवंत	महापद्मद्रह	ह्री देवी	10 × 1000 × 2000 योजन	2,41,00,240
निषध पर्वत	तिगिच्छ द्रह	धृति देवी	10 × 2000 × 4000 योजन	4,82,00,480
शिखरी पर्वत	पुंडरीक द्रह	लक्ष्मी देवी	10 × 500 × 1000 योजन	1,20,50,120
रुक्मि पर्वत	महापुंडरीक द्रह	बुद्धि देवी	10 × 1000 × 2000 योजन	2,41,00,240
नीलवंत पर्वत	केशरी द्रह	कीर्त्ति देवी	10 × 2000 × 4000 योजन	4,82,00,480

क्षेत्र (जम्बूद्वीप)	महानदियां	नदी परिवार	कुल नदियां
भरत क्षेत्र	गंगा, सिंधु	14000	28000
एरवत क्षेत्र	रक्ता, रक्तवती	14000	28000
हेमवंत (युग.) क्षेत्र	रोहिता, रोहितांसा	28000	56000
हेरण्यवत (युग.) क्षेत्र	रूप्यकला, सुवर्णकला	28000	56000
हरिवास (युग.) क्षेत्र	हरिकांता, हरिसलिला	56000	112000
रम्यक वास (युग.) क्षेत्र	नरकांता, नारीकांता	56000	112000
पूर्व महाविदेह	सीता (16 गंगा, 16 सिंधु, 6 अंतर नदी)	38×14000	532000
पश्चिम महाविदेह	सीतोदा (16 गंगा, 16 सिंधु, 6 अंतर नदी)	38×14000	532000
धातकी खंड द्वीप	जम्बू से दुगुनी		2912000
पुष्करार्द्ध द्वीप	जम्बू से दुगुनी		2912000
		नदियां	**7280000**

यमक पर्वत– नीलवंत वर्षधर पर्वत से 834 $\frac{4}{7}$ योजन दक्षिण में सीता नदी के दोनों ओर हजार योजन ऊंचे, हजार योजन मूल में चौड़े 750 योजन बीच में और 500 योजन ऊपर चौड़े दो पर्वत है दोनों का नाम यमक पर्वत है। ये गोपुच्छ संस्थान संस्थित है। स्वर्ण मय है। दोनों यमक नामक देव अपने परिवार सहित रहता है। उत्तर दिशा में इनकी यमिका राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में है।

पांच द्रह एवं 100 कांचनक पर्वत– इन दोनों पर्वतों 834 $\frac{4}{7}$ योजन दूर दक्षिण में सीता नदी के मध्य नीलवंत द्रह है। पूर्व पश्चिम 500 योजन चौड़ा उत्तर दक्षिण 1000 योजन लम्बा है। लम्बाई के 1000 योजन के पास 10-10 योजन के अंतर

10-10 कंचनक पर्वत है, अर्थात द्रह के पूर्वी किनारे 10 और पश्चिमी किनारे 10 यों कुल 20 कंचनक पर्वत एक द्रह के दोनों तटों पर है। ये पर्वत 100 योजन ऊंचे और मूल में सौ योजन एवं शिखर पर 50 योजन विष्कंभ वाले हैं गोपुच्छ संस्था में है। इस दस दस पर्वतों ने 10 योजन का अंतर और 10 योजन अवगाहन मिलाकर कुल 1090 योजन क्षेत्र अवगाहन किया है जिसें पहला और अंतिम कंचनक पर्वत नीलवंत पद्मद्रह की लम्बाई की सीमा से 45-45 योजन बाहर निकले हुए होने से 1090 योजन क्षेत्र होता है।

1. नीलवंत द्रह के समान ही 2. उत्तर कुरू द्रह 3. चन्द्र द्रह 4. ऐरावत द्रह 5. माल्यवंत द्रह का वर्णन समझना एवं दोनों तरफ मिलाकर 20-20 कंचनक पर्वत् का वर्णन भी जानना इस तरह कुल 5 द्रह और 100 कंचनक पर्वत है इन सभी के स्वामी देव एक पल्योपम की स्थिति वाले है।

जबू सुदर्शन नाम शाश्वत वृक्ष- देव कुरू क्षेत्र में सीता महा नदी के पूर्वी किनारे जम्बूपीठ है जो बीच में 10 योजन जाड़ा है, किनारों पर दो कोश जाड़ा है। 500 योजन लम्बा चोड़ा गोलाकार है। पद्मवर-वेदिका एवं वनखंड से घिरा हुआ है। सर्व जम्बूनद जातीय स्वर्णमय है। चारों दिशा में सोपान-सीढ़ियां है।

सुदर्शन नामक जम्बूवृक्ष

जम्बूवृक्ष 8 योजन ऊँचा $\frac{1}{2}$ योजन भूमि में गहरा है, जम्बूपीठ पर मणिपीठिका है, उसके चारों तरफ श्रीदेवी के कमल की तरह 3 जम्बू वलय है, मुख्य जम्बू 12 वेदिका से घिरा है शेष 6 छह वेदिकाओं से घिरा हुआ है।

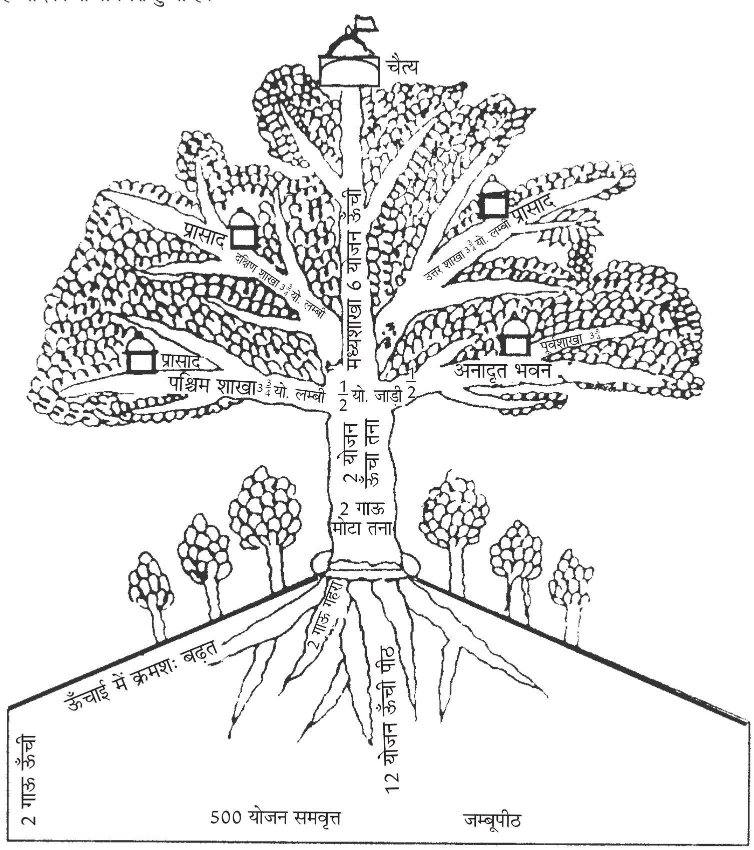

इस जम्बूपीठ के बीच में 8योजन लम्बा चौड़ा 4 योजन जाड़ा चबूतरा है। उस चबूतरे पर जम्बू सुदर्शन नामक वृक्ष है। जो आठ योजन ऊंचा आधा योजन ज्यादा मोटा है। स्कंध दो योजन ऊंचा आधा जाड़ा हैं। मुख्य शाखा 6योजन लम्बी (ऊंची) है। यह वृक्ष मध्य भाग में 8योजन के विस्तार वाला है एवं ऊंचाई में सर्वाग्र $8\frac{1}{2}$ योजन का है। इस वृक्ष के विभाग विविध प्रकार के रत्नों एवं सोनों चांदी के हैं।

इसकी चार शाखाएं हैं उनके मूल स्थान में मध्य में सिद्धायतन हैं देशोन एक कोश ऊंचा एक कोश लम्बा आधा कोश चौड़ा है। अनेक स्तंभों पर स्थित है। 500 धनुष प्रमाण ऊंचे द्वार है। चारों दिशा में शाखाओं पर भवन प्रासाद है। पूर्व दिशा में भवन एक कोश चौड़ा और एक कोश ऊंचा है। इसमें केवल देव शय्या है। शेष तीन दिशाओं में प्रासादावतंसक है। जिसमें सपरिवार सिंहासन है।

यह जम्बू वृक्ष 12 पद्मवर वेदिकाओं से घिरा हुआ है। उसके बाहर 108जम्बू वृक्षों का एक घेरा है जो मुख्य वृक्ष के आधे प्रमाण वाले हैं। इनके पद्मवर वेदिका भी 6-6 है।

जिस तरह पद्मद्रह में श्री देवी के परिवार के 50120 पद्म कहे हैं उस प्रकार यहां भी आठों दिशाओं में जम्बू सुदर्शन वृक्ष के स्वामी अनादृत देव के परिवार के 50120 जम्बूवृक्ष है।

इसके बाहर 100 योजन चौड़ाई वाले तीन वन खंड घिरे हुए हैं। जिसमें पहले वन खंड में 50 योजन अंदर (जम्बू वृक्ष से) जाने पर चारों दिशओं में शय्या युक्त भवन है। और चारों दिशाओं में चार चार बावड़ियां है, जिनके बीच में प्रासादावतंसक सिंहासन सरिवार युक्त है।

इन चार दिशा और विदिशाओं में आये भवन और प्रासादावंतसक के बीच के क्षेत्र में 1-1 कूट है यो कुल आठ कूट है। जो आठ योजन ऊंचे दो योजन ऊंडे भूमि पर आठ योजन आयाम विष्कंभ वाले गोपुच्छ संस्थान वाले हैं। गोपुच्छ संस्थान वाले पर्वत या कूटों के मूल की चौड़ाई से मध्य में $\frac{3}{4}$ चौड़ाई होती है और ऊपर $\frac{1}{2}$ चौड़ाई होती है। सर्वत्र गोलाकार होते हैं। ये सभी स्वर्णमय है। वेदिका और वनखंड से घिरे हुए हैं।

मुख्य देवी के 4 महत्तरिकाएं होती है और देव के 4 अग्रमहिषियां होती हैं। मुख्य देवी से पूर्व में इनका आवास स्थान पद्म या जम्बू आदि पर होता हैं अर्थात् इस पर भवन या प्रसादावतंसक होता हैं। जिन देव देवी के केवल भवन होते है उनके शयया सिंहासन आदि उसी में होते हैं। और जिनके भवन प्रासादावतंसक दोनों होते है उनके भवन में देव शय्या-शयनीय होता है और प्रासादावतंसक में सिंहासन सपरिवार बैठने आदि की व्यवस्था होती हैं। राजधानियां सभी मुखिया देव देवीयों की मेरू से जिस दिशा में उनका आवास है, उसी दिशा में अगले जम्बूद्वीप में 12000 योजन जाने पर आती हैं।

राजधानी वेदिका वनखंड भवन आदि वर्णन जब जहां पहली बार आये हैं वहां उनका आवश्यक परिचय दे दिया हैं। फिर बारंबार इनका प्रसंग आने पर वह वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिये।

जम्बू सुदर्शन का यह नाम शाश्वत हैं। अनादृत देव जम्बू द्वीप का अधिपति देव इस पर रहता हैं।1 उसकी एक पल्योपम की स्थिति हैं। इसके 12 पर्याय नाम हैं। यह कहां रहता है, इसका स्पष्टिकरण नहीं हैं।

उत्तर कुरू क्षेत्र में उत्तर कुरू नामक इस क्षेत्र का अधिपति देव यहां रहता हैं। यह उत्तर कुरू क्षेत्र नाम भी शाश्वत हैं। यह अकर्म भूमि रूप युगलिक क्षेत्र हैं। अवसर्पिणी के प्रारम्भ जैसा यहां का क्षेत्र एवं मानव स्वभाव तथा अन्य व्यवहार हैं।

माल्यवान वक्षस्कार– गंधमादन गजदंताकांर वक्षस्कार पर्वत के समान ही इस पर्वत का वर्णन हैं। गंधमादन उत्तर कुरू क्षेत्र के पश्चिमी किनारे है और यह माल्यवान वक्षस्कार पूर्वी किनारे। ये दानों वक्षस्कार पहली और बतीसवीं विजय की सीमा

करने वाले भी है अर्थात् लम्बाई में आधी विजय तक अर्थात् वेताढ्य तक ये सीमा करते हैं। उसके आगे ये मेरू की तरफ मुडे होने से विजय की सीमा से दूर हो जाते हैं।

विद्युत्प्रभ आदि 4 गजदंत पर्वत

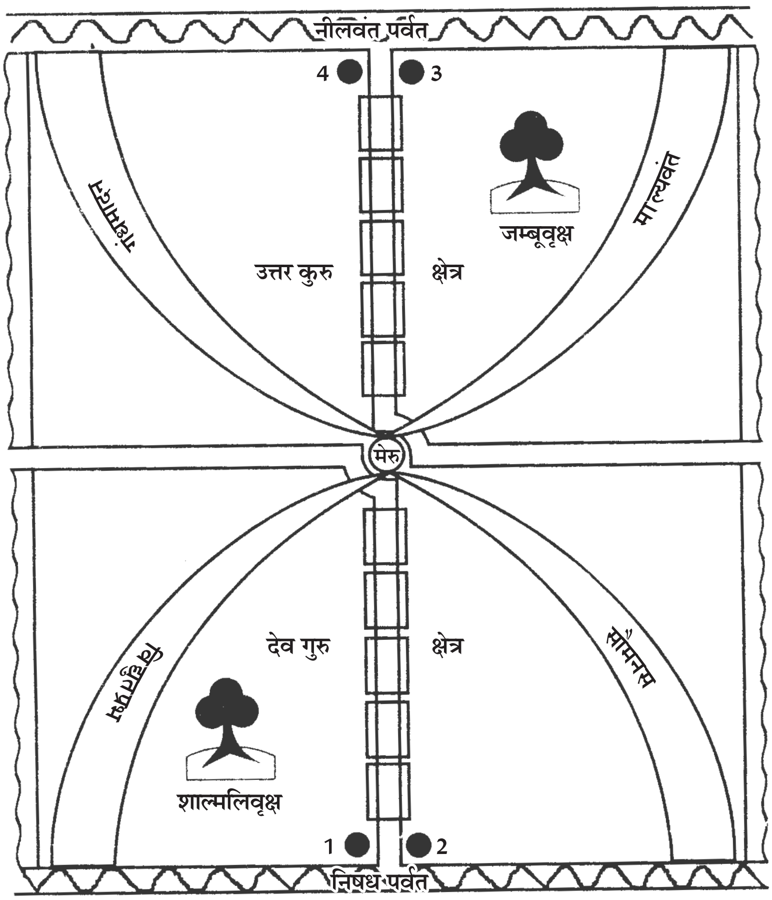

माल्यवान पर्वत पर 9 कूट हैं (गंधमादन पर 7 कूट है) उनके नाम इस प्रकार है-1. सिद्धायतन 2. माल्यवान 3. उत्तर कुरू 4. कच्छ 5. सागर 6. रजत 7. सीता 8. पूर्णभद्र 9. हरिस्सह ये क्रमशः मेरू की तरफ से नीलवंत तक हैं। सिद्धायतन कूट मेरू के पास है इन कूटों का माप पूर्ववत हैं। किन्तु नौवां हरिस्सह कूट जो नीलवंत पर्वत के निकट है, वह 1000 योजन ऊंचा हैं। यमक पर्वत के जैसा इसका सम्पूर्ण परिमाण है। पांच कूट नीलवंत पर्वत से दक्षिण दिशा में हैं। एवं शेष 4 मोड वाले स्थान में अर्थात् विदिशा में हैं। इस पर्वत पर बहुत से गुल्म जगह जगह पर हैं, जो फूल बिखेरते रहते हैं। ऋद्धिवान माल्यवंत देव यहां रहता है, अतः माल्यवंत वक्षस्कार यह इसका शाश्वत नाम हैं।

इस प्रकार इस उत्तर कुरू क्षेत्र के वर्णन में -दो वक्षस्कार, दो यमक पर्वत, 5 द्रह, 200 कंचनक पर्वत, जम्बू-सुदर्शन-वृक्ष, उसके 100 योजन वाले प्रथम वनखंड में -भवन पुष्करणियां, 8 कूट, माल्यवान वक्षस्कार एवं उस पर 1000 योजन वाले हरिस्सह कूट इत्यादि वर्णन किये गये हैं। यह उत्तर कुरू क्षेत्र का वर्णन पूर्ण हुआ ।

7. 1 से 8 विजय-

माल्यवान पर्वत से अर्थात् उत्तर कुरू क्षेत्र से पूर्व में पहली कच्छ विजय हैं। इसके उत्तर में नीलंवत पर्वत, दक्षिण में सीता नदी, पश्चिम में आधी दूरी तक माल्यवंत पर्वत और आधी दूरी तक भद्रशाल वन की वेदिका वनखंड है, पूर्व में चित्र कूट वक्षस्कार पर्वत हैं। यह विजय पूर्व-पश्चिम 2213 योजन कुछ कम चौड़ी उत्तर दक्षिण $16592\frac{2}{19}$ योजन लम्बी चौकोन हैं। बीच में 50 योजन चौड़ा वैताढ्य पर्वत है, जिससे उतरी कच्छ खंड और दक्षिणी कच्छ खंड $8271\frac{1}{19}$ योजन के दो विभाग बनते हैं। नीलवंत पर्वत के पास के गंगा कुंड और सिंधु कुंड में से गंगा सिन्धु नदी निकल कर कच्छ विजय के उत्तरी खंड से होती

हुई वेताढ्य पर्वत के नीचे से गुफाओं के किनारे से होती हुई दक्षिण खंड में प्रवेश करती है आगे बढ़ते हुए विदिशा में चलती हुई एक नदी चित्रकूट पर्वत और दूसरी नदी भद्रशालवान के पास विजय के किनारों पर सीता नदी में मिलती हैं।

इस प्रकार भरत क्षेत्र के समान इस विजय के भी वेताढ्य और गंगा सिन्धु नदी के द्वारा 6खंड होते है। शेष चक्रवर्ती आदि के सभी वर्णन भरत क्षेत्र के समान हैं। विशेषता यह है कि 6आरों का वर्णन और भरत के केवली होने का वर्णन यहां नहीं है। यहां सदा चौथे आरे के प्रारम्भ जैसा भाव वर्त्तता हैं। वह वर्णन अवसर्पिणी के चौथे आरे के समान हैं।

वेताढ्य पर्वत पूर्वी-पश्चिम दोनों दिशाओं में वक्षस्कार पर्वत को स्पर्श किए हुए है 1. माल्यवंत को 2. चित्रकूट को।

भरत के समान यहां क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक राजा उत्पन्न होता हैं। कच्छ नामक देव इस विजय का अधिपति देव है, इसलिए इस विजय का 'कच्छ' यह शाश्वत नाम हैं।

दूसरी से आठवीं विजय का वर्णन भी इसी प्रकार है वे क्रमशः पूर्व दिशा की तरफ हैं। आठवीं विजय सीता मुख वन के पास हैं। इन आठों विजयों के सात मध्य स्थान है, जिनमें 3 नदियां एवं 4 वक्षस्कार पर्वत हैं। सातों विजयों के नाम और राजधानी के नाम अलग-अलग है। चक्रवर्ती राजा का नाम विजय के नाम के समान हैं।

क्रमांक	8 विजय	8 राजधानी
1.	कच्छ	क्षेमा
2.	सुकच्छ	क्षेमापुरा
3.	महाकच्छ	अरिष्टा
4.	कच्छावती	अरिष्टापुरा
5.	आवर्त्त	खड़्गी
6.	मंगलावर्त्त	मंजूषा
7.	पुष्कलावर्त्त	औषधि
8.	पुष्कलावती	पुण्डरीकिणी

चार वक्षस्कार तीन नदिया- 1. चित्रकूट पर्वत 2. ग्राहावती नदी 3. पद्मकूट पर्वत 4. द्रहवती नदी 5. नलिन कूट पर्वत 6. पंकावती नदी 7. एक शैल पर्वत।

चित्र कूट पहली दूसरी विजय के बीच में हैं। ग्राहावती नदी दूसरी तीसरी विजय के बीच में हैं। इसी प्रकार यावत् एक शैल पर्वत 7 वीं 8वीं विजय के बीच में हैं।

ये चारों पर्वत उत्तर-दक्षिण विजय प्रमाण लम्बे, पूर्व पश्चिम चौड़े, नीलवंत पर्वत के पास 500 योजन है और सीता नदी के पास 400 योजन चौड़े हैं। ऊंचाई नीलवंत पर्वत के पास 400 योजन और सीता नदी के पास 500 योजन है। ये सर्व रत्न मय एवं अश्वस्कंध के आकार ऊपरी भाग वाले हैं। दोनों तरफ पद्मवर वेदिका और वनखंड से सुशोभित हैं। इन पर्वतों पर 4-4 कूट हैं। सीता नदी की तरफ पहला सिद्धायतन कूट है, दूसरा पर्वत के नाम का ही कूट है, उसके बाद दो आसपास की विजयों के नाम वाले कूट हैं। इस प्रकार सभी के 4-4 कूटों का नाम आगे भी समझ लेना। सदृश नाम वाला इन पर्वतों का मालिक देव इन पर रहता हैं। और पर्वत के ये शाश्वत नाम हैं।

ये तीनों अंतर नदियां नीलवंत पर्वत के नितंब से सदृश नाम वाले कुंड में से निकलती है एवं सीधी दक्षिण में जाते हुए सीता नदी में मिल जाती हैं। ये 125 योजन चौड़ी 2 योजन गहरी सर्वत्र समान हैं। सीता नदी में प्रवेश करने के स्थान पर ये दोनों तरफ की गंगा सिन्धु के साथ ही सीता नदी में मिलती हैं अर्थात् वहां तीनों नदियों का सीता नदी में प्रवेश स्थान संलग्न हैं। इसलिये इस अपेक्षा से अंतर नदियों का परिवार गंगा नदी से दुगुना कहा गया हैं वास्तव में यह सर्वत्र समान चौड़ाई से ही सम्पूर्ण विजय के किनारे चलती हैं। इसमें बीच में कोई नदियें नहीं मिलती हैं।

बीच की 6विजयों के एक किनारे उक्त अंतर नदी है और दूसरे किनारे उक्त वक्षस्कार पर्वत हैं। अंतिम आठवीं विजय के एक किनारे वक्षस्कार पर्वत हैं और दूसरे किनारे उत्तरी सीतामुख वन हैं।

8. सीता मुख वन-

इस वन के बीच में सीता नदी होने से इसके दो विभाग है- 1. उत्तरी सीतामुख वन 2. दक्षिणी सीतामुख वन ये दोनों वन उत्तर-दक्षिण लम्बे (विजय प्रमाण) हैं। पूर्व पश्चिम चौड़े 2922 योजन हैं। ये सीता नदी के पास इतने चौडे है और निषध नील वर्षधर पर्वत के पास 1/19 योजन मात्र चौडें हैं। इनके पूर्व दिशा में जगती है और पश्चिम में विजय हैं। एक दिशा में सीता नदी और एक दिशा में वर्षधर पर्वत हैं। दो तरफ पद्मवर वेदिका और वन खंड हैं। उत्तर दक्षिण में नहीं हैं।

उक्त आठों विजय के वैताढ्य पर्वत पर जो 16आभियोगिक श्रेणियां है, उन पर उत्तरी लोकाधिपति ईशानेन्द्र के अभियोगिक देव हैं। क्योकि ये आठ विजय जम्बू द्वीप के उत्तरी-दक्षिणी दो विभाग में से उत्तरी विभाग में समाविष्ट हैं। उत्तरी सीतामुख वन नीलवंत पर्वत के पास 1/19 योजन चौड़ा है और दक्षिणी सीतामुख वन निषध पर्वत के पास 1/19 योजन चौड़ा है सीता नदी के पास दोनों 2922 योजन चौड़ा है अतः इनका शाश्वत नाम दक्षिणी उत्तरी सीता मुख वन हैं।

9. नौवीं से सोलहवीं विजय-

ये आठ विजय निषध पर्वत के उत्तर में सीता नदी के दक्षिण में हैं। इनके बीच में तीन नदियें 4 वृक्षस्कार पर्वत हैं। जिनका उपरोक्त आठ विजयों के वर्णन के समान हैं। पूर्वोक्त आठ विजय सीता नदी के उत्तर में एवं जम्बू द्वीप के उत्तरार्द्ध भाग में है और ये आठ विजय 4 पर्वत एवं 3 नदियें सीता नदी के दक्षिण में एवं दक्षिणी जम्बूद्वीप विभाग में है अतः इन विजयों के वैताढ्य पर्वत की अभियोगिक श्रेणी के देव दक्षिण लोक के अधिपति शक्रेंद्र के आज्ञाधीन हैं।

इस विभाग की विजय, राजधानी, पर्वत एवं नदी के नामों से भिन्नता हैं।

	विजय नाम	राजधानी नाम	अंतर नदी एवं पर्वत
9.	वत्स	सुसीमा	त्रिकुट
10.	सुवत्स	कुंडला	तप्तजला
11.	महावत्य	अपराजिता	वैश्रमण कूट
12.	वत्सकावती	प्रभंकरा	मत्तजला
13.	रम्य	अंकावती	अंजनकूट
14.	रम्यक	पद्मावती	उन्मतजला
15.	रमणीय	शुभा	मातंजन कूट
16.	मंगलावती	रत्न संचया	सौमनस गजदंता वक्षस्कार

नोट– अंतर नदी और पर्वत जो जिस विजय के सामने सूचित किये गये हैं वे उस विजय के बाद पश्चिम में हैं। यह उक्त सारा क्रम पूर्व से पश्चिम है सीतामुख वन के पास से सौमनस (गजदंता) वक्षस्कार तरफ हैं। सीतामुख वन के पास नौवीं विजय है फिर क्रम से 10 वीं आदि हैं। 16वीं विजय गजदन्ता सौमनस के पास हैं।

10. देवकुरू क्षेत्र–

उत्तर कुरू के सदृश एवं उसके सीधो-सीध सामने दक्षिण में देवकुरू क्षेत्र हैं। 16वीं विजय के पास सोमनस वक्षस्कार पर्वत हैं। जिसका वर्णन गंधमादन वक्षस्कार के समान हैं। सात कूट इस प्रकार है- 1. सिद्ध 2. सोमनस 3. मंगलावती 4. देवकुरू 5 विमल 6. कंचन 7. वशिष्ट। विमल और कंचन कूट पर सुवत्सा और वत्समित्रा देवी का निवास हैं शेष 4 पर सदृश नाम के देवों का निवास हैं। शेष वर्णन गन्धमादन वक्षस्कार के समान हैं।

चित्रविचित्र कूट पर्वत– निषध पर्वत 834 योजन दूर,उत्तर में सीतोदा नदी के पास, दोनों तरफ दोनों यमक पर्वतों के समान चित्र विचित्र कूट नामक पर्वत हैं। इसमें 834 योजन दूर, उत्तर में सीतोदा नदी के बीच में पहला निषध द्रह, उसके बाद उतनी दूरी पर क्रमशः 2. देवकुरू, 3. सुर, 4. सुलस, 5. विद्युतप्रभ ये पांच द्रह है एवं 100 कंचनक पर्वत हैं। इनका वर्णन उत्तर कुरू के समान हैं।

कूटशाल्मली पीठ– सीतोदा महानदी के द्वारा देवकुरू क्षेत्र दो विभागों में विभाजित है 1. पूर्वी देव कुरू 2. पश्चिमी देवकुरू। पश्चिमी देव कुरू क्षेत्र के बीचों- बीच कूट शाल्मली पीठ है, उस पर चबूतरा है और उस चबूतरे पर कूट शाल्मली वृक्ष हैं। सम्पूर्ण वर्णन जम्बू सुदर्शन वृक्ष के समान हैं। इसका अधिपति गरूड़ देव हैं। युगलिक क्षेत्र सम्बन्धी एवं अन्य अवशेष वर्णन उत्तर कुरू के समान हैं।

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत– यह गजदंताकार वक्षस्कार पर्वत 17 वीं विजय के पूर्व में एंव देवकुरू क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर हैं। इसका संपूर्ण वर्णन माल्यवंत वक्षस्कार पर्वत के समान हैं। इस पर 9 कूट है यथा- 1. सिद्धायतन 2. विद्युत्प्रभ 3. देव कुरू 4. पद्म 5. कनक 6. स्वस्तिक 7. सीतोदा 8. शतंज्वल 9. हरिकूट। नव में हरिकूट का वर्णन हरिस्सह कूट के समान है, जो कि 1000 योजन ऊंचा हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् हैं। आठ कुटों का वर्णन अन्य कूटों के सदृश हैं।

यह देवकुरू युगलिक क्षेत्र का वर्णन अधिकांशतः उत्तर कुरू क्षेत्र के समान पूर्ण हुआ।

11. विजय वर्णन 17 से 24 तक– विद्युत्प्रभ वक्षस्कार के पास पश्चिम में निषध पर्वत से उत्तर में, सीतोदा नदी के दक्षिण में, 17 वीं पक्ष्म विजय हैं। उसके बाद क्रमशः 18 से 24 तक विजय हैं। उनके बीच में 3 नदियें और 4 पर्वत पूर्व वर्णन के समान हैं। इनके नाम इस प्रकार है-

विजय–17 पक्ष्म 18. सुपक्ष्म 19. महापक्ष्म 20. पक्ष्मकावती 21. शंख 22. कुमुद 23. नलिन 24. नलिनावती (सलिलावती)

इनकी राजधानियां– 1. अश्वपुरी 2. सिंहपुरी 3. महापुरी 4. विजयपुरी 5. अपराजिता 6. अरजा 7. अशोका 8. वीतशाका।

वक्षस्कार पर्वत– 1. अंकावती 2. पक्ष्मावती 3. आशीविष 4. सुखावह ।

नदियां– 1. क्षीरोदा, 2. शीतस्त्रोता नदी, 3. अंतरवाहिनी ।

12. सीतोदा मुख वन-

सीतोदा नदी का जहां लवण समुद्र में प्रवेश स्थान है उसके दोनों तरफ 24 वीं 25 वीं विजय की लम्बाई के बराबरी में उत्तरी और दक्षिणी सीतोदा मुख वन हैं। इनका वर्णन सीता मुख वन के समान हैं। अन्यत्र आये वर्णनों के अनुसार ये दोनों वन और 24 वीं 25 वी. विजय नीचालोक में हैं अर्थात् 1000 योजन नीचे हैं।

महाविदेह क्षेत्र में वनमुख

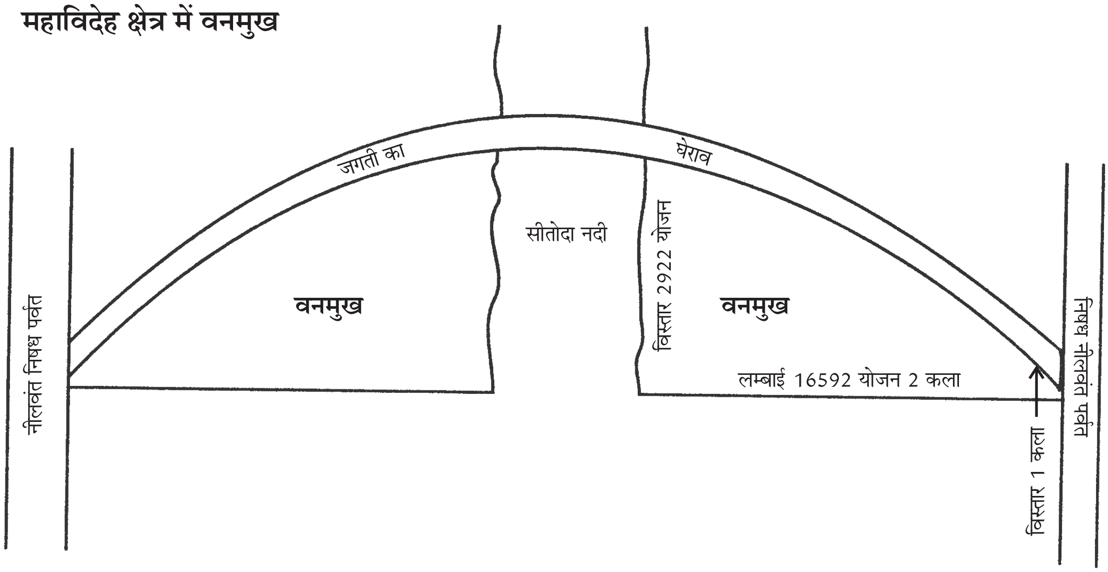

13. विजय 25 से 32 तक-

उत्तरी सीतोदा मुख वन के पास पूर्व में 25 वी. विजय हैं। उस विजय के उत्तर में नीलवंत पर्वत हैं। फिर क्रमशः 26वीं से 32 वीं विजय भी पूर्व-पूर्व में हैं। इनके बीच में चार पर्वत और 3 नदियां पूर्ववत् हैं। उनके नाम इस प्रकार है-

विजय- 25. वप्रा 26. सुवप्रा 27. महावप्रा 28. वप्रावती 29. वल्गू 30. सुवल्गू 31. गंधिल 32. गन्धिलावती।

राजधानी- 1. विजय 2. वेजयंती 3. जयंति 4. अपराजिता 5. चक्रपुरी 6. खड्गपुरी 7. अवध्या 8अयोध्या।

पर्वत- 1. चन्द्र पर्वत 2. सूर्य पर्वत 3. नाग पर्वत 4. देव पर्वत।

नदियां- 1. उर्मिमालिनी 2. फेणमालिनी 3. गंभीरमालिनी।

पूर्व महाविदेह 16 विजयादि				पश्चिम महाविदेह 16 विजयादि			
	विजय	राजधानी	पर्वत / नदी		विजय	राजधानी	पर्वत / नदी
1.	कच्छ	क्षेमा	चित्रकूट पर्वत	17.	पद्म	अश्वपुरा	अंकापाती पर्वत
2.	सुकच्छ	क्षेमपुरा	गाहावई नदी	18.	सुपद्म	सिंहपुरा	क्षीरोदा नदी
3.	महाकच्छ	अरिष्ठा	ब्रह्मकूट पर्वत	19.	महापद्म	महापुरा	पद्मापाती पर्वत
4.	कच्छावती	अरिष्टपुरा	द्रहावती नदी	20.	पद्मावती	विजयापुरी	शीत स्त्रोदा नदी
5.	आवर्त्त	खड्गी	नलिन कूट पर्वत	21.	शंख	अपराजिता	आशिविष पर्वत
6.	मंगलावर्त्त	मंजूषा	वेगवती नदी	22.	कुमुद	अरजा	अंतोवाहिनी नदी
7.	पुष्करावर्त्त	औषधि	एक शैल पर्वत	23.	नलिन	अशोका	सुखावह पर्वत
8.	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी	वनमुख	24.	सलिलावती	वीतशोका	वनमुख
9.	वच्छ	सुसीमा	वनमुख	25.	वप्रा	विजया	वनमुख
10.	सुवच्छ	कुंडला	त्रिकूट पर्वत	26.	सुवप्रा	वैजयंती	चन्द्र पर्वत
11.	महाकच्छ	अपराजिता	तप्तजला नदी	27.	महावप्रा	जयंती	उर्मिमालिनी
12.	वच्छावती	प्रभंकरा	वैश्रमण पर्वत	28.	वप्रावती	अपराजिता	सूर्य पर्वत
13.	रम्य	अंकावती	मत्ता नदी	29.	वल्गु	चक्रपुरा	फेनमालिनी नदी
14.	रम्यक	पद्मावती	अंजन पर्वत	30.	सुवल्गु	खड्गपुरा	नाग पर्वत
15.	रमणीक	शुभा	उन्मत्त जला	31.	गंधिला	अवध्या	गंभीर मालिनी
16.	मंगलावती	रत्न संचया	मातंजन पर्वत	32.	गंधिलावती	अयोध्या	देव वक्षस्कार पर्वत

14. मन्दर मेरू पर्वत–

इस पर्वत का नाम ''मंदर'' है मेरू का अर्थ है केन्द्र स्थान, मध्य स्थान। यह पर्वत भी जम्बूद्वीप के सभी दिशाओं से मध्य में है, अढाई द्वीप के मध्य में है, तिर्छा लोक के मध्य में है और इस महाविदेह क्षेत्र के भी लम्बाई और चौड़ाई दोनों ही अपेक्षा से मध्य में है। अर्थात् इस पर्वत से पूर्व में और पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र 11842 $\frac{2}{19}$ योजन है उत्तर में और दक्षिण में 45000 योजन हैं। बीच में यह पर्वत 10000 योजन का भूमि पर लम्बा चौडा गोलाकार है तीन गुणी साधिक परिधि हैं। 99 हजार योजन भूमि से ऊंचा हैं। 1000 योजन भूमि में गहरा हैं। शिखर तल पर 1000 योजन लम्बा चौड़ा गोलाकार समतल हैं। बीच में क्रमशः विष्कंभ कम होता गया है जो 10000 से घटते घटते शिखर तक 1000 योजन होता हैं। सम भूमि पर यह पर्वत वन खंड और पद्मवर वेदिका से घिरा हुआ हैं।

इस पर्वत पर चार श्रेष्ठ वन है– 1. भद्रशाल वन 2. नंदन वन 3. सौमनस वन 4. पंडक वन।

मेरु पर्वत का आकार

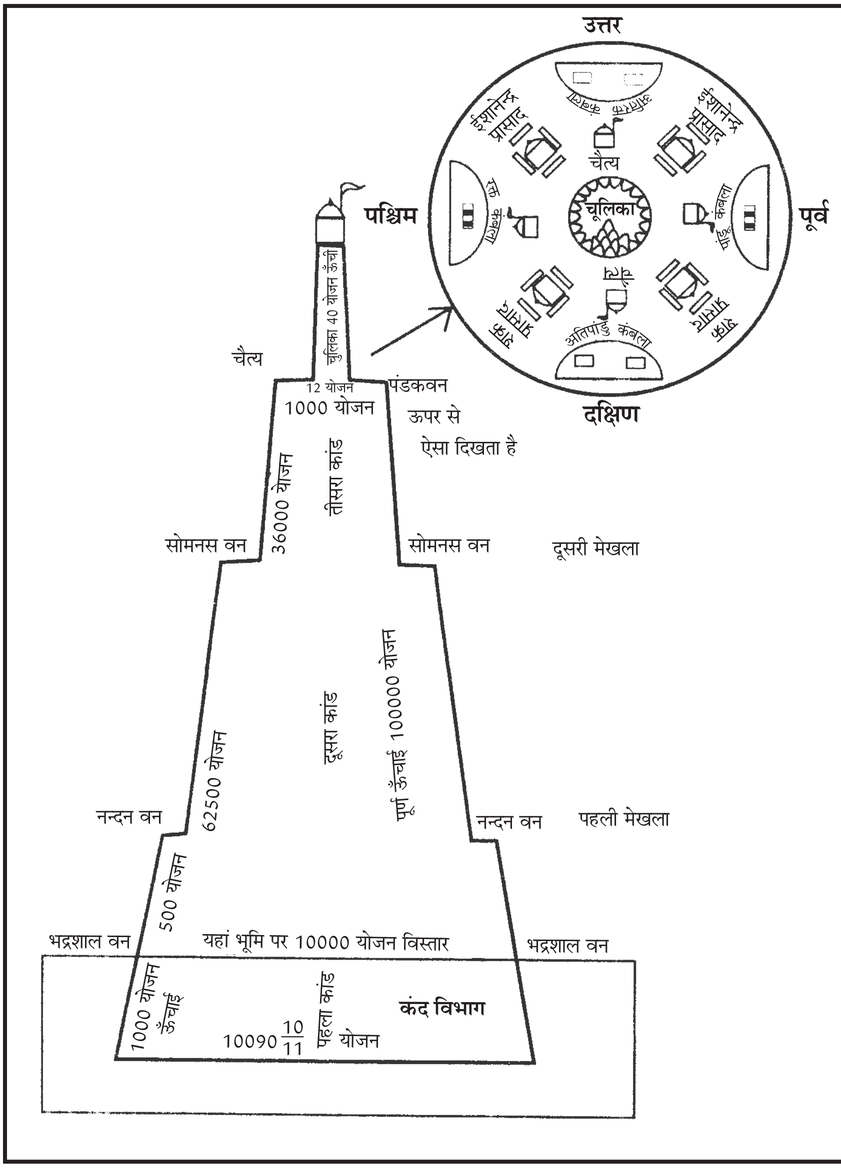

1. **भद्रशाल वन-** यह वन उपवन समभूमि पर मेरू के चौ तरफ घिरा हुआ हैं। उत्तर दक्षिण में मेरू 500-500 योजन प्रमाण हैं। मेरू से पूर्व में 22000 योजन प्रमाण हैं। इतना ही पश्चिम में हैं। इस भद्रशाल वन में चारों वक्षस्कार (गजदंता) पर्वत भी मेरू को स्पर्श कर रहे है। सीता सीतोदा दोनों नदियां भी मेरू के दो योजन पास से निकल रही हैं। इस प्रकार चार पर्वतों से चार विभाग होते है और इन चार विभागों में एक एक नदी दो दो विभागों में जाने से चारों विभागों के दो दो खंड करती हैं। अतः इन चार पर्वत एवं दो नदी से इस भद्रशाल वन के 8विभाग हो गये हैं। इन आठों विभागों के एक दिशा में नदी और एक दिशा में वक्षस्कार पर्वत हैं। और एक दिशा में मेरू पर्वत हैं। चौथी दिशा विस्तृत है जिसमें आगे जाकर विजयें हैं अथवा निषध-नील पर्वत हैं।

इस वन में मेरू से आठ दिशाओं में (4 दिशा 4 विदिशा में) सिद्घायतन एवं पुष्करणियां हैं। वे इस प्रकार है- पूर्व आदि दिशाओं मे मेरू से 50 योजन दूर एक-एक सिद्धायतन हैं। और विदिशाओं में 50-50 योजन दूर चार चार पुष्करिणियां है उन चारों के बीच में एक-एक प्रासादावतंसक है (महल) हैं। चार प्रासादों में से शक्रेन्द्र के और दो ईशानेन्द्र के हैं। महाविदेह की मध्य रेखा से उत्तर वाले दोनों ईशानेन्द्र के है और दक्षिण वाले दोनों शक्रेन्द्र के हैं।

भद्रशाल वन

इस भद्रशाल वन में मेरु से 50 योजन पर चार दिशाओं में 4 चैत्य नदियों के पास, 4 इन्द्रप्रासाद पर्वतों के पास है, इन 8 के 8 अन्तरों में 8 करिकूट है, इनका कुछ हिस्सा वन में कुछ कुरुक्षेत्र में है।

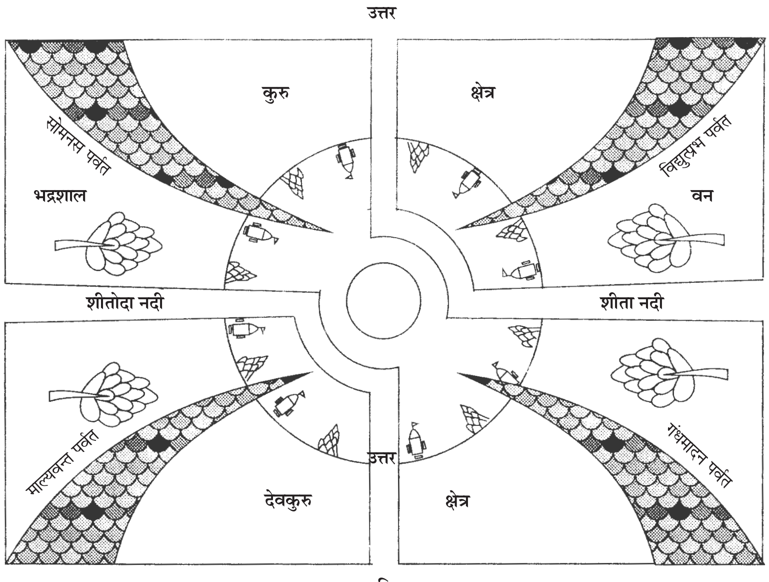

मेरु से उत्तर दक्षिण वन 250 योजन चौड़ा है और पूर्व-पश्चिम वन प्रत्येक 22000 योजन विस्तार में है और चौड़ाई अनियमित है।

प्रत्येक इन्द्रप्रासाद के चार दिशाओं में 4-4 बावड़ियाँ है।

भद्रशाल वन के 8 विभाग

पूर्व-पश्चिम लम्बाई 22000 योजन

दक्षिण-उत्तर चौड़ाई 250 योजन

कुल = 10500 योजन

54000 योजन

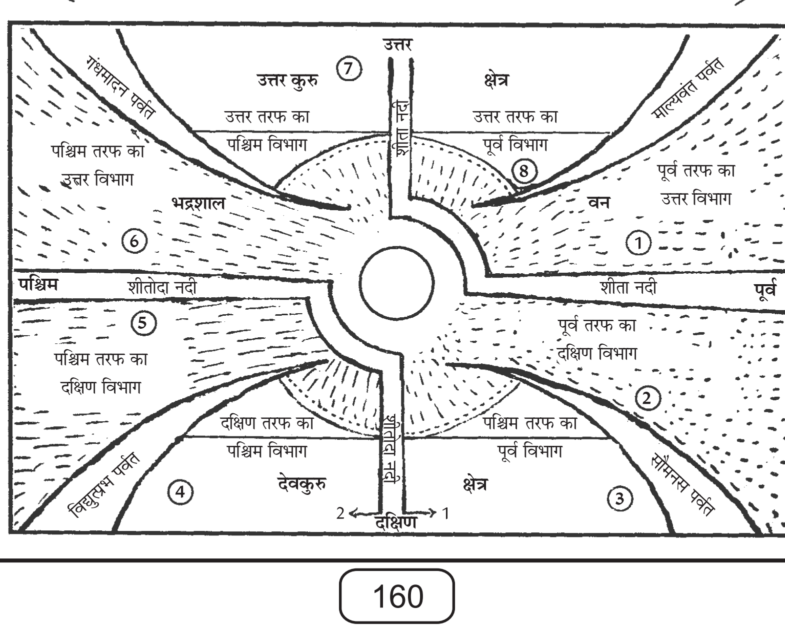

इस वन में रहे आठों विभागों में विदिशा में एक एक हस्तिकूट हैं। जो कि अपने अपने खंड के मध्यम में होना संभव हैं। इनके नाम इस प्रकार है- 1. पद्मोतर 2. नीलवंत 3. सुहस्ती 4. अंजनागिरि 5. कुमुद 6. पलास 7. अवतंस 8. रोचनागिरि। चुल्लहिमवंत पर्वत के कूटों जैसी इनकी ऊंचाई आदि हैं। यह वन चारों दिशा में किनारे पर पद्मवर वेदिका एवं वन खंड से घिरा हुआ हैं।उत्तर दक्षिण का भद्रशाल बन देवकुरू उत्तर कुरू क्षेत्र में अवस्थित हैं पूर्वपश्चिम में पहली 16 वीं विजय तक एवं 17 वीं 32 वीं विजय तक विस्तृत हैं।

2. नंदन वन– सम भूमि से 500 योजन ऊपर नंदन वन हैं। जो 500 योजन चौड़ा वलयाकार मेरू के चौतरफ हैं। यहां पर आभ्यंतर पर्वत का 8954 $\frac{6}{11}$ योजन विष्कंभ है और नंदन वन के बाहर की अपेक्षा पर्वत का विष्कंभ 9954 $\frac{6}{11}$ योजन हैं। इस वन के चौतरफ पद्मवर वेदिका एवं वन खंड हैं। भद्रशाल वन के समान इसमें भी चार दिशाओं में सिद्धायतन विदिशाओं में

मेरु पर्वत पर नन्दन वन

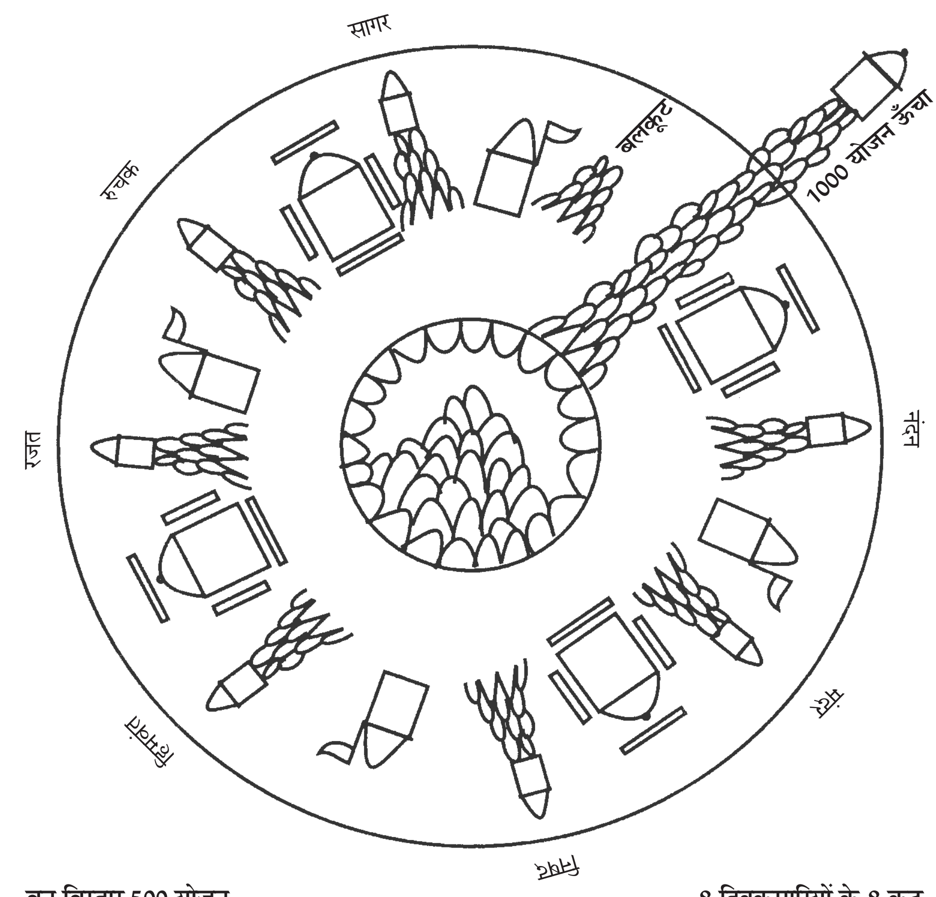

वन विस्तार 500 योजन

पूर्ण मेरु पर्वत विस्तार 9954 $\frac{6}{61}$ योजन

अन्तर्मेरु विस्तार 8954 $\frac{6}{61}$ योजन

चैत्य-प्रसाद-बावड़ियां, पंडकवन सहित

8 दिक्कुमारियों के 8 कूट

लम्बाई-चौड़ाई 500-500 योजन

शिखर 250 योजन

एक बलकूट चौड़ाई मूल में 1000 योजन

शिखर पर 500 योजन

बावडियां प्रासाद तथा 8कूट हैं। कूटों के नाम-1. नन्दन वन कूट 2. मंदर कूट 3. निषध कूट 4. हिमवत् कूट 5. रजत कूट 6. रूचक कूट 7. सागर कूट 8. वज्र कूट । इनके अतिरिक्त एक बल नामक नवमां कूट उत्तर पूर्व में विशेष है जो हजार योजन ऊंचा है अर्थात् हरि हरिस्सह कूट के सदृश परिमाण वाला हैं। आठ कूटों के स्वामी देवीयां हैं। नवमें ''बल'' कूट का स्वामी बल नामक देव हैं। स्वामी देव देवी के नाम भी कूट के सदृश नहीं है, प्रायः भिन्न नाम हैं। जबकि भद्रशाल वन के हस्ति कूटों के नाम और स्वामी देवों के नाम पूर्ण सदृश है और सभी देव है, देवी नहीं हैं।

3. सौमनस वन– नंदन वन की सम भूमि से 62500 योजन उपर 500 योजन का विस्तार वाला वलयाकार यह वन हैं। पद्मवर वेदिका एवं वन खंड से घिरा हुआ हैं। यहां पर कूट नहीं है शेष प्रासाद आदि नंदन वन के समान हैं। इस वन में मेरू पर्वत का आभ्यंतर विष्कंभ $3272\frac{8}{11}$ योजन एवं बाह्म निष्कंभ $4272\frac{8}{11}$ योजन है।

मेरु पर्वत का सौमनस वन

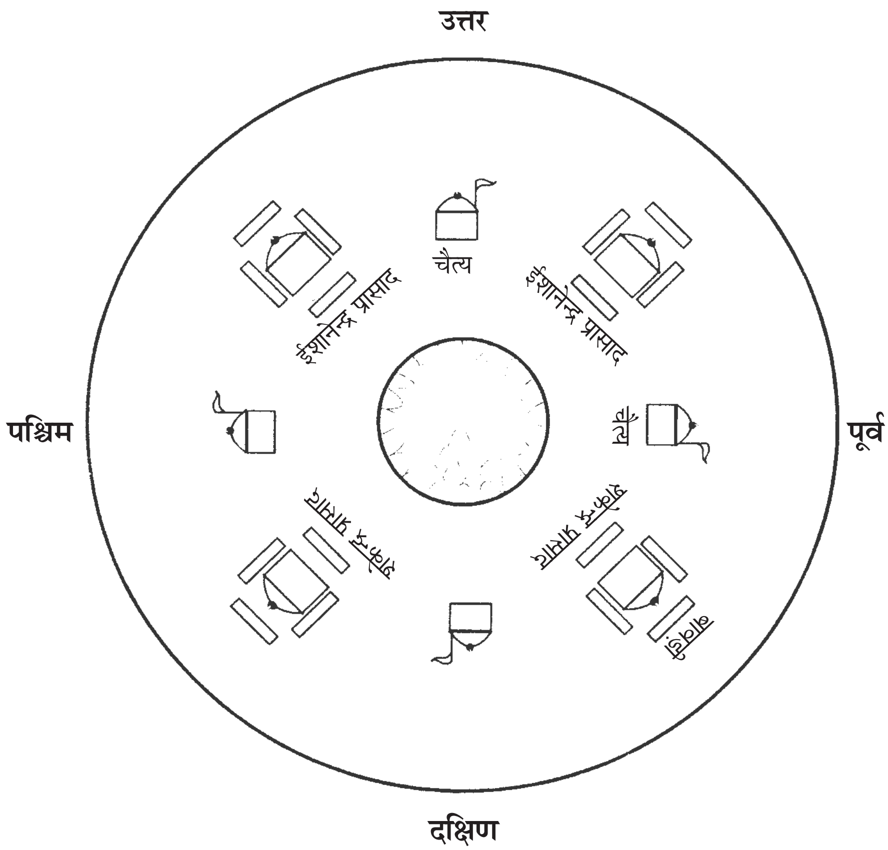

चैत्य-प्रासाद-बावड़ियों का प्रमाण और वन विस्तार 500 योजन

मेरु का पूर्ण विस्तार $4274\frac{8}{11}$ योजन आभ्यंतर मेरु $3272\frac{8}{11}$योजन

4. पंडगवन– सौमनस वन की समभूमि से 36000 योजन ऊपर मंदर मेरू का शिखर तल है। वहां पर 494 योजन के विस्तार वाला वलयाकार यह वन है। इसके मध्य में मदर चूलिका नामक मेरू की चुलिका हैं वह 40 योजन ऊंची मूल में 12 मध्य में 8 एवं उपर 4 योजन विस्तार वाली है। गोपुच्छ संस्थान संस्थित है। वेडूर्य मय है पद्मवर वेदिका वनखंड से घिरी हुई है। चुल्लिका के उपर सिद्धायतन है।

इन वन में भवनों पुष्करणियों प्रासादों का वर्णन भद्रशाल वन के समान है।

अभिषेक शिलाएं– पंडग वन में चारों दिशाओं में किनारों पर चार अभिषेक शिलाएं है यथा- 1. पांडुशिला 2. पांडुकम्बल शिला 3. रक्त शिला 4. रक्त कम्बल शिला।

मेरु शिखर पर पंडक वन

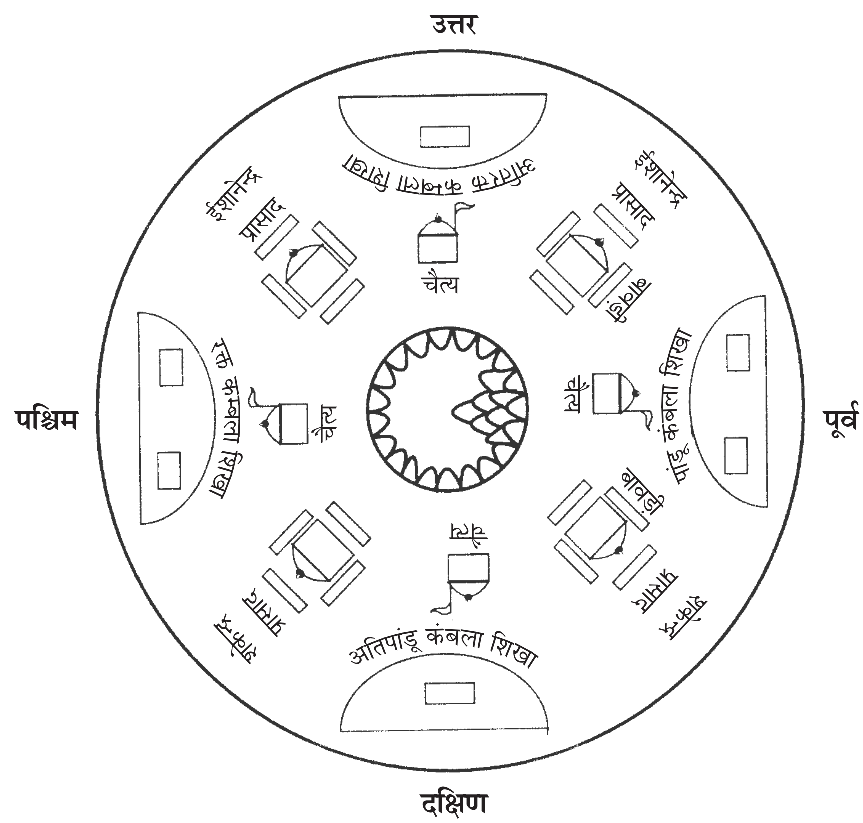

चैत्य लम्बाई 50 योजन
चौड़ाई 25 योजन
ऊंचाई 36 योजन
प्रासाद विस्तार 250 योजन (चतुरस्त्र)
ऊंचाई 500 योजन
बावड़ी 50 योजन चैत्य
250 योजन लम्बी
10 योजन गहरी

अभिषेक शिला की लम्बाई 500 योजन
चौड़ाई 250 योजन (मध्य में)
ऊंचाई 4 योजन
सिंहासन लम्बाई 500 धनुष
चौड़ाई 250 धनुष
ऊंचाई 4 धनुष

पहली पांडू शिला पूर्व में है। 500 योजन उत्तरदक्षिण में लम्बी 250 योजन पूर्वपश्चिम में चौडी अर्द्ध चंद्रकार है। वह 4 योजन मोटी जाड़ी है। स्वर्णमय है। पद्मवर वेदिका वनखण्ड से घिरी हुई है। उसके चारों दिशाओं में सीढ़िया है। उसके रमणीय समभूमि के बीच में उत्तर तथा दक्षिण में दो सिंहासन है। उत्तरी सिंहासन पर 1 से 8 तक की विजय के तीर्थकरों का जन्म महोत्सव जन्माभिषेक होता है जो देव देवी एवं 64 इन्द्र मिलकर करते हैं। दक्षिणी सिंहासन पर 1 से 16 तक की विजयों के तीर्थकरों का अभिषेक किया जाता है।

तीसरी रक्त शिला पंडग वन के पश्चिमी किनारे पर है। शेष वर्णन प्रथम शिला के समान है यहां 17 से 24 एवं 25 से 32 विजयों के तीर्थकरों का जन्माभिषेक किया जाता है।

दूसरी चौथी अभिषेक शिलांए क्रमशः दक्षिणी उत्तरी किनारे पर हैं इसमें सिंहासन एक एक ही है दो नहीं है। दूसरी पांडु कम्बल शिला के सिंहासन पर भरत क्षेत्र के तीर्थकर का जन्माभिषेक किया जाता है एवं चौथी रक्त कंबल शिला के सिंहासन पर ऐरावत के तीर्थकर का जन्मभिषेक किया जाता है।

दो शिलाएं सफेद स्वर्णमय हैं और दो लाल स्वर्णमय है। सिंहासन 500 धनुष लम्बे चौड़े एवं 250 धनुष ऊंचे हैं। वे देवदूष्य वस्त्र रहित है।

मेरू पर्वत के कांड- बनावट विशेष के विभागों अर्थात् पुद्गल विशेष के विभागों को कांड कहा जाता है। मंदर मेरूपर्वत के तीन विभाग हैं- 1 नीचे का 2 मध्य का 3 ऊपर का।

नीचे का विभाग चार प्रकार का है - 1. पृथ्वी मय - मिट्टी मय 2. पाषाण मय 3. वस्त्रमय-हीरकमय 4. शर्करा-कंकर मय।

मध्यम विभाग चार प्रकार है- 1. अंकरत्न मय 2. स्फटिक रत्नमय 3. स्वर्णमय 4. रजत (चांदी) मय।

ऊपरी विभाग एक प्रकार का सर्वजम्बूनद स्वर्ण मय है।

नीचे का काण्ड 1000 योजन का है, मध्यम कांड 63000 योजन का है और ऊपरी कांड 36000 योजन का है यो कुल एक लाख योजन का मंदर मेरू पर्वत का सर्वाग्र है।

मन्दर मेरू पर्वत के नाम- मेरू पर्वत् के 16नाम कहे गये है- 1. मंदर 2. मेरू 3 मणोरम 4. सुदर्शन 5. सयंप्रभ 6. गिरिराज 7. रत्नोच्चय 8. शिलोच्चय 9. लोकमध्य 10. लोक नाभि 11. अच्छ 12. सूर्यावर्त्त 13. सूर्यावरण 14. उत्तम 15. दिशादि (दिशाओं का आदि स्थल) 16अवतंसक।

मन्दर नामक स्वामी देव इस पर्वत पर निवास करता है इसलिये मंदरमेरू पर्वत यह इसका अनादि शाश्वत नाम है। (स्वामी देव के रहने का स्थान नहीं बताया गया है देखे परिशिष्ट)

इस प्रकार यह सम्पूर्ण महाविदेह क्षेत्र का वर्णन पूर्ण हुआ।

नीलवान वर्षधर पर्वत- यह पर्वत दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र की एवं उत्तर में रम्यक वास युगलिक क्षेत्र की सीमा करने वाला है। मेरू पर्वत से उतर दिशा में है। शेष सम्पूर्ण वर्णन निषध पर्वत के समान है। नामों में अंतर है यथा-केशरी द्रह, सीता नदी, नारिकंता नदी। कूटों के नाम-1. सिद्ध 2. नील 3. पूर्व विदेह 4. सीता 5. कीर्ति 6. नारी 7. अपरविदेह 8. रम्यक कूट 9. उपदर्शन कूट।

सीता नदी का सम्पूर्ण सीतोदा नदी के समान है किन्तु यह केशरी द्रह में से निकल कर दक्षिण में जाती है। सीता कुंड से निकल कर दक्षिणाभिमुख जाकर मेरू के पास पूर्वाभिमुख होकर पूर्वी महाविदेह के बीच में से जाती है एवं दोनों तरफ स्थित 1

से 8एवं 1 से 16विजयों की हजारों नदियों को अपने में मिलाती हुई जम्बूद्वीप की जगती के पूर्वी विजय द्वार के नीचे से होकर लवण समुद्र में मिलती है।

नारीकंता नदी का वर्णन हरिकंता नदी के समान है। विशेष यह है नारीकंता उत्तराभिमुख होकर रम्यग्वास क्षेत्र में जाती है। गंधापाती वृत वैताढ्य से पश्चिम में मुड़ जाती है, रम्यक वास क्षेत्र के बीचों बीच हाकर आगे जगती के नीचे से पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती है।

यह पर्वत नीले रंग का नीली प्रभा वाला है, नीलवंत नामक महर्द्धिक स्वामी देव इस पर निवास करता है, यह वेडूर्यमय हे, इसका अनादि शाश्वत नाम नीलवंत है।

रम्यक वर्ष क्षेत्र– यह मेरू से उत्तर में है। उत्तर दक्षिण में नीलवंत और रूक्मी पर्वत से घिरा हुआ है। शेष वर्णन हरिवर्ष क्षेत्र के समान है। नामों में अंतर है यथा-गन्धापाती वृत वैताढ्य, नारीकंता नदी, नरकंता नदी।

रम्यक नामक इस क्षेत्र का मालिक देव है। एवं रम्यक् यह इस क्षेत्र का शाश्वत अनादि नाम है।

रूक्मी वर्षधर पर्वत– यह पर्वत उत्तर में हेरण्यवत क्षेत्र की एवं दक्षिण में रम्यक वर्ष क्षेत्र की सीमा करने वाला है। इसका सम्पूर्ण वर्णन महाहिमवान पर्वत के समान है। इस पर्वत के शिखर तल पर महापुण्डरीक नामक द्रह है, उसमें से दक्षिण में हरिकंता एवं उत्तर में रूप्यकूला नदी निकलती है। इस पर्वत पर 8कूट हैं- 1. सिद्ध 2. रूक्मी 3. रम्यग् 4. नरकंता 5. बुद्धि 6. रूप्यकूला 7. हेरण्यवत 8. मणिकंचन।

सर्वथा रजत मय यह ''रूप्य'' पर्वत है। इसे रूक्मी पर्वत कहने का प्रचलन है। रूप्य नामक अधिपति देव यहां निवास करता है। इसलिये इस पर्वत का ''रम्य'' यह शाश्वत नाम है।

हैरण्यवत युगलिक क्षेत्र– यह मेरू से उत्तर दिशा में रूक्मी और शिखरी पर्वत के बीच में है। हेमवंत युगलिक क्षेत्र के समान इसका सम्पूर्ण वर्णन है। इसमें माल्यवंत पर्याय नामक वृत्त वैताढय है। सुवर्णकूला और रूप्यकूला नामक दो नदियां इस क्षेत्र को विभाजित करती है। इसके दोनों तरफ स्थित पर्वत सर्वत्र स्वर्ण बिखरते रहते हैं, देते रहते हैं। हेरणयवत नामक स्वामी देव यहां निवास करता है। अतः इसका शाश्वत नाम हैरण्यवत क्षेत्र है।

शिखरी पर्वत– चुल्लहिमवंत पर्वत के समान वर्णन वाला यह पर्वत मेरू से उत्तर में ऐरावत और हैरण्यवत क्षेत्र सीमा करने वाला है। इस पर पुण्डरीक नामक द्रह है। उसमें से सुवर्णकूला नदी दक्षिणी द्वार से निकल कर हैरणयवत क्षेत्र में पूर्वी समुद्र में मिलती है। दो नदियों पूर्वी पश्चिमी तोरण से निकली हैं, जिनका वर्णन गंगा,-सिन्धु नदी के समान है। इन दोनों नदियों के नाम रक्ता और रक्तवती है। इस पर्वत पर 11 कूट हैं- 1. सिद्धायतन 2. शिखरी 3. हैरणयवत 4. सुवर्ण कूला 5. सुरादेवी 6. रक्ता 7. लक्ष्मी 8. रक्तवती 9. इलादेवी 10. ऐरावत 11. तिगिच्छ कूट।

यहां शिखरी नामक देव निवास करता है अतः ''शिखरी यह इसका शाश्वत अनादि नाम है। शिखर के आकार में यहां कई कूट हैं

ऐरावत क्षेत्र– शिखरी पर्वत से उत्तर में एवं मेरू से उत्तर दिशा में यह कर्म भूमि क्षेत्र है। इसका सम्पूर्ण वर्णन भरत क्षेत्र के समान है। क्षेत्र, स्वरूप, काल, आरा-परिवर्तन स्वरूप, तीर्थकर चक्रवर्ती आदि का वर्णन 6खंड साधन, मनुष्यों का वर्णन आदि। गंगा-सिन्धु के स्थान पर यहां रक्ता-रक्तवती नदियें हैं। दो नदी और वैताढ्य पर्वत से इस क्षेत्र के भी 6खंड है। ऐरावत नामक प्रथम चक्रवर्ती यहां उत्पन्न होता है। ऐरावत देव यहां इस क्षेत्र में आधिपत्य करते हुए निवास करता हे। इसलिये ''ऐरावत'' यह इसका नाम अनादि शाश्वत है।

इस प्रकार ऐरावत के वर्णन के साथ यह जम्बूद्वीप का क्षेत्रीय वर्णन वाला चौथा वक्षस्कार पूर्ण हुआ। इसमें वर्णित क्षेत्र पर्वत आदि का संक्षिप्त संकेतिक तालिका मय वर्णन इस प्रकार है।

जीवा आदि का तात्पर्य– धनुष्य की डोरी को जीवा कहा जाता है और गोलाई को धनुष कहा जाता है। उसी प्रकार गोलाकार या अर्द्ध चन्द्रकार क्षेत्र की सीधी रेखा को यहां जीवा कहा गया है एवं गोलाई के विभाग को धनु- पृष्ट (धनुष पीठिका) कहा गया है।

जिस प्रकार बनियान कुर्ता आदि में बाहा का मूल स्थान गोलाई लिए होता है उसी प्रकार वृत्ताकार जम्बूद्वीप के बीच जो आयत आकार के क्षेत्र या पर्वत है उनके गोलाई वाले किनारे के भाग को यहां बाहा कहा गया है। लम्बाई को आयाम और चौड़ाई को विष्कंभ कहा गया है। गोलाकार पर्वत एवं कूट तथा क्षेत्र आदि की लम्बाई समान होती है उसे आयाम विष्कंभ एक शब्द से कहा गया है।

जो पर्वत लम्बे और ऊंचे होते हैं उन्हें रूचक संस्थान कहा है। जो क्षेत्र लम्बे अधिक हैं चौड़े कम हैं, ऊंचे नहीं है किन्तु सम भूमि भाग वाले होते हैं उन्हें पर्यंक के आकार का कहा गया है। जो गोल पर्वत सम भूमि पर अधिक आयाम विष्कंभ वाले हैं और ऊपर क्रमशः कम आयाम विष्कंभ वाले हैं उन्हें गो पुच्छ सस्थान (गोपुच्छ के अग्रभाग के समान) वाला कहा गया है। जो गोल पर्वत आयाम विष्कंभ और ऊंचाई में सर्वत्र समान होते हैं उन्हें पल्य (पल्ल्ग) के संस्थान कहा गया है। पल्योपम की उपमा में ऐसा ही लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई में समान पल्य लिया गया है।

समान आयाम विष्कंभ वाले गोल पर्वत आदि स्थलों की परिधि उसके आयाम विष्कंभ से तीन गुणी साधिक होती है। अर्थात् विष्कंभ का वर्ग करके 10 गुणन कर फिर उसका वर्गमूल निकालने पर यह तीनगुणी साधिक संख्या प्राप्त होती है। अथवा आयाम विष्कंभ को 10 के वर्ग मूल से गुणा करने पर तीन गुणी साधिक परिधि निकल जाती है। यह विधि ज्योतिषगण राज प्रज्ञति (सूर्य प्रज्ञप्ति) सूत्र सारांश के परिशिष्ट में दी गई है वहां देखें।

प्रत्येक पर्वत की समभूमि से जितनी ऊंचाई होती है उसका चौथाई भाग परिमाण वह भूमि में होता है उसे उद्वेध (उव्वेह) कहा गया है।

जम्बूद्वीप के प्रमुख क्षेत्र एवं पर्वत–

विशेष– बाहा के योग को दुगुणा करके भरत ऐरावत की धनुष पीठिका जोड़ने पर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की परिधि निकल जाती है यथा-

143585.3 × 2	=	287170.6
14528.11 × 2	=	29057.3
जम्बूद्वीप की परिध	=	316327.9

क्र.सं.	क्षेत्रादि का नाम	योजन कला (चौड़ाई)
1	भरत क्षेत्र	526-6
2	चुल्ल हिमवंत पर्वत	1052-12
3	हेमवंत युगलिया क्षेत्र	2105-5
4	महाहिमवंत पर्वत	4210-10
5	रम्यक वर्ष क्षेत्र युग.	8421-1
6	निषध पर्वत	16842-2
7	महाविदेह क्षेत्र	33684-4
8	नीलवंत पर्वत	16842-2
9	हरिवास युग. क्षेत्र	8421-1
10	रूक्मि (रूपी) पर्वत	4210-10
11	हेरण्यवत युगलिया क्षेत्र	2105-5
12	शिखरी पर्वत	1052-12
13	एरवत क्षेत्र	526-6
	कुल योग	**100000**

जम्बूद्वीप के प्रमुख क्षेत्र व पर्वतों का विष्कंभ, ऊंचाई, बाहा, जीवा, धनुःपृष्ठिका का प्रमाण :-

क्र.सं.	नाम क्षेत्र/पर्वत	विष्कंभ यो. कला	ऊंचाई	बाहा यो. कला	जीवा यो. कला	धनुःपृष्ठ
1	द. भरत क्षेत्र उ. भरत क्षेत्र वैताढ्य पर्वत	238-3 कला 238-3 कला 50 योजन 526-6 कला	× ×	× 1892-7½	9748.12 14471.3	9766.1 14528.11
2	चुल्ल हिमवंत पर्वत	1052-12	100	5350-15½	24932-2½	25230-4
3	हेमवय क्षेत्र	2105-05	×	6755-3	37674-16	38740-10
4	महाहिमवंत पर्वत	4210-10	200	9276-9½	53931-6	57293-10
5	हरिवास क्षेत्र	8421-01	×	13361-6½	73901-17½	84016-4
6	निषध पर्वत	16842-02	400	20165-2½	94156-9	124346-9
7	महाविदेह क्षेत्र	33684-04	×	33767-7	100000	158113-16½
8	नीलवंत पर्वत	16842-02	400	20165-2½	94156-9	124346-9
9	रम्यक वर्ष क्षेत्र	8421-01	×	13361-6½	73901-17½	84016-4
10	रूक्मी पर्वत	4210-10	200	9276-9½	53931-6	57293-10
11	हैरण्यवय क्षेत्र	2105-05	×	6755-3	37674-16	38740-10
12	शिखरी पर्वत	1052-12	100	5350-15½	24932-½	25230-4
13	उ. ऐरावत क्षेत्र द. ऐरावत क्षेत्र वैताढ्य पर्वत	238-03 238-03 50-00		1892-7½ ×	14471-3 9748-12	14528-11 9766-1
		एक लाख यो.				

जम्बूद्वीप के 190 खण्ड :-

1-2	भरत क्षेत्र, ऐरतव क्षेत्र	1	1	खण्ड प्रमाण
3-4	चुल्ल हिमवंत, शिखरी पर्वत	2	2	खण्ड प्रमाण
5-6	हेमवय, हैरण्यवय क्षेत्र	4	4	खण्ड प्रमाण
7-8	महाहिमवंत, रूक्मि पर्वत	8	8	खण्ड प्रमाण
9-10	हरिवास, रम्यकवास क्षेत्र	16	16	खण्ड प्रमाण
11-12	निषध, नीलवंत पर्वत	32	32	खण्ड प्रमाण
13	महाविदेह क्षेत्र	64		खण्ड प्रमाण
	कुल जम्बू द्वीप के	**127**	**63**	**190 खण्ड**

जम्बूद्वीपों के प्रमुख क्षेत्रों एवं पर्वतों का क्षेत्रफल :-

क्र.सं.	नाम क्षेत्र एवं पर्वत	क्षेत्रफल
1.	सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल	53,80,681 योजन 17 कला 17 विकला
2.	दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल	18,35,485 योजन 12 कला 6 विकला
3.	उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल	30,32,888 योजन 12 कला 11 विकला
4.	चुल्ल हिमवंत का क्षेत्रफल	2,14,56,971 योजन 8 कला 10 विकला
5.	शिखरी पर्वत का क्षेत्रफल	2,14,56,971 योजन 8 कला 10 विकला
6.	हेमवय क्षेत्र का क्षेत्रफल	6,72,53,145 योजन 5 कला 8 विकला
7.	हैरण्य वय क्षेत्र का क्षेत्रफल	6,72,53,145 योजन 5 कला 8 विकला
8.	महाहिमवंत पर्वत का क्षेत्रफल	19,58,68,186 योजन 10 कला 5 विकला
9.	रूक्मि पर्वत का क्षेत्रफल	19,58,68,186 योजन 10 कला 5 विकला
10.	हरिवास क्षेत्र का क्षेत्रफल	54,47,73,870 योजन 7 कला
11.	रम्यक वास क्षेत्र का क्षेत्रफल	54,47,73,870 योजन 7 कला
12.	निषध पर्वत का क्षेत्रफल	1,42,57,66,569 योजन 18 कला
13.	नीलवंत पर्वत का क्षेत्रफल	1,42,57,66,569 योजन 18 कला
14.	उत्तरार्द्ध महाविदेह का क्षेत्रफल	1,63,57,39,302 योजन 10 कला 15 विकला
15.	दक्षिणार्द्ध महाविदेह का क्षेत्रफल	1,63,57,39,302 योजन 10 कला 15 विकला
16.	उत्तर ऐरावत क्षेत्र का क्षेत्रफल	18,35,785 योजन 12 कला 6 विकला
17.	दक्षिण ऐरावत क्षेत्र का क्षेत्रफल	30,32,888 योजन 12 कला 11 विकला
18.	वैताढ्य पर्वत का क्षेत्रफल	5,12,307 योजन 12 कला 5 विकला

स्थान	विष्कंभ (योजन)	परिधि (योजन) शास्त्रीय पद्धति	परिधि (योजन) आधुनिक पद्धति
कमलादिक	1	3.162	3.142
कमलादिक	2	6.324	6.285
कमलादिक	4	12.469	12.571
द्वीपादिक	8	25.298	25.142
चूलिका मूल	12	37.947	37.714
क्रोश कूट	25	79.056	78.571
कांचन गिरि शिखर	50	158.113	157.142
कांचन गिरि मूल	100	316.227	314.285
कुंडादिक	120	379.473	377.142
कुंडादिक	240	758.946	754.285
कूट शिखरादिक	250	790.569	785.714
कुंडादिक	480	1517.893	1508.571
कूट मूलादिक	500	1581.138	1571.428
मेरु शिखर	1000	3162.277	3142.857
मेरु भूतल	10000	31622.776	31428.571
जम्बूद्वीप	100000	316227.766	314285.714

शास्त्रीय पद्धति- $\sqrt{10}$=3.16227766016837

आधुनिक पद्धति- $\pi=\frac{22}{7}$=3.142857142857

गणित पद = $\sqrt{10 \div \frac{(\text{विष्कंभ})}{2}}$ (आधुनिक क्षेत्रफल = π त्रिज्या^{2})

स्थान	विष्कंभ	$\left(\frac{\text{विष्कंभ}}{2}\right)^2 = \frac{\text{त्रिज्या}^2}{\text{अ}}$	$\sqrt{10}\times$अ गणित पद (शास्त्रीय पद्धति से)	चोरस योजन $\pi\times$त्रिज्या^{2} (क्षेत्रफल आधुनिक)
जम्बूद्वीप	100000	2500000000	7905694150.42	7857142857.14

जीवा=2 $\sqrt{(\text{विष्कंभ-ईषु}) \times \text{ईषु}}$ [विष्कंभ = 100000 योजन]

स्थान	ईषु अ	विष्कंभ-ईषु ब	अ + ब क	योजन 2√क जीवा शास्त्रीय तथा आधुनिक पद्धति
दक्षिण भरतार्द्ध	238.157	99761.843	23758981.24	9748.632
वैताढ्य	288.157	99711.843	28732665.54	10720.579
पूर्व-भरत	526.315	99473.685	52354492.52	14471.263
हिमवंत पर्वत	1578.947	98421.053	155401626.37	24932.26
हिमवंत युगल क्षेत्र	3684.210	96315.790	354847596.68	37674.789
महाहिमवंत पर्वत	7894.736	92105.263	727146735.60	53931.342
हरिवर्ष क्षेत्र	16315.789	83684.211	1365373929.30	73901.922
निषध पर्वत	33157.894	66842.106	2216343465.48	94156.105
महाविदेह मध्य	50000.000	50000.000	2500000000.00	100000.000

ईषु = ½ (विष्कंभ-$\sqrt{(\text{विष्कंभ-जीवा}) \times (\text{विष्कंभ+जीवा})}$ विष्कंभ = 100000 योजन योजन

स्थान	जीवा अ	विष्कंभ-जीवा ब	विष्कंभ+जीवा क	ब + क ड	√S ई	½(विष्कंभ-ई.) ईषु शास्त्रीय एवं आ.पद्धति
दक्षिण भरतार्द्ध	9748.632	90251.368	109748.632	9904964174.12	99523.686	238.157
वैताढ्य	10720.579	89279.421	110720.579	9885069185.90	99423.686	288.157
पूर्ण भरत	14471.263	85528.737	114471.263	9790582547.18	98947.370	526.315
हिमवंत पर्वत	24932.026	75067.974	124932.026	9378394079.53	96842.106	1578.947
हिमवंत यु. क्षेत्र	37674.789	62325.211	137674.789	8580610273.80	92631.580	3684.210
महाहिमवंत पर्वत	53931.342	46068.658	153931.342	7091410350.07	84210.528	7894.736
हरिवर्ष क्षेत्र	73901.922	26098.078	173901.922	4538505924.70	67368.422	16315.789
निषध पर्वत	94156.105	5843.895	194156.105	1134627891.22	33684.212	33157.894
महाविदेह मध्य	100000.000	-	200000.000	-	-	50000.000

धनु:पृष्ठ= $\sqrt{2\ \text{ईषु}\ (\text{ईषु} \times 2 \times \text{विष्कंभ})}$ विष्कंभ = 100000 योजन

स्थान	ईषु (अ)	ईषु + 2 × विष्कंभ (ब)	2 × अ × ब (क)	√क धनु:पृष्ठ (शास्त्रीय पद्धति)
दक्षिण भरतार्द्ध	238.157	200238.157	95376237.51	9766.052
वैताढ्य	288.157	200288.157	115428868.91	10743.789
पूर्ण भरत	526.315	200526.315	211080014.95	14525.578
हिमवंत पर्वत	1578.947	201578.947	636564947.25	25230.210
हिमवंत यु. क्षेत्र	3684.210	203684.210	1500830806.64	38740.526
महाहिमवंत पर्वत	7894.736	207894.736	3282548113.01	57293.526
हरिवर्ष क्षेत्र	16315.789	216315.789	7058725541.38	84016.210
निषध पर्वत	33157.894	233157.894	15462049469.11	124346.473
महाविदेह मध्य	50000.000	250000.000	25000000000.00	158113.868

$$\text{धनु:पृष्ठ} = \frac{2 \times \text{Sin-1} \frac{\text{जीवा}}{\text{व्यास}}}{360^0} \times \text{परिधि}$$

स्थान	जीवा क	$\frac{\text{जीवा}}{\text{व्यास}}$ $(\frac{\text{क}}{100000})$ ख	Si-1 ख कला विकला ग			2 × ग कला विकला घ			दशांश में घ की कीमत च	$\frac{\text{च}}{360^0}$ छ	छ:×परिधि (314287.7) धनु:पृष्ठ 3 आधु. पद्धति
भरतार्द्ध	9748.6	.097486	5^0	35	40	11^0	11	20	11.188888^0	.0310802	9768
वैताढ्य	10720.6	.107206	6^0	9	11	12^0	18	22	12.306111^0	.341836	10743
पूर्ण भरत	10471.3	.104713	8^0	19	4	16^0	38	8	16.635555^0	.0462098	14523
हिमवंत गिरि	24932.0	.249320	14^0	26	7	28^0	52	14	28.870554^0	.0801959	25204
हिमवंत क्षेत्र	37674.8	.376748	22^0	8	3	44^0	16	6	44.26833^0	.1229675	38647
महाहिमवंत प.	53931.3	.539313	32^0	38	9	65^0	16	17	65.271666^0	.1813101	56983
हरिवर्ष क्षेत्र	73901.9	.739019	47^0	38	44	95^0	17	27	95.290833^0	.2646967	83190
निषध पर्वत	94156.1	.941561	70^0	18	36	140^0	37	12	140.619999^0	.3906110	122763
महाविदेहार्द्ध	100000.0	1.00000	90^0	0	0	180^0	0	0	180.000000^0	.5000000	157143

$$\text{बाहा} = \frac{\text{महाधनु:पृष्ठ - लघु धनु:पृष्ठ}}{2}$$

स्थान	धनु:पृष्ठ	महा धनु:पृष्ठ - लघु धनु:पृष्ठ ख	ख / 2 बाहा
दक्षिण भरतार्द्ध	9766.052	-	-
वैताढ्य	10743.789	977.737	488.868
पूर्व-भरत	14528.578	3784.189	1892.394
हिमवंत पर्वत	25230.210	10701.632	5350.816
हिमवंत युगल क्षेत्र	38740.526	13510.316	6755.158
महाहिमवंत पर्वत	57293.526	18553.000	9276.500
हरिवर्ष क्षेत्र	84016.210	26722.684	13361.342
निषध पर्वत	124346.473	40330.263	20165.131
महाविदेह मध्य	158113.868	33767.395	16883.697

$$\text{बाहा} = \frac{\text{महाधनु:पृष्ठ - लघु धनु:पृष्ठ}}{2}$$

स्थान	धनु:पृष्ठ क	गुरु धनु:पृष्ठ - लघु धनु:पृष्ठ ख	ख / 2 बाहा आधुनिक पद्धति
भरतार्द्ध	9768	-	-
वैताढ्य	10743	975	488
पूर्ण-भरत	14523	3780	1890
हिमवंत गिरि	25204	10681	5342
हिमवंत क्षेत्र	38647	13443	6742
महाहिमवंत	56983	18336	9168
हरिवर्ष क्षेत्र	83190	26207	13104
निषध पर्वत	122763	39573	19787
महाविदेहार्द्ध	157143	34380	17190

प्रतर क्षेत्र = $\sqrt{10} \times \frac{\text{ईषु} \times \text{जीवा}}{4}$ [धनुष्याकार क्षेत्र - वृत खंड तक सीमित]

स्थान	ईषु अ	जीवा ब	$\frac{\text{अ} \times \text{ब}}{4}$ क	$\sqrt{10}$×क प्रतर चोरस (योजन)
दक्षिण भरतार्द्ध, उत्तर एरवत	238.157	9748.684	580431.645	1835485.642

यहां 13 कला लेने में आयी है।

प्रतर क्षेत्र =(गुरु ईषु-लघु ईषु)× $\frac{\sqrt{\text{लघु जीवा}^2\text{-गुरु जीवों}^2}}{2}$ अन्य क्षेत्र-दो बाहा और दो समांतर जीवा से घिरे क्षेत्र तक सीमित

स्थान	ईषु	ईषु (मर्यादित क्षेत्रों) का (गुरुईषु-लघुईषु) (अ)	जीवा	जीवा 2	$\frac{\sqrt{\text{लघुजीवा}^2 + \text{गुरुजीवा}^2}}{2}$	$\frac{\text{अ} \times \sqrt{\text{ब}}}{\text{प्रतर}}$
दक्षिण भरतार्द्ध	238.157	-	9748.632	95035825.87	-	1835485.642
वैताढ्य	288.157	50.000	10720.579	114930814.10	104983319.98	512307.632
पूर्ण भरत	526.315	238.157	14471.263	209417452.82	162174133.46	3032888.632
हिमवंत पर्वत	1578.947	1052.634	24932.026	621605920.46	415511686.64	21456971.408
हिमवंत यु. क्षेत्र	3684.210	2105.263	37674.789	1419389726.19	1020497823.32	67253145.285
महाहिमवंत पर्वत	7894.736	4210.526	53931.342	2908589649.92	216389688.05	195868186.540
हरिवर्ष क्षेत्र	16315.789	8421.053	73901.922	5461494075.29	4185041862.60	544773870.368
निषध पर्वत	33157.894	16842.105	94156.105	8865372108.77	7163433092.03	1425466569.947
महाविदेह मध्य	50000	16842.106	100000	10000000000	9432686054.39	1635739302.035

प्रतर = गुरु वृत्त खंड का क्षेत्रफल - लघु वृत्त खंड का क्षेत्रफल

वृत्त खंड का क्षेत्रफल = ½[(धनुःपृष्ठ × त्रिज्या) - जीवा (त्रिज्या - ईषु)]

$$= \left(\frac{2 \times \text{Sin}^{\frac{\text{जीवा}}{\text{व्यास}}}}{360^0} \times \text{वृत्त का क्षेत्रफल}\right) - \tfrac{1}{2}\left(\text{जीवा}\left(\text{त्रिज्या-ईषु}\right)\right)$$

स्थान	$\frac{2 \times \text{Sin}^{-1}\frac{\text{जीवा}}{\text{व्यास}}}{360^0}$ (क)	क×वृत्त का क्षेत्र. (क×7857142857) (ख)	जीवा ग	ईषु घ	त्रिज्या-ईषु (50000-घ) च	जीवा (त्रिज्या-ईषु) ½ जीवा छ ½ × ग × च	वृत्त खंड का क्षेत्रफल ज (ख-छ)	गुरु खंड वृत्त क्षेत्र. लघु वृत्त खंड क्षेत्रफल
भरतार्द्ध	.310802	244201571	9748.6	238.158	49761.842	242554146	1647425	1647425
वैताढ्य	.341836	268585429	10720.6	288.158	49711.842	266470386	2115043	467618
पूर्णभरत	.462098	363077000	14471.3	526.316	49473.684	357974262	5102738	2987695
हिमवंतगिरि	.0801959	630110643	24932.0	1578.948	48421.052	603646834	26493809	21391071
हि म. क्षेत्र	.1229675	966173214	37674.8	3684.211	46315.789	872469074	93704170	67210361
महाहिमवंत	.1813101	1424579357	53931.3	7894.737	42105.263	1135395785	289183572	195479402
ह रि वर्ष क्षे.	.2646967	2079759786	73901.9	16315.790	33684.210	1244663559	835096227	545912655
निषध प.	.3906110	3069086429	94156.1	33157.890	16842.110	792893697	2276192732	1441096505
महाविदेहार्द्ध	.5000000	3928571429	100000	50000	-	-	3928571429	1652378697

घनफल = प्रतर × ऊंचाई

स्थान	प्रतर (चौरस योजन)	ऊंचाई	घनफल (घन योजन) शास्त्रीय पद्धति से
दक्षिण भरतार्द्ध	1835485.642	-	-
वैताढ्य-भूमिस्थ	512307.632	10	5123076.316
प्रथम मेखला	307384.578	10	3073845.789
दूसरी मेखला	102461.526	5	512307.631 (कुल 8709229.736)
पूर्ण-भरत	3032888.631	-	-
हिमवंत पर्वत	21456971.448	100	2145697144.875
हिमवंत युगल क्षेत्र	67253145.285	-	-
महाहिमवंत पर्वत	195868186.540	200	39173637308.033
हरिवर्ष क्षेत्र	544773870.368	-	-
निषध पर्वत	142566569.947	400	570186627978.800
महाविदेह मध्य	1635739302.035	-	-

जंबूद्वीप के क्षेत्रों, पर्वतों के इषु आदि का कोठाः-

क्षेत्रादि का नाम	ईषु यो.-कला	विष्कंभ यो. - कला	देश परिधि धनुःपृष्ठ यो. - कला	जीवा यो. - कला	बाहा यो. - कला	प्रतर (क्षेत्रफल) यो. कला.प्र.कला	घनफल योजन- कला
दक्षिण भरत	238-3	238-3	9766-1	9748-12	-	1835485-12-6	(ऊंचाई या गहराई नहीं होने से घनफल नहीं होता)
उत्तर एरवत	238-3	238-3	9766-1	9748-12	-	1835485-12-6	
दीर्घ वैताढ्य पर्वत	288-3	50	10743-15	10720-11	488-16½	पहला भाग 512307-12 दूसरा भाग 307384-11 तीसरा भाग 102461-10 कुल घनफल-	5123076-6 भूमिस्थ 3073845-15 पहली मेखला का 512307-12 दूसरी मेखला का **8709229-14**
उत्तर भरत	526-6	238-3	14528-11	14471-3	1892-7½	3032888-12	-
दक्षिण एरवत	526-6	238-3	14528-11	14471-3	1892-7½	3032888-12	-
चुल्ल हिमवंत प.	1578-18	1052-12	25230-4	24932-0½	5350-15½	21456971-8-10	2145697144-16-12
शिखरी पर्वत	1578-18	1052-12	25230-4	24932-0½	5350-15½	21456971-8-10	2145697144-16-12
हिमवंत क्षेत्र	3684-4	2105-5	38740-10	37674-15	6755-3	67253145-5-8	-
हेरण्य वंत क्षेत्र	3684-4	2105-5	38740-10	37674-15	6755-3	67253145-5-8	-
महाहिमवंत पर्वत	7894-14	4210-10	57293-10	53931-6½	9276-9½	195868186-10-5	39173637308-0-12
रूक्मी पर्वत	7894-14	4210-10	57293-10	53931-6½	9276-9½	195868186-10-5	39173637308-0-12
हरिवर्ष क्षेत्र	16315-15	8421-1	84016-4	73901-17½	13361-6½	544773870-7	-
रम्यक क्षेत्र	16315-15	8421-1	84016-4	73901-17½	13361-6½	544773870-7	-
निषध पर्वत	33157-17	16842-2	124346-9	94156-2	20165-2½	1425466569-18	57018662979
नीलवंत पर्वत	33157-17	16842-2	124346-9	94156-2	20165-2½	1425466569-18	57018662979
उत्तर विहोर्द्ध	50000-	16842-2	158113-16½	100000	16683-13	1635739302-$\frac{10}{15}$	-
दक्षिण विदेहार्द्ध	50000-	16842-2	158113-16½	100000	16683-13	1635739302-$\frac{10}{15}$	-

विष्कंभ का योजन	1,00,000
उसका वर्ग तथा योजन राशि	10,00,00,00,000
इसे 10 गुणा करने से हुई राशि	1,00,00,00,00,000
शेष राशि	3,16,227
छेद राशि	4,84,471
गाऊ करने हेतु शेष राशि को चार गुणा करने से हुई राशि	19,37,884
छेदांक का भाग देने से आये गाऊ	3
शेष राशि	40,522
धनुष करने हेतु दो हजार से गुणा करने से आयी राशि	8,10,44,000
छेदांक से भाग देने से आये धनुष	128
शेष राशि	89,888
अंगुल करने हेतु 96 से गुणा करने से हुई राशि	86,29,248
छेदांक से भाग देने पर आये अंगुल	13.5
शेष पूर्ण अंगुल की रही राशि	91,119

जम्बूद्वीप के सभी क्षेत्रों पर्वतों का जीवा वर्ग :-

क्षेत्र पर्वत	जीवा वर्ग
दक्षिण भरत-उत्तर ऐरवत क्षेत्र	34308097500
वैताढ्य पर्वत	41490097500
उत्तर भरत-दक्षिण ऐरवत क्षेत्र	75600000000
चुल्ल हिमवंत-शिखरी पर्वत	224400000000
हेमवय-हैरण्यवय क्षेत्र	512400000000
महाहिमवंत-रूक्मि पर्वत	1050000000000
हरिवास-रम्यकवास	1971600000000
निषध-नीलवंत पर्वत	3200400000000
अर्द्ध महाविदेह (उत्तरार्द्ध-दक्षिणार्द्ध)	3610000000000

-बाहा यंत्र-

क्र.	बाहा करने के स्थान के नाम	वैताढ्यादि का महाधनुः पृष्ठ		भरतार्द्ध का लघु धनुः पृष्ठ		दोनों के विश्लेषण से बाकी		आधा करने से अंक वह बाहा	
		योजन	कला	योजन	कला	योजन	कला	योजन	कला
1	वैताढ्य पर्वत	10743	15	9766	1	977	14	488	16½
2	भरत क्षेत्र	14528	11	10743	15	3784	15	1892	7½
3	हिमवंत पर्वत	25230	4	14528	11	10701	12	5350	15½
4	हिमवंत क्षेत्र	38740	10	25230	4	13510	6	6755	3
5	महा हिमवंत पर्वत	57293	10	38740	10	18553	0	9276	9½
6	हरिवर्ष क्षेत्र	84016	4	57293	10	26722	13	13361	6½
7	निषध पर्वत	124346	9	84016	4	40330	5	20165	2½
8	विदेहार्द्ध	158113	16½	124346	9	33767	7½	16883	13¼

-ईषु आदि सिद्ध हुए अंकों का यंत्र-

सिद्धांक	ईषु		जीवा		धनुःपृष्ठ		बाहा	
	योजन	कला	योजन	कला	योजन	कला	योजन	कला
दक्षिण भरतार्द्ध में	238	3	9748	12	9766	1	-	-
वैताढ्य में	288	3	10720	12	10743	15	488	16½
संपूर्ण भरत में	526	6	14471	5	14528	11	1892	7½
हिमवंत पर्वत में	1578	18	24932	½	25230	4	5350	15½
हिमवंत क्षेत्र में	3684	4	37674	15	38740	10	6755	3
महाहिमवंत में	7894	14	53931	6	57293	10	9273	9½
हरिवर्ष में	16315	15	73901	12½	84016	4	13361	6½
निषध में	33157	17	94156	2	124346	9	20165	2½
विदेहार्द्ध में	50000	-	100000	-	158111	½	16883	13¼

आधुनिक पद्धति-दो समानांतर जीवाओं की सीमा रेखा के धनुष्य को बाहा कहते हैं।

$$\text{बाहा} = \frac{\text{गुरू धनुष्य - लघु धनुष्य}}{2}$$

की चौड़ाई एक लाख योजन, जिसके 190 भाग

भरत	1	एरवत	1
चुल्ल हिमवंत पर्वत	2	शिखरी पर्वत	2
हेमवंत क्षेत्र	4	हैरण्यवंत क्षेत्र	4
महाहिमवंत पर्वत	8	रूक्मि पर्वत	8
हरि वर्ष क्षेत्र	16	रम्यक क्षेत्र	16
निषध पर्वत	32	नीलवंत	32
महाविदेह क्षेत्र	64	ये कुल	190 खंड हुए

पूर्व पश्चिम / लाख योजन लम्बाई

पूर्व पश्चिम वन	5844 योजन
16 विजय	35406 योजन
6 अन्तर्नदियां	750 योजन
8 वक्षस्कार पर्वत	4000 योजन
मेरुपर्वत	10000 योजन
भद्रशालवन (पूर्व पश्चिम)	44000 योजन
	1,00,000 योजन

क्रम	**क्षेत्र नाम द्वीप उत्तर दक्षिण**	**खंड**	**योजन-कला**	**क्रम**	**क्षेत्र नाम पूर्व पश्चिम**	**योजन**
1	भरत क्षेत्र	1	526-6	1	मेरू पर्वत की चौड़ाई	10000
2	चुल्लहिमवंत पर्वत	2	1052-12	2	पूर्वभद्र शाल वन	22000
3	हेमवय क्षेत्र	4	2105-5	3	पूर्व आठ विजय	17702
4	महाहेमवंत पर्वत	8	4210-10	4	पूर्व 4 वक्षस्कार पर्वत	2000
5	हरिवास क्षेत्र	16	8421-1	5	पूर्व तीन अंतर नदी	375
6	निषिध पर्वत	32	16842-2	6	सीतामुख बन	2923
7	महाविदेह क्षेत्र	64	33684-4	7	पश्चिम भद्रशाल वन	22000
8	नीलवंत पर्वत	32	16842-2	8	पश्चिम विजय	17702
9	रम्यकवास क्षेत्र	16	8421-1	9	पश्चिम 4 वक्षस्कार पर्वत	2000
10	रूकमी पर्वत	8	4210-10	10	पश्चिम तीन अंतर नदी	375
11	हैरण्यवत क्षेत्र	4	2105-5	11	पश्चिम सीतामुख वन	2923
12	शिखरी पर्वत	2	1052-12	12		
13	एरवत क्षेत्र	1	526-6	13		
		190	**1,00,000**			**1,00,000**

क्षेत्र	दक्षिण-उत्तर चौड़ाई	बाहु योजन कला	जीवा योजन-कला	धनुषपीठ योजन-कला
दक्षिण भरत	238-3	-	9748-12	9766-1
उत्तर भरत	238-3	1892-7½	14471-6	14528-11
हेमवय	2105-5	6755-3	37674-16	38740-10
हरिवास	8421-1	13361-6	73901-17	84016-4
महाविदेह	33684-4	33767-7	100000	158113-16
देवकुरू	11842-2	-	53000	60418-12
उत्तरकुरू	11842-2	-	53000	60418-12
रम्यकवास	8421-1	13361-6	73901-17	84016-4
हैरण्यवय	2105-5	6755-3	37674-16	38740-10
दक्षिण ऐरवत	238-3	1892-7½	14471-6	14528-11
उत्तर ऐरवत	238-3		9748-12	9766-1

पर्वत के नाम	गहराई	ऊँचाई	विस्तार (योजन-कला)
200 कंचनगिरी	25 योजन	100 योजन	100 योजन
34 दीर्घ वैताढ्य	25 गाउ	25 योजन	50 योजन
16 वक्षस्कार पर्वत	500 गाउ	500 योजन	500 योजन
चुल्ल हिमवंत/शिखरी	25 योजन	100 योजन	1052-12
महाहिमवंत/रूक्मी	50 योजन	200 योजन	4210-10
निषध और नीलवंत	100 योजन	400 योजन	16842-2
4 गजदंत पर्वत	125 योजन	500 योजन	30209-6
4 वृत्त वैताढ्य	250 योजन	1000 योजन	1000 योजन
चित्र, विचित्र, यमग, समग पर्वत	250 योजन	1000 योजन	1000 योजन
मेरूपर्वत (जंबू के बीच)	1000 योजन	99000 योजन	10090 योजन 10/11भाग

द्रह द्वार-6 वर्षधर पर्वतों पर 6 तथा देवकुरू उत्तरकुरू में पाँच-पाँच द्रह है।

द्रह (कुंड) नाम	पर्वत नाम	लंबाई योजन	चौ. योजन	गहराई यो.	देवी	कमल (कमल)
पद्म द्रह	चुल हिमवंत	1000	500	10	श्रीदेवी	1,20,50,120
महापद्म द्रह	महा हिमवंत	2000	1000	10	ह्री	2,41,00,240
तिगच्छ द्रह	निषिध	4000	2000	10	धृति	4,82,00,480
केसरी द्रह	नीलवंत	4000	2000	10	कीर्ति	4,82,00,480
महापुंडरीक द्रह	रूक्मी	2000	1000	10	बुद्धि	2,41,00,240
पुंडरीक द्रह	शिखरी	1000	500	10	लक्ष्मी	1,20,50,120
10 द्रह	जमीन पर	1000	500	10	10 देव	2,41,00,240
					कुल-	**19,28,01,920**

कूट द्वार-467 कूट पर्वतों पर तथा 58 कूट क्षेत्रों में कुल 525 कूट है।

स्थान (पर्वत/क्षेत्र)	कूट संख्या	ऊँचा योजन	मूल विस्तार	ऊँचा विस्तार (शिखर पर)
चूल हेमवंत पर	11	500	500	250
महा हेमवंत पर	8	500	500	250
निषिध पर्वत पर	9	500	500	250
नीलवंत पर्वत पर	9	500	500	250
रूक्मी पर्वत पर	8	500	500	250
शिखरी पर्वत पर	11	500	500	250
वैताढ्य 34×29	306	25 गाउ	25 गाउ	12½ गाउ
वक्षस्कार 16X4	64	500	500	250
विद्युत प्रभा गजदंता पर	9	500	500	250
माल्यवंता गजदंता पर	9	500	500	250
सौमानस गजदंता पर	7	500	500	250
गंधमादन गजदंता पर	7	500	500	250
मेरू के नंदनवन में	9	500	500	250
पर्वतों पर	467			
भद्रशाल वन में	8	500	500	250
देवकुरू में	8	8	8	4 यो.
उत्तरकुरू में	8	8	8	4
चक्रवर्ती विजय विजय में	34	8	8	4
क्षेत्र में कूट	58			
पर्वत पर 467 कूट				
क्षेत्र में 58 कूट				
525 कूट				

नदी द्वार-14,70,000 नदियाँ है, ये 78 नदियों का परिवार है-

नदी	पर्वत से	कुंड से	निकलता गहरी	निक. विस्तार	समुद्र प्रवेश में गहरी	समुद्र प्रवेश विस्तार	नदियों का परिवार
गंगा	चुल्ल हिमवंत	पद्म	½ गाऊ	6¼ यो.	1¼ यो.	62½ यो.	14,000
सिंधु	चुल्ल हिमवंत	पद्म	½ गाऊ	6¼ यो.	1¼ यो.	62½ यो.	14,000
रोहिता	चुल्ल हिमवंत	पद्म	1 गाऊ	12½ यो.	2½ यो.	125 यो.	28,000
रोहितांसा	महा हेमवंत	महा पद्म	1 गाऊ	12½ यो.	2½ यो.	125 यो.	28,000
हरिकंता	महा हेमवंत	महा पद्म	2 गाऊ	25 योजन	5 योजन	250 यो.	56,000
हरि सलिला	निषिध	तीगच्छ	2 गाऊ	25 योजन	5 योजन	250 यो.	56,000
सीता	निषिध	तीगच्छ	4 गाऊ	50 योजन	10 योजन	500 यो.	5,32,000
सीतोदा	नीलवंत	केसरी	4 गाऊ	50 योजन	10 योजन	500 यो.	5,32,000
नरकंता	नीलवंत	केसरी	2 गाऊ	25 योजन	5 योजन	250 यो.	56,000
नारीकंता	रूक्मी (रूप्पी)	महापुंडरीक	2 गाऊ	25 योजन	5 योजन	250 यो.	56,000
रूपकुला	रूक्मी (रूप्पी)	महापुंडरीक	1 गाऊ	12 ½ योजन	2½ योजन	125 यो.	28,000
सुवर्णकुला	शिखरी	पुंडरीक	1 गाऊ	12 ½ योजन	2½ योजन	125 यो.	28,000
रक्ता	शिखरी	पुंडरीक	½ गाऊ	6¼ योजन	1¼ योजन	62½ यो.	14,000
रक्तोदा	शिखरी	पुंडरीक	½ गाऊ	6¼ योजन	1¼ योजन	62½ यो.	14,000
विदेह की 64 नदियाँ	धरती पर	कुंडों से	½ गाऊ	6¼ योजन	1¼ योजन	62½ यो.	14,000
						78 नदियों का परिवार	**14,70,000**

भरत क्षेत्र-

गोल पर्वतों एवं कूटों के परिमाण योजन में-

नोट- 1. मेरू के सौमनस एवं पंडक वन में कूट नहीं है 2. हरिस्सह कूट पहली विजय के पास के माल्यवंत गजंदताकार वक्षस्कार पर्वत पर है एवं हरि कूट 17 वीं विजय के पास के विद्युत्प्रभ गजदंताकार वक्षस्कार पर्वत पर है 3. भूमि पर स्थित सभी कूट एवं पर्वतों की ऊंचाई से भूमिगत ऊंडाई चौथाई होती है। पर्वत गत कुटों की ऊंडाई (गहराई) नहीं कही गई है। केवल मेरू पर्वत ही ऊंचाई से चौथाई गहरा नहीं है वह 99000 योजन ऊंचा और 1000 योजन गहरा है 4. साधिक और देशोन का मतलब आधा कोश जानना।

महाविदेह क्षेत्र गत लम्बे पर्वत-

नदियों का योजन परिमाण- (कुल नदियां- 145690)

जम्बूद्वीप के महाविदेह संबंधी पूर्व-पश्चिम लाख योजन का यंत्र-

पूर्व दिशा			पश्चिम दिशा		
क्रम	स्थानक का नाम	योजन संख्या	क्रम	स्थानक का नाम	योजन संख्या
1.	सीता मुख वन जगती सहित	2922	19.	भद्रशाल वन पश्चिम दिशा में	22000
2.	आठवी नवमी विजय	$2212\frac{7}{8}$	20.	बत्तीसवीं, सतरहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$
3.	वक्षस्कार पर्वत	500	21.	वक्षस्कार पर्वत	500
4.	सातवी दसवी विजय	$2212\frac{7}{8}$	22.	इकतीसवीं अठारहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$
5.	अन्तर नदी	125	23.	अन्तर नदी	125
6.	छठी, ग्यारहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$	24.	तीसवी उन्नीसवीं विजय	$2212\frac{7}{8}$
7.	वक्षस्कार पर्वत	500	25.	वक्षस्कार पर्वत	500
8.	पांचवी, बारहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$	26.	उन्तीसवी बीसवीं विजय	$2212\frac{7}{8}$
9.	अन्तर नदी	125	27.	अन्तर नदी	125
10.	चौथी, तेरहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$	28.	अठाइसवीं इक्कीसवी विजय	$2212\frac{7}{8}$
11.	वक्षस्कार पर्वत	500	29.	वक्षस्कार पर्वत	500
12.	तीसरी, चौदहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$	30.	सत्ताइसवी बाइसवी विजय	$2212\frac{7}{8}$
13.	अन्तर नदी	125	31.	अन्तर नदी	125
14.	दूसरी पन्द्रहवी विजय	$2212\frac{7}{8}$	32.	छब्बीसवीं तेवीसवी विजय	$2212\frac{7}{8}$
15.	वक्षस्कार पर्वत	500	33.	वक्षस्कार पर्वत	500
16.	पहली सोलहवीं विजय	$2212\frac{7}{8}$	34.	पच्चीसवी चोबीसवी विजय	$2212\frac{7}{8}$
17.	भद्रशाल वन पूर्व दिशा में	22000	35.	सीतोदा मुखवन जगती सहित	2922
18.	मेरु पर्वत का विष्कंभ	10000		**कुल योग**	**1,00,000**

जम्बूद्वीप की दक्षिण की 7 महानदियों का कोठा-

नदी का नाम	गंगा	सिंधु	रोहितांशा	रोहिता	हरिकांता	हरिसलिला	शीतोदा
निर्गम पर्वत	चुल्ल हेमवंत	चुल्ल हेमवंत	चुल्ल हेमवंत	महा हेमवंत	महा हेमवंत	निषध	निषध
निर्गम द्रह	पद्म	पद्म	पद्म	महापद्म	महापद्म	तिगिच्छ	तिगिच्छ
मूल प्रवाह योजन	6¼	6¼	12½	12½	25	25	50
मूल गहराई कोस	½	½	1	1	2	2	4
निर्गम क्षेत्र	भरत	भरत	हेमवय	हेमवय	हरिवर्ष	हरिवर्ष	महाविदेह
समुद्र प्रवेश दिशा	दक्षिण	दक्षिण	पश्चिम	पूर्व	पश्चिम	पूर्व	पश्चिम
मुख प्रवाह योजन	62½	62½	125	125	250	250	500
मुख गहराई योजन	1¼	1¼	2½	2½	5	5	10
परिवार	14000	14000	28000	28000	56000	56000	532000
						कुल योग	**728000**

नोट– 1. विस्तार और ऊंचाई दो-दो प्रकार की बताई। एक प्रारंभ की दूसरी अंतिम समुद्र के पास की 2. अंतर नदियां सर्वत्र समान विस्तार वाली है, अतः गंगा सिंधु का परिवार ही उनका परिवार है। अर्थात् परिवार रहित है क्यों कि मार्ग में उसमें कोई नदी नहीं मिलती है 3. पानी की गहराई से विस्तार 50 गुणा होता है प्रारम्भ की अपेक्षा अंत 10 गुणा होता है 4. महाविदेह क्षेत्र की 64 + 12 = 76 नदियां भूमिगत कुंडों में से निकली है शेष सभी नदियां पर्वत पर रहे द्रहों में से निकली है।

द्रहों का योजन परिमाण– (कुल द्रह- 16)

सारणी

पर्वत संख्या– (269)

कंचन गिरी 200, महादेह में 16 + 4 = 20 वक्षस्कार, 4 यमक, चित्र विचत्र 6वर्षधर 34 वैताढय 4 वृतवैताढय, 1 मेरू पर्वत। इस प्रकार 200 + 20 + 4 + 6 + 34 + 4 + 1 = 269

कूट संख्या– (467 + 58 = 525)

वर्षधर 6 पर्वतों पर- 11 + 8 + 9	=	28 × 2	=	56
चौतीस वैताढ्यों पर- 34 × 9	=	306		
सौलह वक्षस्कार पर- 16 × 4	=	64		
4 गजदंता पर- 9 + 9 + 7 + 7	=	32		
मेरू के नंदन वन में- 9	=	9		
पर्वतों पर कुल	=	467		
भद्रशाल वन में	=	8		
जम्बू वृक्ष के वन में	=	8		
कूट शात्मली वृक्ष के वन में	=	8		
34 चक्रवर्ती विजय में ऋषभ कूट	=	34		
भूमि पर कुल	=	58		

महविदेह पूर्व पश्चिम का एक लाख--

मेरू	=	10000 योजन
दो भद्रशाल वन ग 22000	=	44000 योजन
13 विजय 2212 $\frac{3}{4}$ ×16	=	35404 योजन
8 वक्षस्कार 500 × 8	=	4000
6अंतर नदी 125 × 6	=	750
2 सीतासीतोदा 2123 × 2	=	5746
कुल	=	100000

नोट– जगती मकान की भित्तियों के समान है अर्थात् मकान का जो भूमि क्षेत्र होता है उसी में ही एक फुट या दो फुट की दिवाल का क्षेत्र समाविष्ट होता हैं। उसी प्रकार जम्बूद्वीप की 12 योजन की चौड़ाई वाली जगती भी किनारे पर जम्बूद्वीप के एक लाख योजन क्षेत्र सीमा मे ही समाविष्ट है जो सीतामुख वन, वर्षधर पर्वत, एवं क्षेत्रों की सीमा में संलग्न समझना चाहिए।

सिद्धायतन – (79)

6वर्षधर, 16वक्षस्कार, 4 गजदंता, 34 वैताढय, मेरू के चार वनों में 16,मेरू चूला पर, दो वृक्षों पर ये कुल 79 सिद्धायतन कहे गये हैं।

नोट– मेरू के पंडक वन का पाठ देखने से ज्ञात होता हैं कि भवन को ही कालांतर में सिद्धायतन कहने की सर्वत्र कोशिश की गयी हैं। क्योंकि सिद्धायतन किसका हो सकता हैं। सिद्ध तो सादि अनंत है और यह सिद्धायतन अनादि का है तो इसमें प्रतिमा किसकी हो सकती है ? प्रतिमा तो किसी सादि व्यक्ति की होती है अतः अनादि प्रतिमाओं और सिद्धायतनों के होने की कुछ भी सार्थकता एवं संगति नहीं हो सकती हैं। यदि किसी व्यक्ति की मनुष्य की आत्मा की प्रतिमा वहां नही है तब वह बिना व्यक्तित्व की प्रतिमा ही कैसी और किसकी अर्थात् वह बिना अस्तित्व की आकाश कुसुमवत होती हैं। इस प्रकार बिना व्यक्तित्व की प्रतिमा और जिनालय का होना निरर्थक होता हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इन शाश्वत स्थानों का उक्त जिनालयों सिद्धायतनों और प्रतिमाओं से कोई भी प्रयोजन नहीं हैं। जिससे यह स्पष्ट होता हैं कि मध्य काल में किसी के द्वारा ऐसे पाठ कल्पित कर यत्र तत्र आगमों में जोड़े गये हैं।

इस प्रसंग में णमोत्थुणं के पाठ के प्राचीन प्रतियों में भेद मिलना, उपासक दशा एवं व्यवहार सूत्र के चैत्य पाठ में प्रतिभेद मिलना, राजप्रश्नीय सूत्र में देवलोक गत सिद्धायतन में वर्तमान चौबीसी के प्रथम और अंतिम तीर्थंकर का नाम मिलना, प्रत्येक सामानिक आदि देवों के सुधर्मा सभाओं के निकट सिद्धायतन में 108प्रतिमाओं का होना (ये 108व्यक्ति कौन है जिन्हें जिन कहा जाय और देव इनकी पूजा करे इनमें एक का भी नाम नहीं कहा गया है बिना नाम के ये जिन कब कैसे हुए थे) जम्बू वृक्ष और कूट शाल्मली वृक्ष की शाखाओं के बीच में सिद्धायतन और उसके चौतरफ मालिक देव के चार भवन होना, मेरू चूलिका के ऊपर सिद्धायतन कहना और उसी पाठ में कहीं भवन शब्द का भी उपलब्ध होना इत्यादि अनेक प्रमाण उक्त अनुमान के सहयोगी हैं।

दोनों वृक्षों के वनों में दिशाओं में भवन और विदिशाओं में पुष्करिणियां हैं। जब मेरू के चारों वन का वर्णन भी ऐसा ही भवन पुष्करणियों कूटों वाला है तो वहां सिद्धायतन कैसे हो सकता हैं। जो पंडकवन के भलावण युक्त संक्षिप्त पाठ में भवन रूप में उपलब्ध हैं।

भवन सर्वत्र लम्बाई से आधे चौड़े कहे गये हैं अर्थात् लम्बे और चौकोने कहे गये है। जबकि सिद्धायतन अन्य सूत्रों में और इस सूत्र में वर्षधर पर्वत आदि सभी पर्वतों पर गोल कहे गये हैं। फिर भी भद्रशाल आदि चारों वनों में चौकोने है जम्बूवृक्ष के प्रकरण में भी चौकोन हैं। इससे भी स्पष्ट है कि वास्तव में ये भवन हैं। इन्हें ही पाठ परिवर्तन कर सिद्धायतन कह दिया गया हैं। जब कि इन की लम्बाई चौड़ाई का वर्णन भवन होने के पाठ को सिद्ध करता हैं। जो पंडक वन के संक्षिप्त पाठ से भी पुष्ट होता हैं।

इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि कहीं गोलाकार कूटों को सिद्धायतन बना दिया गया है और कहीं लम्बे चौकोने भवनों को भी सिद्धायतन कर दिया गया हैं। और कहीं बिना मालिकी के नये कूट कर दिये गये है। अतः सिद्धायतन सम्बन्धी ये सूत्रगत सारे पाठ प्रक्षिप्तिकरण की विकृतियों से सूत्रों में प्रविष्ट है ऐसा फलितार्थ निकलता हैं।

पुष्करिणियां––	दो वृक्षों के वनों में	16 × 2	=	32
	मेरू के चार वनों में	16 × 4	=	64
		योग	=	96

भवन प्रासाद-

6 द्रहों में	=	7,01,680
10 द्रहों	=	5,01,200
34 × 3 = 102 तीर्थों में	=	102
34 × 2 = 68नदियों के कुंडों के मध्य में	=	68
14 + 12 = 26नदियों के कुंडों में	=	26
467 पर्वतीय कूटों पर 467-60	=	407
दो वृक्षों की शाखाओं पर 4 × 2	=	8
दो वृक्ष के वनों में भवन 4 × 2	=	8
दो वृक्ष के वनों में पुष्करणियों में 4 × 2	=	8
मेरू के चार वनों में पुष्करणियों में 4 × 4	=	16
मेरू के दो वनों में 17 कूटों पर	=	17
दो वृक्षों के आठ आठ कूटों	=	16
34 ऋषभ कूटों पर	=	34
कुल	=	1203590

नोट- सिद्धायतनों के पाठों को प्रक्षिप्त मानने पर कूटों की संख्या में और भवनों की संख्या में भी हीनाधिकता होगी। क्योकि सिद्धायतन नामक कूंट का अस्तित्व ही नहीं रहेगा एवं कई सिद्धायतन तो भवनों की गिनती में आयेंगे ।

पांचवां वक्षस्कार-

जिस किसी क्षेत्र में तीर्थंकरों की माता तीर्थंकर को जन्म देती है, वहां पर भवनपति देवों की प्रसिद्ध ऋद्धि सम्पन्न 56दिशा कुमार देवियां आकर के तीर्थंकर के जन्म से सम्बन्धी कृत्य उत्सव करती हे। उसके बाद 64 इन्द्र क्रमशः आते हैं और सब मिलकर मेरू पर्वत पर जन्माभिषेक करते हैं। उसका विवरण इस प्रकार है।

दिशाकुमारियों द्वारा जन्म कृत्य- 1. अधोलोक वासिनी आठ दिशाकुमारियां आसन चलायमान होने के संकेत से मनुष्य लोक में तीर्थंकर के जन्म नगर में आती है। उसके साथ में 4 महत्तरिकाएं चार हजार सामानिक देव आदि अनेक देव देवी का परिवार सैकड़ों स्तंभों वाले विकुर्वणा से तैयार किये विशाल विमान में आते हैं। आकाश में रहे विमान के द्वारा तीर्थंकर जन्म भवन की तीन बार प्रदशिणा लगाकर उत्तर पूर्व विभागमें यथास्थान विमान को भूमि पर उतारते हैं। वह विमान भूमि से चार अंगुल ऊपर ठहर जाता है।

विमान से उतर कर सभी देव देवी जुलुस के साथ तीर्थंकर के मन्म भवन के पास आते हैं। दिशाकुमारियां अंदर जाकर तीर्थंकर की माता को मस्तक पर अंजलि करते हुए आवर्त्तन करके प्रणाम करती है। ''रत्न कुक्ष धारिणी'' आदि अच्छे सम्बोधन-विशेषणों से उसे सम्मानित कर धन्यवाद पुण्यवाद एवं कृतार्थवाद देते हुए अपना परिचय और आने का कारण कहती है एवं ''भयभीत नहीं होना'' ऐसा निवेदन करती है। फिर वे उस नगरी की एवं उसके आस पास एक योजन प्रमाण के क्षेत्र की सफाई करती है। जो भी छोटा बड़ा कचरा गंदगी आदि हो उसे पूर्णतया साफ करके पुनः आकर तीर्थंकर की माता से योग्य दूरी पर ठहर कर गीत गाते हुए समय व्यतीत करती है।

2. ऊर्ध्व लोक में मेरू के नन्दन वन में 8 कुटों पर रहने वाली ऊर्ध्व-लोकवासिनी दिशाकुमारियां भी आती है। आने सम्बन्धी वर्णन पूर्ववत् समझना। ये दिशाकुमारियां तीर्थंकर की माता के पास आकर गीत गाते हुए वंहां खड़ी रहती है।

3. रूचक द्वीप के मध्यवर्ती रूचक पर्वत पर पूर्व दिशा में रहने वाली 8 दिशा कुमारियां पूर्ववत् आती है, तीर्थंकर की माता को नमस्कार आदि करके हाथ में दर्पण लेकर पूर्व दिशा में खड़ी रहती है।

इसी प्रकार रूचक के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में रहने वाली 8-8 दिशाकुमारियां आती हैं। और वंदन नमस्कार कर क्रमशः झारी, पंखा एवं चामर हाथ में लेकर अपनी-अपनी दिशा में खड़ी रहती है।

चार विदिशा की एक-एक यों कुल चार देवियां रूचक पर्वत से आती है उक्त विधि पूर्वक चारों विदिशा में दीपक लेकर खड़ी रहती है।

4. मध्य रूचक पर्वत वासिनी चार दिशाकुमारियां आती है एवं उक्त विधि से शिष्टाचार करने के बाद तीर्थंकर के नाभिनाल को चार अंगुल छोड़कर काटती है और यथास्थान पर खड्डा खोद कर उसे गाड़ देती है (अवशेष खड्डे को रत्नों से आपूरित कर हड़ताल के द्वारा उस पर चबूतरा बनाती है उसके तीन दिशाओं में कदली गृह की रचना कर उन तीनों में एक एक चौसाल बनाती है। प्रत्येक चौसाल में सिंहासन बनाती है।

फिर तीर्थंकर की माता के पास आकर तीर्थंकर को हथेलियों में ग्रहण करती है और तीर्थंकर माता को भुजाओं से पकड़ कर उसे दक्षिणी कदली गृह की चौसाल में लाती है दोनों को सिंहासन पर बिठाकर तैलादि से अभ्यंगन करके उसके बाद उवटन करके पूर्वी कदली गृह की चौसाल में लाती है वहां स्नान विधि करा कर फिर उत्तरी कदली गृह की चौसाल में लाती है और चुल्लहिमवंत पर्वत से मंगाये गये चंदन से हवन करती है फिर उस राख से रक्षा पोटली बनाकर तीर्थंकर के एवं उनकी माता के डाकन, शाकन, नजर आदि दोषों से बचाव हेतु बांध देती है। फिर दो मणिरत्नमय पत्थरों के रगडने की आवाज भगवान के कान के पास करके उनकी अपनी ओर आकर्षित कर दीर्घायु होने का आशीर्वचन देती है।

फिर यथा स्थान लाकर माता को सुला देती है और उसके पास तीर्थंकर भगवान को सुला देती है। इस सारे कार्यक्रम में वे सभी देव देवियां भाग लेते हैं, गाना बजाना आदि करते हैं। सुलाने के बाद वे 56ही दिशाकुमारियां मिलकर वही ठहर कर मंगल गीत गाती है।

चौसठ इन्द्रों द्वारा जन्माभिषेक-

शकेन्द्र का आसन चलायमान होने पर एवं ज्ञान में उपयोग लगाने पर तीर्थंकर भगवान के जन्म होने की जानकारी होती है। सिंहासन से उतर कर उत्तरासंग लगाकर बायां घुटना ऊंचा कर तीन बार मस्तक झुकाकर वंदन करता है। फिर सिद्धों को णमोत्थुणं देकर तीर्थंकर भगवान को णमोत्थुणं के पाठ से स्तुति करते हुए नमस्कार करता है। पुनः सिंहासनारूढ़ होकर पैदल सेना के अधिपति हरिणेगमेषी देव के द्वारा सुघोषा घंटा बजवाकर सभी देव देवी को सावधान कर तीर्थंकर जन्म महोत्सव पर जाने की सूचना दिलवाता है। अविलम्ब सभी देव उपस्थित होते हैं पालक विमान का अधिपति आभियोगिक देव शक्रेन्द्र का आदेश पाकर विमान को सुसज्जित एवं तैयार करता है। इस प्रकार अविलंब प्रस्थान कर देते हैं। नंदीश्वर द्वीप में दक्षिण-पूर्वी रतिकर पर्वत (उत्पात पर्वत) पर आकर विमान को संकुचित कर तीर्थंकर की जन्म नगरी में आते है। अधोलौकिक दिशाकुमारी के समान यावत् माता को भयभीत नहीं होने के लिए निवेदन करता है।

शक्रेन्द्र के पांच रूप- तत्पश्चात माता को निद्राधीन कर देता है और तीर्थंकर भगवान के सदृश शिशु रूप की विकुर्वणा करके माता के पास रख देता है। शकेन्द्र स्वयं के 5 रूप विकुर्वित करता है एक रूप से तीर्थंकर को अपनी हथेलियों में लेता है,

एक रूप से छत्र, दो रूपों से दोनों बाजू में चामर एवं एक रूप से वज्र हाथ में लिये आगे चलता है। इस प्रकार सम्पूर्ण देव देवियों के साथ वह शकेन्द्र मेरू पर्वत पर पंडक वन में पहुंच कर दक्षिणी अभिषेक शिला पर स्थित सिंहासन पर तीर्थंकर को लिए हुए ही आकर बैठ जाता है।

सभी इन्द्र मेरू पर– इसी क्रम से दूसरे देवलोक से 12वें देवलोक तक के इन्द्र एवं भवनपति व्यंतर ज्योतिषी के इन्द्र भी जन्म नगरी में न जाते हुए सीधे मेरू पर्वत पर ही पहुंच जाते हैं। तीर्थंकर भगवान को वंदन नमस्कार कर पर्युपासना करते हैं।

अच्युतेन्द्र द्वारा अभिषेक प्रारम्भ– बाहरवें देवलोक के अच्युतेन्द्र अपने आभियोगिक देवों को अभिषेक सामग्री लाने का आदेश देते हैं वे देव कलश, कडुछे, छबड़ी, रत्न करंडक आदि हजारों विकुर्वित करके जाते हैं। क्षीरोद समुद्र, मागधादि तीर्थ, पर्वत, क्षेत्रों, नदी, द्रह, आदि कहीं से जल, कहीं से जल एवं पुष्प, कहीं से जल मिट्टी, आदि पवित्र अभिषेक सामग्री सम्पूर्ण ढाई द्वीप के क्षेत्र, पर्वतों, नदियों तीर्थों आदि में जाकर उपयुक्त सामग्री लेकर मेरू पर अच्युतेन्द्र के पास पहुंचते हैं। फिर अच्युतेन्द्र उन मंगल पदार्थो से जल मिट्टी पुष्प आदि से तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक करता है, कई देव वादिंत्र आदि की ध्वनियों को फैलाते हैं। अनेक कुतुहली देव अनेक प्रकार के हर्षातिरेक के कुतुहल कृत्य करते हैं। अच्युतेन्द्र जल आदि से अभिषेक कर मस्तक पर अंजली करके नमन कर जय जय कार करता हैं फिर मुलायम रोंएंदार वस्त्र से भगवान के शरीर को पोंछ कर गोशीर्ष चन्दन आदि लगाकार वस्त्र युगल पहनाता है, अलंकृत विभुषित करता है। फिर चावल से भगवान के समक्ष अष्ट मंगल चिन्ह बनाता है। पुष्प एवं रत्न आदि का भेंटणा चढ़ाता है, जिससे घुटने प्रमाण ढेर बन जाता है। फिर 108श्लोकों के द्वारा भगवान की स्तुति करते हुए उनके गुणों उपमाओं से सत्कारित सम्मानित कर, वंदन नमस्कार कर यथास्थान ठहर कर पर्युपासना करता है।

शेष इन्द्रों द्वारा अभिषेक– इसी प्रकार 63 ही इन्द्र जन्माभिषेक करते हैं। अंत में ईशानेन्द्र 5 रूप बनाकर भगवान को हाथ में लेकर बैठता है तब शक्रेन्द्र उक्त विधि से तीर्थकर भगवान का जन्माभिषेक करता हैं। विशेषता यह है कि वह चार सफेद बैल विकुर्वित करके उनके आठ सिंगों से जल को ऊपर फैला कर एक स्थान में मिलाकर भगवान के मस्तक पर गिराते हुए अभिषेक करता हैं।

समारोह समापन, शक्रेन्द्र जन्म नगरी में– इस तरह सम्पूर्ण अभिषेक विधि के समापन होने पर शक्रेन्द्र पूर्व विधि अनुसार भगवान को लेकर जन्म नगरी में आता हैं। भगवान को माता के पास सुलाकर विकुर्वित शिशु रूप को हटाकर माता की निद्रा खोल देता हैं। वस्त्र युगल और कुंडल युगल भगवान के सिरहाने के पास रख देता हैं। एक सुंदर रत्नों का झूमका भगवान के दृष्टि पथ पर ऊपर छत में लटका देता हैं। वैश्रमण देव के द्वारा 32 क्रोड सोना मोहर आदि भंडार में रखवा देता हैं। अन्य भी अनेक वस्तुएं 32-32 की संख्या में रखवा देता हैं। फिर नगरी में घोषणकरवा देता है कि कोई भी देव दानव (मानव) तीर्थंकर भगवान एवं उनकी माता के प्रति अशुभ अहितकर मन आदि करेगा तो उसके मस्तक के 100 टुकडे कर दिये जायेगे।

फिर सभी देव नंदीश्वर द्वीप में महोत्सव मनाते हुए अपने अपने देवस्थानों देवलोकों में पहुंच जाते हैं।

56 दिशाकुमारियां– 8 नीचे लोक में 8 मेरू के नंदन वन में। 8 × 4 = 32 रूचक पर्वत की चार दिशाओं में। 4 विदिशाओं में और चार मध्य भाग में इस प्रकार 8 + 8 + 32 + 4 + 4 = 56 दिशाकुमारियां भवनपति के दिशानुसार जाति की ऋद्धिवान देवियां हैं।

आठ नीचे लोक की कही गई देवियों के चार नाम गजदंताकार वक्षस्कार की कूट की देवियों के नाम से मिलते हैं और चार नाम नहीं मिलते हैं। इसकी अपेक्षा इन आठ देवियों को क्वचित गजंदता पर निवास करने वाली भी कहने में आता है। वास्तविक तथ्य यह है कि मूल पाठ में नीचेलोक की वासिनी कहा है और गंजदंताकार वक्षस्कार के वर्णन में मूल पाठ में दिशाकुमारियां होने का कोई संकेत नहीं हैं। केवल चार नाम सदृश होने मात्र से किंचित कल्पना की जाती हैं।

64 इन्द्र- 10 भवनपति के उत्तर दक्षिण की अपेक्षा 20 इन्द्र है। भूत पिशाच आदि आठ और आणपन्नी आदि आठ यों 16जाति के व्यंतरों के उत्तर दक्षिण की अपेक्षा 32 इन्द्र हैं। ज्योतिषी के दो इन्द्र हैं। और वैमानिक के आठ देवलोकों के आठ इन्द्र हैं। नवें दसवें का एक और ग्यारहवें बारहवें का एक, यों कुल 10 वैमानिक के इन्द्र हैं। इस प्रकार 20 + 32 + 2 + 10 = 64

इन्द्रों के घंटा- वैमानिक के पहले तीसरे पांचवें सातवें नौवें इन्द्र के सुघोषा घंटा, हरिणेगमेषी सेनापति, उत्तर में निर्याण मार्ग और दक्षिण पूर्व में रतिकर उत्पात पर्वत हैं।

दूसरे चौथे छट्टे आठवें और दसवें इन्द्र के महाघोषा घंटा, लघु पराक्रम नामक सेनाधिपति, निर्याण मार्ग (देवलोक से निकलने का रास्ता) दक्षिण में एवं उत्तर पूर्व में रतिकर उत्पात पर्वत हैं।

विमान नाम- यान विमान और उसके अधिपति देव का नाम क्रमशः दस इन्द्रों के इस प्रकार हे- 1. पालक 2. पुष्पक 3. सौमनस 4. श्रीवत्स 5. नन्दावर्त्त 6. कामगम 7. प्रीतिगम 8. मनोरम 9. विमल 10. सर्वतोभद्र ।

मंगल- अष्ट मंगल ये है- 1. दर्पण 2. भद्रासन 3. वर्द्धमानक 4. कलश 5. मत्स्य 6. श्रीवत्स 7. स्वस्तिक 8. नंद्यावर्त्त ।

छट्ठा वक्षस्कार-

पूर्व वक्षस्कारों में जो जम्बूद्वीप सम्बन्धी विस्तृत वर्णन किया गया है उसी के विषयों को यहां संकलन पद्वति से कहा गया हैं। वे संकलन के विषय 10 हैं।

1. खंड- एक लाख योजन लम्बे चौड़े जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र प्रमाण चौड़ाई वाले 190 खंड हो सकते है अर्थात् $526\frac{6}{19} \times 190$ = एक लाख होते हैं।

2. योजन- यदि जम्बूद्वीप क्षेत्र के एक योजन के लम्बे चौड़े खंड कल्पित किये जाय तो 7905694150 सात अरब, नब्बे करोड, छप्पन लाख, चौरानवें हजार, एक सौ पच्चास, खंड होते हैं।

3. वर्ष क्षेत्र- सात है- भरत, ऐरावत, हेमवत, हैरण्यवत , हरिवर्ष, रम्यकवर्ष एवं महाविदेह ।

4. पर्वत- ये 269 है, चार्ट देखें चौथें वक्षस्कार में ।

5. कूट- ये 467 हैं। चार्ट देखें चौथे वक्षस्कार में ।

6. तीर्थ- मागध, वरदाम, प्रभास ये तीनों ही तीर्थ 32 विजय में और भरत ऐरावत में हैं। अतः 34 × 3 = 102 हैं।

7. श्रेणियां- 34 विजयों में दो विद्याधरों की और दो आभियोगिकों की श्रेणियां हैं। अतः 34 × 2 × 2 = 136 श्रेणियां हैं।

8. विजय, गुफा, राजधानी आदि- 34 विजय है, 34 राजधानियां है, 34 ऋषभ हैं। 34 × 2 = 68गुफाएं हैं और 68ही इनके कृतमालक और नृतमालक कुल देव हैं।

9. द्रह- 16 महाद्रह हैं। 5 देव कुरू में 5 उत्तर कुरू में 6वर्षधर पर्वतों पर हैं। यों कुल 5 + 5 + 6 = 16 हैं।

10. नदी- 6 वर्षधर पर्वतों से 14 महानदियां निकली हैं। 32 विजयों में 64 नदियां कुंडों में से निकली है और 12 अंतर नदियां भी कुंडों में से निकली हैं। ये कुल 14 + 64 + 12 = 90 महानदियां हैं।

चौदह महानदियों के नाम इस प्रकार है - 1. गंगा 2. सिन्धु 3. रक्ता 4. रक्तवती 5. रोहिता 6. रोहितांशा 7. सुवर्ण कूला 8. रूप्यकूला 9. हरिसलिला 10. हरिकांता 11. नरकांता 12. नारीकांता 13. सीता 14. सीतोदा । यों क्रमशः भरत ऐरावत,

हेमवत, हैरण्यवत, हरिवास, रम्यकवास एंव महाविदेह की नदियां हैं। 64 नदियां गंगा, सिन्धु, रक्ता रक्तवती ये चारों 16-16की संख्या में महाविदेह में हैं। 12 अंतर नदियों के नाम पहली विजय से 32 विजय तक क्रमशः इस प्रकार हैं।

1. ग्राहावती 2. द्रहावती 3. पंकावती 4. तप्तजला 5. मत्तजला 6. उन्मत्तजला 7. क्षीरोदा 8. शीतश्रोता 9. अंतरवाहिनी 10. उर्मिमालिनी 11. फेणमालिनी 12. गंभीरमालिनी ।

इन सभी नदियों का कुल परिवार 14,56000 चौदह लाख छप्पन हजार हैं। इनमें 7,28000 नदियां पूर्वी समुद्र में मिलती है और 7, 28000 नदियां पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती हैं। परिवार की अलग अलग नदियां चार्ट में- चौथे वक्षस्कार में देखें।

सातवां वक्षस्कार-

1. जम्बू द्वीप में 180 योजन क्षेत्र में 65 सूर्य मंडल है। लवण समुद्र में 330 योजन क्षेत्र में 115 सूर्य मंडल हैं।

2. मेरू पर्वत से पहला मंडल 44820 योजन और अंतिम मंडल 45330 योजन दूर हैं।

3. पांच चन्द्र मंडल जम्बूद्वीप में है एंव दस चन्द्र मंडल लवण समुद्र में हैं।

4. चन्द्र मंडलों का आयाम विष्कंभ, मुहर्त गति, चक्षुस्पर्श

नोट- एक चन्द्र मंडल का दूसरे चद्र मंडल से अंतर 36 $\frac{25}{61}$, $\frac{4}{7}$ योजन हैं। इससे दुगुना 72 $\frac{51}{61}$, $\frac{4}{7}$ विष्कंभ बढ़ता हैं। इससे तीन गुणी साधिक परिधि अधिक अधिक होती है। मुहुर्त गति प्रति मंडल में बढ़ती है = 3 $\frac{9655}{13725}$ प्रति मंडल में परिधि बढ़ती है = 230 योजन।

4. नक्षत्र के आठ मंडल में से जम्बद्वीप में दो है और लवण समुद्र में छ है।

5. नक्षत्र की पहले मंडल में मुहुर्त गति - 5265 $\frac{18263}{21960}$

नक्षत्र की अंतिम मंडल में मुहुर्त गति - 5319 $\frac{16365}{21960}$

6. चन्द्र एक मुहुर्त में मंडल पार करता है - $\frac{1768}{109800}$

सूर्य एक मुहुर्त में मंडल पार करता है - $\frac{1830}{109800}$

नक्षत्र एक मुहुर्त में मंडल पार करता है - $\frac{1835}{109800}$

7. वृहस्पति महाग्रह 12 वर्षो में सभी नक्षत्रों के साथ योग समापन करता है।

शनिश्चर महाग्रह 30 वर्षो में सभी नक्षत्रों के साथ योग समापन करता है।

8. करण 11 होते हें यथा - 1. बव 2. बालव 3. कौलव 4. स्त्रीविलोचन 5. गरादि 6. वणिज 7. विष्टि 8. शकुनि 9. चतुष्पद 10. नाग 11. किस्तुघ्न

नोट- वदी चौदस रात में, अमावस को दिन में और रात्रि में तथा सुदी एकम को दिन में क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग और किस्तुघ्न ये चार करण स्थिर रहते हैं। शेष सात क्रमशः चार्ट के अनुसार बदलते रहते हैं।

सूर्य मण्डल और मण्डल के आंतरे

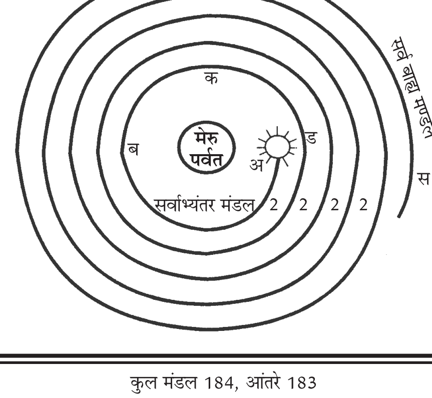

कुल मंडल 184, आंतरे 183

अ से स तक के सीधी लाइन में मंडल क्षेत्र हैं और ये 510$\frac{48}{61}$ योजन हैं, अ ब क और ड के तिच्छीं लकीर में $\frac{48}{61}$ यहां पहला मंडल पूर्ण होता है, ऐसे 184 मंडल हैं, सूर्य वहां तक जाकर दिखाई गई लाइन के अनुसार मेरु तरफ खिसकता जाता है।

दूसरा सूर्य ब स्थान से इसी प्रकार दूसरे 184 मंडल करता है, यों दोनों सूर्य एक लाइन में नहीं आते, यों अपनी-अपनी अलग-अलग लाइन करते हैं और प्रत्येक मंडल 2-2 योजन के अंतरे से करते हैं।

पृथ्वी के समभूतल से ज्योतिषचक्र की दूरी

मेरु के समीप समभूतल पृथ्वी के मध्य बिंदु से 1600 गाऊ का एक यो. ऐसे 790 यो. ऊपर जाने पर ज्योतिषचक्र की शुरूआत होती है, उससे ऊपर 110 यो. जाने पर यानि कि 900 यो. पूर्ण होने तक ज्योतिषचक्र की समाप्ति होती है। 790 यो. जहाँ आरंभ होता है उस स्थल से मेरु के चारों तरफ 1121 यो. दूर रहकर तारा मंडल भ्रमण करता है।

उससे 10 यों. ऊपर सूर्य, उससे 80 यो. ऊपर चन्द्र, उससे 4 यो. ऊपर नक्षत्र परिमंडल, उससे 4 यो. ऊपर ग्रहमंडल में पहले शुक्र ग्रह आदि, बाद में 3-3 यों. के अंतर से क्रमशः ब्रहस्पति, मंगल, शनिश्चर आदि ग्रह है। इस चित्र में एक तारे से दूसरे तारे का मेरु व्याघात आश्रय से अंतर मेरु का 10000 यो. व्यास मिलाकर 12242 यो. होता है।

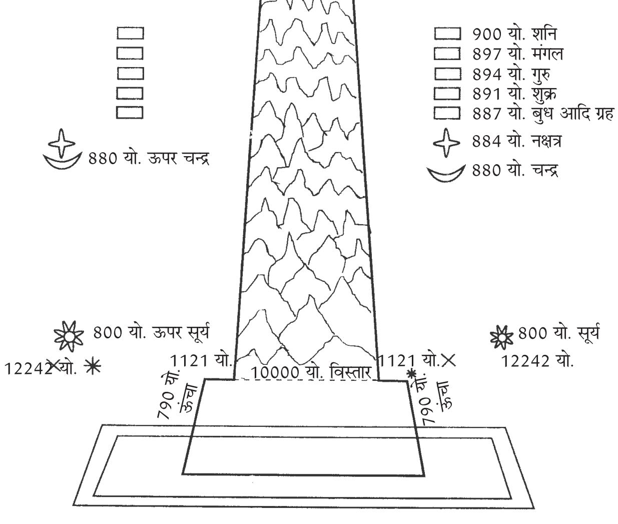

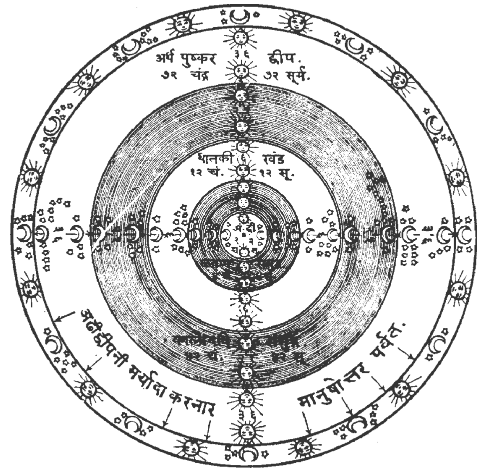

उदय और अस्त का अंतर और दृष्टि गोचक

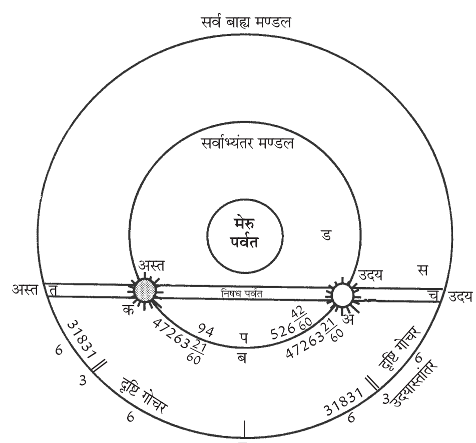

प स्थान पर खड़ा मनुष्य आभ्यंतर मंडल पर उदय से 94526 $\frac{42}{60}$ यो. दूर से सूर्य को अस्त होता देखे (यह उदयास्तांतर) है और 47263 $\frac{21}{60}$ यो. दूर से उदय होता और 47263 $\frac{21}{60}$ यो. दूर स्वस्थान से अस्त होता देखे (यह दृष्टि गोचर) उदयास्त की तिर्च्छी लकीर अ ब क है इस प्रकार सर्वबाह्य मंडल में चित्रानुसार है (यह जम्बू द्वीप का है) पुष्करार्द्ध द्वीप में उत्कृष्ट उदयास्तांतर 2134537 योजन, अर्द्ध दृष्टि गोचर।

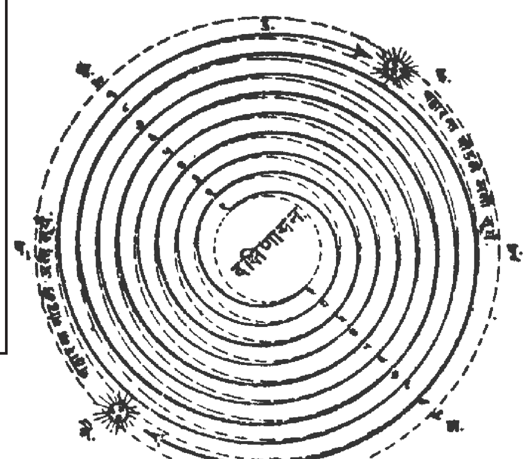

सूर - मंडल - सूर्य मंडल.

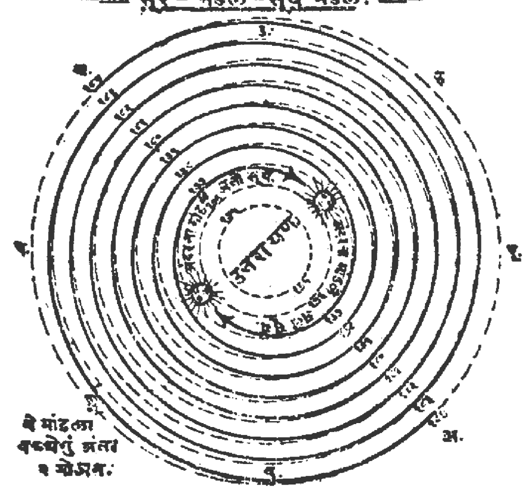

सर्वाभ्यंतर मंडल पर अंधकार क्षेत्राकृति

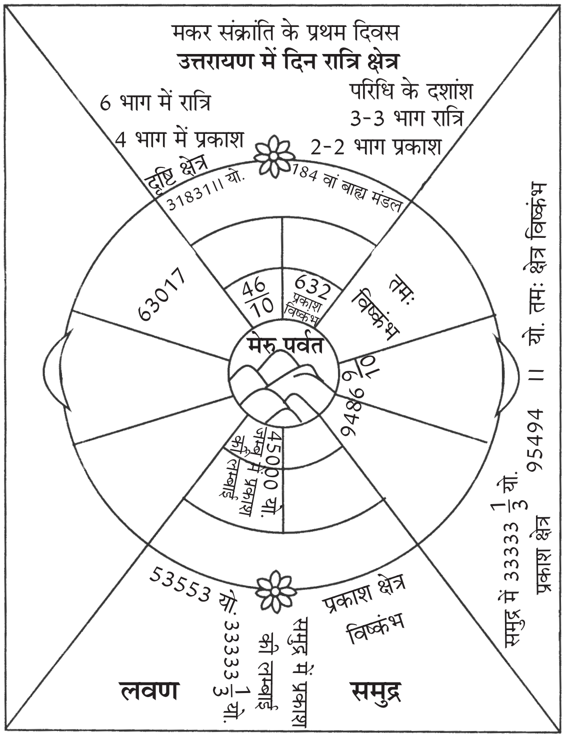

सर्वाभ्यंतर मंडल पर प्रकाश क्षेत्राकृति

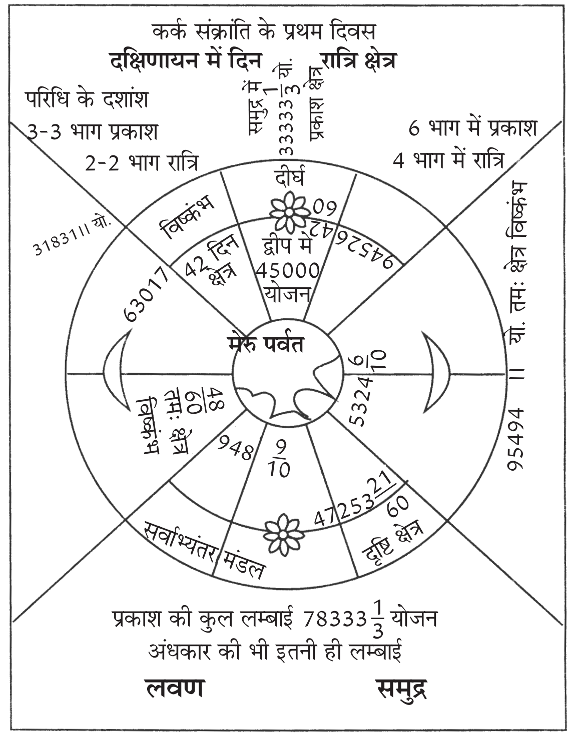

सूर्य चन्द्र मंडल के क्षेत्र

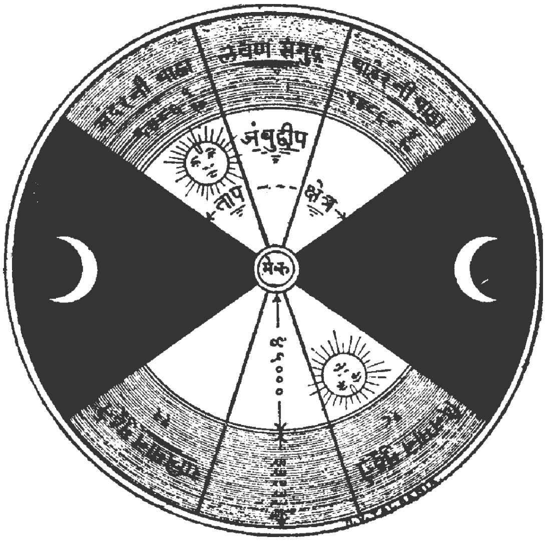

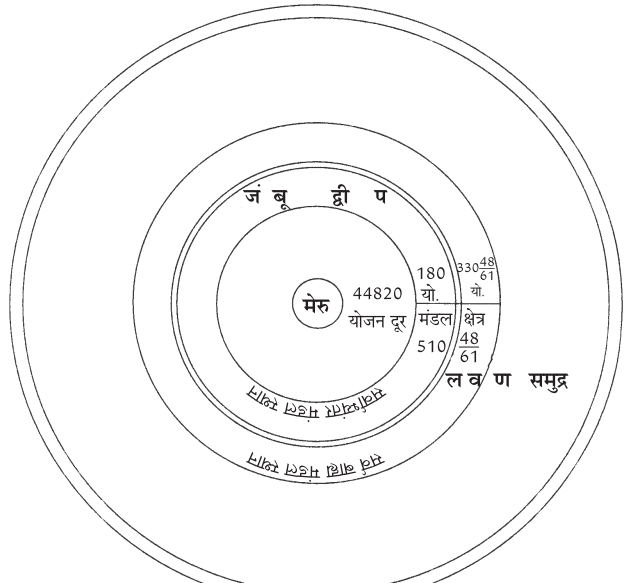

सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चन्द्र का परस्पर अंतर

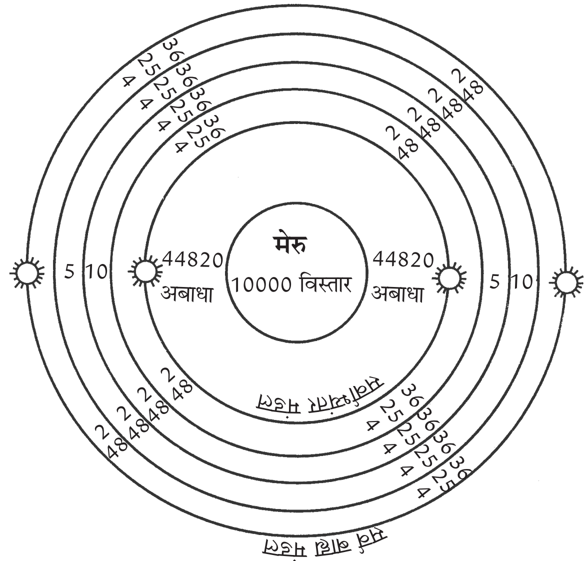

अढ़ाई द्वीप में चन्द्र सूर्य की 4 सूचि श्रेणी एवं अढ़ाई द्वीप के बाहर वलय श्रेणी

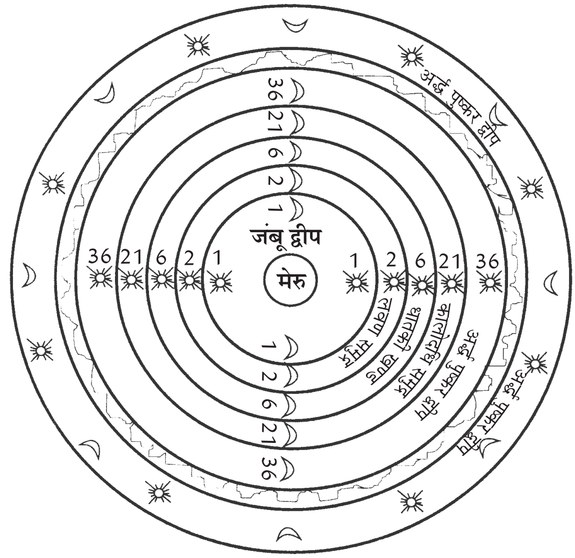

चन्द्र मंडल एवं मंडल के आंतरे

कुल मंडल 15, आंतरे 14

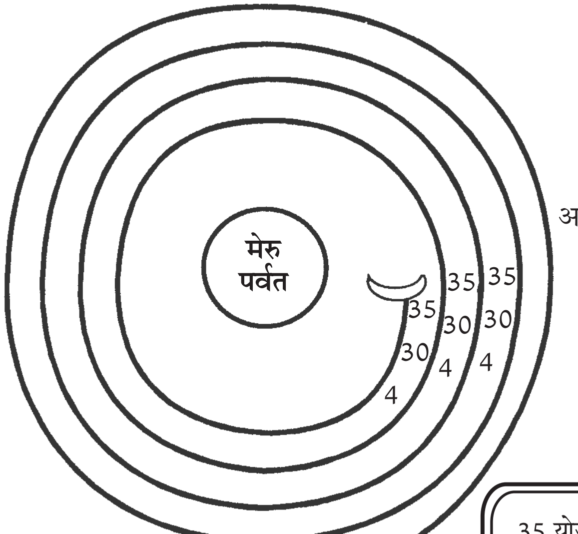

35 योजन, 30 भाग, 4 प्रतिभाग यह मंडल का अंतर है और प्रत्येक मंडल $\frac{56}{61}$ योजन है।
इसलिए मंडल की लकीरे $\frac{56}{61}$ योजन (मोटी) गिननी।
चन्द्र भी अ तक बाह्य मंडल पूर्ण करके अ नीचे की लकीर के हिसाब से मेरु की तरफ खिसकता जाता है।

एक चन्द्र के 15 अर्द्ध मंडलों का चित्र

15 चन्द्र मंडलों में सूर्य सहित 4 नक्षत्र सहित 8 मंडल

2-4-5-9-12-13-14 में एक चन्द्र का भ्रमण (चार) है

मंडल
1 में च.सू.न. 12
3 में च.सू.न. 2
6 में च.न. 1
7 में च.न. 2
8 में च.न. 1

मंडल
10 में च.न. 1
11 में च.न. 1
15 में च.न. 8

मूल नक्षत्र 15 में से बाहर चला जाता है, अभिजित पहला मंडल छोड़कर मेरु की तरफ अंदर चला जाता है

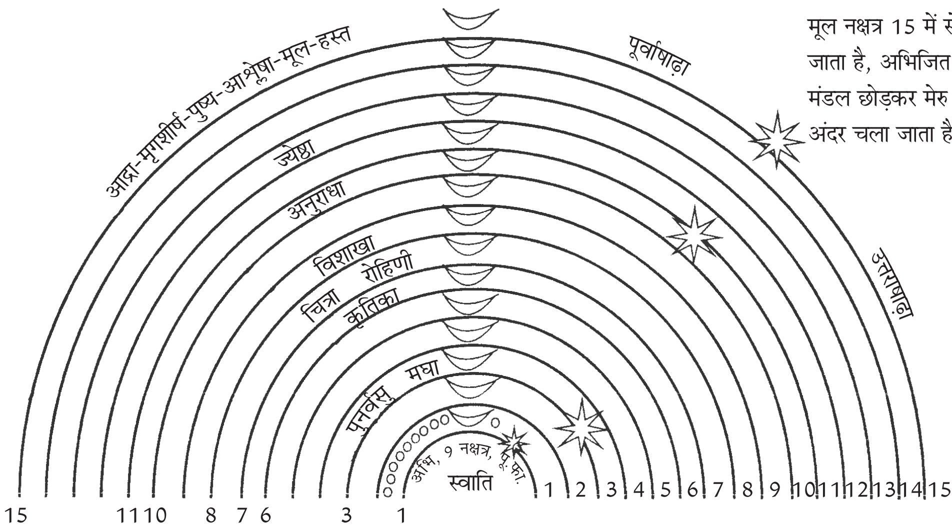

सुदी	दिन में	रात्रि में	वदी	दिन में	रात्रि में
1.	किस्तुघ्न	बव	1	बालव	कौलव
2.	बालव	कौलव	2	स्त्रीविलोचन	गरादि
3.	स्त्रीविलोचन	गरादि	3	वणिज	विष्टि
4.	वणिज	विष्टि	4	बव	बालव
5.	बव	बालव	5	कौलव	स्त्रीविलोचन
6.	कौलव	स्त्रीविलोचन	6	गरादि	वणिज
7.	गरादि	वणिज	7	विष्टि	बव
8.	विष्टि	बव	8	बालव	कौलव
9.	बालव	कौलव	9	स्त्रीविलोचन	गरादि
10.	स्त्रीविलोचन	गरादि	10	वणिज	विष्टि
11.	वणिज	विष्टि	11	बव	बालव
12.	बव	बालव	12	कौलव	स्त्रीविलोचन
13.	कौलव	स्त्रीविलोचन	13	गरादि	वणिज
14.	गरादि	वणिज	14	विष्टि	शकुनि
15.	विष्टि	बव	15	चतुष्पद	नाग

जम्बू द्वीप के सूर्य के मंडल

क्र.सं.	विषय	सूर्य
1.	कुल मंडल	184
2.	मंडल क्षेत्र का विष्कंभ	510 $^{48}/_{61}$ योजन
3.	जंबू द्वीप में मंडल क्षेत्र	180 योजन
4.	जंबू द्वीप में मंडल संख्या	65
5.	लवण समुद्र में मंडल संख्या	119
6.	लवण समुद्र में मंडल क्षेत्र	330 $^{48}/_{61}$ योजन
7.	मेरु से दूर आभ्यंतर मंडल	44820 योजन
8.	मेरु से दूर बाह्य मंडल	45330 योजन
9.	बाह्य मंडल परस्पर अंतर	100660 योजन
10.	मंडल से मंडल का अंतर	2 योजन
11.	मंडल रेखा की चौड़ाई	$^{48}/_{61}$ योजन
12.	अभ्यंतर मंडल में दिनमान	18 मुहुर्त दिवस
13.	बाह्य मंडल में दिनमान	12 मुहुर्त
14.	बाह्य मंडल में उदय अस्त का अंतर	63663 योजन
15.	आभ्यंतर मंडल में परस्पर अंतर	99640 योजन
16.	आभ्यंतर मंडल की परिधि	315089 योजन
17.	प्रति मंडल परस्पर की अंतर वृद्धि	5 $^{35}/_{61}$ योजन
18.	परिधि की हानि वृद्धि	18 योजन लगभग
19.	बाह्य मंडल परिधि	318315 योजन
20.	आभ्यंतर मंडल पर मुहुर्त गति	5251 $^{29}/_{60}$ योजन
21.	प्रति मंडल मुहुर्त गति की हानि वृद्धि	$^{18}/_{60}$ योजन
22.	बाह्य मंडल की मुहुर्त गति	5305 $^{1}/_{4}$ योजन
23.	आभ्यंतर मंडल से दृष्टि गोचर	47263 $^{21}/_{60}$ योजन
24.	आभ्यंतर मंडल पर उदय अस्त का अंतर	94526 $^{42}/_{60}$ योजन
25.	बाह्य मंडल पर दृष्टि गोचर	31831 $^{1}/_{2}$ योजन
26.	प्रति मंडल दिनमान की हानि वृद्धि	$^{2}/_{61}$ मुहुर्त रात्रि की

जम्बू द्वीप के चन्द्र के मंडल

क्र.सं.	विषय	चन्द्र
1.	कुल मंडल	15
2.	मंडल रेखा की चौड़ाई	$^{56}/_{61}$ योजन
3.	मंडल से मंडल का अंतर	35 $^{30}/_{61}$ $^{4}/_{7}$ योजन
4.	जंबू द्वीप में मंडल क्षेत्र	180 योजन
5.	मंडल क्षेत्र का विष्कंभ	510 $^{48}/_{61}$ योजन
6.	जम्बू द्वीप में मंडल की संख्या	5
7.	लवण समुद्र में मंडल क्षेत्र	330 $^{48}/_{61}$ योजन
8.	लवण समुद्र में मंडल संख्या	10
9.	मेरु से आभ्यंतर मंडल की दूरी	44820 योजन
10.	मेरु से बाह्य मंडल की दूरी	45329 $^{53}/_{61}$ योजन
11.	आभ्यंतर मंडल का परस्पर अंतर	99640 योजन
12.	प्रति मंडल परस्पर की अंतर वृद्धि	72 $^{51}/_{61}$ $^{1}/_{7}$ योजन
13.	आभ्यंतर मंडल में दिनमान	12 मुहुर्त्त रात्रि
14.	बाह्य मंडल में दिनमान	18 मुहुर्त्त रात्रि
15.	बाह्य मंडल में उदयास्त का अंतर	63663 योजन
16.	बाह्य मंडल में परस्पर अंतर	100659 $^{45}/_{61}$ योजन
17.	आभ्यंतर मंडल की परिधि	315089 योजन
18.	बाह्य मंडल की परिधि	318315 योजन
19.	परिधि की हानि वृद्धि	230 योजन
20.	आभ्यंतर मंडल में मुहुर्त गति	5073 $^{7744}/_{13725}$ योजन
21.	प्रति मंडल मुहुर्त गति की हानि वृद्धि	3 $^{9525}/_{13725}$ योजन
22.	बाह्य मंडल की मुहुर्त गति	5125 $^{6990}/_{13725}$ योजन
23.	आभ्यंतर मंडल से दृष्टि गोचर	47263 $^{7}/_{20}$ योजन
24.	आभ्यंतर मंडल पर उदय अस्त का अंतर	94526 $^{42}/_{60}$ योजन
25.	बाह्य मंडल पर दृष्टि गोचर	31831 $^{1}/_{2}$ योजन
26.	प्रति मंडल दिनमान की हानि वृद्धि	$^{2}/_{61}$ मुहुर्त रात्रि की

1. चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र, अभिवर्द्धित ये पांच संवत्सर का युग होता है। ये संवत्सर चन्द्र से प्रारम्भ होने वाले हैं। अयन दो है दक्षिणायन, उत्तरायन। इसमें प्रथम दक्षिणायन होता है। पक्ष दो होते है- कृष्ण और शुक्ल। इनमें कृष्ण पक्ष पहले होता है। इसी प्रकार करणों में बालव, नक्षत्रों में अभिजित, अहोरात्र में दिन और मुहुर्तों में रौद्र मुहुर्त ये सब पहले होते हैं।

10. एक युग में 10 अयन, 30 ऋतु, 60 महीने, 120 पक्ष, 1830 दिन, 54900 मुहूर्त होते हैं।

11. नक्षत्र सम्बन्धी वर्णन यहां दस द्वारों से हैं- 1. प्रमर्द आदि योग 2. देवता 3. तारा 4. गौत्र 5. संस्थान 6. चन्द्र सूर्य योग 7. कुल 8. पूनम अमावस में कुल 9. पूनम अमावस के कुलों में महिनों का सम्बन्ध 10. रात्रिवाहक। इन दसों द्वारों का वर्णन ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति में देखें। अन्य भी इस सातवें वक्षस्कार का वर्णन भी वहां देखना चाहिए।

12. आषाढ़ महिने के अंतिम दिन दो पांव की पोरिषि छाया होती है अर्थात् पांव के घुटने पर्यन्त की छाया दो पांव जितनी होती है। श्रावण महीने के अंतिम दिन दो पांव और चार अंगुल छाया होती है, तब पोरिषी आती है। इस तरह प्रति मास 4 अंगुल

मेरु के चारों ओर नक्षत्र ज्योतिषचक्र

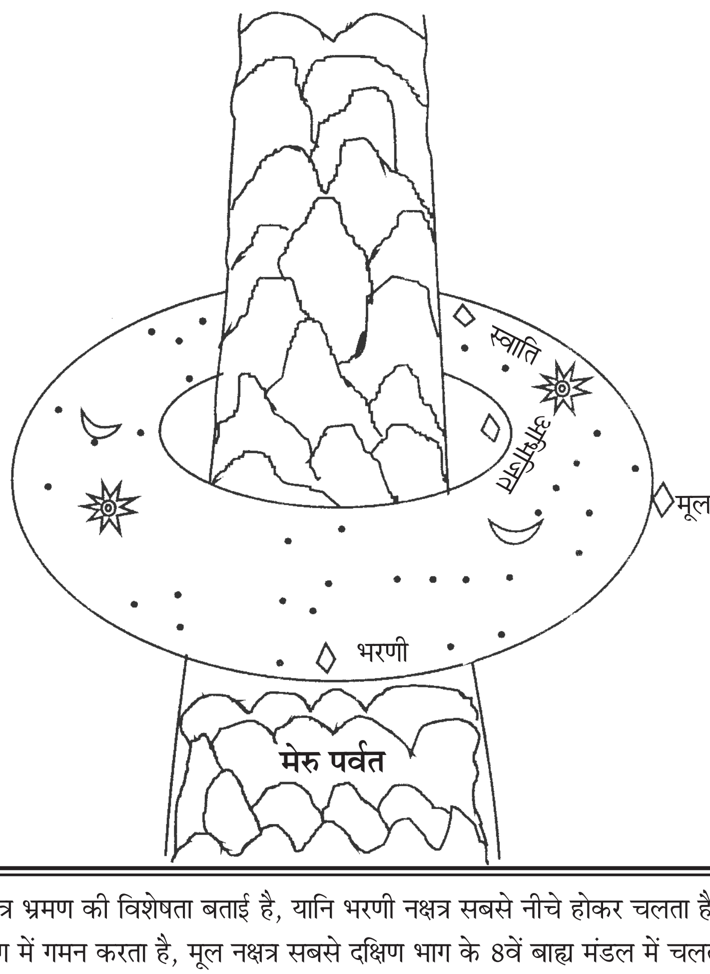

इस चित्र में नक्षत्र भ्रमण की विशेषता बताई है, यानि भरणी नक्षत्र सबसे नीचे होकर चलता है, जबकि स्वाति सबसे ऊर्ध्व भाग में गमन करता है, मूल नक्षत्र सबसे दक्षिण भाग के 8वें बाह्य मंडल में चलता है, जबकि अभिजित सब नक्षत्रों की अपेक्षा से उत्तर तरफ 12वें मंडल के अंदर के भाग में भ्रमण करता है।

निषध-नीलवंत पर्वत के आश्रय से नक्षत्र का व्याघात-निर्व्याघात अंतर

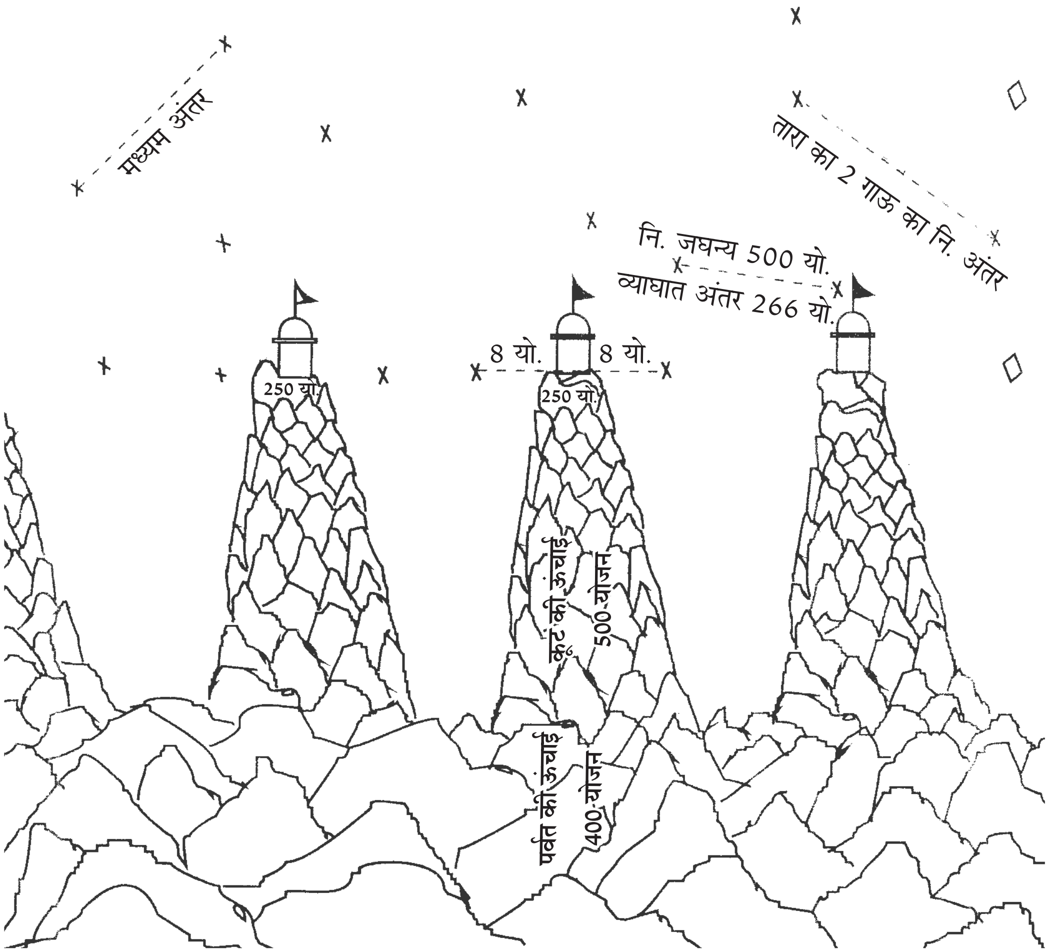

नक्षत्र मंडल (8)	चन्द्र मंडल (15)
पहला	पहला
दूसरा	तीसरा
तीसरा	छठा
चौथा	सातवां
पांचवां	आठवां
छठा	दसवां
सातवां	ग्यारहवां
आठवां	पन्द्रहवां

नक्षत्र	चन्द्र का योग (दिशा)
12 नक्षत्र (सर्वाभ्यंतर मंडल के)	उत्तर दिशा
7 नक्षत्र (ज्येष्ठा छोड़) मध्य के	तीन प्रकार (उत्तर, दक्षिण, प्रमर्द योग)
ज्येष्ठा	प्रमर्द योग
6 नक्षत्र पूर्वोत्तराषाढ़ा छोड़ अंतिम मंडल	दक्षिण योग
पूर्वोत्तराषाढ़ा	दक्षिण, प्रमर्द (कदाचित्)

क्र.सं.	विषय	नक्षत्र
1.	संख्या	28
2.	कुल मंडल	8
3.	जंबू द्वीप में मंडल संख्या	2
4.	जंबू द्वीप में मंडल क्षेत्र	180 योजन
5.	लवण समुद्र में मंडल संख्या	6
6.	लवण समुद्र में मंडल क्षेत्र	330 योजन
7.	मंडल क्षेत्र का विष्कंभ	510 योजन
8.	मेरु से आभ्यंतर मंडल की दूरी	44820 योजन
9.	मेरु से बाह्य मंडल की दूरी	45330 योजन
10.	आभ्यंतर मंडल की परिधि	315089 योजन
11.	बाह्य मंडल की परिधि	318315 योजन
12.	आभ्यंतर मंडल की मुहुर्त्त गति	$5265\ ^{18263}/_{21960}$ योजन
13.	बाह्य मंडल की मुहुर्त्त गति	$5319\ ^{16365}/_{21960}$ योजन

क्र.सं.	नक्षत्र	चन्द्रमा के साथ योग	सूर्य के साथ योग
(1)	अभिजित	$9\ ^{27}/_{67}$	4 अहोरात्रि 6मुहूर्त
(2)	अर्द्धक्षेत्री 6 (ज्येष्ठा, अश्लेषा, भरणी आर्द्रा, स्वाति, शततारा)	15 मुहूर्त	6 अहोरात्रि 21 मुहूर्त
(3)	सार्द्धक्षेत्री 6 (तीनों उत्तरा, ब्राह्मी, विशाखा, पुनर्वसु)	45 मुहूर्त	20 अहोरात्रि 3 मुहूर्त्त
(4)	समक्षेत्री 15 (शेष नक्षत्र)	30 मुहूर्त	13 अहोरात्रि 12 मुहूर्त

॥ अभिजिदादीना		तारासंख्या		आकारः	रात्रिसंख्या	मासक्रमश्च ॥	
१	अभिजित्	३	गोशीर्षावली		७	श्रावण	७
२	श्रवण	३	कासार		८		८
३	धनिष्ठा	५	पक्षिपंजर		१५	भाद्रपद	१/१४
४	शतभिषक्	१००	पुष्पमाला	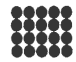	७		७
५	पूर्वाभाद्रपदा	२	अर्द्धवापी		८		८
६	उत्तराभाद्रपदा	२	अर्द्धवापी		१५	आश्विन	१/१४
७	रेवती	३२	नौकासंस्थान		१५		१५
८	अश्विनी	३	अश्वस्कंध		१५	कार्तिक	१/१४
९	भरणी	३	भगसंस्थान		१५		१५
१०	कृतिका	६	क्षुरधारा	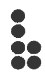	१५	मागसीर	१/१४
११	रोहिणी	५	शकटोद्धी		१५		१५
१२	मृगशीर्ष	३	मृगशीर		१५	पोस	१/१४
१३	आर्द्रा	१	रुधिरबिन्दु	०	८		८
१४	पुनर्वसु	५	तुला		७		७
१५	पुष्य	३	वर्द्धमानक		१५	माघ	१/१४
१६	अश्लेषा	५	पताका		१५		१५
१७	मघा	७	प्राकार		१५	फागुण	१/१४
१८	पूर्वा फा०	२	अर्द्धपल्यंक		१५		१५
१९	उ० फा०	२	अर्द्धपल्यंक		१५	चैत्र	१/१४
२०	हस्त	५	हस्ततल		१५		१५
२१	चित्रा	१	मुखमंडन सुवर्णपुष्प	०	१५	वैशाख	१/१४
२२	स्वाति	१	कीलक	०	१५	१५	
२३	विशाखा	५	पशुदामन	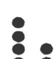	१५	ज्येष्ट	१/१४
२४	अनुराधा	४	एकावली		७		७
२५	ज्येष्ठा	३	गजंदत		८		८
२६	मूल	११	वृश्चिकपुच्छि		१५	अषाढ	१/१४
२७	पूर्वाषाढा	४	गजविक्रम (पाद)		१५		१५
२८	उत्तराषाढा	४	सिंहनीषदन		१५	श्रा०	१/१४

11. नक्षत्रों का आकार-

	नक्षत्र	आकार
1.	अभिजित	गोशीर्षावली
2.	श्रवण	तलाव
3.	धनिष्ठा	पक्षी पिंजरा
4.	शततारा	पुष्पमाला
5.	पू. भाद्रपद	आधी वाव
6.	उ. भाद्रपद	आधी वाव
7.	रेवती	जहाज
8.	अश्विनी	अश्व खांध
9.	भरणी	भगाकार
10.	कृतिका	उस्तरे की धार
11.	रोहिणी	गाड़ा की ऊंघ
12.	मार्गशीर्ष	मृगशिर
13.	आर्द्रा	लोही की बून्द
14.	पुनर्वसु	तुला (तराजू)
15.	पुष्य	स्वस्तिक
16.	अश्लेषा	ध्वजा
17.	मघा	किल्ला
18.	पू. फाल्गुनी	आधा पलंग
19.	उ. फाल्गुनी	आधा पलंग
20.	हस्त	हाथ
21	चित्रा	सुवर्ण पुष्प
22.	स्वाति	खीला
23.	विशाखा	पशुदामन
24.	अनुराधा	एकावली हार
25.	ज्येष्ठा	हाथी के दांत
26.	मूल	बिच्छु की पूंछ
27.	पू. आषाढ़ा	हाथी के पांव
28.	उ. आषाढ़ा	बैठे हुए सिंह

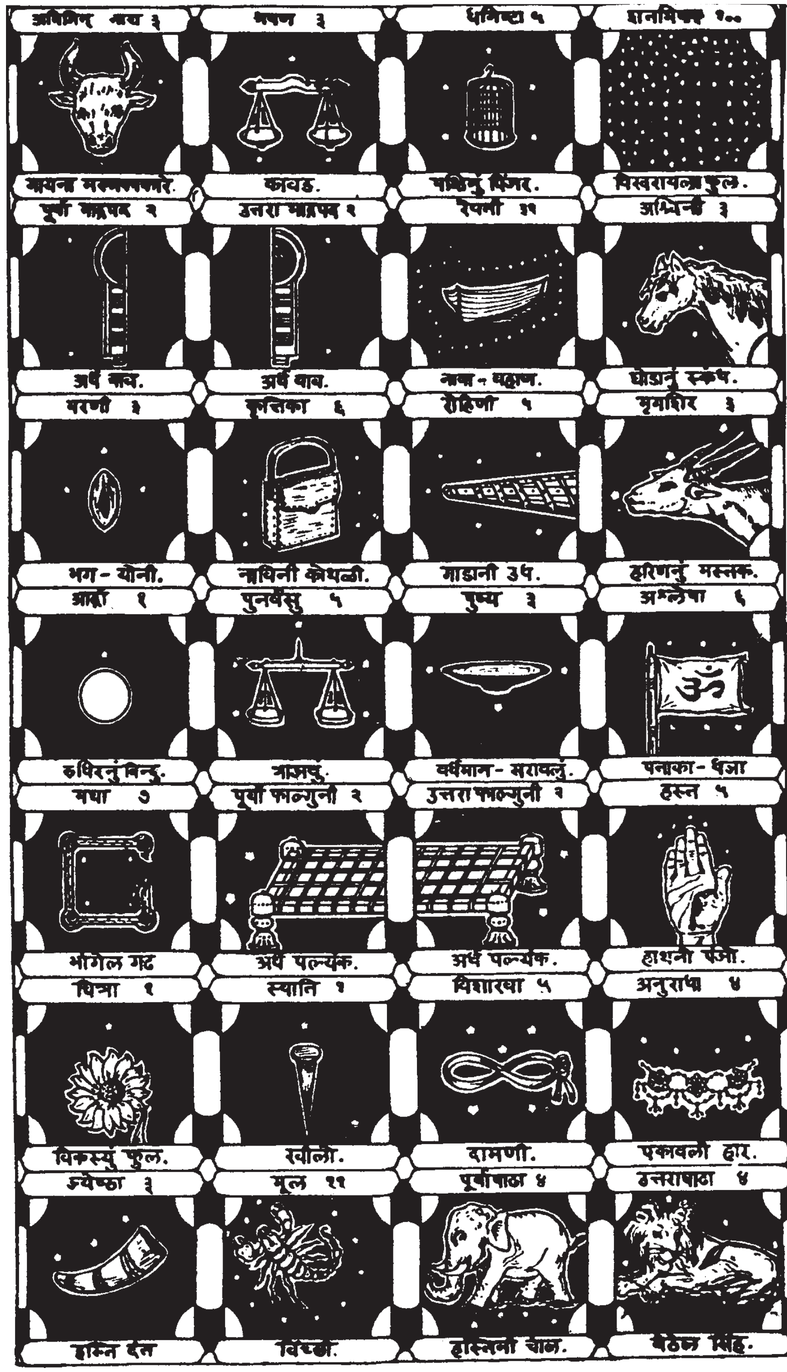

रत्नमाला ग्रंथ में (लोगों में मान्यतानुसार) इस प्रकार अश्विनी से लेकर 28 नक्षत्रों का आकार यों दिया है- अश्व का मुख, योनि, खुर, गाड़ा, मृग का मस्तक, मणि, घर, शर, चक्र की नाभि, शाल वृक्ष, शय्या, पलंग, हस्त, मौक्तिक, प्रवाल, तोरण, मणि, कुंडल, क्रोधित शेर का पंजा, शय्या, झूलता हाथी, शींघाड़ा, तीन पांव, मृदंग, वर्तुल, दो जोड़ा, पलंग, मुरज।

बढ़ाते हुए पौष तक 6 महिनों में 24 अंगुल = 2 पांव छाया बढ़ जाती है अर्थात् 2+2 = 4 पांव जितनी छाया होती है तब पोरिषी आती है। यह घुटने तक के पांव की छाया के माप से पोरिसी जानने का माप बताया गया है।

13. सोलह द्वार इस प्रकार है - 1. तारा एवं सूर्य चन्द्र की अल्प या सम ऋद्धि स्थिति 2. चन्द्र का परिवार 3. मेरू से दूरी 4. लोकांत से दूरी 5. समभूमि से दूरी 6. सबसे ऊपर नीचे आदि 7. विमानों का संस्थान 8. ज्योतिषी देवों की संख्या 9. वाहक देव 10. शीघ्र मंद गति 11. अल्पर्द्धिक महर्द्धिक 12. ताराओं का परस्पर अंतर 13. अग्रमहिषियां 14. परिषद और भोग 15. आयुष्य 16. अल्पबहुत्व। इन सभी द्वारों का वर्णन ज्योतिष गणराज पज्ञप्ति में देखें।

	जघन्य	उत्कृष्ट
तीर्थंकर	4	34
चक्रवर्ती	4	30
बलदेव	4	30
वासुदेव	4	30
निधि रत्न अस्तित्व	-	306
निधि रत्न उपभोग	36	270
पंचेन्दिरल रत्न	28	210
ऐकेन्द्रिय रत्न	28	210

जम्बूद्वीप में तीर्थंकर आदि की संख्या-

जम्बूद्वीप वर्णन का उपसंहार– इस प्रकार यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा चौड़ा गोल है। 3, 16, 227 योजन 3 कोश 128 धनुष 13 $\frac{1}{2}$ अंगुल साधिक परिधि है। एक हजार योजन यह गहरा है (24वीं 25वीं विजय की अपेक्षा)। 99000 योजन साधिक (मेरू की अपेक्षा) ऊंचा है। एक लाख योजन साधिक सर्वाग्र है।

वर्ण गंध रस स्पर्श आदि की पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है और अस्तित्व की अपेक्षा सदा था, और सदा रहेगा, अतः शाश्वत है।

यह जम्बूद्वीप पृथ्वी पानी जीव एवं पुद्‌गल परिणाम रूप है। सभी जीव यहां पांच स्थावर रूप मे अनंत बार अथवा अनेक बार उत्पन्न हो चुके हैं।

इस द्वीप में अनेक जम्बूवृक्ष हैं, जम्बूवन हैं, वनखंड हैं। जम्बू सुदर्शन नामक शाश्वत वृक्ष है। जिस पर जम्बूद्वीप का स्वामी अनादृत महर्द्धिक देव रहता है, इस कारण इस द्वीप का जम्बूद्वीप यह शाश्वत नाम है।

नोट– विशेष जानकारी के लिए इस सूत्र की अनुवाद युक्त एवं विवेचन युक्त हिन्दी संस्कृत टीकाओं का तथा जम्बूद्वीप के नक्शे का अध्ययन करना चाहिये।

।। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारांश समाप्त ।।

परिशिष्ट–1

जैन सिद्धान्त और वर्त्तमान ज्ञात दुनिया

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में एंव जीवाभिगम सूत्र में भूमि भाग सम्बन्धी विस्तृत वर्णन है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में एक ही द्वीप का स्पष्ट एवं परिपूर्ण वर्णन है। इसका उपयोग पूर्वक एवं चिंतन युक्त अध्ययन कर लेने पर मस्तिष्क में परिपूर्ण इस क्षेत्र का नक्शा साक्षात चित्रित सा हो जाता है।

दक्षिण से उत्तर अर्थात् भरत से ऐरावत तक, पूर्व से पश्चिम सम्पूर्ण महाविदेह क्षेत्र एवं मध्य मेरू सुदर्शन मंदर पर्वत आदि, नदी, पर्वत, क्षेत्र, द्रह, कूट, भवन पुष्करिणियां, प्रासादावतंसक आदि आखों के सामने श्रुत ज्ञान के रूप में प्रत्यक्ष से हो जाते हैं।

प्रश्न– इस श्रुत ज्ञान के अनंतर यह प्रश्न स्वाभाविक होता हैं कि वर्त्तमान प्रत्यक्षीभूत पृथ्वी ओर सैद्धांतिक ज्ञान का सुमेल किस तरह होता है ?

समाधान– इसके लिए समाधान इस प्रकार समझना चाहिए। आज के वैज्ञानिक साधन एवं वैज्ञानिक मन्तव्य कुछ सीमित ही है। इतः उसके अनुसार ही बोध एवं गमनागमन हो सकता है। गमनागमन के अभाव में अवशेष सम्पूर्ण क्षेत्र अज्ञात ही रहते हैं

विशाल क्षेत्रों का अप्रत्यक्षीकरण क्यों ? आज हम दक्षिण भरत क्षेत्र के प्रथम मध्य खंड के किसी सीमित भूमि क्षेत्र में अवस्थित हैं। लवण समुद्रीय प्रविष्ट जल के किनारे हैं। यों भरत क्षेत्र तीन दिशाओं में लवण समुद्र से एवं उसके प्रविष्ट जल से घिरा हुआ है। वह समुद्री जल सेकड़ों या हजारों माइल जाने पर आ ही जाता है। हमारी उत्तरी दिशा ही समुद्री जल से रहित है इस दिशा में पर्वत या समभूमि है। किन्तु उत्तर में भी 1-10 लाख के कुछ अधिक माइल जाने पर वैताढ्य पर्वत 2 लाख माइल का ऊंचा है। अतः इतना ऊंचा जाकर फिर उत्तर दिशा में आगे जाना आज की मानवीय यांत्रिक शक्ति से बाहर है और जम्बूद्वीप के वर्णित सारे क्षेत्र पर्वत आदि वैताढ्य पर्वत के बाद ही उत्तर में है। अतः उनकी जानकारी एवं प्रत्यक्षीकरण चक्षुगम्य होना असंभव सा हो रहा है।

दक्षिण भारत का भी अप्रत्यक्षीकरण क्यों ? शाश्वत गंगा-सिन्धु नदियें, मागध, वरदाम, प्रभास, तीर्थ सिंधु देवी का भवन आदि एवं दोनों गुफा के द्वार तो इसी खंड में हैं। फिर भी इन स्थलों का प्रत्यक्षीकरण आज के मानव को नहीं हो रहा है इसका भी कारण यह है कि 1. उक्त स्थानों के आगमीय वर्णन को समझ कर सही क्षेत्रीय निर्णय नहीं किया जाता है 2. इन स्थानों के और हमारे निवास क्षेत्र रूप ज्ञात दुनिया के बीच में यदि विकट पर्वत या जलीय भाग हो गया हो तो भी वहां पहुंच पाना कम सभंव है, 3. हमारे निवास क्षेत्र से उक्त स्थलों की दूरी का क्षेत्र भी गमन शक्ति से अत्यधिक हो तो भी पहुंचा नहीं जा सकता है।

सम्भवतः तीन तीर्थ तो जल बाधकता से अगम्य हो जाने की स्थिति में है। इसके अतिरिक्त ये सभी स्थान हमारे इस निवास क्षेत्र से अति दूरस्थ हैं।

हमारी वर्तमान दुनियां आगमिक विनीता-अयोध्या वाराणसी हस्तिनापुर आदि के पास की भूमि हैं अतः यह प्रथम खंड का मध्य स्थानीय भूमि भाग है जो 3-4 योजन प्रमाण ही है। इस स्थान से शाश्वत योजन की अपेक्षा-मागध तीर्थ एवं प्रभास तीर्थ 4874 योजन है। वरदाम तीर्थ 114 योजन है। दोनों शाश्वत नदियों का एक निकटतम हिस्सा 1000 योजन है। गुफाएं 1250 योजन है। एक योजन 8000 माइल का होता है अतः इन योजनों के माइल इस प्रकार है-

मागध तीर्थ	3, 89, 12, 000 माइल दूर है।
वरदाम तीर्थ	9, 12, 000 माइल दूर है।
प्रभास तीर्थ	3, 89, 12, 000 माइल दूर है।
गंगा सिंधु नदी	80, 00, 000 माइल दूर है।
दोनों गुफा	1, 00, 00, 000 माइल दूर है।

वर्तमान ज्ञात दुनिया का क्षेत्रावबोध– हमारी वर्तमान ज्ञात भ्रमण संचरण शील दुनिया वैज्ञानिकों द्वारा 24,000 माइल साधिक की परिधि वाली मानी गई है जो आगमिक योजन की अपेक्षा कुल अधिकतम 3 योजन परिमाण मात्र की है अथवा जितने भी माइल की आंकी जा रही हो उस माइल में 8000 का भाग देने पर आगमिक क्षेत्रीय योजन निकल आवेंगे। अतः 3-4 या 5-10 योजन में फिर फिराकर, खोजकर के ही संतुष्ट रहने वाले वैज्ञानिक लोग 114,1000 और 1250 योजन की कल्पना एवं पुरूषार्थ के लिए तत्पर भी नहीं हो सकते।

यह पृथ्वी वास्तव में चन्द्र के समान या प्लेट के समान चपटी गोल है। न कि गेंद के समान। वैज्ञानिक लोगों ने गेंद के समान गोल होने की कल्पना कर रखी है। जो कि चर्म चक्षुओ के स्वभाव के कारण होने वाला एक भ्रम मात्र है।

वैज्ञानिक मानस की स्थिति– वैज्ञनिक लोगों के मानने का या खोजने का अभी कोई अंत नहीं हुआ है अर्थात् उनहें भ्रमण करते हुए और भी पृथ्वी का हिस्सा मिल जाय तो वे उसे मान्य कर सकते हैं। उत्तर दिशा का अंत लेने का ये वैज्ञानिक लोग परिश्रम करना भी मूर्खता भरा प्रयास मानते हैं अर्थात् उत्तरी दिशा में इन्हें पहाड और बर्फ से युक्त विकट दिशाओं में समुद्री जल विभाग ही आगे जाने में हताश या निराशा के भावों को उत्पन्न कर देता हैं। अतः वैज्ञानिक लोग अपनी कल्पित 24000 माइल वाली पृथ्वी के घेरे में ही पराक्रम करते हैं। क्योकि लाखों करोड़ो माइल की दूरियां पैदल या वायुयान, विमान राकेट आदि से केसे पार की जा सकती है ? इसी कारण उक्त निर्दिष्ट लाखों करोड़ों माइल दूरस्थ तीर्थ आदि का पता लगाना या पाना अत्यंत कठिन हो गया हैं।

इसलिए उन उक्त शाश्वत स्थानों के दक्षिण भरत खंड में होते हुए भी हमारे लिये उन स्थानों का गमनागमन अवरूद्ध हैं। क्योकि जितनी (5-10 योजन) ज्ञात पृथ्वी वर्त्तमान दुनिया हैं। उससे सेकड़ों गुणा क्षेत्र आगे जाने पर ही ये उक्त तीर्थ आदि शाश्वत स्थान आ सकते हैं।

परिणाम सार– इस प्रकार हमारा यह भरत क्षेत्र भी इतना विशाल है कि इसके एक खंड में जिसमें कि हम रहते है, उसका भी पार हम नहीं पा सकते, तो एक लाख योजन के जम्बूद्वीप अथवा अन्य द्वीप समुद्रों के पार पाने की तो बात ही नहीं हो सकती। इसी कारण ज्ञात दुनियावी क्षेत्र और अज्ञात भरत क्षेत्र में भी कई गुणा अंतर हैं। तब अन्य द्वीप समुद्रों की अपेक्षा में तो यह हमारी ज्ञात दुनिया अत्यन्त ही छोटी मालुम पड़ेगी।

इस प्रकार ज्ञात दुनिया के सामने आगम निर्दिष्ट दुनियां का स्वरूप रखकर समझने की कोशिश करनी चाहिए।

प्रश्न– यह ''चर्म चक्षु का भ्रम'' क्या चीज है ?

उत्तर– मानव की आखें की कीकी (शक्ति सम्पन्न यंत्र बिन्दू) गोल हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वतंत्र दृष्टि क्षेत्र सीमित होता है। उस अपने दृष्टि क्षेत्र से भी बड़ी वस्तु यदि उसके सामने आती है तो वह उसे अपने दृष्टि क्षेत्र जितने गोलाकार रूप में देखकर अवशेष उस पदार्थ के विभाग को नहीं देखता हैं। उसके स्थान पर फिर केवल शून्य स्थल रूप आकाश ही देखेगा। जिस प्रकार यदि हम एक इंच के व्यास वाली और दो इन्च लम्बी एक छोटी सी गोल नली आखों के पास रख कर देखेगें तो उस नली

की गोलाई से प्राप्त होने जितना ही क्षेत्र और उतनी ही वस्तु दिखेगी उस क्षेत्र से बडी वस्तु को वह अपनी सीमा जितनी गोल देखकर अवशेष को छोड़ देगी।

पहाड़ी पर खड़े व्यक्तियों का दृष्टांत– उसी तरह कुछ व्यक्ति एक पहाड़ी पर खड़े है। उनके चक्षु दृष्टि क्षेत्र अर्थात् चक्षु ज्ञान शक्ति क्रमशः 5,10, 12, 15 माइल का हैं। तो उसमें पहला व्यक्ति चौतरफ पांच पांच माइल क्षेत्र देखकर आगे केवल आकाश या खड्डा भूमि रहित क्षेत्र होना ही देखता हैं। उसी समय वहीं खड़ा दूसरा व्यक्ति 10 माइल चौतरफ क्षेत्र देख लेता हैं। और तीसरा चौथा व्यक्ति 12 और 15 माइल गोलाकार चौतरफ क्षेत्र देखता है। वहीं उसी समय उनको दूर दर्शक यंत्र दे दिया जाय तब वही 5 माइल का घेरा देखने और कहने वाला 50 माइल घेरा भी देखने लग जाता हैं।

अतः वास्तव में पृथ्वी न तो 5 मील के घेरे जैसी थी, न 10 माइल के घेरे जैसी और न 12-15 माइल के घेरे जैसी थी। साथ ही 50 माइल की घेरे जितनी भी नहीं मानी जा सकती। क्योंकि 5 मील की दृष्टि क्षेत्र वाले को यंत्र से पच्चास माइल दिख रहा है तो 15 माइल के दृष्टि क्षेत्र वाले को 150 माइल क्षेत्र दिख सकेगा और वही एक वृद्ध मंद दृष्टि वाला खड़ा हो तो वह एक माइल के बाद ही पृथ्वी का अंत देख लेगा।

इस प्रकार यह हमारी चर्म चक्षुओं का ध्रुव स्वभाव है कि वह अपने दृष्टि सीमा से बड़ी वस्तु को चौतरफ गोल देख कर समाप्त कर लेती हैं। इस भ्रम के वशीभूत होकर आज के मानव को पृथ्वी का अंत दिखता है और वह गेंद जैसी गोल पृथ्वी मानने पर उतारू हो जाता है, यही चर्म चक्षु का भ्रम कहा गया हैं।

अतः वैज्ञानिकों की खोंज का मूल सिद्धांत भ्रम पूर्ण होने से वे आगे अधिक सफल होकर भू भाग का पता नहीं लगा सकते हैं।। क्योकि पहले लक्ष्य बिन्दु का सिद्धान्त सही हो तो ही उसकी ओर गमन सही गति को प्राप्त कर सकता हैं। लक्ष्य बिन्दु का सही सिद्धान्त स्वीकार कर लेने पर भी यदि सामर्थ्य का अभाव है तो भी सफल गमन नहीं हो सकता है । यथा किसी की चलने की शक्ति का सामर्थ्य दिन भर में दो मील चलने का है तो वह एक लाख माइल क्षेत्र पैदल जाने की हिम्मत सही मार्ग जानते हुए भी नहीं कर सकता हैं। और कोई ज्वर रोग से व्याप्त है, उस ज्वर से उसका सामर्थ अवरूद्ध है तो वह जानते देखते क्षेत्र में भी 5-15 कदम की मंजिल भी पार नहीं कर सकता।

इसी कारण वैज्ञानिक लोग मूल मान्यता के भ्रम से एंव पूर्ण सामर्थ्य के अभाव से जैन सिद्धांत कथित इन क्षेत्रों स्थलों को नहीं पा सकते हैं। एवं जैन सिद्धान्तों के अनुसार सही जानने मानने वाले भी सामर्थ्य के अभाव में नहीं जा सकते ।

किन्तु यदि किसी को तप संयम या जप मंत्र से कोई अलौकिक शक्ति उत्पन्न हो तो वह जा सकता है अथवा देव स्मरण कर उसे बुलाकर उसके सहयोग से इन दूरस्थ अति दूरस्थ स्थलों पर भी मानव क्षण भर में जा सकता हैं।

प्रश्न– क्या वैज्ञानिक लोग इतने मूर्ख माने जा सकते है कि ऐसे भ्रम को भी नहीं समझ सकते ?

उत्तर– बड़े विद्वानों के भी मंतव्य भिन्न भिन्न और विपरीत हो जाते हैं। उससे वे विद्वान सभी मूर्ख नहीं कहे जा सकते। यह अपनी चिंतन दृष्टि होती हैं। आज अनेक धर्म शास्त्र पृथ्वी को प्लेट के समान गोल एवं अति विस्तार वाली मानते है और वैज्ञानिक पृथ्वी को सीमित एवं गेंद के समान गोल बता रहे है तो क्या उन धर्म शास्त्र प्रणेताओं को सब को मूर्ख कहा जायेगा ? नहीं। ऐसा कथन करना विवेक पूर्ण नहीं हैं। अतः इस दृष्टि भ्रम, चिंतन भ्रम को, भ्रम शब्द से ही कहा जाना उपयुक्त हैं।

सार– यह हमारी पृथ्वी अत्यंत विशाल अरबों खरबों माइल की अर्थात् असंख्यात माइल की लम्बी चौड़ी गोल प्लेट के आकार से हैं। मानव एवं वैज्ञानिकों के पास साधन शक्ति अत्यल्प हैं। अतः उनको प्राप्त और ज्ञात क्षेत्र जो है वह पृथ्वी का अति अल्पमत क्षेत्र है और चक्षु सीमा भ्रम से ये पृथ्वी को आकार से गेंद जैसी गोल देख व मान रहे हैं। पहाड़ों से एवं समुद्री जलों से बाधित एवं अति दूरस्थ होने से वे जैनागमोक्त स्थलों को देख पाने एवं वहां पहुंचने में अक्षम हैं।

ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति
(सूर्य प्रज्ञप्ति-चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र)

प्रस्तावना-

प्रत्येक प्राणी इस संसार चक्र से मुक्त होना चाहता हैं। फिर भी भाग्य से ही किन्हीं किन्हीं जीवों को सही मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती हैं। तत्वार्थ सूत्र के प्रथम सूत्र में ''सम्यग ज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्ष मार्गः'' ऐसा प्रतिपादित किया हैं जिसमें सम्यग् ज्ञान की प्राथमिकता स्वीकार की गई हैं। दशवैकालिक सूत्र अध्ययन 4 में भी जीवाजीव के ज्ञान पर बल दिया गया हैं।

जैन शास्त्रों में निर्वाण साधना के साधकों के लिये विविध विषयों का संकलन किया गया हैं। जिससे उन्हें आत्मा स्वरूप का और आस पास रहे पुद्गल-अजीव स्वरूप का तथा साथ ही जिस क्षेत्र में लोक में वह सुस्थित है वहां की लोक में वह सुस्थित है वहां की लोक संस्थिति का, काल चक्र का भी उसे परिज्ञान हो और उससे वह अपनी आत्मा की लोक गत विविध अवस्थाओं का ज्ञान कर सके एवं आध्यात्म चिंतन प्राप्त कर सके।

इसी सिलसिले में काल मान परिज्ञान के हेतु भूत ज्योतिषीमंडल सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, एवं ग्रह ताराओं सम्बन्धी परिज्ञान की संकलना भी जैन आगमों में की गई हैं। प्राचीन काल में गणधर कृत अंग-शास्त्रों में प्रमुख रूप में दृष्टिवाद में इस विषय की व्यवस्था उपलब्ध रही है एंव सामान्य रूप में भगवती आदि सूत्रों में भी ज्योतिषी मंडल का विषयावबोध रहा है।

सूत्र नाम- कालांतर से अंगबाह्य सूत्रों के रचना के क्रम में पूर्व शास्त्रों के आधार से इस ''ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति'' सूत्र की संकलना बहुश्रुत आचार्यो द्वारा की गई हैं। इस सूत्र की प्रारंभिक गाथाओं में नाम निर्देष पूर्वक कथन पृच्छा कही गई। इससे सुस्पष्ट है कि यह आगम ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति सूत्र अथवा ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति के नाम से ही बनाया गया हैं। ज्योतिषीमंडल के राजा अर्थात् इन्द्र रूप में चन्द्र और सूर्य दोनों को ही स्वीकार किया गया हैं। इसलिये व्यवहार एवं परिचय में कभी इसके लिये सूर्य प्रज्ञप्ति या चन्द्र प्रज्ञप्ति संज्ञक नाम भी प्रयुक्त होने लगा हैं। क्योकिं इस ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति में चंद्र एवं सूर्य दोनों से संबंधित प्रायः सभी विषयों का संकलन हैं।

किसी व्यक्ति के एक या अनेक नाम होते है वे ही कालांतर से भम्र के कारण दो भिन्न व्यक्ति मान लिये जाते हैं। और किसी दो समान नाम वाले भिन्न व्यक्तियों को भी कालांतर से भ्रम के कारण एक मान लिया जाता है, ऐसा भ्रम होना स्वाभाविक है और कई ऐतिहासिक तत्त्वों में भी ऐसा हुआ हैं।

इसी प्रकार इस आगम सम्मत सुस्पष्ट नाम वाले ज्योतिष-गण-राज-प्रज्ञप्ति सूत्र के भी सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति ऐसे नाम प्रचलित हुए हैं और इस प्रचलन के प्रवाह में इसी सूत्र में स्पष्ट उपलब्ध नाम को भुला दिया गया है और पर्याय रूप से प्रचलित नाम ने ही पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। कालांतर से सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति दो सूत्र भी माने जाने लगे हैं यह सब परंपरा, प्रवाह, लिपि काल के दोषों का प्रभाव है। वास्तव में यह सूत्र अपनी प्रारम्भिक गाथाओं में स्वयं ही बता रहा है कि मेरा नाम ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति है। न इसमें सूर्य प्रज्ञप्ति लिखा है और न चन्द्र प्रज्ञप्ति।

जब एक ही इस आगम में पूर्ण समन्वय के साथ सूर्य चन्द्र सम्बन्धी दोनों प्रकार के विषयों का सांगोपांग प्रस्तुतिकरण कर दिया गया है तो फिर इसे केवल सूर्य प्रज्ञप्ति मान कर, चन्द्र प्रज्ञप्ति का अलग अस्तित्व करना भी भ्रम मूलक है। जो भी आज

अलग अलग अस्तित्व 1-2 पृष्ट का उपलब्ध है उसमें केवल विषय परिचायक गाथाएं एवं वैसा ही पाठ मात्र है। और करीब सारा वह सूचित विषय इसी सूत्र में वर्णित ही है। अतः दो सूत्र की कल्पना एवं अस्तित्व, पर्याय नाम एवं उनके प्रचलन की परंपरा से तथा काल व्यवधान से उत्पन्न भ्रम मात्र है। अतः यह ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति एक ही सूत्र पूर्वाचार्य रचित है इसे ही चाहे सूर्य प्रज्ञप्ति कहा जाय अथवा चन्द्र प्रज्ञप्ति। इस प्रकार ये तीनों नाम एक ही सूत्र के परिचायक है।

रचना काल एवं रचनाकार– गणधर प्रभू के द्वारा रचित बारहवें दृष्टिवाद अंग में वर्णित ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान के आधार से पूर्वज्ञान धारी किन्हीं बहुश्रुत आचार्य के द्वारा इस सूत्र की रचना की गई हैं। इतिहास में उन महान सूत्रकार का नाम प्राप्त नहीं होता हैं। साथ ही इसकी रचना वीर निर्वाण के बाद कब हुई यह भी अज्ञात हैं।

सम्भवतः पूर्वों का ज्ञान जब तक निराबाध चलता है तब तक अंग बाह्य तत्त्व ज्ञान विषयक शास्त्रों के रचना की आवश्यकता उत्पन्न नहीं होती है उस ज्ञान की पूर्ति वहीं से हो जाती हैं। अतः सम्पूर्ण पूर्व विच्छेद जाने के आस पास के निकट पूर्व के काल में ऐसे तत्त्व ज्ञान वाले उपांग शास्त्रों की पृथक रूप से संकलना -रचना की जाती हैं। तदनुसार देवर्द्धि गणि (देववाचक) कृत नंदी सूत्र के पूर्व या समकाल में ऐसे इन आगमों की रचना हो गई थी और जिसे देवर्द्धिगणि द्वारा श्रुत ज्ञान की सूची में स्वीकार किया गया हैं। अतः यह जिनशासन की श्रुत निधि का एक प्रामाणिक शास्त्र हैं। कालांतर में इसका मुख्य सूत्रोक्त नाम ज्योतिषगण राज प्रज्ञप्ति गौण होकर सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति ये नाम प्रमुख बन गये हैं एवं भ्रमवश दो सूत्र माने जाने के कारण नंदी में भी दो नाम लिपि काल से संपादित किये जाने लगे हैं। इस प्रकार यह शास्त्र अज्ञात नामा आचार्य के द्वारा अज्ञात काल में रचा गया है एंव जैनागमों में प्रामाणिक रूप से स्वीकार किया गया हैं जो आज परिवर्तित नाम से प्रचलित हैं।

आकार स्वरूप– यह सूत्र एक श्रुत स्कंध रूप है इसके अध्ययन विभागों को ''पाहुड़-प्राभृत'' संज्ञा से कहा गया हैं इसके अध्ययनों के अवांतर विभाग भी है उन्हें प्राभृत-प्राभृत अर्थात् प्रति प्राभृत कहा गया हैं। यह शास्त्र पूर्ण रूप से प्रश्नोत्तर शैली में हैं। प्रश्न की एवं उत्तर की भाषा शैली भी एक विलक्षण तरीके की, ''तकार'' प्रयोग पूर्वक हैं। भाषा एवं शैली सदा रचनाकार के उस समय के मानस पर ही निर्भर करती हैं। अनेक प्रकार की भाषा, शैली एवं पद्धतियों का ज्ञाता विद्वान भी अपने तात्कालिक मानस के अनुसार ही रचना तैयार करता हैं। अतः आगम भाषा शैली से किसी प्रकार की एकांतिक कल्पना नहीं करनी चाहिये।

इस सूत्र में 20 प्राभृत हैं। कुछेक प्राभृत में प्रति प्राभृत भी हैं। दसवें प्राभृत में 22 प्रति प्राभृत है उसके बाद 11 से 20 तक में प्रति प्राभृत नहीं हैं।

गणित विषय स्वाभाविक ही अल्प व्यक्तियों को रूचिकर होता हैं। अतः इस आगम का अध्ययन प्रचलन कम ही रहा हैं। जिससे इस सूत्र के अर्थ परमार्थ के ज्ञान में और भी कठिनता अनुभव होती है। साथ ही इसके विषय का परिचय अल्प होने के कारण तथा भाषा भी विचित्र होने के कारण लिपि काल में भी कुछ स्खलनाएं होना स्वाभाविक हैं। इसी कारण वर्तमान युग के संपादक विद्वान इसे व्यवस्थित प्रकाशित करने का प्रयत्न करते हुए भी इसके पाठों के सम्बन्ध में अनेक संदेह को उपस्थित करने का प्रक्रम भी करते हैं। इतना होते हुए भी वे समस्त स्खलनाएं सुसाध्य है वे संदेह भी सामाधान संभावित हैं। जिसका अनुभव इस सारांश पुस्तिका से भी बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता हैं। जिस रूप में यह ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति सूत्र आज उपलब्ध है इसका परिमाण 2200 श्लोक प्रमाण माना गया हैं।

सूत्र विषय– इस सूत्र का विषय सीमित है वह है, ज्योतिष मंडल का गणित विषय एवं उनका परिचय अर्थात् आचार एवं धर्म कथा इसमें नहीं हैं। इस प्रसंग से इस सूत्र में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा इन पांच प्रकार के ज्योतिषी गण का वर्णन

है।सूर्य चन्द्र गति, भ्रमण मंडल, दिन रात्रि मान एवं उनकी वृद्धि हानि, प्रकाश क्षेत्र, नक्षत्रों के योग, योग काल, पांच प्रकार के संवत्सर सम्बन्धी विविध विचारणाएं, चन्द्र की कला वृद्धि, हानि, राहु विमान, इन पाचों ज्योतिषी गण की संख्या एवं सम भूमि से दूरी आदि विषयों का सांगोपांग वर्णन किया गया हैं विशेष जानकारी प्रारंभिक विषय सूचि एवं सूत्र सारांश के अध्ययन से ही हो सकेगी।

इस सूत्र में दसवें प्राभृत का सतरहवां प्रति प्राभृत जैन समाज में चर्चा का एवं संदिग्धता का विषय भूत बना हुआ है। जो आज से नहीं सेकड़ों वर्षों से एक प्रश्न चिन्ह लिये हुए हैं। जहां आकर प्रत्येक संपादक विवेचक या तो सहम जाते है या कल्पनाओं में उतर जाते हैं। इसी गति में प्रस्तुत संस्करण में भी नया चिंतन अनुभव प्रस्तुत किया गया हैं जिसे पाठक गण सतरहवें प्रति प्राभृत में देख सकते हैं। उसका तात्पर्य यह है कि मांस आदि अखाद्य पदार्थों के प्रेरक वाक्य वाले पाठों को सूत्रकार या गणधर बहुश्रुत रचनाकार नहीं रच सकते है। ये लिपिकाल में दूषित मति लोगों के द्वारा प्रक्षिप्त एवं विकृत तत्त्व हैं। अनेक सूत्रों में भी ऐसे तत्त्व कई रूप से देखे जा सकते हैं। जैन शास्त्रों के निर्माण कर्त्ता ऐसे भ्रम कारक शब्दों के प्रयोग, प्रेरणात्मक वाक्यों के रूप में किसी भी अन्य अर्थ के लक्ष्य से भी नहीं कर सकते हैं। क्योकि वैसा करना उन्हें योग्य भी नहीं है एवं उनके संयमोचित भी नहीं होता है।

सूत्र संस्करण– इस सूत्र पर आचार्य मलयगिरि की टीका उपलब्ध है जो मुद्रित है। निर्युक्तिकार श्री द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ने भी इस सूत्र पर निर्युक्ति व्याख्या की थी, ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं। आचार्य घासीलालजी म.सा. ने अपनी समस्त आगमों की टीका करने की प्रतिज्ञा के अनुसार इस सूत्र की भी टीका लिखी है। जो मुद्रित हिन्दी संस्कृत गुजराती तीनों भाषा में उपलब्ध है। इसके पूर्व आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म.सा. ने 32 आगमों का हिन्दी अनुवाद के साथ मुद्रण करवाया था। उसमें भी अनुवाद सहित एवं आवश्यक गणित विस्तार सहित यह सूत्र मुद्रित है। वर्तमान युग की आधुनिक आकर्षक पद्धति के संस्करण आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से मुद्रित हुए हैं। जो सूत्रों, अर्थ, विवेचन, टिप्पणों आदि से सुसज्जित है। 32 ही सूत्रों का ऐसा सर्वांगीण मुद्रण पूर्ण हो चुका है जो जैन समाज के लिये असांप्रदायिक रुप की अनुपम उपलब्धि है। उस श्रंखला में इस सूत्र का संपादन पूज्य पं. रत्न श्री कन्हैयालालजी म.सा. ''कमल'' ने अर्थ परमार्थ टिप्पणों के साथ अथक प्रयत्न से किया, किन्तु कुछ संकुचित संस्कारों की प्रमुखता से उस समिति ने इस सूत्र को केवल मूल पाठ रूप में ही मुद्रित करवाया है। फिर भी उसमें टिप्पण एवं परिशिष्टों के द्वारा सूत्र का अल्पांश स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत संस्करण– यह सभी संस्करणों विचारों एवं कल्पनाओं को समक्ष रखते हुए यथा प्रसंग आवश्यक समाधनों से संयुक्त करके यह प्रस्तुत सारांश तैयार किया गया है। जो पाठकों की सेवा में सरल भाषा में आगम सारांश के रूप में प्रस्तुत हे। जिसका मूल्यांकन पाठक गण सामान्य स्वाध्यायी एवं विद्वान मनिषी स्वयं ही कर सकेंगे।

संयोजन

विमल कुमार नवलखा

विषय सूचि

प्राभृत		प्रति प्राभृत
1	1.	नक्षत्र मास के दिन, मुहुर्त्त परिक्रमा एवं मंडल परिमाण छोटे बड़े दिन का परिमाण, दिन की घट-वध (हानि-वृद्धि) हानि-वृद्धि का कारण वर्ष प्रारंभ वर्ष प्रारंभ छोटा बड़ा दिन या रात्रि कब एवं कितनी बार
-	2.	अर्द्ध मंडल गमन एवं मंडलांतर प्रवेश किस दिन, कौन सा सूर्य, कौन सा अर्द्ध मंडल चले ?
-	3.	दो सूर्यों के नाम चलित अचलित मार्ग गमन पुनः चलित में स्वपर चलित का एंव अचलित का गणित।
-	4.	दोनों सूर्यो का अंतर एवं उसकी हानि वृद्धि, गणित मतांतर पांच।
-	5.	सूर्य भ्रमण के कुल क्षेत्र का परिमाण एवं 5 मान्यताएं।
-	6.	विकम्पन परिमाण एवं सात मान्यताएं।
-	7.	सूर्य चन्द्र विमान का संस्थान एवं सात मिथ्या मान्याताएं
-	8.	मंडलों का विष्कंभ एवं परिधि। हानि वृद्धि का गणित तीन मान्यताएं
2	1.	दोनों सूर्यों का भ्रमण स्वरूप एवं सूर्योदय। आठ मान्यताएं।
-	2.	कर्ण कला और भेद घात गति से संक्रमण।
-	3	सूर्यकी मंडलों में मुहर्त्त गति एवं चक्षु स्पर्श।
		चक्षु स्पर्श की घट-वध गणित। चार मान्यताएं।
3	-	प्रकाश क्षेत्रांश एवं अंधकार क्षेत्रांश। 12 मान्यताएं।
4	-	दो सूर्य दो चन्द्र की अवस्थिति का संस्थान। 16मान्यताएं।
		ताप क्षेत्र एवं अंधकार क्षेत्र का संस्थान एवं बाहा आदि का माप।
5	-	ताप क्षेत्र की रूकावट किससे ? एवं 20 मान्यताएं।
6	-	प्रकाश संस्थिति में घट-वध। 25 मान्यताएं।
7	-	पुद्गलों द्वारा लेश्या वरण-प्रकाश ग्रहण। 20 मान्यताएं।
8	-	चार विभागों में सूर्योदय सूर्यास्त एवं ऋतु प्रारंभ। तीन मान्यताएं।
9	-	छाया प्रमाण एवं उससे दिन का भाग बीतने का ज्ञान
	-	ताप लेश्या द्वारा अंतर परंपर पुद्गलों को आतापित करना।
	-	छाया के 25 एवं आठ आकार
	-	छाया प्रमाण में संपादन कर्त्ता का भ्रम
10	1.	नक्षत्रों का क्रम। पांच मान्यताएं।
-	2.	नक्षत्रों का चन्द्र सूर्य से संयोग काल।
-	3.	नक्षत्र चन्द्र संयोग का प्रारंभ काल समाप्ति काल।

-	4.	प्रत्येक नक्षत्र का क्रम युक्त योग एवं फिर दूसरे को समर्पण।
-	5.	28नक्षत्रों के कुल, उपकुल का बोध।
-	6.	पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिन नक्षत्र योग।
-	7.	महीना और अमावस पूनम का नक्षत्र योग सम्बन्ध।
-	8.	नक्षत्रों का आकार
-	9.	नक्षत्रों के तारों की (विमानों की) संख्या।
-	10.	रात्रि वाहक नक्षत्र एवं उनकी रात्रि वहन संख्या।
-	11.	प्रमर्द योग पर्यन्त पांच प्रकार के चन्द्र नक्षत्र योग।
-	-	चन्द्र नक्षत्र की मंडल संख्या एवं पारस्परिक सीध।
-	-	सूर्य चन्द्र नक्षत्र की सीध समवतार।
-	-	सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र के मंडलों की अपनी दूरी।
-	12-14	नक्षत्र स्वामी देवता के, 30 मुहुर्त्तों के और रात्रि-दिवसों के नाम।
-	15.	पन्द्रह तिथियों के 5-5 नाम।
-	16.	नक्षत्रों के गौत्र और स्वामी देव के नाम का चार्ट।
-	17.	यहां परिशिष्ट देखें।
-	18.	एक युग में चन्द्र सूर्य के साथ नक्षत्र योग।
-	19.	महीनों लौकिक लोकोत्तरिक नाम।
-	20.	पांच प्रकार के संवत्सर-प्रमाण-शनिश्चर संवत्सर आदि।
-	21.	नक्षत्रों में यात्रा निर्देश। पांच मतांतर।
-	22.	नक्षत्रों का सीमा विष्कंभ गणित।
-	-	नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य के पूर्णिमा अमावस्या में अलग और सम्मिलित योग एवं मुहुर्त्तविशेष।
-	-	एक नाम वाले दो नक्षत्रों के साथ चन्द्र सूर्य से योगकाल का अंतर।
11.	-	चन्द्र एवं अभिवर्द्धित संवत्सर के तथा युग के प्रारम्भ एवं समाप्ति में नक्षत्र योग।
12.	-	पांच संवत्सरों के दिन एवं मुहूर्त का परिमाण।
	-	युग, नोयुग के दिन एवं मुहूर्त का परिमाण।
	-	पांच संवत्सरों के आदि और अंत का मिलान वर्षों में।
	-	सूर्य संवत्सर के एवं अयन प्रारम्भ के योग, सूर्य चन्द्र की आवृत्तियां(अयन)।
	-	सूर्य आवृत्ति के प्रथम दिन की तिथी।
	-	छत्रातिछत्र योग एवं 12 योग संस्थान प्रकार।
13.	-	चन्द्र की हानि वृद्धि, चन्द्र के अयन
	-	दक्षिण उत्तर के अर्द्ध मंडल, युग की समाप्ति मंडल
	-	चन्द्र के चलित अचलित मार्ग; स्व, पर, उभय चलित मार्ग।

14. - चन्द्र का प्रकाश अंधकार, हानि वृद्धि
15. - चन्द्र सूर्य नक्षत्र की मंडल विभाग रूप मुहूर्त्त गति।
- पांच प्रकार के महीनों में चन्द्र सूर्य नक्षत्र के मंडल पार करने का माप
16. - चन्द्र सूर्य लक्षण।
17. - चयोपचय।
18. - सम भूमि से ऊंचाई। 25 मान्यताएं।
- चन्द्र सूर्य एवं तारा की तुल्य और अल्प ऋद्धि स्थिति से।
- दोनों का परिवार, मेरू एवं लोकांत से ज्योतिष मंडल की दूरी।
- नक्षेत्रों में सबसे ऊपर नीचे अंदर बाहर के नक्षत्र।
- ज्योतिषी विमानों का आकार, लम्बाई चौड़ाई ऊंचाई।
- देवों देवियों की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति। वाहन देव।
- अल्प बहुत्व।
19. - द्वीप समुद्रों में सूर्य चन्द्र आदि की संख्या।
- ऊंचाई मे स्थिरता एवं मंडल मे स्थिरता अस्थिरता।
- सुख दुःख निमित्तक चाल विशेष।
- ताप क्षेत्र प्रकाश क्षेत्र, चल, अचल ज्योतिषी।
- द्वीप समुद्रों में सूर्य चन्द्र जानने की विधि।
20. - चन्द्र, सूर्य एवं राहु के सम्बन्ध में लौकिक कथन।
- चन्द्र विमान का नाम मृगांक। सूर्य विमान का नाम आदित्य।
- ''आदित्य'' का व्युत्पति अर्थ एवं उसके प्रमुखता की विचारणा पर टिप्पण।
- ज्योतिषी के भोग सुख।
- ग्रहों के भेद 88एवं नाम।
- उपसंहार सूत्र- अध्ययन विवेक पर टिप्पण।

चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र-एक विचारणा

परिशिष्ट-1 ''गणित विभाग''

परिशिष्ट-2 नक्षत्र तत्त्व विचार।

परिशिष्ट-3 ज्योतिष मंडल- विज्ञान एवं आगम की दृष्टि में

परिशिष्ट-4 सतरहवें प्रति प्राभृत के निर्णयार्थ प्रश्नोतर

परिशिष्ट-5 वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण में आगम वाङमय

विशेष वार्त्ता- पहले दूसरे और दसवें इन तीन प्राभृत में क्रमशः 8एवं 3 एवं 22 प्रति प्राभृत है। शेष में प्रति प्राभृत नहीं है। मूल पाठ में इनके लिये पाहुड़ और पाहुड़ शब्द प्रयोग किया गया है।

मतांतर संग्रह- पहले प्राभृत के चौथे से आठवें तक के प्रति प्राभृत में मतांतर की प्ररूपणा की गई है। दूसरे से आठवें प्राभृत तक सभी में मतांतर प्ररूपण है। दसवें प्राभृत के पहले और इक्कीसवें प्रति प्राभृत में मतांतर कथन है। अठारहवें प्राभृत में भी मान्यताओं का कथन है। शेष प्राभृतों एवं प्रति प्राभृतों में मतांतर रहित केवल जिनानुमत तत्त्वों का कथन है।

विशेष- कुल 20 पाहुड़ है। पहले पाहुड़ में 8, दूसरे पाहुड़ में 3 और दसवें पाहुड़ में 22 प्रति पाहुड़ है यों कुल प्रति पाहुड़ 33 है। पड़िवत्ति कुल 341 है। यथा-

पाहुड	प्रति पाहुड	पडिवत्ति	पाहुड	प्रति पाहुड	पडिवत्ति
1	4	6	8	-	3
1	5	5	9	-	3
1	6	7	10	9	5
1	7	8	10	21	5
1	8	3	17	-	25
2	1	8	18	-	25
2	2	2	19	-	12
2	3	4	19	-	25
3	-	12	19	-	2
4	-	16	19	-	96
5	-	20	20	-	2
6	-	25	20	-	2
7	-		20		**योग = 341**

ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति सूत्र
(सूर्य प्रज्ञप्ति-चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र)
पहला प्राभृत

पहले प्राभृत का पहला प्रति प्राभृत-

1. एक नक्षत्र मास में- $819\frac{27}{67}$ मुहूर्त्त होते हैं। जब कि एक दिन रात 30 मुहूर्त्त का होता है। नक्षत्र मास के दिन जानने के लिये इन मुहूर्तों की संख्या में 30 का भाग देने पर $27\frac{21}{67}$ दिन आते हैं। अर्थात् साधिक सतावीस दिन का नक्षत्र मास होता है। (यह सूत्र लिपि काल में सूत्र के बीच में से कहीं से हटकर भूल से यहां प्रारम्भ में लिखा गया है ऐसा विषय सूचक गाथाओं से और प्रकरण से स्पष्ट होता है)।

परिक्रमा परिमाण- सूर्य के चलने के मंडल- गोलाकार मार्ग 184 है। जब सूर्य सर्व आभ्यंतर अर्थात् पहले मंडल में हैं और वहां से चलकर दूसरे मंडल में परिक्रमा करके उस स्थान की सीध में पहुंचता है तो उसका यह परिक्रमा रूप प्रथम चक्कर होता है, तीसरे मंडल में पहुंचने पर दो चक्कर पूरे होते हैं, यों 184 वें मंडल में पहुंचने पर 183 चक्कर पूरे होते हैं।

सर्व बाह्य 184 वें मंडल के उस स्थान से सूर्य पुनः लौटता है अर्थात् अंदर की तरफ चलकर 183 वें मंडल में उस स्थान की सीध में पहुंचता है तब एक चक्कर होता है। जब 182 वें मंडल में पहुंचता है तो दो चक्कर पूर्ण होते हैं। यों 183 चक्कर पूरे होने पर वह प्रथम मंडल के उस सीध वाले ध्रुव स्थान पर पहुंच जाता है। इस प्रकार प्रथम मंडल से चलकर 184 वें मंडल में जाकर पुनः प्रथम मंडल में आने पर सूर्य की एक परिक्रमा 183 + 183 = 366 दिन रात में पूरी होती है।

पहले और अंतिम इन दो मंडलों में सूर्य एक-एक चक्कर लगाता है अर्थात् इनका स्पर्श या इन दोनों मार्गों पर गमन एक बार करता है शेष बीच के 182 मंडलों-मार्गों पर दो दो बार गमन करता हे। अतः 182×2 + 2 = 366 चक्कर में 366 दिन रात हो जाते हैं। ऐसी इस एक परिक्रमा से एक सूर्य संवत्सर अर्थात् एक वर्ष पूरा होता है।

(**टिप्पण -** यह सूर्य के मंडल की परिक्रमा का मार्ग जलेबी के आकार का होता है यदि कोई अंदर के घेराव से प्रारम्भ कर बाहर ले जाकर जलेबी पूर्ण करता है वैसी गति से सूर्य अंदर से बाहर जाता है। और यदि कोई कुशल व्यक्ति बाहर के स्थान से जलेबी को प्रारम्भ कर भीतरी स्थान पर लाकर पूर्ण करे उसके समान सूर्य बाहर से अंदर आते हुए मार्ग गमन करता है। दोनों आकारों में घुमाव एक दिशावर्ती ही होती है। अर्थात् सूर्य सदा पूर्व से दक्षिण पश्चिम उत्तर की तरफ ही बढ़ता है अतः बाहर जाने के 183 मार्ग और अंदर आने के 183 मार्गों का स्थान कुछ अलग अलग होता है।)

छोटे बड़े दिन का परिमाण- नये वर्ष के प्रारम्भ में सूर्य जब प्रथम मंडल के अंतिम ध्रुव स्थान से चलता है तब वह पहला दिन 18मुहुर्त का होता है और रात्रि 12 मुहुर्त्त की होती है अर्थात् सबसे बड़ा दिन होता है। इस दिन से वर्ष प्रारंभ होता है। इस प्रथम दिन के प्रथम चक्कर में सूर्य दूसरे मंडल में चला जाता है।

घटवध- इस प्रकार क्रमशः अंतिम मंडल में चलकर उसके अंतिम ध्रुव स्थान में 6 महिनों से 183 दिन में पहुंचता है। तब 12 मुहुर्त्त का दिन और 18मुहूर्त की रात्रि होती है। इस तरह 183 दिन में 6 मुहूर्त दिन घटता है और रात्रि बढ़ती है। अतः एक दिन में $\frac{6}{183}$ मुहुर्त = $\frac{2}{61}$ मुहूर्त दिन घटता है और रात्रि बढ़ती है।

हानि वृद्धि का कारण- जब सूर्य प्रथम मंडल से दूसरे तीसरे मंडल मे जाता है त्यों त्यों वह दूर होता है। इससे उसका प्रकाश क्षेत्र घटता जाता है। इस कारण $\frac{2}{61}$ मुहुर्त जितना दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक में घट जाता है और रात्रि बढ़ जाती है। इस

प्रकार सूर्य के बाहरी मंडलों में जाते समय दिन घटते हैं रात्रि बढ़ती है और जब बाहर के मंडल से भीतरी मंडलों में सूर्य आता है अतः तब 6 महिनों तक दिन बढ़ते हैं और रात्रियां घटती है अर्थात् सबसे छोटे दिन में (शरद् ऋतु में) सूर्य बाहरी मंडल में अर्थात् 184 वें मंडल में रहता है और सबसे बड़े दिन में गर्मी में सूर्य सर्व आभ्यंतर पहले मंडल में रहता है।

वर्ष प्रारम्भ– इस हिसाब से वर्ष का प्रारम्भ प्रथम मंडल से अर्थात् श्रावण वदी एकम से होता है यह अनादि प्राकृतिक सिद्धांत है। किन्तु लोक में अपने अपने आशयों की प्रमुखता से कोई दीपावली से वर्ष प्रारम्भ मानते हैं, कोई चैत्र से, कभी मार्च में वर्ष की समाप्ति कर 1 अप्रैल से प्रारम्भ करते हैं। यह लौकिक प्रचलन की अपनी अपनी अपेक्षा मात्र है। उसे सैद्धान्तिक मानने का भ्रम नहीं करना चाहिए। सिद्धांत एवं प्रकृति से वर्ष का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम से अर्थात् सबसे बड़े दिन के अनंतर दिन से होता है।

छोटा बड़ा दिन कब और कितनी बार– सबसे बड़ा दिन वर्ष का अंतिम दिन कहा गया है नये वर्ष का पहला दिन $\frac{2}{61}$ भाग कम 18 मुहूर्त का होता है। प्रथम 6 मास का अंतिम दिन 184 वें मंडल में सबसे छोटा दिन होता है। प्रथम 6मास का अंतिम दिन पहले मंडल से सबसे बड़ा दिन होता है। सबसे बड़ा दिन 18 मुहूर्त का वर्ष में एक बार होता है और सबसे छोटा दिन भी 12 मुहूर्त का वर्ष में एक बार होता है। शेष सभी मध्यम दिन वर्ष में दो बार होते हैं क्योंकि प्रथम और अंतिम मंडल में सूर्य के एक बार चलने से ये दोनों छोटे और बड़े दिन एक बार होते हैं। शेष मंडलों में आते समय और जाते समय सूर्य के दो बार चलने से वे मध्यम सभी दिन दो-दो बार होते हैं।

रात्रि कितनी बार– दिन के समान ही छोटी और बड़ी रात्रि 12 और 18मुहूर्त की प्रथम और अंतिम मंडल में एक एक बार होती है और शेष मध्यम रात्रियां बीच के मंडलों में होने से दो-दो बार होती है।

दूसरा प्रति प्राभृत–

अर्द्ध मंडल गति– इस जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं, दोनों मिलकर एक दिन में एक मंडल पूरा करते हैं। संवत्सर के प्रारम्भ समय में एक सूर्य पश्चिम दिशा के अंत में होता है अर्थात वहां से भ्रमण प्रारम्भ करता है। दूसरा सूर्य पूर्व दिशा के अंत में होता है वह वहां से भ्रमण प्रारम्भ करता है।

पहले ही दिन 30 मुहूर्त में ये दोनों सूर्य दूसरे मंडल को पार करते हैं अर्थात् पश्चिम में स्थित ऐरावतीय सूर्य उत्तरी अर्द्ध मंडल में चल कर पूर्व दिशा के अंत में आकर दूसरे मंडल के अंतिम स्थान पहुंचता है जबकि पूर्व दिशा के अंत में रहा भारतीय सूर्य दक्षिणी अर्द्ध मंडल में चलकर पश्चिम दिशा के अंत में दूसरे मंडल के अंतिम स्थान में पहुंचता है। इस तरह दोनों सूर्य एक दिन मे आधा आधा मंडल पार करके फिर अगले दिन के प्रारम्भ में तीसरे आदि मंडल में प्रवेश करते हैं।

इस प्रकार दूसरे दिन में दोनों सूर्य मिलकर आधा आधा तीसरा मंडल पार करते हैं। तब पूर्वी सूर्य पुनः अपने प्रारम्भ किये स्थान की सीध में पहुँच जाता है। इस तरह पश्चिमी सूर्य ने दूसरा मंडल आधा उत्तरी विभाग का पार किया और तीसरा मंडल आधा दक्षिणी विभाग का पार किया। जब कि पूर्वी सूर्य ने दूसरा आधा मंडल दक्षिणी विभाग का पार किया और तीसरा आधा मंडल उत्तरी विभाग का पार किया। इस तरह आधे आधे मंडल आमने सामने के दक्षिणी उत्तरी विभागों के दोनों सूर्य मिलकर पार करके स्वयं तो आधे चक्कर के बाद ही अगले मंडल में प्रवेश कर जाते हैं।

किस दिन किस मंडल का कौन सा विभाग पार करे- वर्ष में पहले दिन पश्चिमी (ऐरावतीय) सूर्य दूसरे मंडल का उत्तरी विभाग पार करता है और छट्ठे महिने के अंतिम (183वें दिन) 184 वें मंडल के भी आधे उत्तरी विभाग को पार करता है। जब कि पूर्वी (भारतीय) सूर्य पहले दिन दूसरे मंडल का दक्षिणी आधा विभाग पार करता है और अंतिम 183 वें दिन 184 में मडल का दक्षिणी आधा विभाग पार करता है।

अंदर प्रवेश करते हुए दूसरे छः महीने के प्रथम दिन वह पश्चिमी (ऐरावतीय) सूर्य 183 वें मंडल के दक्षिणी विभाग को पार करता है। और वर्ष के अंतिम दिन पहले मंडल के दक्षिणी विभाग को पार कर अपने पश्चिमी स्थान पर पुनः पहुंच जाता है। इसी प्रकार पूर्वी (भारतीय) सूर्य भी दूसरे छः महिने के प्रारम्भ में 183 वें मंडल के उत्तरी विभाग को पार करता है और वर्ष कें अंतिम दिन पहले मंडल के उत्तरी विभाग को पार कर अपने पूर्वी स्थान पर पुनः पहुँच जाता है। इस प्रकार ये दोनों सूर्य मिलकर आधे आधे मंडल पार करते हुए एक वर्ष में एक परिक्रमा पूर्ण कर पुनः अपने-अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं।

तीसरा प्रति प्राभृत-

दो सूर्य- जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं- 1. भारतीय सूर्य 2. ऐरावतीय सूर्य। जो वर्ष के प्रारम्भ दिन पश्चिम केन्द्र के स्थान से रवाना होकर उत्तरीय ऐरावत क्षेत्र की तरफ चलता है उसे ऐरावतीय सूर्य कहा गया है। एवं जो सूर्य वर्ष के प्रारम्भ दिन पूर्वीय केन्द्र स्थान से रवाना होकर दक्षिणीय भरत क्षेत्र की तरफ चलता है उसे भारतीय सूर्य कहा गया है।

चलित अचलित मार्ग- अंदर से बाहर जाते हुए दोनों सूर्य अपने अपने मार्ग से अर्द्ध अर्द्ध मंडल पार करते हैं। किसी भी चलित मार्ग को दोनों सूर्य स्पर्श नहीं करते हैं अर्थात् स्वतंत्र मार्ग से ही वे आगे से आगे के मंडल में पहुंचते रहते हैं किसी के भी अंदर आते समय चले हुए मार्ग में नहीं चलते हैं। किन्तु अंदर आते समय पहले के बाहर आते समय चले हुए मार्गो का पुनः काटते हुए उन मार्गो मे अवश्य चलते हैं। इस अपेक्षा से ये दोनों सूर्य अंदर आते समय पूर्व मे चले हुए स्वयं के मार्गो को और अन्य के चले हुए मार्गो को काटते हुए उन पर कुछ चलते हैं।

एक जगह पुराने मार्ग को काटते हुए ये सूर्य अपने मंडलके 124 वें भाग में से 18भाग जितने चले हुए क्षेत्र पर चलते हैं। फिर उसे छोड़ कर अलग (अंदर की बाजू में) सरक जाते हैं।

पुनः चलित स्थान का निर्देष- किस जगह स्वयं के चले स्थान पर चलते है और किस जगह अन्य के चले स्थान पर चलते हैं इसे चार्ट से देखें-

भारतीय सूर्य			
जम्बूद्वीप के	दक्षिणपूर्वी भाग में	92 मंडल में	स्व चलित पर
जम्बूद्वीप के	उत्तरपश्चिमी भाग में	91 मंडल में	स्व चलित पर
जम्बूद्वीप के	उत्तरपूर्वी भाग में	92 मंडल में	पर चलित पर
जम्बूद्वीप के	दक्षिण पश्चिमी भाग में	91 मंडल में	पर चलित पर
ऐरावतीय सूर्य			
जम्बूद्वीप के	उत्तरपश्चिमी भाग में	92 मंडल में	स्व चलित पर
जम्बूद्वीप के	दक्षिणपूर्वी भाग में	91 मंडल में	स्व चलित पर
जम्बूद्वीप के	दक्षिण पश्चिमी भाग में	92 मंडल में	पर चलित पर
जम्बूद्वीप के	उत्तरपूर्वी भाग में	91 मंडल में	पर चलित पर

पुनः चलित क्षेत्र का गणित– दोनों सूर्य 183 मंडल को 732 जगह काटते हुए उन पर पुनः चलते हैं तो एक मंडल को वे 732 ÷ 183 = 4 जगह काटते हैं। एक एक मंडल को वे दोनों सूर्य एक दिन में आधा-आधा मंडल करके पार करते अतः दो मंडल पार होने पर वे दोनों सूर्य अपने स्वतंत्र एक एक पूरे घेरे में 4 + 4 = 8 जगह काटते है। एक जगह काटते समय वे मंडल के 18/124 भाग पर पुनः चलते है तो 8 जगह काटते हुए 18/124 × 8 = 144/124 अर्थात् वे दोनों सूर्य एक एक चक्कर पूरा करने में 144 भागों का पुनः स्पर्श करते हैं। यह दो मंडल में दो सूर्यों द्वारा पुनः स्पर्शित क्षेत्र माना है। अतः एक मंडल में दो सूर्यों द्वारा स्पर्शित क्षेत्रमान 36/124 भाग होता है। इसमें भी एक जगह स्वचलित क्षेत्र पर पुनः चलता है और एक जगह पर चलित पर पुनः चलता है।

इस प्रकार सूर्य एक मंडल में जम्बूद्वीप की परिधि के एक चतुर्थ विभाग में एक बार स्वचलित मार्ग पर 18/124वां भाग चलता है। और उसी मंडल मे उसी दिन दूसरे (अगले) चतुर्थ विभाग में एक बार परचलित मार्ग पर 18/124वां भाग चलता है। अतः प्रतिदिन प्रति मंडल के कुल 36/124वां भाग चले हुए पर चलता है। अतः दोनों सूर्य मिल कर एक मंडल के 72/124 भाग चलित पर चलते हैं एवं अवशेष 52/124 भाग अचलित (नये) मार्ग पर चलते हैं और एक सूर्य 26/124 भाग अचलित मार्ग पर और 36/124 चलित मार्ग पर प्रत्येक मंडल में चलता है।

चौथा प्रति पाहुड–

दोनों सूर्यो का अंतर– अंदर से बाहर जाते और बाहर से अंदर आते समय दोनों सूर्यों का आपस का अंतर क्रमशः $5\frac{35}{31}$ योजन बढ़ता है और घटता है। **यथा–**

दोनों सूर्यो का अंतर	पहले मंडल में	दूसरे मंडल में	तीसरे मंडल में
अंदर से बाहर जाते समय	99640 यो.	$99645\frac{35}{61}$	$99651\frac{9}{61}$
बाहर से अंदर आते समय	100660 यो.	$100654\frac{26}{61}$	$100648\frac{52}{61}$

अंतर की हानि वृद्धि– यह (चार्ट गत) दोनों सूर्यों का अंतर है। प्रत्येक मंडल में आपस में दो-दो योजन दूर होते दूर होते हुए दोनों सूर्य गति करते हैं। दोनों सूर्य आमने सामने प्रतिपक्ष दिशा में सदा चलते हैं। सूर्य विमान 48/61 योजन के हैं उतना क्षेत्र दो योजन के अतिरिक्त व्याप्त करते हैं। अतः एक दिशा में एक सूर्य $2\frac{48}{61}$ योजन प्रति मंडल में आगे बढ़ता है, दूसरा सूर्य भी दूसरी दिशा इतना ही आगे बढ़ता है। इसलिये दोनों सूर्यों की आपस की दूरी प्रति मंडल में $2\frac{48}{61} \times 2 = 5\frac{35}{61}$ योजन बढ़ती घटती है।

वृद्धि का गणित– इस प्रकार- 1. प्रत्येक मंडल का आपस का अंतर 2-2 योजन का होता है। 2. प्रत्येक मंडल में प्रत्येक सूर्य $2\frac{48}{31}$ योजन आगे बढ़ता है। 3. प्रत्येक मंडल में दोनों सूर्यों को आपस की दूरी $5\frac{35}{61}$ योजन बढ़ती है। 4. छः महीनों में एक सूर्य $2\frac{48}{61} \times 183 = 510$ योजन दूरी बढ़ाता है। दोनों सूर्य मिलकर $5\frac{35}{61} \times 183 = 1020$ योजन दूरी बढ़ाते है। जिससे पहले मंडल में रहा 99640 योजन का आपसी अंतर बढ़कर 99640 + 1020 = 100660 योजन हो जाता है। इसलिये दोनों सूर्यों का आपसी अंतर में सदा परिवर्तन होता रहता है, एक सरीखा अंतर स्थिर नहीं रहता है।

मिथ्या मान्यताएँ– इस विषय में जगत में अनेक भ्रम पूर्ण मिथ्या मान्यताएं भी चलती रहती है। वे इस प्रकार है- 1. एक हजार एक सौ ततीस- 1133 योजन। 2. 1134 योजन, 3. 1135 योजन दोनों सूर्यों का आपस में अंतर है। 4. एक द्वीप समुद्र जितना आपस में अंतर है। 5. दो द्वीप दो समुद्र जितना अंतर है। 6. तीन द्वीप समुद्र जितना अंतर है।

पांचवा प्रति प्राभृत–

सूर्य का भ्रमण क्षेत्र द्वीप समुद्र में– एक दिशा में सूर्य कुल 510 योजन क्षेत्र में अंदर से बाहर और बाहर से अंदर आते जाते हुए मेरू पर्वत के प्रदक्षिणा करता है। इस 510 योजन में 180 योजन क्षेत्र जम्बूद्वीप का है और 330 योजन क्षेत्र लवण समुद्र का है। अर्थात् दोनों सूर्य प्रथम मंडल में होते हैं जब 180 योजन जम्बूद्वीप के अंदर रहते हैं और जब बाह्य मंडल में होते हैं तब 330 योजन लवण समुद्र के क्षेत्र में होते हैं।

मिथ्या मान्यताएं– इस विषय में भी जगत में अनेक भ्रम पूर्ण मिथ्या मान्यताएं चलती है यथा- 1. 1133 योजन द्वीप और 1133 योजन समुद्र के क्षेत्र में सूर्य गमनागमन करते हैं। 2. एक एक योजन अधिक करता है अर्थात् 1134 योजन । 3. एक एक योजन अधिक अर्थात् 1135 योजन द्वीप समुद्र के क्षेत्र में सूर्य गमनागमन करते हैं। 4. आधा द्वीप समुद्र 5. किंचित भी द्वीप समुद्र का अवगाहन नहीं करता है।

छट्ठा प्रति प्राभृत–

प्रतिदिन विकम्पन्न- सूर्य एक दिन में $2\frac{48}{61}$ योजन क्षेत्र विकम्पन्न करता है अर्थात् आगे सरक जाता है यो 183 दिन (6मास) में 510 योजन आगे सरक जाता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण चौथे प्रति प्राभृत में किया जा चुका है वहां देखे।

मिथ्या मान्यताएं– इस विषय में जगत में निम्न भ्रमपूर्ण मिथ्या मान्यताएं चलती है

यथा– 1. प्रतिदिन विकंपन $2\frac{41}{183}$, 1/2 योजन होता है। 2. प्रतिदिन के $2\frac{1}{2}$, 1/2 योजन विकंपन होता हैं। 3. प्रतिदिन $2\frac{2}{3}$ योजन विकम्पन्न होता है। 4. प्रतिदिन 3-46 $\frac{1}{2}$/183 योजन विकम्पन्न होता हैं। 5. प्रतिदिन $3\frac{1}{2}$ योजन विकम्पन्न होता हैं। 6. प्रतिदिन 3= योजन विकम्पन्न होता हैं। 7. प्रतिदिन 4-5$\frac{1}{2}$/183 योजन विकम्पन्न होता हैं।

सातवां प्रति प्राभृत–

सूर्य चन्द्र विमान संस्थान– सूर्य चन्द्र के विमान छत्राकार है, अर्द्ध कबीठ फल के आकार वाले है अर्थात् वे नीचे से समतल ऊपर से गोल एंव चौतरफ से भी गोलाई लिये हुए हैं।

मिथ्या मान्यता– इस विषय में भ्रम पूर्ण मान्यता इस प्रकार हैं- 1. सम चौरस 2. विषम चौरस 3. सम चोकोण 4. विषम चोकोण 5. समचक्रवाल 6. विषम चक्रवाल 7. अर्द्ध चक्रवाल। इस प्रकार सात मिथ्या मान्यता हैं।

सर्वज्ञोक्त उक्त छत्राकार संस्थान मानने वाले भी लोग जगत में है वे जिन मत से सम्मत है मिथ्या नहीं हैं।

आठवां प्रति प्राभृत–

मंडलों का विष्कंभ एवं परिधि– सूर्य के प्रत्येक मंडल (मार्ग) की चौड़ाई 48/61 योजन की होती है क्योकिं सूर्य विमान की लम्बाई चौड़ाई इतनी ही हैं। मंडल-मंडल में अंतर 2-2 योजन होता हैं। पूरे मंडल का विष्कंभ एक दिशा में $2\frac{48}{61}$ योजन बढ़ता हैं। दोनों दिशा में मिला कर $5\frac{35}{61}$ योजन कुल विष्कंभ प्रतिमंडल में (एक मंडल से अगले मंडल का) बढ़ जाता हैं। तीन गुणी साधिक परिधि हुआ करती हैं- $5\frac{35}{61} \times 3$ साधिक (3, 16 साधिक) = $17\frac{38}{61}$ योजन प्रति मंडल में परिधि बढ़ती है। जिसे ही स्थूल दृष्टि से 18 योजन परिधि बढ़ना कहा जाता है वास्तव में देशोन 18योजन परिधि बढ़ती है।

सर्व आभ्यंतर मंडल जंबूद्वीप के एक किनारे से 180 योजन अंदर है दूसरे किनारे से भी 180 योजन अंदर है यों कुल एक लाख योजन के आयाम विष्कंभ (व्यास) में से 360 योजन कम होते हैं इस साधिक तीन गुणा करने पर 1138योजन होता

है। जंबूद्वीप की परिधि में से इतने योजन कम करने पर अर्थात् 316227-1138 = 315089 योजन होता है। यह पहले मंडल की परिधि है। इस परिधि में प्रति मंडल में देशोन 18योजन जोड़ने पर अगले मंडल की परिधि निकल जाती है।

मंडल विष्कंभ परिधि एवं स्थूल कथन चार्ट

	विष्कंभ	परिधि	स्थूल परिधि
पहला मंडल	99640	315089 योजन साधिक	315089 योजन
दूसरा मंडल	$99645\frac{35}{61}$	$315106\ \frac{38}{61}$	315107 योजन
तीसरा मंडल	$99651\frac{9}{61}$	$315124\ \frac{25}{61}$	315125 योजन
अंतिम मंडल	100660	318315 योजन साधिक	318315 योजन
अंतिम से दूसरा	$100654\frac{26}{61}$	$318217\frac{23}{61}$	318297 योजन
अंतिम से तीसरा	$100648\frac{52}{61}$	$318279\ \frac{46}{61}$	318279 योजन
जम्बूद्वीप	100000	316227 साधिक	316227 योजन
जम्बूद्वीप के अंदर सभी मंडल	180 × 2 = 360	1138 साधिक	1138 योजन
कुल 184 मंडल	510 × 2 =	3226 साधिक	3226 योजन
प्रति मंडल वृद्धि	$5\ \frac{35}{61}$	$17\ \frac{38}{61}$	18 योजन

सूर्य का विमान जब अंतिम मंडल में चलता है तो वह 510 योजन के मंडल क्षेत्र से बाहर स्थित होता है अतः इस अपेक्षा आभ्यंतर किनारे से बाह्य अवगाहित किनारा $510\frac{48}{31}$ योजन अंतर वाला कहा गया है। आभ्यंतर और बाह्य दोनों तरफ सूर्य विमान के अवगाहन को न गिन कर केवल मंडल क्षेत्र को गिना जाय तो 48/61 × 2 = $1\frac{35}{61}$ कम करने से $510\ \frac{48}{61}$ - $1\ \frac{35}{61}$ = $509\ \frac{13}{61}$ योजन होता है।

नोट- इस विषय में भी कुछ मिथ्या लोक मान्यताएं सूत्र में बताई गई है। वे असंगत है।

दूसरा प्राभृत

पहला प्रति प्राभृत-

दोनों सूर्यों का भ्रमण स्वरूप एवं सूर्योदय- दोनों सूर्य समभूमि से 800 योजन ऊंचाई पर परिभ्रमण करते हैं। भारतीय सूर्य पूर्व दिशा पार कर जब पूर्व दक्षिण को प्राप्त होता है तब दक्षिणी क्षेत्र में सूर्योदय करता है। उस समय ऐवतीय सूर्य पश्चिम दिशा पार कर पश्चिम उत्तर दिशा को प्राप्त होता है एवं उत्तरी क्षेत्र मे सूर्योदय करता है। फिर से दोनों सूर्य सम्पूर्ण दक्षिण दिशा और सम्पूर्ण उत्तर दिशा को साथ-साथ पार करते हुए दोनों क्षेत्र में दिन करते हैं।

इस प्रकार गति करते हुए उत्तर दिशा को पार करने वाला एरावतीय सूर्य उत्तर पूर्व में आता है और दक्षिण दिशा को पार कर भारतीय सूर्य दक्षिण पश्चिम दिशा में आता है। इस समय ये दोनों सूर्य पूर्वी पश्चिमी क्षेत्र (महाविदेह क्षेत्र) को प्रकाशित करते हैं।

जब ये सूर्य उत्तर दक्षिण को प्रकाशित करते हैं तब पूर्व पश्चिम में रात्रि करते हैं और जब पूर्व पश्चिम को प्रकाशित करते हैं तब उत्तर दक्षिण में रात्रि करते हैं।

नोट– इस वषिय में भी कुछ मिथ्या भ्रमित लोक मान्यताएं सूत्र में बताई गई। यथा- 1 सूर्य सुबह पूर्व में किरण समूह रूप में उत्पन्न होकर शाम को पश्चिम में नष्ट हो जाता है 2. पृथ्वी में से उत्पन्न होकर पृथ्वी में नष्ट हो जाता है 3. पानी में से उत्पन्न होकर पानी में नष्ट हो जाता है। अथवा शाम को पृथ्वी आदि में प्रवेश कर नीचे चला जाता है फिर नीचे से चलते हुए नीचे लोक को प्रकाशित कर पुनः पूर्व में से निकल आता है। कोई जम्बूद्वीप के दो विभाग कल्पित करते हुए बताते हैं कि पूर्व में ऊपर सूर्य उदित होकर पश्चिम में शाम को अस्त हो जाता है तब दूसरे विभाग में उदय हो जाता है वहां दिन भर रहकर अस्त हो जाता है, और पुनः प्रथम विभाग में उदित हो जाता है, इत्यादि ये सभी कथन सत्य से परे हैं और भ्रमपूर्ण एवं अधूरी मान्यताएं है।

दूसरा प्रति प्राभृत–

संक्रमण गति निर्णय– एक मंडल से दूसरे मंडल की दूरी दो योजन की है वह दो प्रकार से पार की जा सकती है। 1. पूरा मंडल चल कर एक निश्चित स्थान पर आकर के दो योजन सीधे चल कर फिर दूसरे मंडल का भ्रमण प्रारम्भ करना, फिर उसी निश्चित स्थान की सीध में आकर अगले मंडल में संक्रमण करना। यह ''भेद-घात-संक्रमण' गति है। 2. कर्ण कला गति का अर्थ है जलेबी की तरह। मंडल पार करने के साथ ही उस दो योजन दूरी को समाविष्ट करते हुए निश्चित स्थान की जगह स्वतः अगले मंडल का प्राप्त हो जाना । इस गति को कर्ण कला प्रति कहा गया है।

कर्ण कला गति निर्दोष– इन दोनों गतियों में दूसरी कर्ण कला गति सूर्य के मंडल भ्रमण की उचित गति है अर्थात् कर्ण कला गति से सूर्य का भ्रमण मानना, सत्य मान्यता है।

भेद घात गति सदोष– भेद धात संक्रमण में दो-दो योजन क्षेत्र पार करने का समय किसी मंडल का नहीं कहा जा सकता है अतः वह गति यहां मानना अयोग्य है इसलिये इस मान्यता को मिथ्या कहा गया है।

तीसरा प्रति प्राभृत–

सूर्य की मुहूर्त्तगति– 184 मंडलों में से प्रथम मंडल में सबसे कम गति होती है और अंतिम मंडल में सबसे अधिक गति होती है, इस प्रकार की एक गति नहीं है। 184 प्रकार की गति होती है। क्योंकि प्रत्येक अर्द्ध मंडल को 30 मुहूर्त्त में पार करना होता है और मंडलों की परिधि भी आगे से आगे ज्यादा है। अतः प्रत्येक मंडल की मुहूर्त्त गति भिन्न होती है।

मुहुर्त्त गति को 30 मुहुर्त्त से गुणा करने पर अर्ध मंडल की परिधि निकल जाती है। आधा मंडल एक सूर्य 30 मुहुर्त्त में पार करता है आधा मंडल दूसरा सूर्य 30 मुहुर्त्त में पार करता है। दृष्टि क्षेत्र = चक्षुस्पर्श = इतनी दूरी से मनुष्यों को सूर्य सूर्योदय और सूर्यास्त के समय दिखता है।

प्रत्येक मंडल में 18/60 योजन मुहुर्त्त गति बढती है। प्रति मंडल में दृष्टि क्षेत्र 84 योजन के पास-पास घटता है यह स्थूल दृष्टि से समझना। सूक्ष्म दृष्टि से 18/60 योजन में भी कम कुछ होता है। और दृष्टि पहले से दूसरे मंडल में $83\frac{23}{60}$, $\frac{42}{61}$ योजन घटता है। और अंतिम मंडल से दूसरे मंडल में $85\frac{9}{60}$, $\frac{42}{61}$ योजन बढ़ता है। इसे ही मूल पाठ में 84 योजन से कम और 85 योजन से अधिक इस प्रकार पुरूष छाया की हानि वृद्धि कहा गया है।

पुरूष छाया घटने में सभी मंडल में कुल वृद्धि 1-4760, 2561 योजन होती है और प्रत्येक मंडल में 68/61 चूर्णियां भाग परिवर्तन होता है (वृद्धि हानि होती है) यथा- 83 $\frac{23}{60}$, 42/61 + 1 $\frac{47}{60}$, 25/61 = 85$\frac{11}{60}$, 60/61 यह 184 वें मंडल में दृष्टि क्षेत्र वृद्धि । 85$\frac{11}{60}$, 6/61 - 68/61 = 85 $\frac{9}{60}$, 60/61 यह 183वें मंडल में हानि।

मुहूर्त गति एवं चक्षुस्पर्श

	मुहूर्त गति	**दृष्टि क्षेत्र**
प्रथम मंडल	5251 $\frac{29}{60}$ योजन	47263 $\frac{21}{60}$
दूसरा मंडल	5251 $\frac{47}{60}$ योजन	47179 $\frac{57}{60}$, 19/61
तीसरा मंडल	5252 $\frac{5}{60}$ योजन	47096 $\frac{33}{60}$, 2/61
अंतिम मंडल	5305 $\frac{15}{60}$ योजन	31831 $\frac{30}{60}$
अंतिम से दूसरा मंडल	5304 $\frac{57}{60}$ योजन	31916 $\frac{39}{60}$, 60/61
अंतिम से तीसरा मंडल	5304 $\frac{39}{60}$ योजन	32001 $\frac{49}{60}$, 23/61

इस विषय में भी भ्रमित मिथ्या मान्यताएं अनेक हैं। अर्थात् कोई 6000 यो, कोई 5000 योजन कोई 4000 योजन प्रति मुहुर्त्त गति मानते हैं वे सभी असंगत मान्यताएं है।

तीसरा प्राभृत

प्रकाशित क्षेत्र– दोनों सूर्य मिलकर प्रथम मंडल में रहते हुए जम्बू द्वीप के 3/5 = तीन पंचमांस भाग को प्रकाशित करते हैं और अंतिम मंडल में 2/5 = दो पंचमांस भाग को प्रकाशित करते है। यदि दसमांस से कहा जाय तो प्रथम मंडल में 6 दसमांस और अंतिम मंडल 4 दसमांस जम्बूद्वीप के क्षेत्र को दोनों सूर्य प्रकाशित करते है।

अतः एक सूर्य प्रथम मंडल में 3/10 = तीन दसमांस भाग जम्बू द्वीप के क्षेत्र को उत्तर में प्रकाशित करता है तब दूसरा सूर्य 3/10 तीन दसमांस भाग दक्षिण में प्रकाशित करता है। उस समय पूर्व में 2/10 = दो दसमांस भाग और पश्चिम में 2/10 = दो दसमांस भाग अप्रकाशित रहता है। इसलिये प्रथम मंडल में 60 मुहूर्त्त का 2/10 = 12 मुहूर्त्त की रात्रि होती है और 60 मुहूर्त्त का 3/10 = 18 मुहुर्त्त का दिन होता है। अन्तिम मंडल में प्रत्येक सूर्य 2/10 भाग को प्रकाशित करते है अतः 12 मुहूर्त्त का दिन और 18 मुहूर्त की रात्रि हो जाती है। इस विषय में अन्य 12 मान्यताएं सूत्र में बताई गई है और उन्हें असंगत कहा गया है।

चौथा प्राभृत

मंडल संस्थान– दो सूर्य दो चन्द्र की संस्थिति समचौरस संस्थान में होती है अर्थात् युग के प्रारम्भ में एक सूर्य ''दक्षिण पूर्व'' में रहता है दूसरा ''पश्चिम उत्तर'' में रहता है। उस समय एक चन्द्र ''दक्षिण पश्चिम'' में रहता है और दूसरा चन्द्र ''उत्तर पूर्व'' में रहता है इस तरह चारों विदिशाओं में समकोण से होते हैं अतः इस अपेक्षा में इनकी संस्थिति समचौरस कही गई है। अथवा सूर्य के विमान भी लम्बाई चौड़ाई में समान है इस कारण विमान की अपेक्षा भी समचौरस संस्थान सूर्य और चन्द्र मंडल का समझा जा सकता है।

ताप क्षेत्र संस्थान– कदम्ब वृक्ष के पुष्प के समान अथवा गाड़ी के जुए के समान (सगडुद्धि संस्थान) सूर्य के ताप क्षेत्र का आकार होता है। यह ताप क्षेत्र मेरू के पास संकुचित पुष्प मूल भाग के समान होता है और लवण समुद्र की तरफ विस्तृत-पुष्प मुख भाग के समान होता है।

प्रथम मंडल में सूर्य का प्रकाश मेरू के पास मेरू की परिधि का 3/10 भाग होता है और लवण समुद्र की तरफ अंतिम प्रकाशित होने वाले क्षेत्र की परिधि का भी 3/10 भाग प्रकाश क्षेत्र होता है। यह सम्पूर्ण प्रकाश क्षेत्र कदम्ब वृक्ष के पुष्प का आकार का होता है।

इस संस्थान में चार बाहाएं होती है दो लंबी और दो गोलाई वाली। ताप क्षेत्र की चौड़ाई के दोनों बाजू लम्बी बाहा होती है और ताप क्षेत्र के मूल और मुख विभाग की तरफ अर्थात् मेरू और समुद्र की तरफ की बाहा गोलाई वाली होती है। जम्बूद्वीप के अंदर वे दोनों लम्बी बाहा आपस में समान 45-45 हजार योजन की अवस्थित होती है। और दोनों गोल बाहाओं का माप आपस में भी असमान होता है प्रति मंडल में परिवर्तित होता रहता है।

वह प्रथम मंडल में मेरू के पास $9486\frac{9}{10}$ योजन होता है और समुद्र की तरफ $94868\ \frac{4}{10}$ योजन होता है। यह मेरू की परिधि का एंव जम्बू द्वीप की परिधि का 3/10 तीन दसमांस भाग है। यह जम्बूद्वीप के अंदर के क्षेत्र की अपेक्षा प्रथम मंडल का माप कहा गया है।

सूर्य का ताप क्षेत्र तो लवण समुद्र में भी जाता है। अतः ताप क्षेत्र की कुल लम्बाई $45000 + 33333\ \frac{1}{3} = 78333\ \frac{1}{3}$ योजन की होती है। यह लम्बाई प्रथम और अंतिम आदि सभी मंडलों में समान होती है।

अंधकार संस्थान– ताप क्षेत्र के समान ही अंधकार का भी आकार होता है। जम्बूद्वीप के अंदर की दोनों बाहा भी ताप क्षेत्र के समान 45-45 हजार योजन की होती है। अंधकार की सम्पूर्ण लम्बाई भी ताप क्षेत्र के समान $78333\ \frac{1}{3}$ योजन होती है। गोल आभ्यंतर बाहा प्रथम मंडल में मेरू के पास मेय की परिधि से 2/10 दो दसमांस होती है अर्थात् $6324\frac{6}{10}$ योजन होती है। बाह्य गोल बाहा जम्बूद्वीप की परिधि का 2/10 दो दसमांस = $63245\ \frac{6}{10}$ योजन होती है।

आभ्यंतर मंडल में जो माप कहा गया है बाह्य मंडल के भी उसी प्रकार कहना किन्तु आभ्यंतर और बाह्य गोलाई वाली बाहा में फर्क है, वह यह है कि आभ्यंतर मंडल के ताप क्षेत्र में जो माप कहा वह बाह्य में प्रकाश का माप समझना।

सूर्य उक्त ताप संस्थान माप में 100 योजन ऊपर प्रकाश करता है 1800 योजन नीचे प्रकाश करता है एवं तिर्च्छा $47263\ \frac{6}{10}$ योजन आगे और इतना ही योजन पीछे दोनों बाजू में प्रकाश करता है। इस विषय में 16 मिथ्या मान्यताएं सूत्र में कही गई है।

मंडल	ताप क्षेत्र लम्बाई	स्थिर बाहा दोनों अस्थिर प्रकाश बाहा (मेरु)	आभ्यंतर अस्थिर प्रकाश बाहा (जम्बू)	बाह्य	भाग
आभ्यंतर	$78333\frac{1}{3}$ योजन	45000 योजन	$9486\frac{9}{10}$ योजन	$94868\frac{4}{10}$ योजन	$\frac{3}{10}$ वां $1\ \frac{1}{2}$ / 5 योजन
बाह्य	$78333\frac{1}{3}$ योजन	45000 योजन	$6324\frac{6}{10}$ योजन	$63245\frac{6}{10}$ योजन	$\frac{2}{10}$ वां $\frac{1}{5}$ योजन

नोट– प्रकाश क्षेत्र का जो भी माप आभ्यंतर मंडल में है वही अंधकार का बाह्य मंडल में है और जो प्रकाश का बाह्य मंडल में है वही अंधकार का आभ्यंतर मंडल में है।

पांचवां प्राभृत

ताप क्षेत्र में रूकावट– लेश्या प्रतिघात- सूर्य की लेश्या अर्थात् सूर्य का प्रकाश- ताप अंदर में मेरू पर्वत तक जाता है फिर उसकी भित्ति के बादर सूक्ष्म पुद्गलों से प्रतिहत होता है। बाहर लवण समुद्र में और दोनों बाजू में अपनी प्रकाश सीमा के किनारों पर यों इन तीनों तरफ चरम स्पर्शित पुद्गलों से सूर्य का प्रकाश प्रतिहत होता है अर्थात् वहीं तक जाता है आगे नहीं जाता है, उस तीनों तरफ की सीमा का माप, ऊपर चौथे प्राभृत में बताया गया है। इसके अतिरिक्त ताप क्षेत्र के भीतर भी जहां जिन पदार्थों से सूर्य का प्रकाश रूकता है छाया पड़ती है वहां वहां उन पदार्थों से सूर्य लेश्या - प्रकाश प्रतिहत होता है। इस विषय में मतांतरीय 20 मान्यताओं का सूत्र में संग्रह किया गया है, जो केवल शब्दोचरण मात्र की भिन्नता वाली है, वास्तव में सभी का अर्थ एक ही है।

छट्ठा प्राभृत

प्रकाश संस्थिति में घट वध– आभ्यंतर मंडल से बाह्य में जाते समय सूर्य की प्रकाश संस्थिति = प्रकाश का संस्थान अर्थात् प्रकाश क्षेत्र प्रति मंडल में घटता है और बाह्य मंडल से आभ्यंतर मंडल में आते समय प्रति मंडल में प्रकाश क्षेत्र बढता है। प्रत्येक मंडल को सूर्य 30 मुहुर्त्त में पार करता है अतः हर तीस मुहुर्त्त से सूर्य का प्रकाश क्षेत्र = प्रकाश संस्थिति घटती एवं बढती है। यह स्थूल दृष्टि की अपेक्षा है।

सूक्ष्म दृष्टि से सूर्य प्रतिक्षण अगले मंडल की तरफ कर्ण गति से बढ़ता रहता है एक मंडल से दूसरे मंडल में पहुँचने तक क्रमशः गति बढ़ाते हुए दो योजन क्षेत्र बढ़ाता है और उतनी गति भी बढ़ाता है। जिससे ताप क्षेत्र भी कुछ घटता बढ़ता रहता हैं। इसीलिये सूक्ष्म दृष्टि से घड़ी के घंटे व तारीख के कांटे या अक्षर के समान प्रतिपल ताप क्षेत्र = प्रकाश संस्थिति घटती बढती हैं।

इस प्रकार स्थूल दृष्टि से एक दिन = 30 मुहुर्त्त सूर्य प्रकाश संस्थिति अवस्थित रहती है फिर घटती बढती है जो 6महीना तक बाहर जाते हुए घटती है और फिर 6महीना तक अंदर आते हुए बढती हैं।

प्रतिदिन मुहुर्त्त का 2/61 भाग दिन घटता बढ़ता है 6 महिनों में कुल 366/61 भाग = 6 मुहुर्त्त दिन घटता बढ़ता हैं। मंडल की अपेक्षा 2/1830 भाग ताप क्षेत्र घटता बढ़ता हैं।

इस विषय में अन्य 25 मान्यताएं कही गई हैं। जिसमें समय, मुहुर्त्त से लेकर 1 लाख सगरोपम और एक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के अंतर से सूर्य की ओज संस्थिति को बदलना कहा गया है।

सांतवा प्राभृत

सूर्य के प्रकाश को स्पर्श करने वाले सभी पुद्गल उस की लेश्या का वरण करते है अतः दृष्ट अदृष्ट = सूक्ष्म बादर सभी पुद्गल जो कि सूर्य की प्रकाश संस्थिति में होते हैं वे सभी सूर्य लेश्या का वरण करते है। अर्थात् प्रकाश को प्राप्त कर प्रकाशित होते हैं। इस विषय में भी 20 मान्यताएं पूर्ववत् कही गई हैं।

आठवां प्राभृत

सूर्य उत्तर पूर्व में उदित होकर दक्षिण पूर्व में आता है दक्षिण पूर्व में उदित होकर दक्षिण पश्चिम में आता हैं। यों क्रमशः आगे बढता हुआ उदित होता है।

जब जम्बूद्वीप में मेरू से दक्षिण विभाग में सूर्य उदित होता है तब उत्तरी विभाग में भी उदित होता है एवं पूर्वी पश्चिमी भाग में अस्त होता हैं। जब दक्षिणी भाग में 18 मुहूर्त से लेकर 12 मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरी भाग में उतने ही मुहूर्त का दिन होता है। पूर्वी पश्चिमी दोनों विभाग में उस समय साथ-साथ रात्रि होती हैं। वह भी दोनों में 12 मुहुर्त से लेकर 18 मुहूर्त तक समान समान होती हैं।

जब दक्षिण में वर्ष का, ऋतु का प्रथम समयादि होता है तब उत्तर में भी वर्ष, ऋतु आदि का प्रथम समय आदि होता है। किन्तु पूर्व पश्चिम विभाग में उसके अनंतर समय वर्ष, ऋतु आदि का प्रथम समय होता हैं।

यहां जम्बूद्वीप के चार सरीखे विभाग कल्पित किये गये है उनके प्रारम्भिक प्रदेशों में जब सूर्योदय होता है या वर्ष का प्रथम समय होता है तब पूरे उस विभाग का प्रथम समय अपेक्षित करके कहा गया हैं। इसलिये उत्तर दक्षिण विभाग के वर्ष आदि प्रारम्भ के अनंतर समय में ही पूर्वी पश्चिमी विभाग में वर्ष आदि का प्रारम्भ कहा गया हैं।

यहां कोई इन चार विभागों को भरत ऐरावत महाविदेह में आग्रहित करदे तो उक्त विषय सही समझ में नहीं आ सकेगा और संदेह शील मानस बन जायेगा। अतः जम्बूद्वीप के बराबर चार विभागों की कल्पना के ये एक एक विभाग पूर्वी पश्चिमी उत्तरी दक्षिणी विभाग मान कर ही उक्त विषय को समझना चाहिए।

इसी प्रकार लवण समुद्र में, धातकी खंड में, कालोदधि समुद्र में अर्द्ध पुष्कर द्वीप में सूर्य की उदय संस्थिति और वर्ष ऋतु का समय आदि समझ लेना। सर्वत्र उस क्षेत्र के समान चार विभाग कल्पित करना एवं उनमें से प्रत्येक विभाग में उक्त जम्बूद्वीप के विभागों के समान ही सूर्य की उदय संस्थिति एंव वर्ष आदि के प्रारम्भ समझ लेना।

इस विषय में तीन प्रकार की विस्तृत मान्यताएं सूत्र में कही गई है, जो कि अशुद्व मान्यताएं हैं।

नवमा प्राभृत

ताप लेश्या– सूर्य में से जो ताप लेश्या निकलती है वह स्पर्श में आने वाले पुद्‌गलों को आतापित करती हैं। तथा इन ताप लेश्या के स्पर्श में नहीं आने वाले पुद्‌गल भी आतापित होते है। वे इन लेश्याओं में से जो छिन्न लेश्याएं निकलती है, उनमें आतापित होते हैं।

तात्पर्य यह है कि सूर्य की किरणे जिस वस्तु पर पडती है वह तो गर्म होती ही है किन्तु जहां धूप नहीं पहुंचती है वे भी पुद्‌गल, भूमि आदि गर्म होते हुए देखे जाते हैं। उन्हें सीधी किरणों से ताप नहीं मिलकर ताप किरणें से जो अंतर किरणें निकलती है उनसे ताप मिलता हैं। अर्थात् छाया वाले क्षेत्र को भी वे कुछ प्रकाशित एवं आतापित करती हैं।

इस विषय में भी तीन मान्यताएं कहीं गई हैं।

छाया प्रमाण– पोरिषी छाया का मतलब है जो चीज जितनी है उसकी उतनी ही छाया होना वह (एक) पोरिषी (अर्थात् पुरूष प्रमाण) छाया होती हैं। यह छाया का माप युग के आदि समय अर्थात् श्रावण वदी एकम की अपेक्षा यहां कहा गया हैं। वह इस प्रकार हैं।

1. अपार्द्ध पोरिषी (आधी) छाया	तीसरा भाग दिवस 6 मुहूर्त बीतने पर
2. पोरिषी (पुरूष प्रमाण) छाया	चौथाई दिवस 4$\frac{1}{2}$ मुहूर्त बीतने पर होती है उतना ही दिवस शेष रहने पर पोरिषी छाया होती हैं।
3. डेढ पोरिषी (डेढ गुणी) छाया	पांचवां भाग 3 मुहूर्त्त 30 मिनट दिन बीतने पर
4. दो पोरिषी छाया (दुगुणी)	छठ्ठा भाग दिन 3 मुहूर्त्त बीताने पर
5. ढ़ाई पोरिषी छाया (ढाई गुणी)	सातवां भाग दिन 2 मुहूर्त्त 27 मिनट बीतने पर
6. 58$\frac{1}{2}$ पोरिषी (58$\frac{1}{2}$ गुणी)	छाया 1900 वां भाग 27$\frac{1}{4}$ सेकंड दिवस बीतने पर
7. उनसाठ पोरिषी (59 गुणा) छाया	22000 वां भाग 2$\frac{1}{3}$ सेंकंड दिवस बीतने पर
8. साधिक उनसाठ पोरिषी छाया दिवस का कोई भी भाग व्यतीत नहीं होता हैं।	सूर्योदय और सूर्यास्त का प्रारम्भिक प्रथम समय होता है अर्थात्

इस विषय में 96 मान्यताएं कही गई है जो एक पोरिषी छाया से लेकर 96 पोरिषी छाया होने तक के एकांतिक कथन की हैं।

छाया का आकार– लंबी, चौड़ी, गोल, अनुकूल, प्रतिकूल आदि छाया के पच्चीस प्रकार कहे गए है अर्थात् वस्तुओं के खुद के आकार, प्रकाशमान वस्तु की संस्थिति एवं दूरी आदि के कारण से छायाएं अनेक प्रकार की होती हैं। गोल छाया के पुनः आधा गोला, पाव गोला, सघन गोला, आदि आठ प्रकार कहे गए हैं।

नोट– इस पाहुड (प्राभृत) का विषय एवं सूत्र सहज सूझ में नहीं आने योग्य होने से आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के सूर्य प्रज्ञप्ति के संपादन करने वाले विद्वान श्रमण ने मूल पाठ पर एवं रचना सूत्रों पर शंका खड़ी करके असंगत होने की कल्पना प्रकट की हैं। वास्तव में सूत्र पाठ की एंव रचना की ऐसी कोई स्थिति नहीं हैं किंचित लिपि दोष से प्रति भेद मात्र हो सकता हैं। जिसका समाधान प्रतियों को टीका को देखने से हो सकता हैं। किन्तु ऐसा लगता है कि संपादक टीका देखने पर भी इन सूत्रों का सही आशय जान नहीं पाये है । ऊपर उन सूत्रों का संक्षिप्त सहीं -संगत अर्थ दे दिया गया हैं। जिस अच्छी तरह समझ लेने के गाद कोई संशय नहीं रह सकता हैं।

इस प्रकार उक्त संपादक महोदय ने टिप्पणों में जगह-जगह सूक्ष्म विषयों का, सूत्रों का, आशय नहीं समझ सकने के कारण ऐसे ही अनेक संशय एवं दोष उपस्थित किये हैं। जो वास्तव में प्रायः व्यक्तिगत संदेह मात्र हैं। सूत्र में ऐसा कुछ दूषण अधिकांशतः नहीं हैं। परस्पर अन्य सूत्रों से विरूद्ध कथन जाने की कल्पना भी संपादक की अपनी व्यक्तिगत समझ भ्रम के कारण हैं। उस संपादन में प्रकाशन समिति ने मूल पाठ का सरल अर्थ भी नहीं दिया हैं। यदि सही अर्थ दिया होता तो वैसे संदेह स्थल स्वतः समाहित हो जाते।

दसवा प्राभृत

पहला प्रति प्राभृत–

नक्षत्र नाम क्रम

1. अभिजित 2. श्रवण 3. धनिष्ठा 4. शतभिषक 5. पूर्व भाद्रपद 6. उत्तरा भाद्रपद 7. रेवती 8अश्विनी 8. भरणी 9. कृतिका 10. रोहिणी 11. मृगशीर्ष 12. आर्द्रा 13. पुनर्वसु 15. पुष्य 16. अश्लेषा 17. मघा 18. पूर्वा फाल्गुणी 19. उत्तरा फाल्गुणी 20. हस्त 21. चित्रा 22. स्वाति 23. विशाखा 24. अनुराधा 25. ज्येष्ठा 26. मूल 27. पूर्वाषाढा 28. उत्तराषाढा।

इस विषय मे भी विभिन्न मत है जिसमें नक्षत्र क्रम का प्रारम्भ कृतिका से, मघा से, धनिष्ठा से, अश्विनी से, भरणी से किया जाता है। अभिजित नक्षत्र से ही उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होना जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में बताया गया है।

दूसरा प्रति प्रभृत–

नक्षत्रों का चन्द्र संयोग- इसके चार प्रकार है।

1. $9\frac{27}{67}$ मुहूर्त्त	1. अभिजित।
2. 15 मुहूर्त्त	1. शतभिषक, 2. भरणी 3. आर्द्रा 4. अश्लेशा 5. स्वाति 6. ज्येष्ठा
3. 30. मुहूर्त्त	1. श्रवण 2. धनिष्ठा 3. पूर्वा भाद्रपद 4. रेवती 5. अश्विनी 6. कृतिका 7. मृगसिर 8. पुष्य 9. मघा 10. पूर्वा फाल्गुनी 11. हस्त 12. चित्रा 13. अनुराधा 14. मूल 15. पूर्वाषाढा
4. 45 मुहूर्त	1. उत्तरा भाद्रपद 2. रोहिणी 3. पुनर्वसु 4. उत्तरा फाल्गुणी 5. विशाखा 6. उत्तराषाढा।

नक्षत्रों का सूर्य संयोग– इसके भी चार प्रकार है।

1.	-	4 दिन 6मुहूर्त्त	अभिजित
2.	-	6 दिन 21 मुहूर्त्त	शतभिषक आदि 6उपरोक्त
3.	-	13 दिन 12 मुहूर्त्त	श्रवण आदि 15 ऊपरवत्
4.	-	20 दिन 3 मुहूर्त्त	उत्तराभाद्रपद आदि 6ऊपरवत्।

तीसरा प्रति प्राभृत–

नक्षत्रों को चन्द्र संयोग कब- इसके भी चार प्रकार है।

1. दिन के प्रथम भाग में प्रारम्भ और तीस मुहूर्त	पूर्व भाग समक्षेत्र
2. दिन के पश्चिम भाग में प्रारम्भ और तीस मुहूर्त	पश्चात भाग समक्षेत्र
3. रात्रि में प्रारम्भ और 15 मुहूर्त	नक्त भाग- अर्द्ध क्षेत्र
4. रात्रि दिवस दोनों में और 45 मुहूर्त	उभय भाग- डेढ़ क्षेत्र

1. पूर्व भाग में– 1. पूर्व भाद्रपद 2. कृतिका 3. मघा 4. पूर्वाफाल्गुणी 5. मूल 6. पूर्वाषाढा

2. पश्चिम भाग में– 1. अभिजित (श्रवण नक्षत्र के संयोग से उपचार से माना गयाहै।) 2. श्रवण 3. घनिष्ठा 4. रेवती 5. अश्विनी 6. मृगसिर 7. पुष्य 8. हस्त 9. चित्रा 10. अनुराधा

3. नक्त भाग में– 1. शतभिषक 2. भरणी 3. आर्द्रा 4. अश्लेशा 5. स्वाति 6. ज्येष्ठा।

4. उभय भाग में– 1. उत्तराभाद्रपद 2. रोहिणी 3. पुनर्वसु 4. उत्तराफाल्गुणी 5. विशाखा 6. उत्तराषाढा।

चौथा प्रति प्राभृत–

नक्षत्र चन्द्र संयोग एवं समर्पण–

पूर्व प्रति प्राभृत में समुच्चय रूप से कहे विषय को यहां एक एक नक्षत्र के क्रम से स्पष्टीकरण किया गया है, साथ ही अभिजित श्रवण दोनों नक्षत्रों की एक साथ सम्मिलित विवक्षा की गई है।

1-2. अभिजित श्रवण दोनों नक्षत्र मिलकर पश्चिम दिवस में योग प्रारम्भ कर 39 मुहूर्त्त साधिक रह कर दूसरे दिन पश्चात भाग में धनिष्ठा को समर्पण कर देते हैं।

3. धनिष्ठा नक्षत्र भी तीस मुहूर्त्त रहकर दूसरे दिन पश्चात भाग में शतभिषक को संयोग समर्पित कर देता है। अर्थात् पहले के नक्षत्र का योग समाप्त होते ही अगले नक्षत्र का संयोग प्रारम्भ हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम प्रति प्राभृत मे कहे गये क्रम में सभी नक्षत्रों का संयोग जानना। क्यों कि उसी क्रम से ही संयोग चलते है। संयोग के मुहूर्त्त की संख्या दूसरे तीसरे प्रति पाहुड में बताई गई है उतने समय तक चन्द्र के साथ वह नक्षत्र संयोग करता है, फिर अगले नक्षत्र का संयोग कहलाता है। इस यावत् पूर्वाषाढा नक्षत्र दिन के पूर्व भाग में संयोग करके 30 मुहुर्त्त रह कर दूसरे दिन पूर्व भाग में उत्तराषाढ़ा को संयोग समर्पित करता है।

फिर उत्तराषाढा पूर्व दिवस भाग में संयोग प्रारम्भ करके 45 मुहूर्त्त रहकर दूसरे दिन शाम को अभिजित श्रवण नक्षत्र को योग समर्पित करता है। इस प्रकार यह पूरा चक्र यथासमय प्रारम्भ होकर यथासमय समाप्त होता है और पुनः यथासमय प्रारम्भ हो जाता है।

पांचवां प्रति प्राभृत–

नक्षत्रों का कुल उपकुल विभाग– जिस नक्षत्र में मास की समाप्ति हो, जो मास के नाम वाले नक्षत्र हो वे कुल कहे गये हैं उसके पूर्व क्रम वाले नक्षत्र उपकुल कहे गये है औ उसके भी पूर्व क्रम वाले नक्षत्र कुलोपकुल कहे गये हैं। यथा-

कुल– 1. धनिष्ठा 2. उत्तराभाद्रपद 3. अश्विनि 4. कृतिका 5. मृगसिर 6. पुष्य 7. मेघा 8. उत्तराफाल्गुणी 9. चित्रा. 10. विशाखा 11. मूल 12. उत्तराषाढा। यहां धनिष्ठा और मूल दो नक्षत्र महीने के नाम से अतिरिक्त लिये गये हैं क्यों कि उस मास की समाप्ति करने वाले ये ही है।

उपकुल– 1. श्रवण 2. पूर्वाभाद्रपद 3. रेवती 4. भरणी 5. रोहिणी 6. पुनर्वसु 7. अश्लेषा 8. पूर्वा फाल्गुणी 9. हस्त 10. स्वाति 11. ज्येष्ठा 12. पूर्वाषाढा।

कुलोपकुल– 1. अभिजित 2. शतभिषक 3. आर्द्रा 4. अनुराधा

छट्ठा प्रति प्राभृत–

पूर्णिमा के दिन संयोग– श्रावण, भादवा, पोष, ज्येष्ठ मास में कुल उपकुल और कुलोपकुल तीन नक्षत्र का योग होता है। शेष सभी पूर्णिमा में कुल उपकुल दो नक्षत्र का संयोग होता हैं 12 महिनों की 12 पूर्णिमा होती है। वे कुल या उपकुल अथवा कुलोपकुल तीनों में से किसी के साथ भी योग युक्त हो सकती है। महीनों के नाम वाले कुल एवं उनके उपकुल कुलोपकुल पांचवें प्रति प्राभृत में कह दिये गये हैं तदनुसार ही यहां क्रमशः 12 महिनों की पूर्णिमा में समझ लेना।

अमावस्या एवं उसके नक्षत्र संयोग– 12 महिनों की 12 अमावस्या होती है। जिस महीने की अमावस्या का नक्षत्र संयोग जानना हो उसके 6मास बाद वाले महिने के कुल अपकुल कुलोपकुल का संयोग उस अमावस्या का होता है **यथा–**

श्रावण महीने के 6 मास बाद माघ महीना होता है अतः माघ महीने के कुल उपकुल = मघा और अश्लेषा का संयोग श्रावण की अमावस्या के दिन होता है। इस प्रकार मिगसर, माघ, फाल्गुण और आषाढ़ महीने की अमावस्या को क्रमशः ज्येष्ठ श्रावण भादवा पोष महीने के कल उपकुल कुलोपकुल तीन में से किसी नक्षत्र का संयोग होने से वह अमावस्या युक्त होती है शेष 8महीनों की अमावस्या में उस महिने से अगले 6 महिने बाद के महिने के कुल उपकुल दो में से कोई एक का संयोग होने पर वह अमावस्या युक्त होती है।

नोट- यहां मूल पाठ में फाल्गुण महिने की अमावस्या में भादवा महिने के कुल का पाठ छूठ गया है और तीन की जगह दो का संयोग ही कहा है। तथा पोष मास के लेकर आषाढ़ मास तक की अमावस्या के संयोग का पाठ अशुद्ध है अर्थात् कुल को उपकुल लिख दिया है उपकुल को कुल लिख दिया है। यह संपादन की परंपरागत भूल प्रतीत होती है।

सातवां प्रति प्राभृत-

महिनों का अमावस पूनम के नक्षत्र योग से सम्बन्ध- छट्ठे प्रति प्राभृत में बताया गया है कि श्रावण महिने की अमावस्या के दिन माध महीने के कुल उपकुल का संयोग होता है अर्थात् छः मास बाद वाले कुल उपकुल 6महिना पहले वाले महीने की अमावस के दिन जोग जोड़ते हैं और इन दोनों महीनों का परस्पर सम्बन्ध होता है यह इस सावतें प्रति प्राभृत में बताया गया है। श्रावण महीने में माघी (माघ महीने के कुल उपकुल वाली) अमावस होती है और श्रावणी पूनम होती है। माघ महीनें में श्रावणी अमावस्या होती है और माघी पूनम होती है।

इस प्रकार का सम्बन्ध क्रमशः 2. भादवा-फाल्गुण का 3. आसोज चैत्र का 4. कार्तिक-वैशाख का 5. मिगसर-ज्येष्ठ का 6पोष-आषाढ़ का होता है अर्थात् पोष में आषाढ़ी अमावस्या और पोषी पूनम होती है। आषाढ़ में पोषी अमावस्या और आषाढ़ी पूनम होती है।

आठवां नौवां प्रति पाहुड-

इन दोनों प्रति प्राभृत में नक्षत्रों के आकार एवं तारों की (विमानों की) संख्या कही गई हैं जो चार्ट द्वारा बताई जा रही है।

नक्षत्र, आकार, योग तालिका- (देखें जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारांश पृष्ठ सं 298-300)

दसवां प्रति प्राभृत-

प्रत्येक रात्रि के प्रारम्भ होते ही जो नक्षत्र उदित होता है और संपूर्ण रात्रि में आकाश में रह कर रात्रि समाप्ति कर अस्त होता है उसे रात्रि वाहक नक्षत्र कहा गया है अर्थात् वह नक्षत्र संपूर्ण रात्रि का वहन करता है। जैसे सूर्य से काल मान पोरिषी ज्ञान होता है वैसे ही रात्रिवाहक नक्षत्र को जानने देखने से रात्रि के समय का अनुमान हो जाता है। 28नक्षत्रों में कोई नक्षत्र 7 दिन रात्रि वहन करता है तो कोई 15 दिन भी। किसी महीने में तीन नक्षत्र और किसी में चार नक्षत्र रात्रि वहन करते हैं। इसे चार्ट में देखें-

रात्रिवाहक नक्षत्र क्षेत्र-

क्रम	महीना	नक्षत्र नाम	रात्रि सं.	नक्षत्र	रात्रि सं.	नक्षत्र	रात्रि सं.	नक्षत्र	रात्रि सं.
1.	श्रवण	उत्तराषाढ़ा	14	अभिजित	7	श्रवण	8	धनिष्ठा	1
2.	भादवा	धनिष्ठा	14	शतभिषक	7	पूर्वाभाद्रपद	8	उत्तराभाद्रपद	1
3.	आसोज	उत्तराभाद्रपद	14	रेवती	15	अश्विनि	1	-	-
4.	कार्तिक	अश्विनी	14	भरणी	15	कृतिका	1	-	-
5.	मिगसर	कृतिका	14	रोहिणी	15	मृगशीर्ष	1	-	-
6.	पोष	मृगशीर्ष	14	आर्द्रा	7	पुनर्वसु	8	पुष्य	1
7.	माघ	पुष्य	14	अश्लेषा	15	मघा	1	-	-
8.	फाल्गुण	मघा	14	पूर्वाफाल्गुनी	15	उत्तराफाल्गुनी	1	-	-
9.	चौत्र	उत्तरा फाल्गनी	14	हस्त	15	चित्रा	1	-	-
10.	वैशाख	चित्रा	14	स्वाति	15	विशाखा	1	-	-
11.	ज्येष्ठ	विशाखा	14	अनुराधा	7	ज्येष्ठा	8	मूल	-
12.	आषाढ़	मूल	14	पूर्वाषाढ़ा	15	उत्तराषाढ़ा	1	-	-

प्रत्येक महिने में उसका कुल नक्षत्र एक ही दिन पूनम को रात्रि वहन करता है। चार महीनों में कुलोपकुल होते हैं उस महीने में चार नक्षत्र रात्रि वहन करते हैं शेष महीनों में तीन नक्षत्र रात्रि वहन करते हैं।

प्रत्येक महीने का कुल नक्षत्र अगले महीने में प्रारम्भ के 14 दिन रात्रि वहन करता है। शेष 16 दिनों मे से उस महीने के अंतिम एक दिन उसी महीने का कुल नक्षत्र वहन करता है शेष बचे 15 दिनों में यदि उस महीने के उपकुल और कुलोपकुल दोनों हो तो क्रमशः 8 और 7 रात्रि वहन करते हैं एवं केवल उपकुल ही है तो वही 15 दिन रात्रि वहन करता है।

ग्यारहवां प्रति प्राभृत-

चन्द्रमा के साथ योग जोडने वाले नक्षत्र का पांच तरह से संयोग होता है- 1. दक्षिण में रहते हुए साथ चलते है 2. उत्तर में रहते हुए साथ चलते हैं 3. ऊपर, नीचे की अपेक्षा सीध में रहते हुए प्रमर्द योग से चलते हैं। 4. कभी दक्षिण से और कभी प्रमर्द से साथ चलते हैं 5. कभी दक्षिण से कभी उत्तर से कभी प्रमर्द से यों तीन तरह से साथ चलते हैं।

1. दक्षिण से- 1. मृग 2. आर्द्रा 3. पुष्य 4. अश्लेषा 5. हस्त 6मूल।

2. उत्तर से- 1. से 9 अभिजित से भरणी तक, 10 पूर्वा फाल्गुणी 11. उत्तरा फाल्गुणी 12. स्वाति।

3. तीनों से- 1. कृतिका 2. रोहिणी 3. पुनर्वसु 4. मघा 5. चित्रा 6. विशाखा 7. अनुराधा

4. दक्षिण से प्रमर्द से- 1. पूर्वाषाढा 2. उत्तराषाढा।

5. प्रमर्द योग से- 1. ज्येष्ठा

स्पटीकरण- 1. अंतिम मंडल में रहने वाले मृगशीर्ष आदि 6नक्षत्रों का सदा चन्द्र के दक्षिण में ही रहते हुए साथ चलने का योग मिलता है। 2. आभ्यंतर मंडल में रहने वाले 12 नक्षत्र सदा एक ही उत्तर दिशा के योग से साथ चलते हैं। 3. कृतिका

आदि सात नक्षत्र का जब चन्द्र के साथ का अर्थात् योग जोड़ने का प्रसंग आता है। तो कभी चन्द्र दक्षिण में हो जाता है कभी उत्तर में हो जाता है कभी सीध में उसी मंडल में ऊपर नीचे चलता है तब उनका योग जुड़ता है अर्थात् साथ चलना होता है।

इसका कारण यह है कि चन्द्र सदा मंडल परिवर्तन करता रहता है अंदर से बाहर और बाहर से अंदर के मंडलो में संक्रमण करता रहता है जब कि नक्षत्र अपने अपने एक ही मंडल में सदा अपनी एक ही गति से भ्रमण करते है अर्थात् न वे मंडल बदलते न ही उनकी गति चाल बदलती हैं

4. पूर्वाषाढा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चार चार तारे (विमान) है उनमें दो तारे बाह्य मंडल से बाहर की तरफ रहते है और दो भीतरी तरफ रहते हैं। बाह्य वाले दोनों तारे सदा दक्षिण में ही रहते हुए योग जोड़ते हैं भीतर वाले दोनों तारे सदा सीध से ऊपर नीचे रह कर योग जोड़ते हैं। अर्थात् इनके साथ चलते समय चन्द्र भी सदा अंतिम मंडल में ही होता है अन्य मंडल में रहते हुए इन दोनों नक्षत्र का साथ चलने का संयोग नहीं होता है एवं दक्षिण प्रमर्द यों मिश्रित योग जोड़ता है। 5. ज्येष्ठा नक्षत्र का चन्द्र के साथ जब भी योग होता है अर्थात् वह चन्द्र के साथ चलता है तब चन्द्र के उसी मंडल में चलने का संयोग मिलता है जिससे वह सीध में ऊपर नीचे रहते हुए ही योग जोड़ता है इसलिये इसके केवल प्रमर्द योग ही कहा गया है।

नक्षत्र चन्द्र सूर्य मंडल सीध का चार्ट

	चन्द्र मंडल	नक्षत्र मंडल	सूर्य मंडल
तीनों साथ	1	1	1
दो साथ	2	×	14
तीनों साथ	3	2	27
दो साथ	4	×	40
दो साथ	5	×	53
दो साथ	6	3	× (66-67)
दो साथ	7	4	× (79-80)
दो साथ	8	5	× (92-93)
साथ नहीं	9	×	× (105-106)
दो साथ	10	6	× (118-119)
तीनों साथ	11	7	132
दो साथ	12	×	145
दो साथ	13	×	158
दो साथ	14	×	171
तीनों साथ	15	8	184

चन्द्र और नक्षत्र के मंडल– चन्द्र के चलने के रास्ते - 15 मंडल है और नक्षत्रों के चलने के मार्ग 8है। ये आठ मंडल चन्द्र के आठ मंडलों की सीध में है। और चन्द्र के सात मंडलों की सीध में नक्षत्र का मंडल नहीं है। वे आठ मंडल क्रमशः ये हैं- 1, 3, 6, 7, 8, 10, 11, 15वां ये क्रमशः पहले से आठवें तक के नक्षत्र मंडल की सीध में है। अतः चन्द्र के 2, 4, 5, 9, 12, 13, 14 ये सात मंडल ऐसे हैं जिनकी सीध में कोई नक्षत्र मंडल नहीं है।

सूर्य की सीध में चन्द्र नक्षत्र मंडल– चन्द्र का 6, 7, 8, 9, 10 ये पांच मंडल सूर्य मंडल की सीध में नहीं आते हैं। शेष दस मंडल 1, 2, 3, 4, 5, एवं 11, 12, 13, 14, 15 ये दस मंडल सूर्य मंडल की सीध में आते हैं। चन्द्र का पहला तीसरा ग्यारहवां पंद्रहवां ये चार मंडल ऐसे है जिनकी सीध में नक्षत्र मंडल भी है और सूर्य मंडल भी है।

विशेष– चन्द्र के छट्ठे से दसवें तक के मंडल क्रमशः 66,79,92,105,118वें सूर्य मंडल से कुछ कुछ आगे हो जाने से उनकी सीध छूट जाती हैं। जो 132 वें में जाते एक सूर्य मंडल जितना आगे बढ जाने से चन्द्र मंडल आगे हो जाने से 131 वें के स्थान पर 132 वें में साथ हो जाता है फिर वह 11 से 15 तक पांच मंडल में साथ चलता हैं।

चन्द्र मंडल के बीच सूर्य मंडल समवतार– एक चन्द्र मंडल के बीच में 12 सूर्य मंडल होते हैं और तेरहवां साथ होने वाला। यों 13-13 मंडल बाद साथ होता है अतः 13-13 जोड़ते जाने से अलग चन्द्र मंडल का और सूर्य मंडल का संगम मंडल आ जाता है यह क्रम पांच मंडल तक चलता है फिर तेरहवां सूर्य मंडल कुछ पीछे रह जाता हैं और चौदहवें सूर्य मंडल तक छट्ठा सातवां चन्द्र मंडल पंहुच नहीं पाता हैं अतः तेरहवें से आगे और चौदहवें से पहले बीच में ही रह जाता है यह क्रम चन्द्र के दसवें मंडल तक चलता है ग्यारहवें मंडल में सूर्य के एक मडंल का अंतर पार हो जाने से 14 वे मंडल के अंतर में जाकर चन्द्र सूर्य के मंडल पुनः सीध में हो जाते है। ग्यारह से पन्द्रहवें मंडल तक जाते देशोन एक मंडल जितना अंतर होकर दोनों के विमान सीध में आ जाते हैं। कल्पना से 16वां मंडल यदि होता तो फिर उसमें सूर्य चन्द्र का साथ छूट जाता।

अतः चन्द्र के 15 मंडल में 14 अंतर है प्रत्येक में 13 सूर्य मंडल साधिक का अन्तर हैं। $14 \times 13 = 182$ हुए। एक मंडल जितना अंतर ग्यारहवें में बढ गया अतः 183 सूर्य मंडल का अंतर चन्द्र के पहले मंडल से 15 वे मंडल के बीच में पडता हैं। कुल 184 सूर्य मंडल है उनके अंतर 183 ही होते हैं।

चन्द्र मंडल अंतर– प्रत्येक चन्द्र मंडल में 35 $\frac{30}{61}$, $\frac{4}{7}$ योजन का अंतर होता है और 56/61 योजन का मान होता है अतः अंतर और विमान को जोड कर 14 आंतरों से गुणा करने पर एवं 56/61 जोडने पर 510 योजन क्षेत्र निकल आयेगा।

सूर्य मंडल अंतर– प्रत्येक सूर्य मंडल अंतर 2 योजन है और 48/61 योजन का विमान हैं। इन दोनों को जोडकर 183 आंतरों से गुणा करने पर एवं 48/61 जोडने पर 510 योजन निकल आयेगा।

नक्षत्र मंडल अंतर– नक्षत्र मंडलों के अंतर का एक सरीखा क्रमिक हिसाब वाला माप नहीं है किन्तु स्थिर स्थाई बिना हिसाब का माप हैं। उसके आठ मंडल है जिसके सात अंतर विमान सहित इस प्रकार हैं। (1) 72 $\frac{51}{61}$, 1/7 (2) 109 $\frac{15}{61}$, 5/7, (3) 36 $\frac{25}{61}$, 4/7, (4) 36 $\frac{25}{61}$, 4/7 (5) 72 $\frac{25}{61}$, 4/7 (6) 36 $\frac{25}{61}$, 4/7, (7) 145 $\frac{41}{61}$, 2/7 इन सात अंतर का जोड करने पर लगभग 510 योजन हो जाते हैं।

नोट– इन जोड़ों में 510 योजन होने से सूक्ष्मतम फर्क हो सकता है क्योकि सम भिन्न न होने से कुछ साधिक या कुछ न्यून अंश रह जाता हैं।

बारहवां प्रति प्राभृत-

नक्षत्र देवता- प्रत्येक नक्षत्र विमान के स्वामी-अधिपति देवता होते है उनके नाम आगे सोलहवें उद्देशक के चार्ट में देखें।

तेरहवां प्रति प्राभृत-

मुहूर्तों के नाम- एक अहोरात्र में तीस मुहूर्त्त होते है, एक मुहूर्त्त 48 मिनट का होता हैं। 60 मिनट का एक घन्टा होता है अर्थात् 24 घन्टों में 30 मुहूर्त्त होते हैं। इन तीस मुहूर्त्तों के नाम सूत्र में कहे गये हैं।

चौदहवां प्रति प्राभृत-

दिवस रात्रि के नाम- एक पक्ष में एकम बीज आदि 15 दिन होते हैं। उनमें 15 रात्रियां और 15 दिवस होते है उन सभी के अलग अलग नाम होते है जो सूत्र में बताये गये हैं।

पंद्रहवां प्रति प्राभृत-

तिथियों के नाम- पंद्रह तिथियों के विशिष्ट गुणसूचक नाम होते है। उनमें 15 दिवस तिथि के 5 नाम और 15 रात्रि तिथि के 5 नाम है यथा-

नक्षत्र चन्द्र सूर्य मंडल सीध का चार्ट

प्रसिद्ध तिथि			दिवस तिथि नाम	रात्रि तिथि नाम
एकम	छट्ठ	ग्यारह	नंदा	उग्रवती
बीज	सातम	बारस	भद्रा	भोगवती
तीज	अष्ठमी	तेरस	जया	जसवती
चौथ	नवमी	चौदस	तुच्छा	सर्वसिद्धा
पंचम	दसवी	(पूर्णिमा) पण्णरस	पूर्णा	शुभनामा

सोलहवां प्रति प्राभृत-

नक्षत्रों के गोत्र एवं अधिपति देव- पहला अभिजित और 28वां उत्तराषाढा नक्षत्र हैं।

नक्षत्र	देवनाम	गौत्र	नक्षत्र	देवनाम	गौत्र
1	ब्रह्मा	मद्गलायन	15	ब्रहस्पती	उद्धायायन
2	विष्णु	शंखायन	16	सर्प	मांडव्यायन
3	वसु	अग्नितापस	17	पितृ	पिंगलायन (पिंगायण)
4	वरुण	कर्णलोचन	18	भग	गोपाल्यायन
5	अज	जातुकर्ण	19	अर्यम	काश्यप
6	अभिवृद्धि	धनंजय	20	सविता	कोशिक
7	पुष्य	पुष्यायन	21	तुष्ठ	दर्भियायन
8	अश्व	आश्वादन	22	वायु	चामरक्षा
9	यम	भग्नवेश	23	इन्द्राग्नि	सुंगायण
10	अग्नि	अग्निवेश	24	मित्र	गोलव्यायण
11	प्रजापति	गौतम	25	इन्द्र	चिकित्स्यायन
12	सोम	भारद्वाज	26	निरति (नैऋति)	कात्यायन
13	रुद्र	लोहित्यायन	27	जल	वर्द्धितायन
14	अदिति	वाशिष्ट	28	विश्व	व्याघ्रावृत्य

सतरहवां प्रति प्राभृत–

इस प्राभृत की ऐतिहासिक विचारणा–

अभिजित से नक्षत्रों का प्रारम्भ– दसवें प्राभृत के प्रथम प्रति प्राभृत में 28नक्षत्रों का क्रम बताया गया है जिसमें सर्व प्रथम कृतिका से प्रारम्भ मानने वालों का मत बताया गया हैं। फिर मघा से, धनिष्ठा से, अश्विनी से और अंत में भरणी नक्षत्र से 28नक्षत्र का प्रारम्भ कहने वाला मत बताया गया हैं। ये सब क्रम अयुक्त हैं। जिनानुमत एवं सही क्रम अभिजित से प्रारम्भ होकर उत्तराषाढा में समाप्त होने वाला हैं। इस सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में नक्षत्र सम्बन्धी जितनी भी जिनानुमत मान्यताएं प्ररूपणाएं हैं वे अभिजित से प्रारम्भ करने के क्रम से कही गई हैं। अन्य क्रम से नहीं कही गई हैं। अन्य क्रम से अन्य मतों की ही प्ररूपणा की गई हैं।

जिनानुमत कथन में नक्षत्रों के 1. नाम 2. आकार 3. तारे, 4. देवता 5. गौत्र आदि विषय अभिजित से ही प्रारम्भ करके कहे गये हैं। जो आठवें नवमें बारहवें, सोलहवें प्रति प्राभृत में देखें जा सकते हैं। इसी तरह 6. पूनम 7. अमावस 8. कूल-उपकूल आदि का स्वमत कथन भी श्रावण महीने के नक्षत्रों से ही प्रारम्भ किया गया हैं।

कृतिका नक्षत्रों से प्रारम्भ– इस सतरहवें प्रति प्राभृत में नक्षत्रों के भोजन सम्बन्धी वर्णन कृतिका नक्षत्र से प्रारम्भ करके भरणी नक्षत्र तक कहे गये हैं। अन्य कोई क्रम या मतांतर अथवा स्वमत का अभिजित नक्षत्र के क्रम वाला कुछ भी वर्णन यहां नहीं हैं। अतः कृतिका से प्रारम्भ करके कहा गया यह वर्णन जिनानुमत तो नही है, यह निश्चित एवं स्पष्ट हैं। क्योकि जिनानुमत कथन इस सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में अभिजित से ही प्रारम्भ किये जाते है यह पूर्ण प्रामाणित तत्त्व हैं। जिसके अनेक प्राभृतों के उदाहरण ऊपर दिये गये हैं।

लिपि दोष विकल्प– इसलिये कृतिका के प्रारम्भ से कही गई यह पहली मंतातर की मान्यता हैं। उसके बाद अन्य चार मान्यताओं का और फिर स्वमत जिनानुमत का नक्षत्र भोजन सम्बन्धी सही प्ररूपण का पाठ इस प्रति प्राभृत में उपलब्ध नहीं है। जो कभी भी लिपी काल के दोष में अभाव ग्रस्त हो गया हैं। ऐसा एक विकल्प परंपरा से प्राप्त हो रहा हैं।

प्रक्षिप्तांश विकल्प– दूसरा विकल्प यह सामने आता है कि इस दसवें प्राभृत का यह सतरहवां प्रति प्राभृत किसी के द्वारा प्रक्षिप्त करके 21 प्रति प्राभृत के 22 प्रति प्राभृत बना दिये गये है। क्योकि अन्य शास्त्रों में भी लिपी काल में मांस भक्षण करने के पाठ प्रक्षिप्त कर जैन मुनि को आमिष भोजी और मद्य सेवी दिखाने की चेष्टाएं की गई हैं। तदनुसार यह प्रति प्राभृत बनाकर एवं यहां प्रक्षिप्त कर उसी मनीवृति का पोषण किया हो ऐसा हो सकता हैं। क्योंकि इसमें भी ऐसे घृणित नक्षत्र भोजन के कथन किये गये है, जो स्पष्ट ही अनार्य वचन है किन्तु आर्य वचन नहीं हैं।

जैन मुनि का कल्प– इस प्रतिप्राभृत में जो भी नक्षत्र भोजन का वर्णन है वह किसी जैन श्रमण को बोलना, लिखना, प्ररूपण करना अकल्पनीय होता हैं । ऐसा प्ररूपण तो शास्त्रों में- आगमों में सिद्धांत रूप से कोई भी सद्बुद्धि वाला सामान्य अहिंसक साधक भी नहीं कर सकता है। तब 6काया के परिपूर्ण रक्षक जैन श्रमण ऐसे सचित पदार्थों के खाने सम्बन्धी एवं आमिष भोजन सम्बन्धी कथन कदापि नहीं कर सकते। क्योकि आज तक जिन शासन के 2500 वर्षों में जैन श्रमणों में ऐसी मांस मद्य सेवक कोई भी श्रमण समुदाय नहीं हुई एवं नहीं है जो कि ऐसे निम्न प्ररूपण करे।

यह कैसी वफादारी– इसलिये ऐसे शास्त्र के प्रक्षिप्त पाठों को ज्यों के त्यों रखकर छपाने, प्रकाशित करवाने को आगम की वफादारी मानना विद्वानों का एक प्रकार का बुद्धि भ्रम ही हैं। जब ये भगवद् वाक्य नहीं है, आगम वाणी नहीं है शास्त्र में प्रक्षिप्त पाठ है, या त्रृटित विकृत पाठ है, जिनानुमत नहीं हैं। तब उन्हें रखने में वफादारी नहीं किन्तु कर्त्तव्य हीनता ही होती हैं। क्योकि ऐसे विकृत या प्रक्षिप्त पाठों को ज्यों का त्यों रख देने से जिन शासन की महत्ति अवहेलना होती हैं। श्रद्धा निरपेक्ष विद्वानों को जिन शासन पर असत्य आपेक्ष लगाने का मौका मिलता है, आगम के नाम और आगम प्रमाण के आधार पर उन्हें यह बेधड़क कहने को मिलता है कि जैन में तो क्या जैन श्रमणों में भी मांस मद्य भक्षण एक दिन था तभी उनके शास्त्रों में ऐसे स्पष्ट कथन है, जिन्हें वे गोलमाल करके अर्थ परिवर्तन के नाम से छिपाने का प्रयत्न करते हैं।

जब कि वास्तविकता तो यह है कि जैनागम मद्य मांस के आहार को नरक गति में जाने का प्रबल कारण बताते हैं और जैन धर्म की हार्दिक श्रद्धा रखने वाला आज का हुण्डासर्पिणी (महा कलियुग) काल का छोटा से छोटा साधक भी मद्य मांस का सेवन करना तो दूर रहा किन्तु उसके सेवन का संकल्प भी नहीं कर सकता। इसलिये सत्य यह है कि महाज्ञानी आगम रचियता श्रमण ऐसी रचना कदापि नहीं कर सकते हैं। अतः ऐसे भ्रम मूलक एवं असत्य प्रचारक पाठों को ज्यों का त्यों रख कर प्रकाशित कर देना एक सामान्य जैन के लिये भी कदापि वफादारी नहीं हो सकती है तब विद्वान संपादक पूज्य श्रमण वर्ग इसे वफादारी समझे तो यह उनका बुद्धि भ्रम, चिंतन भ्रम ही कहलायेगा और उनके इस बुद्धि भ्रम से जिन शासन की घोर अवहेलना भविष्य में भी होती रहेगी। अतः यह अनर्थकारी निर्णय जिम्मेदार विद्वानों के लिये अनुपयुक्त हैं। एवं यह एक ऐसी गतानुगत भेड़ चाल वृत्ति

है कि ''जहां कही मरी मक्खी का रूप शास्त्र पृष्ट पर अंकित है तो वैसा ही अगली प्रति बनाने में भी चिन्ह करना चाहिये''। ऐसा करना विद्वान संपादकों को शोभा नहीं देता हैं।

इस प्रकार यह प्राभृत दूषित-विकृत त्रुटित या प्रक्षिप्त कुछ भी हो आगम के मध्य रखने योग्य नहीं हैं। इसलिये इसका साराशं यहां नहीं दिया जा रहा हैं।

विषय– अभिजित से प्रारम्भ न करके कृतिका से प्रारम्भ करके सभी नक्षत्रों में अमुख पदार्थ खाकर जाने से कार्य सिद्धि बताई गई हैं। वे पदार्थ सचित भी है और अचित भी है मादक भी है और आमिष (मांस) रूप भी हैं।

सचित पदार्थ भक्षण प्ररूपक पाठ की अकल्पनीयता– कई आधुनिक परंपराग्रही विद्वान उन आमिष शब्दों से वनस्पति परक अर्थों का समन्वय करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु वे श्रमण उन सचित वनस्पतियों के खाने की प्रेरणा वाले पाठों का कथन, लेखन, एवं प्रचार करके भी अपने संयम और कल्प मर्यादा को दूषित ही करते हैं। क्योकि यह नक्षत्र भोजन के कथन का प्ररूपण भी सावद्य (पाप) का प्रेरणात्मक हैं। ऐसे सावद्य सचित भक्षण के प्रेरणात्मक भावों का कथन या लेखन जैन श्रमणोपयुक्त कदापि नहीं हो सकता हैं।

रचनाकार की योग्यता– दूसरी बात यह है कि आगम रचना करने वाले बहुश्रुत श्रमण एवं मौलिक रचनाकार गणधर ऐसे भ्रमित लोक प्रचलित मांस सूचक वनस्पति शब्दों का प्रयोग कर भ्रम फैलाने का कार्य करे ऐसा संभव नहीं हैं। अनेक भाषा शब्दों के प्रकाण्ड विद्वान विशिष्ट अवधिज्ञानी 14 पूर्वी गणधर प्रभू से ऐसी रचना करवाना मानना भी एक प्रकार का परंपराग्रह रूपी अंधापन चक्षुहीनता ही हैं। वास्तव में ऐसी किलष्ट कल्पनाओं की आवश्यकता ही नहीं हैं। क्याकिं अनेंकों प्रहार लिपि काल में आगमों में हुए है यह निः संदेह हैं। अतः अनर्थकारी दूषित ऐसे पाठों को रखने के आग्रह की आवश्यकता कुछ भी नहीं हैं।

केवल मूल पाठ का प्रकाशन भ्रम मूलक हैं– कई समर्थ प्रकाशक एवं विद्वानों के ग्रुप इस प्रति प्राभृत के कारण संपूर्ण गणित ज्योतिष शास्त्र के भंडार रूप इस आगम का अनुवाद विवेचन ही छिपाने की कोशीश करते हुए केवल मूल पाठ छपा कर रख देते है और उसमें आमिष भोजन के पाठ भी ज्यों के त्यों रख देते हैं। यह जिन शासन की सच्ची सेवा नहीं किन्तु अकर्मण्यता है और भ्रम मात्र है वास्तव में इस उपेक्षावृति से जिन शासन को कंलकित करने वाले भविष्य का निर्माण होता हैं।

दृष्टांत– जिस प्रकार अपने शरीर के मांस भाग में पड़े कीड़ों को संभालकर छिपाकर नहीं रखा जाता है तब सूत्र में पड़े ऐसे पाठ भ्रमित मालूम पड़ते हुए भी छिपाकर ज्यों का त्यों रख देना कहां तक उचित हो सकता हैं। और उसके पीछे पूरे शास्त्र का अर्थ विवेचन छिपाना तो भी हास्यास्पद हैं। यथा- किसी के कपड़ों में जुएं पड जाय तो उन्हें निकालने का प्रयत्न करने की जगह यदि वह छिपाने का प्रयत्न करे अथवा कपड़ों का ही त्याग कर दे तो उसे उपयुक्त नहीं कहा जायेगा किन्तु उसके द्वारा जूंओं का शोधन करना ही उपयुक्त कहलायेगा। इसी प्रकार हमें भी ऐसे आगम प्रक्षेपों को संभालने छिपाने की आवश्यकता नहीं हैं। जब किसी ने प्रक्षेप कर ही दिया है या विकृत हो गया है उसे अनाप्त वाणी जानकर निकाल कर आगम को शुद्ध रखना एवं उसके अन्य तत्त्वों का अर्थ विवेचन स्पष्ट प्रकट करना, यही सुधी आगम संपादकों, प्रकाशक-समितियों एवं विद्वानों से भरपूर संघों का कर्तव्य होता हैं।

उपसंहार– आशा है इस संसूचन पर जिन शासन की सेवा करने वाले आगम संपादक आदि कुछ विचार कर ध्यान देंगे।

नोट– आगम प्रक्षेपों के ज्ञान अनुभव के लिये जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारांश के चौथे वक्षस्कार में सिद्धायतन प्रकरण और उसका परिशिष्ट भी देखना चाहिए।

अठारहवां प्रति प्राभृत -

युग में नक्षत्र योग चन्द्र सूर्य के साथ- 5 वर्ष का एक युग होता हैं। उस युग में चन्द्र के साथ प्रत्येक नक्षत्र 67 बार योग जोड़ता हैं। अर्थात् साथ साथ चलता हैं। एवं सूर्य के साथ पांच वर्ष में प्रत्येक नक्षत्र 5-5 वार योग जोड़ते हैं।

तात्पर्य यह है कि पांच वर्ष में 67 नक्षत्र मास होते है। एक नक्षत्र मास 28ही नक्षत्रों का चन्द्र के साथ एक-एक बार योग जोड़ने से बनता हैं। अतः उन्हें 67 नक्षत्र महिनों में 67 बार चन्द्र के साथ योग करने का संयोग मिलता हैं। सूर्य के साथ एक नक्षत्र का एक वर्ष में एक बार योग करने का (साथ चलने का) संयोग होता है, अतः पांच वर्ष में सभी नक्षत्रों का पांच पांच बार योग होता हैं।

उन्नीसवां प्रति प्राभृत-

बारह महीनों के लौकिक नाम भी है और लोकोत्तरिक नाम भी है वे इस प्रकार हैं- 1. लौकिक नाम श्रावण भादवा आदि।

लोकोत्तरिक नाम- श्रावण आदि के ही क्रम से ये नाम है- 1. अभिनंदन 2. सुप्रतिष्ठ 3. विजय 4. प्रीतिवर्द्धन 5. श्रेयांश 6. शिव 7. शिशिर 8. हेमंत 9. वसंत 10. कुसुम संभव 11. निदाह 12. वन विरोधी ।

बीसवां प्रति प्राभृत-

पांच संवत्सर-

नक्षत्र संवत्सर- प्रत्येक नक्षत्र के द्वारा चन्द्र के साथ एक बार योग जोड़ने पर एक नक्षत्र मास होता हैं। 12 बार योग जोडने पर एक नक्षत्र संवत्सर होता हैं। इस 12 मास या 12 बार योग की अपेक्षा नक्षत्र संवत्सर 12 प्रकार का कहा गया हैं।

अन्य अपेक्षा से नक्षत्र संवत्सर 12 वर्ष का होता है क्योकि वृहस्पति महागृह एक-एक नक्षत्र के साथ क्रमशः योग करते करते 12 वर्ष में 28नक्षत्रों के साथ योग पूर्ण करता हैं।

युग संवत्सर- युग पांच वर्ष का होता हैं। श्रावण आदि महिनों की अपेक्षा एक वर्ष 12 महीना अर्थात् 24 पक्ष का होता हैं।

युग का पहला चन्द्र वर्ष 12 मास 24 पक्ष का होता हैं।

युग का दूसरा चन्द्र वर्ष भी 12 मास 24 पक्ष का होता हैं।

युग का तीसरा अभिवर्द्धित वर्ष 13 मास 26पक्ष का होता हैं।

युग का चौथा चन्द्र वर्ष 12 मास 24 पक्ष का होता हैं।

युग का पांचवा अभिवर्द्धित वर्ष 13 मास 26पक्ष का होता हैं।

इस प्रकार पांच वर्ष का युग 62 मास 124 पक्ष का होता हैं।

प्रमाण संवत्सर- संवत्सर का प्रमाण 5 प्रकार से कहा गया है अर्थात् परिमाण-काल माप की अपेक्षा 5 प्रकार के संवत्सर होते हैं।

नाम	मास दिन	वर्ष दिन
1. नक्षत्र संवत्सर	$27\frac{21}{67}$	$327\frac{51}{67}$
2. चन्द्र संवत्सर	$29\frac{32}{62}$	$354\frac{12}{62}$
3. ऋतु संवत्सर	30	360
4. सूर्य संवत्सर	$30\frac{1}{2}$	366
5. अभिवर्द्धित संवत्सर	$31\frac{121}{124}$	$383\frac{44}{62}$

लक्षण संवत्सर– पांच संवत्सरों का ऊपर परिमाण कहा गया है । यहां इन्हीं पांचों के लक्षण गुण बताये जा रहे हैं। 1. नक्षत्र यथा समय योग जोडते हैं ऋतुएं भी यथा समय परिणत होती हैं। अति गरमी ठंडी नहीं होती हैं। एवं वर्षा विपुल होती है वह लक्षण से ''नक्षत्र संवत्सर'' हैं। 2. पूनम को चन्द्र नक्षत्र योग यथा समय नहीं होता है, गर्मी सर्दी रोग बहुल होती हैं, दारूण परिणामी अति वृष्टि होती हैं। वह लक्षण से चन्द्र संवत्सर हैं। 3. वनस्पतिएं यथा समय अंकुरित पुष्पित फलित नहीं होती हैं। विषम समय में फूल या फल लगते है, वर्षा बराबर नहीं होती हैं, कम होती हैं। वह लक्षण से ''ऋतु (कर्म) संवत्सर'' हैं। 4. पृथ्वी पानी सरस सुंदर रसोपेत होते है, फल फूलों में यथा योग्य रस होता है प्रचुर रस होता हैं। अल्प जल से भी धान्यदि की सम्यक् उत्पत्ति होती है, यह 'सूर्य संवत्सर' का लक्षण है। 5. सूर्य अधिक अधिक तपता है, वर्षा से सभी जल स्त्रोत भर जाते है, यह ''अभिवर्द्धित संवत्सर'' का लक्षण हैं।

शनिश्चर संवत्सर– नक्षत्रों के साथ शनि महाग्रह का योग 30 वर्ष में पूर्ण होता है अतः शनिश्चर संवत्सर 30 वर्ष का होता हैं। और 28नक्षत्रों के योग के कारण 28प्रकार का होता हैं।

इक्कीसवां प्रति पाहुड–

नक्षत्रों में गमन– नक्षत्रों के 7-7 के चार विभाग कहे गये हैं जिसमें 1 से 7 तक अर्थात् अभिजित से रेवती तक के नक्षत्र पूर्व द्वार वाले है अर्थात् इन नक्षत्रों में पूर्व दिशा में जाना शुभ होता है। इसी प्रकार 2. अश्विनी से पुनर्वसु तक के नक्षत्र दक्षिण द्वारिक है। 3. पुष्य से चित्रा नक्षत्र के सात नक्षत्र पश्चिम द्वारिक है। 4. स्वात से उत्तराषाढ़ा तक के सात नक्षत्र उत्तर द्वारिक है अर्थात् इन सात नक्षत्रों में उत्तर दिशा में जाना शुभ होता है।

मतांतर– यह नक्षत्रों के क्रम से सम्बन्धित वर्णन है और नक्षत्र क्रम के विषय में पांच मतांतर है जो इस प्राभृत के प्रथम प्रति प्राभृत में कहे गये हैं, अतः यहां भी पांच मतांतर है, वे इस प्रकार है- इन सात-सात नक्षत्रों के जोड़ों का कथन स्वमतानुसार जैसे अभिजित के प्रारम्भ करके चार विभाग से कहा गया है उसी प्रकार उक्त पांच मान्यतानुसार- 1. कृतिका 2. मघा 3. धनिष्ठा 4. अश्विनी और 5. भरणी से प्रारम्भ करके चार सप्तक क्रमशः पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर द्वार वाले कहे गये हैं। वे पांचों क्रम अयोग्य एवं अमान्य है। अभिजित आदि का क्रम ही यहां स्वमत कथन है, जो ''वयं पुण एवं वयामो'' वाक्य प्रयोग के साथ दिया गया है।

बावीसवां प्रति प्राभृत–

इस जम्बूद्वीप में दो चन्द्र प्रकाश करते है, दो सूर्य तपते हैं, 56नक्षत्र जोग जोड़ते हैं, यथा- दो अभिजित यावत् दो उत्तराषाढ़ा। चन्द्र सूर्य के साथ इनका योग होने का समय दूसरे प्रति प्राभृत में कहा गया है। अतः वहीं देखें।

नक्षत्र का सीमा विष्कंभ– अपने अपने मंडल के 109800 भाग किये जाय उन भागों में से निम्न भाग प्रमाण नक्षत्रों का योग जोड़ने का अपना क्षेत्र सीमा विष्कंभ होता है। यथा-

नाम	नक्षत्र संख्या		सीमा (क्षेत्र) विष्कंभ		कुल योग
1. अभिजित	2	×	630	=	1260
2. शतभिषक आदि 6	12	×	1005	=	12060
3. श्रवण आदि 15	30	×	2010	=	60300
4. उत्तराभाद्रपद आदि 6	12 56	×	3015	=	36180 109800

यहां जो 630 आदि है वे मंडल के भाग हैं, उन्हीं को जोड़ने से कुल 109800 भाग होते हैं। उक्त सीमा क्षेत्र उन नक्षत्रों का आगे पीछे मध्य का मिलाकर कुल क्षेत्र है। इस क्षेत्र की सीध में चन्द्र सूर्य रहे जब तक इनका योग गिना जाता है। इनके विमान इस सीमा क्षेत्र के बीच में होते हैं। 6,15 आदि नक्षत्र संख्या के नाम इस प्राभृत के दूसरे प्रति प्राभृत में देखें। जिस नक्षत्र का जितने दिन का चन्द्र के साथ योग होता है उसके सडसठिये भाग के तीस भाग करने पर उक्त राशि हो जाती है यथा- जो नक्षत्र 30 मुहूर्त = 1 दिन योग जोड़ते हैं उसका सीमा विष्कम्भ 1 × 67 × 30 = 2010 भाग का है इसलिये सूत्र में ''सत्तसट्ठि भाग तीसई भागाणं'' 67 वे भाग के तीसवें भाग विशेषण लगाया है।

नक्षत्र अमावस्या योग– अभिजित नक्षत्र हर 44 वीं अमावस्या को सुबह शाम चन्द्र के साथ जोग जोड़ता है। उसके अतिरिक्त कोई भी नक्षत्र चन्द्र के साथ अमावस्या को दिन में योग नहीं जोड़ते हैं। किन्तु पूर्णिमा के दिन रात्रि में ही चन्द्र के साथ योग जोड़ते हैं।

चन्द्र पूर्णिमा योग– चन्द्र जिस मंडल के जिस स्थान पर युग की अंतिम 62 वीं पूर्णिमा पूर्ण करता है उस स्थान से 32/124 मंडल भाग जितने क्षेत्र में आगे जाकर प्रथम पूर्णिमा (नये युग की) पूर्ण करता है। इसी प्रकार दूसरी तीसरी पूर्णिमा भी उस पूर्व पूर्णिमा कृत मंडल स्थान से 32/124 मंडल भाग आगे जाकर पूर्ण करता है। इस तरह करते हुए युग समाप्ति की 32 वीं पूर्णिमा मंडल के दक्षिणी चतुर्थांश भाग में 27/31, 18/20 भाग जाने पर और 3/31, 2/20 भाग उस चतुर्थांश दक्षिणी भाग के शेष रहने पर वहां समाप्त करता है।

सूर्य पूर्णिमा योग– सूर्य भी युग की 32वीं पूर्णिमा जहां समाप्त करता है उस स्थान से 94/124 मंडल भाग आगे जाकर पहली पूर्णिमा समाप्त करता है। इसी प्रकार दूसरी तीसरी पूर्णिमा उस पूर्व पूर्णिमा कृत मंडल स्थान में 94/124 मंडल भाग आगे जाने पर पूर्ण करता है। इस तरह करते हुए युग समाप्ति की 62वीं पूर्णिमा मंडल के पूर्वी चतुर्थांश में 27/31, 18/20 भाग जाने पर 3/31, 2/20 भाग उस पूर्वी चतुर्थांश का अवशेष रहने पर वहां समाप्त करता हैं।

चन्द्र अमावस्या योग– चन्द्र जिस मंडल के जिस स्थान पर युग की अंतिम अमावस्या पूर्ण करता है उस स्थान से 32/124 भाग मंडल जितने क्षेत्र आगे जाकर युग की प्रथम अमावस्या पूर्ण करता है। इसी तरह पूर्णिमा के वर्णन के समान जानना। जहां चन्द्र 62 वीं पूर्णिमा पूर्ण करता है वहां से 16/124 भाग मंडल पहले ही 62वीं अमावस्या पूर्ण करता है। अर्थात् दक्षिणी चतुर्थांश मंडल के 11/31, 18/20 भाग जाने पर और 19/31, 2/20 भाग उस दक्षिणी चतुर्थांश भाग का अवशेष रहने पर उस स्थान पर चन्द्र 62वीं अमावस्या समाप्त करता है।

सूर्य अमावस्या योग– सूर्य पहले की अमावस्या समाप्ति स्थान से 94/124 मंडल भाग आगे आगे अगली अमावस्या पूर्ण करता है। जिस स्थान पर 62वीं पूर्णिमा पूर्ण करता है उस स्थान से 47/124 मंडल भाग पहले ही सूर्य 62वीं अमावस्या पूर्ण करता है।

चन्द्र सूर्य नक्षत्र पूर्णिमा योग–

	चन्द्र -	मुहूर्त	सूर्य -	मुहूर्त
1. पहली पूनम	धनिष्ठा	$3\frac{19}{62}$, 65/67	पूर्वा फाल्गुनी	$28\frac{38}{62}$, 32/67
2. दूसरी पूनम	उतराभाद्रपद	$27\frac{14}{67}$, 63/67	उतरा फाल्गुनी	$7\frac{33}{67}$, 21/67
3. तीसरी पूनम	अश्विनी	$21\frac{26}{62}$, 63/67	चित्रा	$1\frac{28}{62}$, 30/67
4. बारहवीं पूनम	उतराषाढा	$26\frac{26}{62}$, 54/67	पूनर्वसु	$16\frac{8}{62}$, 20/67
5. बासठवीं पूनम	उतराषाढा	चरम समय	पुष्य	$19\frac{43}{62}$, 33/67

जो मुहूर्त्त प्रमाण दिये हैं उतने समय का योग काल अवशेष रहने पर वह नक्षत्र पूर्णिमा पूर्ण करता है।

चन्द्र सूर्य नक्षत्र अमावस्या योग–

	चन्द्र -	मुहूर्त	सूर्य - मुहूर्त
1. पहली अमावस्या	अश्लेषा	$1\frac{40}{62}$, 62/67	अश्लेषा - $1\frac{40}{62}$, 62/67
2. दूसरी अमावस्या	उतराफाल्गुनी	$40\frac{35}{62}$, 65/67	=
3. तीसरी अमावस्या	हस्त	$4\frac{30}{62}$, 62/67	=
4. बारहवीं अमावस्या	आर्द्रा	$4\frac{10}{62}$, 54/67	=
5. बासठवीं अमावस्या	पुनर्वसु	$22\frac{42}{62}$	=

नोट– चन्द्र अमावस्या के दिन सूर्य के साथ ही रहता है अतः दोनों के नक्षत्र योग एक समान ही होते हैं। इसी लिये चार्ट में = बराबर का चिन्ह किया है।

चन्द्र नक्षत्र का योग काल– एक नाम के दो-दो नक्षत्र है। जिस नक्षत्र के साथ चन्द्र आज जिस समय योग पूर्ण करता है उससे 819 $\frac{24}{67}$, 62/67 मुहूर्त्त बाद उस नाम वाले दूसरे नक्षत्र के साथ अन्य स्थान में योग पूर्ण करता है। 1638 $\frac{49}{62}$, 65/67 मुहूर्त्त बाद पुनः इसी नक्षत्र के साथ अन्य स्थान में योग पूर्ण करता है। 54900 मुहूर्त्त बाद उसी नाम वाले दूसरे नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है। 109800 मुहूर्त्त बाद उसी नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है।

सूर्य नक्षत्र का योग काल– 366दिन बाद सूर्य उस नाम वाले नक्षत्र के साथ योग पूर्ण करता है। 732 दिन बाद पुनः उसी नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है। 1830 दिन बाद उस नाम वाले नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है। 3660 दिन बाद उसी नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है।

उपसंहार- जम्बूद्वीप में 2 सूर्य 2 चन्द्र और सभी नक्षत्र भी दो-दो है। जब जहां एक सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र गति करता है तब दूसरा सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र भी उसकी सीध में प्रति पक्ष दिशा में गति करता हुआ, प्रति पक्ष क्षेत्र को प्रकाशित आतापित करता है। जब एक चन्द्र जिस नक्षत्र से योग युक्त होता है तब दूसरा चन्द्र भी उसी नाम वाले दूसरे नक्षत्र से योग युक्त होता है। इसी तरह दोनों सूर्य भी सदृश नक्षत्र से योग युक्त होते हैं। इस प्रकार दोनों ही सूर्य चन्द्र यथा क्रम से यह नक्षत्र के योग से युक्त होते रहते हैं। यह दसवें प्राभृत का 22वां प्रति प्राभृत पूर्ण हुआ।

ग्यारहवां प्राभृत-

संवत्सर युग की आदि समाप्ति योग-

नाम	चन्द्र योग मुहूर्त	सूर्य योग मुहूर्त
1. युग का प्रारम्भ	अभिजित- प्रथम समय	पुष्य- 21 $\frac{43}{62}$, 33/67
2. प्रथम चंद्र संवत्सर की समाप्ति	उत्तराषाढा- 26$\frac{26}{62}$, 54/67	पुनर्वसु- 16$\frac{8}{62}$, 20/67
3. दूसरे चंद्र संवत्सर की आदि	उत्तराषाढा- 26$\frac{26}{62}$, 54/67	पुनर्वसु- 16$\frac{8}{62}$, 20/67
4. दूसरे चंद्र संवत्सर की समाप्ति	पूर्वाषाढा- 7 $\frac{53}{62}$, 41/67	पुनर्वसु- 42$\frac{35}{62}$, 7/67
5. तीसरे अभिवर्द्धित संवत्सर की आदि	पूर्वाषाढा- 7 $\frac{53}{62}$, 41/67	पुनर्वसु- 42$\frac{35}{62}$, 7/67
6. तीसरे अभिवर्द्धित संवत्सर की समाप्ति	उत्तराषाढा- 13$\frac{13}{62}$, 27/67	पुनर्वसु- 2 $\frac{56}{62}$, 60/67
7. चौथे चन्द्र संवत्सर की आदि	उत्तराषाढा- 13$\frac{13}{62}$, 27/67	पुनर्वसु- 2 $\frac{56}{62}$, 60/67
8. चौथे चन्द्र संवत्सर की समाप्ति	उत्तराषाढा- 40$\frac{40}{62}$, 64/67	पुनर्वसु- 29$\frac{21}{62}$, 47/67
9. पांचवे अभिवर्द्धित संवत्सर की आदि	उत्तराषाढा- 40$\frac{40}{62}$, 64/67	पुनर्वसु- 29$\frac{21}{62}$, 47/67
10. पांचवे अभिवर्द्धित संवत्सर की समाप्ति	उत्तराषाढा चरम समय	पुष्य- 21 $\frac{43}{62}$, 33/67

नोट- समाप्ति में जो मुहूर्त संख्या है उतने मुहूर्त उस नक्षत्र के अवशेष रहने पर उसके पूर्व के समय में चलते हुए वह नक्षत्र चन्द्र सूर्य के साथ योग करते हुए वर्ष की समाप्ति करता है अतः चार्ट में दी गई संख्या मुहूर्त विशेष संख्या है इसके पूर्व समय में समाप्ति और से निर्दिष्ट समय में नक्षत्र के वर्त्तते हुए अगले संवत्सर का प्रारम्भ होता है। अर्थात् समाप्ति में नक्षत्र के अवशेष समय कहे हैं। इसीलिये वह समय अगले वर्ष का प्रारम्भ योग है।

इस प्रकार युग की समाप्ति के समय चन्द्र के साथ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का अंतिम समय होता है और युग प्रारम्भ में अभिजित का प्रथम समय होता है। जब कि युग की समाप्ति में सूर्य के साथ पुष्य के चलने के 21$\frac{43}{62}$, 33/67 मुहूर्त अवशेष रह जाते हैं। और नये युग का प्रारम्भ उक्त अवशेष समय के प्रथम समय से होता है।

बारहवां प्राभृत-

संवत्सरों का काल मान-

संवत्सर 5 प्रकार के होते हैं। यथा - 1. नक्षत्र 2. चन्द्र 3. ऋतु 4. सूर्य 5. अभिवर्द्धित। इनके दिन और मुहूर्त संख्या इस प्रकार है-

संवत्सर	मास दिन	वर्ष दिन	मास के मुहूर्त्त	वर्ष के मुहूर्त्त
1. नक्षत्र	$27\frac{21}{67}$	$327\frac{51}{67}$	$819\frac{27}{67}$	$9832\frac{56}{67}$
2. दूसरी पूनम	$29\frac{32}{62}$	$354\frac{12}{62}$	$885\frac{30}{62}$	$10625\frac{50}{62}$
3. तीसरी पूनम	30	360	900	10800
4. बारहवीं पूनम	$30\frac{1}{2}$	366	915	10980
5. बासठवीं पूनम	$31\frac{121}{124}$ ($31\frac{29}{30}$, 17/62)	$383\frac{44}{62}$	$959\frac{17}{62}$	$11511\frac{18}{62}$
योग	**$1791\frac{19}{30}$, 57/62, 55/67 वर्ष**		**$53749\frac{57}{62}$, 55/67 मुहूर्त्त**	

नोट- यह जो योग बताया गया है उसे आगे के चार्ट में नो युग (कुछ न्यून) काल कहा गया है।

	दिन	मुहूर्त	बासठिया भाग
एक युग में	1830	54900	3403800
नो युग में	$1791\frac{19}{30}$, 57/62, 55/67	$53749\frac{57}{62}$, 55/67	
युग प्राप्त होने में	$38\frac{10}{30}$, 4/62, 12/67	$1150\frac{4}{62}$, 12/67	

युग का काल मान-

नोट- नो युग = युग में कुछ न्यून। उक्त दिन और मुहुर्त्त संख्या नक्षत्र सूर्य चन्द्र ऋतु और अभिवर्द्धित इन पांचों संवत्सरों के दिनों का और मुहूर्त्तों का योग नो युग की अपेक्षा है।

संवत्सर के आदि अंत का साथ (समानता)-

1. सूर्य चन्द्र संवत्सर के क्रमशः 30 और 31 संवत्सर बीतने पर समानता होती है।

2. सूर्य संवत्सर के 60, ऋतु संवत्सर के 31, चन्द्र संवत्सर के 62, नक्षत्र संवत्सर के 67 वर्ष बीतने पर चारों संवत्सरों की समानता होती है अर्थात् अंत समान होता है और आगे का प्रारम्भ भी साथ होता है।

3. इस प्रकार दो (चन्द्र सूर्य) की समानता 30 सूर्य संवत्सर में, चारों की 60 सूर्य संवत्सर में और पांचों की 780 सूर्य संवत्सरों में समानता होती है। तब - सूर्य संवत्सर 780, ऋतु संवत्सर 793, चन्द्र संवत्सर 806, नक्षत्र संवत्सर 871, अभिवर्द्धित संवत्सर 744 होते हैं।

4. एक युग में सूर्य मास 60, ऋतु मास 61, चन्द्र मास 62, नक्षत्र मास 67, और अभिवर्द्धित मास 57 मास 7 दिन $11\frac{23}{62}$ मुहूर्त्त होते हैं।

ऋतु- 1. प्रावृट 2. वर्षा 3. शरद 4. हेमंत 5. बसंत 6. ग्रीष्म ये छः ऋतुएं 59-59 दिन की होती हैं।

चन्द्र संवत्सर में 6 तिथियां घटती है- 1. तीसरे 2. सातवें 3. ग्यारहवें 4. पन्द्रहवें 5. उन्नीसवें 6. तेवीसवें पक्ष में यों चन्द्र ऋतु के 59 दिन हैं।

सूर्य संवत्सर में 6 तिथियां बढ़ती है- चौथे, आठवें बारहवें सोलहवें, बीसवें चौबीसवें पक्ष में। यों सूर्य ऋतु के 61 दिन होते हैं।

इस कारण चन्द्र संवत्सर के दो महिने 59 दिन के होते हैं और सूर्य संवत्सर के दो महिने 61 दिन के होते हैं। जिससे चन्द्र संवत्सर 354 दिन का और सूर्य संवत्सर 366 दिन का होता है। पांच चन्द्र संवत्सर 1770 दिन के और पांच सूर्य संवत्सर 1830 दिन के होते हैं। चन्द्र संवत्सर में 60 दिन कम होते हैं। उसे ही मिलाने के लिये पांच वर्ष में दो महीने बढ़ाये जाते हैं।

सूर्य संवत्सर के प्रारम्भिक मध्यमिक योग- सूर्य प्रथम मंडल से दूसरे मंडल में जाता है तब संवत्सर प्रारम्भ होता है और सूर्य की परिक्रमा भी वहीं से प्रारम्भ होती है। उस प्रारम्भ समय में चन्द्र सूर्य के साथ युग के पांच वर्षों की अपेक्षा नक्षत्र योग इस प्रकार है।

वर्ष-परिक्रमा	चन्द्र नक्षत्र योग - मुहूर्त्त	सूर्य नक्षत्र योग- मुहूर्त्त
1.	अभिजित-प्रथम समय	पुष्य $19\frac{43}{62}$ 33/67
2.	मृगशीर्ष - $11\frac{39}{62}$, 53/67	पुष्य $19\frac{43}{62}$ 33/67
3.	विशाखा - $13\frac{54}{62}$, 44/67	पुष्य $19\frac{43}{62}$ 33/67
4.	रेवती - $25\frac{32}{62}$, 36/67	पुष्य $19\frac{43}{62}$ 33/67
5.	पूर्वा फाल्गुनी $12\frac{47}{62}$, 13/67	पुष्य $19\frac{43}{62}$ 33/67

बाह्य मंडल से अंदर प्रवेश करते समय-

1.	पहली सर्दी में	हस्त	$5\frac{50}{62}$, 60/67	उत्तराषाढा चरम समय
2.	दूसरी सर्दी में	शतभिषक	$2\frac{28}{62}$, 46/67	उत्तराषाढा चरम समय
3.	तीरी सर्दी में	पुष्य	$19\frac{43}{62}$, 33/67	उत्तराषाढा चरम समय
4.	चौथी सर्दी में	मूल	$6\frac{58}{62}$, 20/67	उत्तराषाढा चरम समय
5.	पांचवीं सर्दी में	कृतिका	$18\frac{36}{62}$, 6/67	उत्तराषाढा चरम समय

बाह्य मंडल से अंदर प्रवेश करते समय-

आभ्यंतर मंडल से बाह्य मंडल तक और बाह्य मंडल से आभ्यंतर मंडल तक ये सूर्य की दो आवृत्तियां कही गई है ऐसी 10 आवृत्तियां एक युग (5 वर्ष) में होती है। चन्द्र की ऐसी आवृत्तियां एक युग में 134 होती है। चन्द्र की एक आवृत्ति $13\frac{44}{67}$ दिन की होती है। सूर्य की एक आवृत्ति 183 दिन की होती है। $183 \times 10 = 1830$ और $13\frac{44}{67} \times 134 = 1830$ होते हैं।

सूर्य आवृत्ति के प्रथम दिन- 1. श्रावण वदी एकम 2. माघ वदी सप्तमी 3. श्रावण वदी तेरस 4. माघ सुदी चौथ 5. श्रवण सुदी दसमी 6. माघ वदी एकम, 7. श्रावण वदी सप्तमी 8. माघ वदी तेरस 9. श्रावण सुदी चौथ 10. माघ सुदी दसमी।

छत्रातिछत्र योग– ऊपर चन्द्र बीच में नक्षत्र और नीचे सूर्य इस तरह तीनों का एक साथ योग होता है उसे छत्रातिछत्र योग कहते हैं।

दक्षिण पूर्व के मंडल चतुर्भाग के 27/31,18/20 भाग जाने पर और 3/31, 2/20 भाग चतुर्थांश मंडल के शेष रहने पर उस स्थान पर चन्द्र सूर्य नक्षत्र का छत्रातिछत्र योग होता है। इस योग में चित्र नक्षत्र चरम में होता हैं।

ये उक्त भाग पूरे मंडल के 124 वें भाग है और चतुर्भांग मंडल के 31 वें भाग है अर्थात् 27 भाग चलने पर एवं 28 वें भाग का 18/20 भाग जाने पर 2/20 दो बीसवें भाग अवशेष रहने पर वह छत्रातिछत्र योग स्थान है। ऐसे ही योग के कुल 12 प्रकार कहे गये है जिसमें छत्रातिछत्र - योग छठवां योग प्रकार है।

तेरहवां प्राभृत–

चन्द्र की हानि वृद्धि–

चन्द्र मास में 29 $\frac{32}{62}$ दिन होते हैं जिसके 885 $\frac{30}{62}$ मुहूर्त होते हैं। इसमें दो पक्ष होते हैं। अतः एक पक्ष में 442 $\frac{46}{62}$ मुहूर्त होते हैं। एक पक्ष में 442 $\frac{46}{62}$ मुहूर्त होते हैं। एक पक्ष में चन्द्र की हानि और दूसरे पक्ष में वृद्धि होती है अतः 442 $\frac{46}{62}$ मुहूर्त तक हानि होती है। वह वदी पक्ष कृष्ण पक्ष अंधकार पक्ष है और 442 $\frac{46}{62}$ मुहूर्त तक वृद्धि होती है वह सुदी पक्ष उद्योत पक्ष-ज्योत्सना पक्ष है।

अमावस के दिन एक समय चन्द्र पूर्ण आच्छादित रहता है और पूर्णिमा के दिन एक समय चन्द्र पूर्ण प्रकट रहता है। शेष सभी समयों में कुछ आच्छादित और कुछ प्रकट रहता है। एक युग के 62 चन्द्र मास और 124 पक्ष होते हैं 62 अमावस 62 पूर्णिमा होती हैं। इनके असंख्य समय होते हैं अर्थात् युग में असंख्य समय चन्द्र की हानि और असंख्य समय वृद्धि होती है।

चन्द्र का अयन– अर्द्ध चन्द्र मास में चन्द्र 14 $\frac{16}{62}$ मंडल चलता है अर्थात् 14 मंडल पूरे पार करके पंद्रहवें मंडल का 32/124 वां भाग चलता है। सूर्य के अर्द्ध मास में चन्द्र 16मंडल चलता है।

आभ्यंतर से बाहर जाते हुए अमावस्या के अंत में 8/124 भाग मंडल स्व. पर अचलित मंडल में चलता है। प्रवेश करते हुए पूर्णिमा के अंत में 8/124 भाग मंडल अचलित चलता है। लोक रूढि से व्यक्ति भेद की अपेक्षा न करके केवल जाति भेद के आश्रय से ऐसा कहा जाता है कि चन्द्र 14 $\frac{16}{62}$ मंडल चलता है। किन्तु वास्तव में दो चन्द्रमा मिलकर इतना चलते हैं अतः एक चन्द्र 14 $\frac{16}{62}$ अर्द्ध मंडल चलता है।

अतः प्रथम अयन में चन्द्र 2,4,6,8,10,12,14 वां अर्द्ध मंडल दक्षिण में एवं 3,5,7,9,11,13,15 वां का 13/67 भाग अर्द्ध मंडल उत्तर में चलता है। इस प्रकार 7 अर्द्ध मंडल दक्षिण में, 6 $\frac{13}{67}$ अर्द्ध मंडल उत्तर में एवं कुल 13 $\frac{13}{67}$ अर्द्ध मंडल चलने पर प्रथम चन्द्र अयन होता है। चन्द्रमा युग की समाप्ति अंतिम मंडल में पूनम को करता है। अतः नये प्रथम अयन को बाहर से आभ्यंतर मंडल में प्रवेश करते हुए प्रारम्भ करता है। दूसरा अयन आभ्यंतर से बाहर जाते हुए करता है।

चन्द्रमा, नक्षत्र अर्द्ध मास में चन्द्र अर्द्ध मास की अपेक्षा 1 $\frac{4}{67}$, 9/31 अर्द्ध मंडल अधिक चलता है। पूर्ण मास की अपेक्षा दूगुना समझना। अतः उक्त 13 $\frac{13}{67}$ अर्द्ध मंडल नक्षत्र अर्द्ध मास से कहे गये है।

चन्द्र के चलित अचलित मार्ग– दूसरे अयन में आभयंतर से बाहर जाते हुए चन्द्र उत्तर में 54/67 अवशेष भाग अर्द्ध मंडल के चलते हुए फिर दूसरे मंडल के 13/67 भाग दक्षिण में अर्द्ध मंडल के चलकर दूसरे अयन का प्रथम अर्द्ध मंडल पूर्ण करता है। इस प्रकार 13 $\frac{13}{67}$ मंडल पार करके दूसरा अयन पूर्ण करता है। तब 7 × 54/67 भाग पूर्व में चलित पर चलता है। 7×13/67 भाग स्व चलित पर चलता है और पश्चिम में 6 × 54/67 भाग पर चलित पर चलता है। 6 × 13/67 भाग

स्वचलित पर चलता है। अवशेष अन्य 2 × 13/67 भाग अचलित पर चलता है। इनमें आभ्यतर मंडल में 13/67 और बाह्य मंडल में 13/67 भाग अचलित पर चलता है।

तीसरे अयन में बाहर से अंदर जाते हुए पहले मंडल में 41/67 दोनों के चलित पर चलता है। 13/67 भाग पर चलित पर एवं 13/67 भाग स्वचलित पर चलता है। इतना ही दूसरे मंडल में। तीसरे मंडल में 8/67, 18/31 दोनों के चलित पर चलता है।

इस प्रकार पूरे महिने में- 13 × 54/67 + 2 × 13/67 परचलित पर, 13 × 13/67 अपने चलित पर, 2 × 41/67 + 2 × 13/67 + 8/67, 18/31 उभय चलित पर चलता है। एवं 2 × 13/67 अचलित पर चलता है।

चौदहवां प्राभृत-

शुक्ल पक्ष में निरंतर प्रकाश बढ़ता है कृष्ण पक्ष में निरंतर अंधकार बढता है। शेष विवरण तेरहवें प्राभृत के प्रारम्भ में कहे अनुसार है। 1/15 भाग चन्द्र प्रति दिन आवृत्त अनावृत्त होता है।

पन्द्रहवां प्राभृत-

गति (चाल)- सबसे मंद गति चन्द्र की है। उससे सूर्य ग्रह नक्षत्र, तारा की क्रमशः अधिक अधिक गति है।

चन्द्र एक मुहूर्त में अपने मंडल के 1768/109800 भाग चलता है।

सूर्य एक मुहूर्त में अपने मंडल के 1730/109800 भाग चलता है।

नक्षत्र एक मुहूर्त में अपने मंडल के 1835/109800 भाग चलता है।

चन्द्र से सूर्य 62 भाग अधिक चलता है। चन्द्र से नक्षत्र 67 भाग अधिक चलता है । सूर्य से नक्षत्र 5 भाग अधिक चलता है।

गति से योग का सम्बन्ध- इस गति की हीनाधिकता के कारण चन्द्र के साथ नक्षत्र कुछ समय चलकर योग जोड़कर आगे बढ़ जाते हैं फिर पीछे वाला नक्षत्र आगे बढ़ कर साथ हो जाता है और योग जोड़ता है। इस प्रकार एक एक नक्षत्र क्रमशः 15, 30 या 45 मुहूर्त्त योग जोड़ कर आगे निकल जाते हैं। इतने मुहूर्त्त साथ का कारण यह है कि नक्षत्रों का सीमा विष्कंभ विमान के आगे पीछे भी बहुत होता है वह सीमा जब तक चन्द्र के सीध में रहती है तब तक योग उसी नक्षत्र का गिना जाता है उसकी सीमा समाप्त होने पर पीछे वाले नक्षत्र की आगे की सीमा चन्द्र की सीध में आती है फिर उसका विमान और फिर उसकी पिछली सीमा। यों पूरी सीमा की अपेक्षा इतने अधिक अर्थात् 45 मुहूर्त्त तक योग कहा गया है। इस तरह चन्द्र के साथ ग्रहों का योग क्रम भी उत्तरोत्तर मुहूर्त्तों में चलता रहता है।

सूर्य और नक्षत्र की गति में ज्यादा अंतर नहीं है अतः इन दोनों का योग अनेक दिनों तक चलता है। जिससे ही 28नक्षत्रों को योग करने में वर्ष पूरा हो जाता है। जब कि चन्द्र के साथ ये सभी नक्षत्र एक महीने में ही योग पूर्ण कर देते हैं। इनके योग काल का वर्णन 10 वें प्राभृत के दूसरे प्रति प्राभृत में कहा गया है। इसी प्रकार सूर्य और ग्रहों (88) का योग काल भी क्रमशः एक वर्ष में पूरा होता है।

	चन्द्र	सूर्य	नक्षत्र
नक्षत्र मास में मंडल चाल	$13\frac{13}{67}$	$13\frac{34}{67}$	13 - 46 $\frac{1}{2}$ / 67
चन्द्र मास में मंडल चाल	$14\frac{16}{62}$	$14\frac{47}{62}$	$14\frac{99}{124}$, 99/124
ऋतु मास में मंडल चाल	$14\frac{30}{61}$	15	$15\frac{5}{122}$
सूर्य मास में मंडल चाल	$14\frac{11}{15}$	$15\frac{1}{4}$	$15\frac{1}{4}$, 35/124
अभिवर्द्धित मास में मंडल चाल	$15\frac{33}{86}$	$15\frac{245}{248}$	$16\frac{47}{1488}$
एक अहोरात्रि में मंडल चाल	$\frac{1}{2}$ में 31/915 कम	$\frac{1}{2}$	$\frac{1}{2}$ से 2/732 अधिक
एक मंडल चलने में समय	$2\frac{31}{444}$ दिन	2 दिन	2 दिन में 2/367 कम ($1\frac{365}{367}$ दिन)
एक युग में मंडल चाल	884	915	$\frac{1835}{2}$

सोलहवां प्राभृत–

लक्षण– 1. चन्द्र का लक्षण प्रकाश करने का है। सूर्य का लक्षण प्रकाश और ताप करने का है। एवं 3- छाया (चन्द्राच्छादन-सूर्याच्छादन) का लक्षण अंधकार करने का है।

सत्रहवां प्राभृत–

चयोपचय– चन्द्र सूर्य देव साधिक एक पल्योपम स्थिति पूर्ण होने पर एक चवते है, दूसरे उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरह परंपरा से अनादि अनंत काल तक होते रहते हैं। चन्द्र सूर्य विमान में भी पृथ्वीकाय के पुद्गल चवते रहते है और नये आते रहते हैं। इस विषय में 25 मान्यताएं है। यथा- समय-समय में चवते उपजते हैं मुहूर्त्त-मुहूर्त्त में यावत् प्रत्येक अवसर्पिणी उत्सर्पिणी से उत्पन्न होते एवं मरते हैं। किन्तु ये मान्यताएं असमीचीन (अशुद्ध) है।

अठारहवां प्राभृत–

ऊंचाई– 1. समभूमि से सूर्य विमान 800 योजन ऊंचाई पर है। 880 योजन ऊंचाई पर चन्द्र विमान है। 790 योजन से 900 योजन के बीच में ग्रह, नक्षत्र, तारा विमान है। इस विषय में 25 मान्यताएं हैं- कोई एक हजार योजन ऊंचा कहते हैं। यावत् कोई 25 हजार योजन सूर्य और $25\frac{1}{2}$ हजार योजन चन्द्र को ऊंचा कहते हैं ये सभी असमीचीन मान्यताएं है।

2. चन्द्र सूर्य के नीचे भी तारा विमान है और उपर भी है। उन ऊपर नीचे के तारा विमानों में रहने वाले देव चन्द्र सूर्य विमान वासी देवों की अपेक्षा कोई अल्प ऋद्धि भी है कोई तुल्य भी है। पूर्व भव के तप आदि आराधन के कारण ऐसा संभव है। यह इन्द्र के अतिरिक्त देवों की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि समान्य सूर्य देवों की उम्र जघन्य 1/4 पल्योपम हो सकती है। और तारा विमान वासी देवों की उत्कृष्ट उम्र 1/4 पल्योपम की होती है अतः स्थिति की अपेक्षा जो तुल्य है वे तुल्य ऋद्धि वाले हो सकते हैं, चाहे वे ऊपर के विमान में हो या नीचे के विमान में। सूर्य चन्द्र से विशेष ऋद्धि वाले तारा देव नहीं होते हैं क्योंकि उनक स्थति भी अधिक नहीं होती है। देवों की ऋद्धि की महत्ता न्यूनता में स्थिति का ही प्रमुख कारण होता है।

3. चन्द्र सूर्य दोनों बलदेव वासुदेव की तरह होते हैं। उन दोनों की राज्य ऋद्धि एक ही होती है चाहे उसे बलदेव की ऋद्धि कहो या वासुदेव की। उसी प्रकार चन्द्र और सूर्य दोनों का ही सम्मिलित परिवार है- 28 नक्षत्र, 88 ग्रह, 66975 कोडा कोडी तारा। यह एक सूर्य-चन्द्र का परिवार है।

4. मेरू से ज्योतिषी दूर रहते हैं - 1121 योजन

लोकांत से ज्योतिषी दूर रहते हैं - 1111 योजन

5. ज्योतिषी क्षेत्र में (1) अभिजित नक्षत्र सब से अधिक मेरू से निकट एवं आभ्यंतर मंडल में है। 2. मूल नक्षत्र सबसे अधिक बाह्य क्षेत्र तक लवण समुद्र में। 3. स्वाति नक्षत्र सबसे ऊपर है और 4. भरणी नक्षत्र सब नक्षत्रों से नीचे है।

6. चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सभी के विमान अर्ध कपीत्थ (कबीठ) फल के आकार वाले है। सभी नीचे समतल है, ऊपर से गोल गुंबज के सृदश आकार वाले है। सर्व स्फटिक रत्नमय है। तपनीय स्वर्ण की बालु रेत विमान फैली हुई है।

7. लंम्बाई चौड़ाई आदि इस प्रकार है-

नाम	**आयाम**	**बाहल्य**	**वाहक देव**	**स्थिति**		**देवी की स्थिति उत्कृष्ट**	
ज्योतिषी	**विष्कंभ**			**जघन्य**	**उत्कृष्ट**		
चन्द्र	56/61 यो.	28/61	16000	1/4 पल	1 पल 1 लाख वर्ष	1/2 पल	50 हजार वर्ष
सूर्य	48/61 यो.	24/61	16000	1/4 पल	1 पल 1 हजार वर्ष	1/2 पल	500 वर्ष
ग्रह	2 कोश	1 कोश	8000	1/4 पल	1 पल्योपम	1/2 पल	
नक्षत्र	1 कोश	1/2 कोश	4000	1/4 पल	1/2 पल्योपम	1/4 पल	साधिक
तारा	1/2 कोश	500 धनुष	2000	1/8 पल	1/4 पल्योपम	1/8 पल	साधिक

8. तारा, नक्षत्र, ग्रह, सूर्य, चन्द्र ये क्रमशः एक दूसरे से महर्द्धिक होते हैं जाति वाचक अपेक्षा से। व्यक्तिगत अपेक्षा से स्थिति के अनुसार यथायोग्य हीनाधिक हो सकते हैं। अर्थात् समान स्थिति हो तो यह क्रमिक महर्द्धिकता समझना।

9. हाथी घोड़ा बैल और सिंह के आकार में वाहक देव चारों दिशाओं में विमान के नीचे रहते हैं यह केवल औपचारिकता मात्र है। विमान स्वाभाविक ही अनादि से गति करते हैं चार्ट में जितने वाहक देव कहे हैं उसे चार भागों में विभाजित कर चारों दिशाओं में समझ लेना चाहिये।

10. मेरू पर्वत एवं निषध नील पर्वतों के कूट के कारण तारों का आपसी जघन्य अंतर 266 योजन है उत्कृष्ट 12242 योजन है। स्वाभाविक अंतर जघन्य 500 धनुष उत्कृष्ट 2 कोश है। चन्द्र सूर्य के देवी परिवार जीवा जीवाभिगम एवं सुख भोग सम्बन्धी वर्णन भगवती सूत्र में देखें। श. 12 उद्दे. 6में।

उन्नीसवां प्राभृत-

1. जम्बूद्वीप में 2 सूर्य 2 चन्द्र 56नक्षत्र 172 ग्रह 1,33,950 तारे हैं। आगे प्रत्येक द्वीप समुद्र में अधिक अधिक संख्या कहे हैं, जो जीवाभिगम सूत्र में देखें।

यह इस विषय में 12 मान्यताएं कही गई हैं उनमें यह बताया गया है कि सम्पूर्ण लोक में एक सूर्य चन्द्र प्रकाश करते हैं। इसी प्रकार 3, $3\frac{1}{2}$,7, 10, 12, 42, 72, 142, 172, 42000, 72000 चन्द्र सूर्य सम्पूर्ण लोक में होने की मान्यताएं हैं किन्तु ये समाचीन (सही) नहीं है। सम्पूर्णलोक में असंख्य सूर्य असंख्य चन्द्र है और उन सभी का अपना परिवार भी हैं।

2. नक्षत्र और तारे सदा एक मंडल में परिक्रमा लगाते हैं। सूर्य चन्द्र ग्रहों के मंडल बदलते रहते हैं। ये सभी अपने अपने मंडल में मेरू पर्वत की परिक्रमा लगाते हैं।

3. ये सूर्य चन्द्र आदि ऊंचाई की अपेक्षा जहां है वहीं रहते हैं नीचे ऊंचे नहीं होते हैं। उसी ऊंचाई में मंडल परिवर्तन करते हैं।

4. इन चार (तारा को छोड़कर) ज्योतिषियों की गति विशेष से मनुष्यों के सुख दुःख का संयोग वियोग होता है अर्थात् इनके निमित्त से सुख दुःख के संयोग का ज्ञान होता है।

5. बाह्य से आभ्यंतर मंडल में आते समय सूर्य का ताप क्षेत्र बढ़ता है बाहर जाते समय घटता है। चन्द्र के नीचे चार अंगुल दूर नित्य राहु का विमान चलता है। एक दिन में 1/15 भाग चन्द्र घटता बढ़ता है और 62 भाग करने की अपेक्षा स्थूल दृष्टि से 4/62 भाग प्रति दिन बढ़ता घटता है।

6. मनुष्य क्षेत्र में सूर्य चन्द्र आदि चलते हैं, उसके बाहर सभी चन्द्र सूर्य अपने स्थान पर स्थिर हैं।

7. धातकी खंड से आगे आगे के द्वीप समुद्रों में उसके अनंतर पूर्व के द्वीप समुद्र के सूर्यसंख्या से तीन गुणे करके उस में अंदर के सभी द्वीप समुद्रों के सूर्य की संख्या जोड़ने पर जो राशि हो उतने सूर्य चन्द्र और उनके परिवार होते हैं।

8. ढ़ाई द्वीप के बाहर चन्द्र के साथ अभिजित नक्षत्र का योग है और सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र का योग रहता है। इस प्रकार ही ये सदा स्थिर है। सूर्य एवं चन्द्र की अलग-अलग पंक्तियाँ है, सूर्य-चन्त्र का परस्पर अंतर 50000 योजन है। सूर्य से सूर्य 1 लाख योजन, चन्द्र से चन्द्र 1 लाख योजन है।

9. ज्योतिषी के इन्द्र का विरह 6महीने का हो सकता है उस समय 4-5 सामानिक मिलकर उस स्थान संम्बन्धी कार्य की पूर्ति करते हैं।

10. द्वीप समुद्रों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में देखें।

नोट– ग्रहों के मंडल आदि सम्बन्धी स्पष्टीकरण आगम में नहीं है अर्थात् इनके मंडल कितने है मुहूर्त्त गति कितनी है इत्यादि कोई भी वर्णन उपलब्ध नहीं होता है।

बीसवां प्राभृत–

1. चन्द्र सूर्य को कोई अजीव पुद्गल मात्र मानते है राहु को भी 15 प्रकार के काले पुद्गल मानते है और कोई जीव भी मानते हैं। वास्तव में ये सभी विमान है और इनके स्वामी चन्द्र, सूर्य, राहु आदि महान ऋद्धि सम्पन्न वैक्रिय शक्ति सम्पन्न देव हैं।

2. राहु के विषय में लोक में विविध कथन है कि वह एक भुजा से सूर्य चन्द्र को ग्रहण कर दूसरी भुजा से छोड़ता है, मुँह से ग्रहण करता है या मुँह से निकालता है, जिधर से ग्रहण करता उधर से, निकालता है, अथवा अन्य तरफ से निकालता है, इत्यादि।

3. वास्तव में राहु महर्द्धिक देव है उसके पांच रंग के विमान हैं। काले रंग वाले विमान सूर्य चन्द्र को आच्छादित करते है अर्थात् मनुष्यों के और सूर्य चन्द्र के बीच में आड़े आ जाते है, दिखने में बाधक हो जाते है, उनके प्रकाश को आच्छादित कर देते हैं। ये राहु विमान सूर्य चन्द्र के निकट नीचे आ जाते है तब मनुष्य लाक में सूर्य चन्द्र पूर्ण नहीं दिखता हैं। उसका प्रकाश पुंज भी

अपूर्ण सा हो जाता हैं। तब सूर्य चन्द्र खंडित या आच्छादित दिखते हैं। नित्य राहु चन्द्र के पूर्ण दिखने में सदा बाधक बना रहता हैं। कुछ न कुछ ही हीनाधिक सीध में आता रहता है, खिसकता रहता है पर्व राहु सूर्य चन्द्र दोनों के नीचे कभी कभी आता है इसके पुद्‌गल नित्य राहु से भी अधिक काले हैं।

4. पर्व राहु चन्द्र के नीचे कम से कम 6 महीने बाद आता है और उत्कृष्ट 42 महीनों बाद आता हैं, इससे अधिक समय नहीं होता हैं। सूर्य के नीचे आने में भी कम से कम 6महीने का समय व्यतीत हो जाता हैं। और उत्कृष्ट 48वर्ष तक भी वह पर्व राहु सूर्य के नीचे आड़ा नहीं आता हैं।

5. राहु के द्वारा चन्द्र सूर्य पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण किधर भी आच्छादित किये जा सकते हैं क्यों कि ये तीनों ही मंडल परिवर्तित करते रहते है एक ही मंडल (मार्ग) में नहीं चलते हैं। इसी कारण आच्छादित किये जाते हुए सूर्य चन्द्र विविध आकार में -(आडे, खड़े, तिरछे, बैठे, सोये इत्यादि कल्पित आकारों में) दृष्टि गोचर होते है, माने जाते है, कहे जाते है। वास्तव में ये आच्छादित होने के ही विविध प्रकार है और मंडल परिवर्तन के कारण से बनते हैं।

6. राहु चन्द्र सूर्य को निगल रहा है, वमन कर रहा है, कुक्षि भेद कर रहा है, घात कर रहा है, इत्यादि कथन भी आच्छादित करने की भिन्नताओं के कारण ही कल्पित करके लोगों द्वारा कहे जाते है, माने जाते है, वैसी संज्ञा दी जाती हैं।

7. चन्द्र विमान का नाम मृगांक है, सुन्दर सुरूप है, वे देव भी सुन्दर सोम्य कांति वाले है, इसलिये चन्द्र को शशि भी कहा जाता हैं। विमान के रत्नों की प्रभा में कुछ हीनाधिक एवं विशेषता इस प्रकार की है कि जिससे मनुष्य लोक में दिखने वाले चन्द्र के बीच में मृग जैसे चिन्ह (आकार) का आभास होता हैं।

8. लोक में सूर्य ही समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिन, रात की आदि करने वाला हैं। सूर्योदय से ही नया वर्ष नया दिन, नया युग एवं उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी प्रारम्भ होते है अतः इसे आदित्य कहा जाता हैं। दिन और रात्रि भी सूर्य की प्रमुखता से ही होते हैं। आकाश मंडल में प्रकाश और ताप की अपेक्षा सूर्य का ही साम्राज्य हैं। उसके अभाव में ही अंधकार एवं रात्रि होती हैं। उसके समकक्ष चन्द्र आदि सभी प्रकाशमान पदार्थ फीके नजर आते है। अतः यह काल की, युग की, संवत्सर की आदि एवं निर्माण का प्रधान निमित्त हैं इसलिये इसे आदित्य कहा गया हैं।

टिप्पण– इसी कारण पंचांग का निर्माण करने वाले सूर्योदय की प्रधानता से ही तिथी तारीख सूचित करते हुए सम्पूर्ण पंचांग बनाते हैं।

इतना होते हुए भी लोक में विद्वान कहे जाने वाले कई लोग पंचांग में सूचित तिथि को छोड कर अस्त तिथि से पर्व दिन के उपवास आदि व्रत करते है यह उनका लौकिक भ्रमित प्रवाह मात्र हैं। क्यों कि सभी तिथियों की युग की, संवत्सर की आदि करने वाला तो सूर्य ही आगम में कहा गया है तो पर्व तिथि की आदि उसे करने से अस्वीकार करना कैसे उपयुक्त हो सकता हैं।

आगमों के प्राचीन व्याख्याकारों ने तो उपवास आदि व्रत प्रत्याख्यान सभी सूर्योदय की प्रमुखता की तिथि से करने का ही विधान किया हैं। फिर भी जैनागम वेत्ता लौकिक प्रवाह से पर्व तिथि संवत्सरी का उपवास भी सूर्योदय की तिथि को छोड़ कर, पंचाग सूचित को छोड़ कर करने लग गये है, यह लौकिक नकल आगम सम्मत नहीं हैं। क्योंकि आदित्य-सूर्य ही दिवस आदि की आदि करने वाला कहा गया है अतः किसी भी पर्व दिन की अस्त समय से आदि (प्रारंभ) मानना आगम सम्मत नहीं हो सकता। इसलिये ही पंचांगकार भी सभी तिथियों को सूर्योदय के लक्ष्य से ही अंकित करते है कोई भी पंचाग सूर्यास्त के लक्ष्य से आज तक नहीं बना है नहीं बनेगा।

निष्कर्ष यह है कि पर्व तिथि के उपवास आदि पंचांग में लिखी तिथि से ही करने चाहिए। आगम में पर्व तिथियां अष्टमी चतुर्दशी अमावस पूर्णिमा एवं पर्यूषणा संवत्सरी कहे गये हैं इसमें से अष्टमी चतुदर्शी आदि के उपवास आदि पंचाग में लिखी तिथि से कार्य किये जाते हैं किन्तु पक्खी संवत्सरी के उपवास आदि के लिये उस तिथि को छोड़कर अस्त तिथि को ढूंढा जाता है यह अपूर्ण और भ्रमित नकल परम्परा हैं। किन्तु आगम से संगत नहीं हैं।

9. ज्योतिषी देवों के काम भोग जनित सुख आदि की उपमा युक्त वर्णन भगवती सूत्र में कथित वर्णन के समान समझना चाहिए।

10. ग्रह 88 हैं उनके अलग अलग 88नाम सूत्र में हैं। जिसमें -शनिश्चर, भस्म, धूमकेतु, बुध, शुक्र, बहस्पति, राहु, काल, महाकाल, एक जटी, द्विजटी, केतु आदि ग्रहों के नाम लोक में विशेष रूप से प्रचलित एवं परिचित हैं।

आगम उपसंहार– विनयवान, धैर्य सम्पन्न एवं अनेक योग्यताओं से युक्त शिष्य के लिये ही आगम का अध्ययन गुणवृद्धि करने वाला होता हैं। अविनीत, घमण्डी, कुतुहली, अस्थिर परिणामी, विषय भावी को आगम ज्ञान का सही परिणमन नहीं होता हैं। अतः इस शास्त्र के अध्ययन के लिये भी योग्यता का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि इस में आध्यात्मिक विषय नहीं होकर तात्त्विक विषय है और उसमें भी गणित विषय अधिक हैं। अतः साधक की परिणमन शक्ति का विचार करके ही इस सूत्र का अध्ययन कराना चाहिए। किन्तु योग्य शिष्यों को भी इस शास्त्र का अध्ययन नहीं कराना यह तो जिन शासन की एक विडम्बना ही है।

टिप्पण– आगम सदा कण्ठस्थ परंपरा में ही सभी तीर्थकरों के शासन में चलते है। तभी उक्त उपसंहार सूचित निर्देश का यथार्थ पालन होता है। किन्तु हुण्डासर्पिणी के इस चौबीसवें तीर्थकर के शासन में कई कारणों से आगमों का लेखन और प्रकाशन युग चला है इसमें उक्त निर्देश का पालन दोनों तरह से विकृत हो रहा है अर्थात् योग्य अयोग्य कोई भी पढ़ सकते हैं। आर्य अनार्य कोई भी व्यक्ति इन सूत्रों की नकल करके अपने पास रख सकता हैं। एवं प्रकाशित होने पर तो वह नियम नियम तक ही रह जाता हैं।

आचार्य उपाध्याय पद का मान सम्मान लेने वाले भी अपने योग्य शिष्यों को सूत्रों का और प्रस्तुत सूत्र का अध्ययन या क्रमिक अध्ययन नहीं कराते है एवं कई मनमानी अध्ययन करते है और कई योग्य होते हुए भी यथा समय अध्ययन नहीं करके अन्य प्रवृति में लग जाते हैं। यह शासन रक्षक पदवीधरों का विशेष प्रमाद एवं दोष कहा जा सकता हैं। इसी दोष के निवारण की प्रमुखता से भांषातर, हिन्दी विवेचन एवं सांराश सूत्रों के सृजन की आवश्यकता समाज में उत्पन्न होती हैं।

इतना होते हुए भी प्रत्येक आगम जिज्ञासु को इन उपलब्ध भाषांतरित आगमों से अपनी प्यास बुझाने में गुण-वृद्धि का ही विवेक रखना चाहिये। गंभीरता नम्रता गुणों में उपस्थित रहने के लक्ष्य को कायम रखते हुए ही ज्ञान वृद्धि करना चाहिये। ऐसा करने पर युग की उपलब्धि का लाभ लेते हुए भी हानि से बचा जा सकता हैं। यहीं सामान्य पाठकों एवं साधकों के लिये श्रेयस्कर हैं। क्योंकि अधिकतर श्रमणों ने गुरूओं ने आचार्य उपाध्यायों ने प्रवर्त्तकों ने अपने शिष्यों को एवं योग्य श्रमणोपासक परिषद को आगम ज्ञान देने के अपने कर्तव्य को उपेक्षित कर दिया हैं एवं करते जा रहे है ऐसे समय में प्रकाशित उपलब्ध आगमों का विवेक पूर्ण उपयोग करना ही लाभप्रद है एवं आवश्यक सा भी बन गया हैं।

प्रस्तुत आगम सारांश लेखन भी ऐसे ही युग की आवश्यकता की पूर्ति हेतु है और सरल से सरल बना कर आवश्यक ज्ञेय तत्त्वों को सामान्य जिज्ञासु साधकों पाठकों की अपेक्षा तैयार किया गया हैं। अतः विवेक पूर्वक गुणों की वृद्धि करते हुए विनय एवं सरलता के साथ इनका अध्ययन कर अपनी आगम वाणी पान की प्यास को शांत करना चाहिये।

चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र

एक विचारणा-

इस सूत्र के नाम से एक दो पृष्ट जितना ही पाठ उपलब्ध होता हैं। उसमें भी विषयों का संकलन सूचन मात्र है और वे विषय प्रायः सूर्य प्रज्ञप्ति रूप ज्योतिष राज गण प्रज्ञप्ति में अंकित हैं। अतः यह सूत्र लिपि काल के दोष से दूषित हैं। यह सूत्र स्वतंत्र था या किस रूप में था, ये 1-2 पृष्ट क्यों कैसे अवशेष रहे है ? जिनमें भी सूर्य प्रज्ञप्ति के विषयों का ही संकलन मात्र है पाहुड़ प्रति पाहुड़ भी वैसे ही कहे हैं। अतः उक्त प्रश्न इतिहासज्ञों के खोज के लिये हैं।

वास्तव में अभी यह सूत्र कुछ भी स्वतंत्रता लिये हुए उपलब्ध नहीं हैं। अतः इसे सूत्र कहना और गिनती में गिनना आदि भी एक प्रवाह परंपरा मात्र हैं। वस्तुतः देखा जाय तो 32 में 45 में इसे आगम गिनने की भी कोई उचितता नहीं हैं। यदि ऐसे गिने जाय तो नंदी सूत्र कथित अनेक आगम और गिने जा सकते हैं। अतः इन दोनों सूत्रों को एक सूत्र ही गिनना चाहिये उपलब्ध दोनों सूत्र के प्रारम्भ की सूचक गाथाओं में कहीं भी सूर्य प्रज्ञप्ति या चन्द्र प्रज्ञप्ति का नाम ही नहीं है दोनों जगह ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति ही नाम अंकित है

यथा-

नामेण इन्दभूइति गोयमो वंदिउण तिविहेण ।
पुच्छई जिणवर-वसहं जेइस रायस्स पण्णत्तिं ।।
एंव जोइस गण राय पण्णतिं ।

-चन्द्र प्रज्ञप्ति गा. 4
- सूर्य प्रज्ञप्ति गा. 4

निष्कर्ष यह है कि आज न तो सूर्य प्रज्ञप्ति नामक कोई शास्त्र उपलब्ध है और न चन्द्र प्रज्ञप्ति के नाम का। इस नाम से प्रचलित इन दोनों सूत्रों में ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति यही नाम मूल पाठ की तीसरी चौथी गाथाओं में अंकित हैं। इसलिये यह सूत्र ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति संज्ञक है और एक ही हैं। प्राचीन काल में कभी उक्त दोनों नाम के सूत्र रहे होगे तभी नंदी में भी इन दोनों के नाम हैं। अथवा तो इस एक सूत्र के ही ये भिन्न- भिन्न नाम प्रचलित हुए होगें और नंदी सूत्र में भी नाम अंकन ऐसे प्रचलन से ही परिवर्तित हुआ होगा। क्यों कि नंदी सूत्र की नामवली में ऐसे प्रचलित परिवर्तनों का समय समय पर असर हुआ ही हैं। तभी निरियावलिका-उपांग सूत्र के 5 वर्गो के 5 सूत्र रूप में नाम अंकित हुए हैं।

सूत्रों की गिनती आदि की जिज्ञासा के लिये अन्य सारांश पुष्पों (ग्यारहवां आदि) का अध्ययन करना चाहिए ।

नोट-इस सूत्र साराशं में विषय को कुछ स्पष्ट करने का प्रयत्न तो किया ही गया हैं। फिर भी विशेष अध्ययन के जिज्ञासुओं को इस सूत्र की टीका अनुवाद आदि जो भी प्रति उन्हें उपलब्ध हो उससे अपनी इच्छा पूर्ति कर लेनी चाहिए ।

।। ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र सारांश समाप्त ।।

ज्ञातव्य गणित

परिशिष्ट-1

1. एक युग में 1830 दिन होते है जिसमें नक्षत्र मास 67 होते है अतः 1830 में 67 का भग देने पर नक्षत्र मास के दिन निकल जाते है उन्हें 30 का गुणा करने पर नक्षत्र मास के मुहूर्त्त निकल जाते है यथा -

$1830 \div 67 = 27\frac{21}{67} = 27$ दिन $9\frac{27}{67}$ मुहूर्त्त

$27\frac{21}{67} \times 30 = 817$ मुहूर्त्त होते है नक्षत्र मास में।

इस प्रकार चन्द्र मास आदि में दिन और मुहूर्त्त निकाले जाते हैं।

2. सूर्य एक वर्ष के 366दिन में 184 मंडल में संचरण करता हैं। जिसमें पहले और अंतिम में एक बार और शेष 182 में दो बार इस तरह 182 × 2 + 2 = 366 दिन एक वर्ष में होते हैं। 5 वर्ष का युग कहा गया है अतः 366 × 5 = 1830 दिन युग होता है इसी के आधार से चन्द्र नक्षत्र आदि के मास दिन आदि निकाले जाते हैं। मुख्यता सूर्य वर्ष से ही हैं। युग भी सूर्य संवत्सर के दिनों का योग हैं। शेष चन्द्र नक्षत्र आदि के मास वर्ष आदि का इसी में समवतार किया जाता हैं। इसलिये सभी ज्योतिषयों में सूर्य लोक व्यवहार में प्रधान हैं। युग तिथि आदि कर्त्ता प्रारम्भ कर्त्ता हैं, इसलिये लौकिक पंचांग में सूर्य के उदय की मुख्यता से तिथियां अंकित की जाती हैं।

3. सूर्य मंडल 184 है और उनके अंतर 183 हैं। अंतर 2-2 योजन के है और मंडल 48/61 योजन के है इन्हें परस्पर गुणा कर योग करने पर पूर्ण संचरण क्षेत्र निकल जाता है यथा -

2 × 183 = 366 एवं $48/61 \times 184 = 144\frac{48}{61}$

366 + 144 - 48/61 = $510\frac{48}{61}$ योजन संचरण क्षेत्र हैं।

मंडल परिधि ज्ञान- आभ्यंतर मंडल की परिधि 3,15089 योजन है उसका आयाम विष्कंभ (व्यास) 99640 योजन हैं। व्यास का वर्ग करके 10 गुणा करना फिर वर्गमूल निकालने पर जो राशि प्राप्त होती है वह परिधि का परिमाण होता हैं।

यथा-

99640 × 99640 × 10 = 99,28,12,9600 इसका वर्गमूल निकालने पर 3,15089 पूर्णाक होते हैं। एवं 18079 अवशेष रहते हैं। अतः परिधि तीन लाख 15 हजार निव्यासी योजन साधिक होती हैं।

प्रत्येक अगले मंडल में $5\frac{35}{61}$ व्यास बढने से $17\frac{38}{61}$ योजन परिपेक्ष बढता हैं। इसे जानने के लिये $5\frac{35}{61}$ के इगसठिये भाग करके उनकी उक्त विधि से परिधि निकाल कर पुनः उन इगसठिये भागों के योजन बना लेने चाहिये। यथा- $5\frac{35}{61}$ =61 × 5 + 35 = 340 इगसठिये भाग का प्रमाण विष्कंभ (व्यास) प्रतिमंडल में बढता हैं। इसकी परिधि परिमाण- 340 × 340 × 10 = 11,56000 इसका वर्ग मूल इस प्रकार निकालना चाहिये-

11,56,000 इसका वर्ग मूल इस प्रकार निकालना चाहिये-

1075 इगसठिये भाग $1075 \div 61 = 17\frac{38}{61}$ योजन

1	1,15,60,00
1	1
	01560
207	1441
7	
2185	111200
5	10725
2150	00375

स्थूल दृष्टि से 18 योजन प्रति मंडल में परिधि बढ़ना कहा जाता है।

वृद्धि + प्रथम मंडल = अंतिम मंडल

$17\frac{38}{61} \times 183 = 3225 + 315089 = 318314$

सर्व बाह्य मंडल का परिपेक्ष वर्गमूल पद्धति से 3,18,314.839 है। जो स्थूल दृष्टि से (व्यवहार से) 318315 योजन कहा जाता है।

यथा– 100660 × 100660 × 10 = 10,13,24,35,60,00

इस संख्या का वर्गमूल उक्त विधि से निकालने पर 3,1,8,314 योजन साधिक निकल आता है।

4. प्रत्येक मंडल की परिधि में 60 मुहूर्त्त का भाग देने पर उस मंडल की मुहूर्त्त गति निकल आती है। यथा- $315089 \div 60 = 5251\frac{29}{60}$ योजन प्रथम मंडल की मुहूर्त्त गति है। $318315 \div 60 = 5305\frac{15}{60}$ योजन अंतिम मंडल की मुहूर्त्त गति है।

5. चन्द्र के साथ शतभिषक नक्षत्र 15 मुहूर्त्त योग करता है अर्थात् आधा दिन योग करता हे और एक दिन के 67 भाग की अपेक्षा $67/1 \times 1/2 = 33\frac{1}{2}$) भाग दिन। सूर्य के साथ इसके पांचवें भाग जितने दिन का योग होता है -67/2 × 5 = 67/10 दिन = 6 दिन 21 मुहूर्त्त।

30 मुहूर्त वालों का इससे दुगुना 45 मुहूर्त्त वालों के इससे तीन गुना होता हैं। अर्थात् चन्द्र के योग काल से सूर्य का योग काल 67/5 गुणा होता हैं।

6. एक युग 1830 अहोरात्र का होता हैं। जिसमें सूर्य 1830 अर्द्ध मंडल गति करता है चन्द्र 1768 अर्द्ध मंडल गति करता है, नक्षत्र 1835 अर्द्ध मंडल गति करता है अतः एक अहोरात्र में सूर्य 1830/1830 अर्द्ध मंडल। चन्द्र 1768/1830 अर्द्ध मंडल। नक्षत्र 1835/1830 अर्द्ध मंडल गति करता हैं। अर्थात् एक अहोरात्र में सूर्य एक अर्द्ध मंडल। चन्द्र एक अर्द्ध मंडल में 62/1830 भाग कम। नक्षत्र-एक अर्द्ध मंडल से 5/1830 भाग अधिक चलता है।

जब चन्द्र को 1768 अर्द्ध मंडल में 1830 दिन लगते है तब 1 अर्द्ध मंडल में = 1830/1768 दिन ।

तब चन्द्र को एक पूर्ण मंडल में = $1830/1768 \times 2 = 1830/884 = 2\frac{31}{442}$ दिन लगते हैं ।

परिशिष्ट-2

नक्षत्र तत्त्व विचार (नक्षत्र का थोकड़ा)

बारह द्वारों से यहां विचार किया जाता है यथा-1. नक्षत्र नाम 2. आकार 3. तारा संख्या 4. मंडल में नक्षत्र 5. रात्रिवाहक 6. मंडल सम्बन्ध 7. योग, 8. सीमा विष्कंभ 9. योग काल 10. मुहूर्त्त 11. मंडल दूरी 12. मास संवत्सर काल मान।

1 से 3- **नाम-आकार-तारे-** इनका चार्ट 10 वें प्राभृत के आठवें नवें प्रति प्राभृत में दिया गया हैं।

4. **मंडल में नक्षत्र-** नक्षत्र के आठ मंडल है उनमें नक्षत्र इस प्रकार है-

पहले मंडल में- अभिजित श्रावण, धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वाभाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वा फाल्गुनी ये 12 नक्षत्र हैं।

दूसरे मंडल में- पुनर्वसु, मघा ये दो है।

तीसरे मंडल में- कृतिका

चौथे मंडल में- चित्रा, रोहिणी

पांचवें मंडल में- विशाखा

छट्ठे मंडल में- अनुराधा

सातवे मंडल में- ज्येष्ठा

आठवें मंडल में- मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, मूल

5. रात्रि वाहक- इसका चार्ट दसवें प्राभृत के दसवें प्रति प्राभृत में हैं।

6. मंडल सम्बन्ध- 1. चन्द्र के मंडल से नक्षत्र मंडल का सम्बन्ध --1,3,6,7,8,10,11,15

2. नक्षत्र मंडल का सूर्य मंडल का सम्बन्ध - 1,2,7,8

3. सूर्य मंडल का चन्द्र मंडल से सम्बन्ध --1,2,3,4,5,11,12,13,14,15

4. चन्द्र मंडल के साथ सूर्य एवं नक्षत्र मंडल का अर्थात् तीनो का मंडल सम्बन्ध -

चन्द्र का 1-3-11-15

नक्षत्र का 1-2-7-8

सूर्य का 1-27-144-184

7. योग-

1. दक्षिण योग- 6 नक्षत्र मृगशीर्ष आदि

2. उत्तर योग- 12 नक्षत्र अभिजित आदि

3. तीनों- 7 कृतिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा

4. दक्षिण व प्रमर्द- पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा 2

5. प्रमर्द- ज्येष्ठा

8. सीमा विष्कंभ -

अपने अपने मंडल के 109800 भाग में से निम्न भाग प्रमाण इन नक्षत्रों का सीमा विष्कंभ (अपना योग क्षेत्र) हैं-

630 भाग -	अभिजित
1005 भाग -	शतभिषक, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा ।
2010 भाग -	श्रवण धनिष्ठा आदि 15 (प्रा. 10/प्र प्रा. 2)
3015 भाग -	उत्तर भाद्रपद , रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा

9. योग काल-

	चन्द्र के साथ	सूर्य के साथ
अभिजित	$9\frac{37}{67}$ मुहूर्त	4 दिन 6 मुहूर्त
6 नक्षत्र	15 मुहूर्त	6 दिन 21 मुहूर्त
15 नक्षत्र	30 मुहूर्त	13 दिन 12 मुहूर्त
6 नक्षत्र	45 मुहूर्त	20 दिन 3 मुहूर्त

10. मुहूर्त गति-

	प्रथम मंडल	अंतिम मंडल
सूर्य की	$5251\frac{29}{61}$	$5305\frac{15}{60}$
चन्द्र की	$5073\frac{7744}{13725}$	$5125\frac{6990}{13725}$
नक्षत्र की	$5265\frac{18263}{21960}$	$5319\frac{16365}{21960}$

11. मंडल दूरी- सूर्य 48/61 योजन। चन्द्र 56/61 योजन। नक्षत्र- कोश। यह लम्बाई चौड़ाई हैं। उंचाई इससे आधी हैं। आठ मंडलों में सात दूरी। (1) $72\frac{51}{61}$ -1/7 (2) $109\frac{15}{61}$, 5/7 (3) $36\frac{25}{61}$, 4/7 (4) $36\frac{25}{61}$, 4/7 (5) $72\frac{25}{61}$, 4/7 (6) $36\frac{25}{61}$, 4/7 (7) $145\frac{41}{61}$, 2/7

सूर्य मंडल का अंतर 2-2 योजन हैं। चन्द्र मंडल का - $35\frac{30}{61}$, 4/7 योजन का अतंर।

12. काल मान-

1. मास का काल मान-	**2. युग में महिने-**
नक्षत्र मास - $27\frac{21}{61}$ दिन	67
चन्द्र मास - $29\frac{32}{62}$ दिन	62
ऋतु मास - 30 दिन	61
सूर्य मास - $30\frac{1}{2}$ दिन	60
अभिवर्द्धित मास - $31\frac{121}{124}$ दिन	57 मास 7 दिन एंव $11\frac{23}{62}$ मुहूर्त्त

3. संवत्सर के दिन	**4 युग के दिन**
नक्षत्र - $327\frac{51}{61}$	$1638\frac{54}{67}$
चन्द्र - $354\frac{12}{62}$	$1770\frac{60}{62}$
ऋतु - 360	1800
सूर्य - 366	1830
अभिवर्द्धित - $383\frac{44}{62}$	$1918\frac{34}{62}$

5. कितने वर्ष बाद मिलान -

1. चन्द्र सूर्य का मास मिलान -	$2\frac{1}{2}$ वर्ष लगभग में
2. चन्द्र सूर्य का संवत्सर मिलान -	30 वर्ष में ($2\frac{1}{2} \times 12$)
3. चन्द्र सूर्य, ऋतु, नक्षत्र संवत्सर मिलान -	60 वर्ष में
4. पांचों का मिलान -	780 सूर्य संवत्सर से 806 चन्द्र संवत्सर से 871 नक्षत्र संवत्सर से 793 ऋतु संवत्सर से 744 अभिवर्द्धित संवत्सर से

परिशिष्ट–3

'ज्योतिष मंडल' विज्ञान एवं आगम की दृष्टि में

जैन सिद्वान्तानुसार पृथ्वी प्लेट के आकार गोल असंख्य योजन रूप हैं। वह स्थिर हैं। प्राणी जगत इस पर भ्रमण करते है यान वाहन इस पर भ्रमण करते है एवं इस भूमि के ऊपर आकाश में ज्योतिष मंडल सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र स्वाभाविक भ्रमण करते हैं एवं यान विमान मानविक दैविक शक्ति से आकाश में गमन करते हैं। पक्षी आदि तिर्यञ्च यौनिक जीव भी आकाश में गमनागमन करते हैं। ज्योतिष मंडल के बीच में उत्तर दिशा में दिखाई देने वाला लोक मान्य ध्रुव तारा सदा वहीं स्थिर रहता हैं। अर्थात् मनुष्यों एवं वैज्ञानिकों को वह सदा सर्वदा एक ही स्थल पर दिखता हैं। हजारों वर्षों से पूर्व भी वहीं दिखता था और हजारों वर्ष बाद भी उसी एक निश्चित स्थान पर दिखता रहेगा।

गोल और घूमने वाली पृथ्वी– वैज्ञानिक लोग पृथ्वी को गोल गेंद के आकार मान कर भी उसे एक केन्द्र बिन्दु पर सदा काल घूमने वाली मानते हैं और सूर्य को स्थिर मानते हैं।एवं सूर्य का चलते हुए दिखना भ्रम पूर्ण मानते है। पृथ्वी को भी 1000 माइल घंटा चलने वाली मानते हैं। इस चाल से वह अपनी धुरी पर घूमती रहती है साथ ही दूसरी गति से वह अपना छोड कर पूर्णतः सूर्य के परिक्रमा भी लगाती हैं।

ट्रेन एवं पक्षी का उदाहरण– ''चलती हुई रेल (ट्रेन) में जैसे पृथ्वी वृक्ष चलते दिखतें है वह भ्रम हैं। वैसे ही सूर्य आदि चलते हुए दिखते है यह भी भ्रम है'' ऐसा वैज्ञानिक मानते हैं। किन्तु जब ट्रेन चलती है तब उसके भीतर तो व्यक्ति चल फिर सकता है, गेंद खेल सकता है किन्तु उस ट्रेन के बाहर या ऊपर कोई कूद कर खेल नहीं सकता या गेंद से नहीं खेल सकता हैं। इसी प्रकार यदि पृथ्वी चलन स्वभाव वाली होती और 1000 माइल प्रति घंटा चलती होती तो इसके ऊपर आकाश में पक्षी उड़कर पुनः अपने स्थान पर नहीं बैठ सकते हैं। क्योकि पृथ्वी जिस दिशा में 1000 माइल की गति से चल रही है तो उससे विपरीत दिशा में दो माइल आकाश में एक घन्टा चलकर पक्षी अपने स्थान पर दूसरे घन्टे में नहीं पहुंच सकता। क्यों कि पृथ्वी 1000 माइल आगे चली जायेगी। जब कि पक्षी अपने स्थान पर पुनः आते जाते देखे जाते हैं। इस पृथ्वी पर मनुष्य कूदते हैं, गेंद रिंग आदि खेलते हैं। इसमें कोई दिक्कत नहीं आती हैं। किन्तु ट्रेन की छत पर बैठकर कोई भी 6 इंच गेंद को कुदाते हुए सफल नहीं हो सकता है और ट्रेन के अंदर अपनी इच्छा सफल कर सकता हैं। इससे स्पष्ट है कि ट्रेन का बाहरी वायुमंडल उसके साथ नहीं चलता हैं। उसी प्रकार पृथ्वी का बाह्य आकाशीय वायुमंडल उसके साथ नहीं चल सकता हैं।

वायु मंडल– वायु मंडल साथ चलने की बात भी कल्पित एवं पूर्ण सत्य नहीं हैं। जिस प्रकार ट्रेन का भीतरी वायु मंडल साथ चलना संभव हैं। किन्तु बाह्य वायु मंडल साथ नहीं चलता हैं। उसी प्रकार पृथ्वी के बाह्य विभाग का वायु मंडल साथ चलना कहना अप्रमाणिक मन गढ़ंत कथन है एवं असंभव हैं। वह केवल अपने आग्रह का प्रकटीकरण मात्र है । वास्तव में तो पृथ्वी स्थिर है इसलिये उसका सारा बाह्य वातावरण उसके साथ हैं। पक्षी आदि का निराबाध गमन भी इसी कारण हो सकता हैं। वायुयान भी अपनी गति से ही मंजिल पार करते है, पृथ्वी की गति से नहीं ।

इसलिये यह स्पष्ट सत्य है कि पृथ्वी स्थिर है भ्रमणशील नहीं हैं। सूर्य आदि ज्योतिष मंडल भ्रमण शील हैं। यह सम्पूर्ण ज्योतिष मंडल सम भूमि से 790 योजन ऊपर जाने के बाद 900 योजन तक में अर्थात् कुल 110 योजन जाड़े क्षेत्र में हजारों योजन लम्बें चौड़े क्षेत्र में हैं।

ध्रुवतारा क्या हैं- भूमि से इतनी ऊंचाई पर रहे हुए ये सूर्य आदि सदा भ्रमण करते रहते हैं। एक ध्रुव केन्द्र के परिक्रमा लगाते रहते हैं। वह ध्रुव केन्द्र मेरू पर्वत है जो 99000 योजन ऊंचा है उसकी चूलिका ही हमें ध्रुव तारा रूप दिखती हैं। मेरू भी स्थिर भूमि का ही एक अंश हैं। अतः ध्रुव तारा दिखने वाला व माना जाने वाला वह तारा नहीं किन्तु ध्रुव केन्द्र रूप मेरू पर्वत का चोटी स्थल हैं। जो वेडूर्य मणिमय होने से चमकते हुए नजर आता हैं। वह हमारे से (भरत क्षेत्र के मध्य से) 49886योजन दूर और समभूमि से 99000 योजन ऊंचा हैं। माइल की अपेक्षा 80 करोड़ माइल से अधिक ऊंचा और तीन करोड़ माइल दूर हैं। सप्तर्षि मंडल इसके अत्यन्त निकट परिक्रमा लगाते हुए दिखता हैं। परिक्रमा सदा स्थिर वस्तु के लगाई जाती हैं। मेरू स्थिर केन्द्र है उसी के ही सम्पूर्ण ज्योतिष मंडल परिक्रमा लगाता हैं। सूर्य पृथ्वी आदि को गतिमान मानकर भी वैज्ञानिक उसे परिक्रमा केन्द्र मानते हैं। यह भी एक व्यापक भ्रम हैं।

वैज्ञानिकों के सिद्वान्त- वैज्ञानिक लोग सूर्य को आग का गोला मानते है, चन्द्र को पृथ्वी का टुकड़ा मानते है, चन्द्र पृथ्वी के चक्कर लगाता है, पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती हैं, सूर्य किसी अन्य सौर्य मंडल के चक्कर लगाता है, पृथ्वी अपनी धुरी पर भी 1000 माइल प्रति घंटा की चाल से घूमती हैं। इस प्रकार सूर्य को भी चक्कर काटने वाला बताते हैं। पृथ्वी तथा चन्द्र को तीन प्रकार की गतियों से गतिमान कल्पित करते है यथा- पृथ्वी- 1. अपनी धूरी पर घूमती हैं। 2. सूर्य के चक्कर लगाती है और 3. सूर्य किसी सौर्य मंडल के चक्कर लगाता है उसके साथ पृथ्वी भी दौड़ती है। चन्द्र भी -1. पृथ्वी के चक्कर लगाता है 2. पृथ्वी के साथ सूर्य के भी चक्कर लगाता है 3. और सूर्य के साथ सौर्यमंडल के भी चक्कर लगाता है। इस कल्पना में पृथ्वी और चन्द्र की तीन गुणी गति अर्थात् करोडों माइल प्रति घंटा की गति होती हैं। इस प्रकार की तीव्र गति करने वाले चन्द्र पर किसी के जाने की कल्पना करना, प्रयत्न करना एवं प्रचार करना केवल भ्रम मूलक है एवं हास्यास्पद हैं।

त्रिविध गतियों की अवास्तविकता- पृथ्वी तीन गुणी गतियों से दौडती है तो उस पर गर्मी के दिनों में कई बार हवा नाम मात्र भी नहीं रहती है ऐसा क्यों ? सामान्य गति से चलने वाले वाहन जब ठहरे हुए होते है तो गर्मी होती है कन्तु जब वे चल देते हैं तो हवा का संचार स्वतः हो जाता है। तब यदि पृथ्वी तीन गतियों से निरंतर दौडती होती तो कमरों के अंदर या मैदान में कहीं भी निरंतर जोरदार हवा का तूफान रहना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता हैं। इस दृष्टांत से पक्षियों के उडकर पुनः अपने स्थान में आने के दृष्टांत से पृथ्वी का स्थिर रहना ही सुसंगत होता हैं।

वास्तविक सत्य- सूर्य चन्द्र आदि ये ज्योतिषी देवों के विमान है जो गति स्वभाव वाले होने से सदा अनादि से गतिमान रहते हैं। ये विविध रत्नों के अनादि शाश्वत विमान हैं। ये अपने निश्चित सीमित मंडलों मार्गों में एक सीमित गति से सदा निरंतर भ्रमण करते रहते हैं। और इन रत्न मय विमानों के रत्न ही मनुष्य लोक को प्रकाशित एवं प्रतापित करते रहते हैं।

न तो ये अग्नि पिंड है और न ही पृथ्वी के कटे हुए टुकडे रूप हैं। पृथ्वी से कटा टुकडा पृथ्वी से ऊपर जाकर गोल चन्द्र बन जाय और चमकने लग जाय प्रकाश देने लग जाय इत्यादि ये सारी वैज्ञानिक लोगों की बिना प्रत्यक्षीकरण की कल्पनाएं मात्र हैं।

सत्य सुझाव- जब वैज्ञानिक बिना पास में गये एंव बिना देखे ही केवल अपनी रूचि या कल्पना मात्र से सूर्य को आग का गोला मान सकते है, मनवा सकते है तो फिर बिना देखे ही आगम श्रद्वा को स्वीकार कर इन्हें देवों के भ्रमणशील विमान ही स्वीकार कर लेना चाहिये। और पृथ्वी को स्थिर मान लेना चाहिये। जब कल्पना ही करना है तो लोक में प्रचलित धर्म सिद्वान्तों में और ज्योतिष शास्त्रों में इनका जो स्वरूप अंकित किया गया है उसे ही स्वीकार कर लेना चाहिये एवं तदनुसार ही सत्य की खोज करनी चाहिए।

वैज्ञानिकों का सत्यावबोध– वैज्ञानिक कोई भी कभी पृथ्वी को चलती हुई देख नहीं पाये हैं। किसी चन्द्र को पृथ्वी का टुकडा होते हुए देखा नहीं, किसी को दिखाया भी नहीं हैं। सूर्य को अग्नि पिंड रूप गोलाकार में किसी वैज्ञानिक ने जाकर देखा भी नहीं है। कल्पनाओं से मान्य करके वैज्ञानिक सदा अपनी मान्यता और कल्पनाओं के अनुसार खोज शोध करते रहते हैं। उनकी खोज का अभी अंत नहीं आया हैं। आज भी वे खोज करके नई हजारों लाखों माइल की पृथ्वी स्वीकार कर सकते हैं। कई वैज्ञानिकों ने भी पृथ्वी को गेंद के समान गोल मानने से इन्कार कर दिया हैं। इसी प्रकार ये वैज्ञानिक कल्पना, खोज, उपलब्धि, भ्रम, अपूर्णता, प्रयास, निराश, पुनः कल्पना, खोज, उपलब्धि, भ्रम , ऐसे क्रमिक चक्कर में चलते रहते है किसी वैज्ञानिक ने अपनी खोज को समाप्ति का रूप नहीं दिया है। वे अभी और कुछ खोज सकते है, पुराना निर्णय पलट भी सकते हैं।

सार– फिलहाल वैज्ञानिकों का ज्योतिष मंडल सम्बन्धी निर्णय भ्रमित एवं विपरीत हैं। उसी की विपरीतता से पृथ्वी के स्वरूप को भी वास्तविकता से विपरीत मानकर वे अपनी गणित का मिलान कर लेते हैं।

अनेक धर्म सिद्धान्तों में आये पृथ्वी एंव ज्योतिष मंडल के स्वरूप से वैज्ञानिकों की कल्पना विपरीत ही हैं। जब वह वैज्ञानिको की अपनी कल्पना ही तो उसे सत्य मान कर धर्म शास्त्रों के संगत वचनों को झूठलाना किसी भी अपेक्षा से उचित नहीं हैं। क्योंकि विज्ञान का मूल ही कल्पना और फिर शोध प्रयत्न हैं। अतः शोध का अंतिम निर्णय सही न आ जाय तब उसके लिये सत्य होने का निर्णय नहीं दिया जा सकता है। जब कि जैन शास्त्रोक्त सिद्धांत कल्पना मूलक नहीं अपितु ज्ञान मूलक हैं। अतः तुलनात्मक दृष्टि से भी ये आगमोक्त सिद्धान्त विशेष आदरणीय, भ्रम रहित एवं विशाल है। ऐसे ज्ञान मूलक सिद्धांतों को विज्ञान के कल्पना मूलक कथनों से प्रत्यक्षीकरण का झूठा आलंबन लेकर बाधित करना एवं गलत कहना समझ भ्रम मात्र हैं।

चन्द्र लोक की यात्रा व्यर्थ– वैज्ञानिकों की चन्द्र लोक यात्रा और उसके प्रयास हेतु किये गये खर्च अभी तक कुछ भी कामयाब नहीं हुए हैं। उन्हें पश्चाताप के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगा है। वास्तव में मूल दृष्टिकोण सुधारे बिना वैज्ञानिकों को ज्योतिष मंडल के सम्बन्ध से किसी भी प्रकार की उपलब्धि नहीं हो सकती, यह दावे के साथ कहा जा सकता हैं। क्यों कि ज्योतिष मंडल वैज्ञानिकों की शक्ति सामर्थ्य से बाह्य सीमा में है और उनके सम्बन्धी कल्पनाएं भी वैज्ञानिकों की सत्य से बहुत दूर हैं। अतः कल्पनाओं में बहते रहने में ही उन्हें संतोष करते रहना होगा। पृथ्वी के संबंध में खोज करते रहने पर तो आगे से आगे किसी क्षेत्र की उपलब्धि इन्हें हो सकती है, किसी नये नये सिद्धान्तों की प्राप्ति भी हो सकती हैं। किन्तु दैविक विमान रूप ज्योतिष मंडल जो कि अति दूर है उन्हें आग का गोला या पृथ्वी का टुकडा मान कर चलने से कुछ आना जाना नहीं हैं, व्यर्थ की मेहनत और देश का खर्च हैं।

अतः वैज्ञानिकों को ज्योतिष मंडल के सम्बन्ध में मेहनत करने के पूर्व धर्म सिद्धान्तों के अध्ययन मनन का एवं सही श्रद्धा करने का विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। क्यों कि धर्म सिद्धान्त और ज्योतिष शास्त्र ही ज्योतिष मंडल के अधिकतम सही ज्ञान के पूरक हैं। स्वंतत्र कल्पनाओं से उसका सही ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता हैं।

पुनश्च– पृथ्वी स्थिर असंख्य योजन मय एक राजू प्रमाण विस्तृत हैं। सूर्य चन्द्र आदि गति मान है सदा भ्रमणशील हैं। सदा एक ही ऊंचाई पर रहते हुए अपने अपने मंडलों-मार्गो में चलते रहते हैं। हमें दिखाने वाले सूर्य चन्द्र तारे आदि ये ज्योतिषी देवों के गतिमान विमान हैं। ये हमें प्रकाश एवं ताप देते हैं। दिन रात रूप काल का वर्तन करते हैं। ये भिन्न भिन्न गति वाले हैं। अतः कभी आगे कभी पीछे कभी साथ में चलते हुए देखे जाते हैं। इस सम्बन्धी विविध वर्णन प्रस्तुत ज्योतिषगण-राज-प्रज्ञप्ति सूत्र में बताया गया हैं। जिसका ध्यान पूर्वक अध्ययन मनन एवं श्रद्धान करना चाहिए।

परिशिष्ट–4

सत्रहवें प्रति प्राभृत के निर्णयार्थ प्रश्नोत्तर

1. प्रश्न– सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के दसवें पाहुड का 17 वां पाहुड पाहुड भगवान भाषित हैं ?

उत्तर– इस विषय में यदि हां कहा जाय तो मांस आदि खाने का कथन भगवद् कथित मानना होगा, जो कि सर्वथा अनुचित होगा। यदि यह कहा जाय कि नहीं ऐसा कथन भगवद् भाषित नहीं हो सकता, तो इस जिनवाणी के विपरीत पाठ को 32 आगम के सूर्य प्रज्ञप्ति उपांग में क्यों रखा जाय, हटा देना चाहिये। यह प्रश्न खड़ा होता हैं।

2. प्रश्न– क्या इस पाठ के आगे पीछे कोई पाठ छूट गया होगा ?

उत्तर– हां यदि छूट गया हो तो उसे पूर्ण करना चाहिये। कोई पूर्ण नहीं कर सकते है तो अपूर्ण और अनर्थकारी पाठ को रखना कोई समझदारी नहीं है, उसे हटा देना चाहिये।

3. प्रश्न– सूत्र की नकल में भूल सुधारने योग्य है ?

उत्तर– सूत्र में अक्षर भी घटाना बढाना अनंत संसार वृद्धि का कारण होता हैं। इसका आशय यह है कि भगवद् वाणी में छदस्थ को बुद्धि लगाना पाप है, किन्तु भगवद् वाणी से विपरीत व छदस्थ की भूल से अनर्थ होता हो तो उसे सुधारना कोई पाप नहीं कहा जा सकता हैं।

जब कि यह सभी मत से स्वीकार कर रहे है कि यह पाठ भगवद् वाणी का नहीं हैं। तब इसे हटाने में क्या दोष हो सकता है अर्थात् कुछ भी दोष नहीं ।

4. प्रश्न– क्या कोई साधु यह कह सकता है कि अमुक नक्षत्र में अमुक वस्तु खाकर जाने से कार्य सिद्व होता है?

उत्तर– साधु को इस प्रश्न का उत्तर देना भी नहीं कल्पता हैं। तो हमारे आगम में ऐसे प्रश्न और उत्तर को स्थान ही कैसे हो सकता है ?

5. प्रश्न– सूर्य प्रज्ञप्ति के इस पाठ में तो अनेक प्रकार के मांस आदि खाने के उत्तर है तो क्या ऐसा तीर्थकर या जैन साधु रचना कर सकते है ?

उत्तर– मांस आदि तो दूर रहे किन्तु अन्य पदार्थ खाने के फलावट वाला प्रश्न-उत्तर देना भी जैन आगम व जैन मुनि की विधि से विपरीत हैं। अतः यह पूरा पाहुड ही साधु कृत न होकर किसी दुर्बुद्धि के द्वारा प्रक्षिप्त होना ही पूर्ण संभव लगता हैं। इतना स्पष्ट होते हुए भी ऐसे जिनवाणी विपरीत पाठ को रखना आगम सेवा व आगम निष्ठा नहीं कहला सकती , किन्तु चिंतन रहित चाल ही होगी।

6. प्रश्न– इस पाहुड का कथन अन्य मत का होगा तो ?

उत्तर– इस दसवें पाहुड के 22 पाहुड पाहुड है, जिसमें केवल दो पाहुड पाहुड में ही अन्य मतों का संग्रह हैं। शेष में मात्र जिन मत का ही कथन हैं। उपलब्ध इस सतरहवें पाहुड पाहुड की भी जो रचना उपलब्ध हैं, उससे ही स्पष्ट होता है कि अन्य मतों के कथन इसमें नहीं हैं।

सूर्य प्रज्ञप्ति के रचनाकार स्वमत कथन में नक्षत्रों का क्रम अभिजित से ही शुरू करते है जबकि इस पाहुड पाहुड में कृतिका से शुरू किया गया है। साथ ही सर्वत्र कज्जं साधेति ऐसी क्रिया लगाई हैं। तथा इसमें आगे पीछे का पाठ छुटने जैसा भी कुछ नहीं लगता हैं।

अतः 22 पाहुड़ की जगह 21 ही रहे होंगे और एक किसी के द्वारा बढ़ाया गया प्रक्षिप्त चल गया समझना चाहिये। अतः समीक्षा करके उसे निकाल कर वापिस 21 पाहुड़ पाहुड़ ही कर लेना चाहिये।

7. प्रश्न– पूर्वो के वर्णन में अनेक विद्यालयों व निमित्तों का वर्णन होता ही हैं उसी के आधार से अनेक अंग बाह्य सूत्रों की रचना होती है अतः सूर्य प्रज्ञप्ति का ऐसा वर्णन वहीं से आया होगा उसे प्रक्षिप्त मानने की क्या आवश्यकता हैं।

उत्तर– पूर्वों में अनेक विद्या आदि का वर्णन हो सकता है तथा अन्य अंग सूत्र में भी हो सकता है। किन्तु उसकी भाषा रचना ऐसी अयोग्य नहीं हो सकती हैं। इस सूर्य प्रज्ञप्ति के पाठ में स्पष्ट सावद्य प्रेरक पंचेन्द्रिय वध प्रेरक तथा मांस भक्षक प्रेरक भाषा रचना है इस तरह की वीतराग शासन के आगमों की रचना नहीं हो सकती हैं।

आगम लिपि बद्ध किये गये तब कई विषयों को हटा दिया गया, यथा - पूरा प्रश्न व्याकरण सूत्र तथा आचारांग सूत्र का सातवां अध्ययन आदि भी हटा दिया गया। अंग सूत्रों के भी चमत्कार आदि के पाठ हटा दिये गये तो फिर अब ऐसे अनर्थ मूलक पाठ को भी क्यों रखा जाता है ?

इसलिए स्पष्ट है कि यह पाठ मौलिक रचना का नहीं है। आगम लिपि काल के बाद का प्रक्षिप्त है।

8. प्रश्न– इस पाठ के प्रक्षिप्त होने का और भी कोई तर्क है ?

उत्तर– हां ! दसवें पाहुड़ के प्रथम पाहुड़ पाहुड़ में नक्षत्रों के क्रम की पृच्छा है। उत्तर में 5 मतांतर बताए हैं, जिसकें पहला मत ''कृतिका से नक्षत्र क्रम को प्रारम्भ करने वाला बताया है। छट्ठा मत स्वयं आगमकार ने अपना बताया है कि अभिजीत नक्षत्र से नक्षत्रों का क्रम प्रारम्भ होता है। तदनुसार अनेक प्रश्नों के उत्तर में अनेक पाहुडों में आगमकार ने अपने मत को अभिजीत नक्षत्र से प्रारम्भ करके ही बताया है। किन्तु इस 17 वें प्राभृत में जो वर्णन है वह कृतिका से प्रारम्भ किया गया हैं जो कि आगमकार के अभिमत से भिन्न है। अतः कभी कोई कृतिका से नक्षत्र क्रम की आदि मानने वाले लिपि कर्ता के द्वारा प्रक्षिप्त किया गया हो, ऐसा संभव है।

9. प्रश्न– आज तक किसी व्याख्याकार ने इसे प्रक्षिप्त कहा है ?

उत्तर– टीकाकार श्री मलयगिरि जी ने इस विषय में अपना कोई मन्तव्य न देकर उपेक्षा ही दिखाई है तथा एक नक्षत्र के भोजन (दही) का निर्देश करके कह दिया कि शेष नक्षत्र का वर्णन इसी तरह समझ लेना, इससे यह अनुमान भी होता है कि मलयगिरि आचार्य के समक्ष ऐसे मांस परक शब्द नहीं रहे होंगे। अन्यथा वे भी कुछ अन्यथा वे भी कुछ ऊहोपोह अवश्य करते। किन्तु व्याख्याकार श्री घासीलालजी म. ने इसे स्पष्ट शब्दों में प्रक्षिप्त घोषित किया है। जो उनकी चन्द्र प्रज्ञप्ति के इस पाठ की टीका में देखा जा सकता है।

आगमज्ञ श्री अमोलक ऋषि जी म. ने भी इस पाठ पर टिप्पण देकर अपना मन्तव्य प्रकट किया है।

10. प्रश्न– प्रक्षिप्त मानने की अपेक्षा अन्य मत की मान्यता रूप प्रतिपत्ति मान लेने से भी आपात्ति समाप्त हो सकती है?

उत्तर– इस दसवें पाहुड़ के 22 पाहुड़ हैं उनमें 20 पाहुड़-पाहुड़ में अन्य मत की प्रति पत्तियां नहीं कह कर केवल एक अपनी ही मान्यता आगमकार ने बताई है तदनुसार प्रक्षिप्त करने वाले ने भी एक मान्यता रूप पाठ रचा है। प्रतिपत्तियां बताने योग्य उत्तर का प्रारम्भ भी इस पाहुड़ का नहीं है। अतः पडिवत्तियां मानने का कोई प्रमाण या आधार किंचित भी नहीं है। प्रक्षिप्त कहने के तो तर्क व प्रमाण ऊपर कहे गये हैं।

यदि प्रतिपत्तियां रूप पाठ रहा होता और यह मात्र अन्य मत की एक प्रतिपत्ति रह गई, ऐसी कल्पना की जाय तो ऐसा अधूरा अनर्थकारी अवशिष्ट पाठ तो सर्वथा हेय ही होना चाहिये। जब विद्या चमत्कार के पूर्ण सूत्र व अध्ययन भी पूर्वाचार्यों ने लिपि परंपरा के लिये विच्छेद कर दिये तो ऐसे भ्रामक व संस्कृति विरूद्ध अधूरे पाठ को तो प्रकाशन के सर्वथा अयोग्य ही समझना चाहिये।

11. प्रश्न– इसका प्रकाशन न करने से एक पाहुड कम हो जायेगा और प्रारम्भ की गाथा में इस पाहुड-पाहुड का विषय निर्देशन का शब्द भी है, उसका क्या होगा ?

उत्तर– आचारांग के सातवें अध्ययन का क्या हुआ वही होगा। या समुचे प्रश्न व्याकरण सूत्र का क्या हुआ वही होगा।

अथवा 21 ही पाहुड बताये जा सकते है और गाथा 18के दूसरे चरण के अंत में आये ''भोयणाणि'' के स्थान पर अन्य गाथाओं के दूसरे चरण के अंत में आये शब्द प्रयोग के अनुसार यहां भी पूर्ति की जा सकती है। यथा-

''तिहि गोता भोयणाणि य'' के स्थान पर ''तिहि गोत्ता य आहिया'' रखा जा सकता हैं। तथा गाथा 19 में- ''बावीसं पाहुड पाहुडा'' के स्थान पर ''एकवीसं पाहुड़ पाहुड़ा'' किया जा जा सकता है।

12. प्रश्न– सूत्र में एक अक्षर भी कम ज्यादा करना महान अपराध होता है और अनंत संसार वृद्धि का कारण होता है, तो ऐसा कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर– ''रचनाकार गणधर आदि ने यह ठीक नहीं रचा,'' यह सोच कर हीनाधिक करना आपत्तिजनक है किन्तु लिपि दोष, प्रक्षिप्त पाठ आदि का निर्णय कर संशोधन करना, हटाना, सही सम्पादन करना, कोई दोष जनक नहीं हो सकता। भविष्य में नुकसान का निमित्त जानकर पूरे सूत्र प्रश्न व्याकरण का परिवर्तन भी पूर्वाचार्यों ने किया। गणधर कृत सूत्र को भी परिवर्तित किया। अतः आपत्ति जनक सर्वज्ञ मार्ग के विपरीत अर्थ के प्ररूपक प्रस्तुत पाठ का विच्छेद करना संसार वर्धक न होकर प्रशंसनीय ही होगा।

13. प्रश्न– पूर्व काल में तो ऐसा प्रचार था कि आगम में कुछ परिवर्तन का संकल्प करना भी महान अपराध है तो इतने सारे पाठ प्रक्षिप्त कैसे हुए ?

उत्तर– ऐसा वातावरण पहले भी था और अभी भी हैं। कई भवभीरू होते है और कई दुस्साहस वाले किसी भी काल में हो सकते हैं। आगम व ग्रन्थों के अध्ययन करने व इतिहास का परिशीलन करने से ज्ञात होता हैं कि आगम लिपिबद्ध होने के बाद जो मध्यकाल बीता उसमें कई आगम सेवा करने वाले भी हुए है और कई अनेक उटपंटांग रचनाएं भी हुई हैं। सभी मतावलंबियों ने अपने अपने मत या विचारों की जड़े मजबूत करने के और अन्य को उखाड फेंकने के अनेक जघन्य पुरूषार्थ किये है उस समय ऐसा बहुत कुछ होना संभावित हो सकता हैं। उदाहरण के लिये महानिशीथ का परिशीलन पर्याप्त होगा।

अतः सारांश कहने का यह है कि किसी दुर्बुद्ध लिपिकर्ता पंडित के द्वारा यह पाठ प्रक्षिप्त किया गया है ऐसा स्पष्ट समझ में आता हैं। अतः आगम अधिकारी प्रबद्ध निर्णायक संपादकों को इस पर अवश्य विचार करना चाहिए।

14. प्रश्न– जिस किसी को जो पाठ् आपत्तिजनक लगा, वे उस पाठ को निकालते जावेंगे तो आगमों की क्या दशा होगी ?

उत्तर– व्यक्तिगत विचारणा का बाधक पाठ निकालना अलग स्थिति है और सर्वज्ञ प्ररूपित सिद्वांत विपरीत प्रक्षिप्त पाठों को निकालना अलग वस्तु हैं।

15. प्रश्न– यह पाठ प्रक्षिप्त ही है, इसका निश्चित प्रमाण हमारे पास क्या हैं ?

उत्तर-प्रक्षिप्त होने के लिये निश्चित प्रमाण का अभाव महसूस करते हुए यह भी नहीं भूलना चाहिये कि 600-700 वर्ष पूर्व तक की ही हस्तलिखित प्रतियां प्रायः आगमों की उपलब्ध होती हैं। उसके पूर्व आगमों के पाठ कैसे थे? उसके पूर्व कितना लिपि काल और कितना मौखिक काल बीता था उस बीच के काल में विवेक पूर्वक कितने परिवर्तन संघ सम्मति से हुए? कितने परिवर्तन व्यक्तिगत समझ से हुए और कितने दुर्बुद्धि या स्वार्थ बुद्धि से हुए इसके लिये कल्प सूत्र, महानिशीथ सूत्र व अन्य अनेक प्राचीन ग्रन्थों के स्वाध्याय एवं चिंतन से और आगम पाठों के साथ तुलना करने से ज्ञात किया जा सकता है एंव अनुभव हासिल किया जा सकता हैं।

अतः 1000 वर्ष पूर्व का तो कोई भी प्रमाण कैसे कहा जा सकता हैं। सुधर्मा, जंबू से देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण तक की कोई हस्त प्रति मिलती नहीं हैं। देवर्द्धिगणी के शास्त्र लेखन के पश्चात 500 वर्ष तक बीच के काल में क्या घटा, क्या बढ़ा, इसका भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है क्योंकि 1500 वर्ष प्राचीन कोई प्रति नहीं मिलती हैं।

अतः सम्पूर्ण जैन समाज से एवं जैनागमों से स्पष्ट रूप से विरूद्ध दिखने वाले पाठ के लिये निश्चित प्रमाण की आवश्यकता समझना व्यर्थ हैं।

कृतिका नक्षत्र से नक्षत्रों का प्रारम्भ सम्बन्धी तर्क भी प्रक्षिप्तता सिद्ध करने में बहुत ठोस है, उपेक्षा करने योग्य नहीं हैं।

उसमें आगम रचना क्रम से क्या बाधा आती हैं लिपी परंपरा प्राप्त आगमों के प्रति विवेक पूर्ण श्रद्धा से निर्णय किया जा सकता है। न कि केवल निर्विचार श्रद्धा से ।

आगमों में मद्य मांस आहार को नरक गमन का कारण बताया हैं। साधु मांस मछली मद्य का सेवन नहीं करने वाले होते है ऐसे आगम वाक्य हैं। इससे यह निश्चित है कि आगम काल में ये शब्द इसी अर्थ में प्रचलित थे। अतः आचारांग सूत्र में साधु के आहार ग्रहण करने सम्बन्धी पाठ में भ्रन्ति पैदा करने वाले इन शब्दों का प्रयोग आगमकार नहीं कर सकते हैं। क्या उनके शब्द कोष में अन्य श्ब्द नहीं थे कि वे निषिद्ध और नरक गमन योग्य खाद्य पदार्थों के नाम से साधु के आहार का वंएान करे कि ''मसंगं मच्छगं भोच्चा, अट्ठियाइं कंटए य गहाय''

अतः देवर्द्धिगणी के लिपि काल के बाद और टीकाकार (शीलांकाचार्य व मलयगिरी) आचार्यों के बीच के काल का या बाद का यह प्रक्षिप्त दूषण हैं। इसे गणधरों और पूर्वधरों पर डालना उचित नहीं हैं।

अहिंसा महाव्रती को भाषा का पूर्ण विवेक रखना आगमों में कहा हैं। वही साधक ऐसे हिंसा मूलक वाक्य कहे या लिखे यह कितना अनर्थकारी हैं। यथा--''अमुख सचित पदार्थ खाकर जावे या अमुख का मांस खाकर जावे तो कार्य सिद्व होवे ।''

अन्य आगमों में तो वनस्पति परक अर्थ करने व खेचतान करके जमा देने से संतोष किया भी जा सकता है किन्तु सूर्य प्रज्ञप्ति में सावद्य भाषा का दोष तो फिर भी ज्यों का त्यों सुरक्षित बना रहता हैं। जो पूर्वधर और गणधरों पर डाला जाता हैं।

14 पूर्वी की रचना में खेंचतान कर अर्थ जमाना पड़े ऐसे प्रयास करने की अपेक्षा मध्य काल का प्रक्षिप्त पाठ मानना अधिक उचित प्रतीत होता हैं। क्योंकि आगमकारों के समय भी मांस मछली और मद्य का प्रचलित अर्थ यही था और उन्होने इन्हीं शब्दों से निषेध और नरक गमन का कथन किया हैं।

14 पूर्वी तो अपने ज्ञान के कारण आगम विहारी कहलाते हैं। वे भविष्य की अर्थ परम्पराओं का विचार करके ही असंदिग्ध रचना करते हैं। अतः जितने संदिग्ध स्थल आगमों के हैं उसे श्रद्वा के बहाने गणधरों आदि पर आरोपित नहीं करना चाहिये। अपितु मध्य काल में प्रक्षिप्त किया गया प्रदूषण ही समझना चाहिये। अन्यथा अंध श्रद्वा से प्रमाणिक पुरूषों की प्रमाणिकता पर ही प्रहार होगा। जिससे अशातना से बचने की जगह ज्यादा ही आशातना लगेगी ।

16. प्रश्न– आचारांग का आठवां अध्ययन विछिन्न हुआ या निकाला? सही है? टीकाकार ने विछिन्न होना कहा है?

उत्तर– आचारांग के आठवें अध्ययन के विछिन्न होने के संबंध की टीका के विषय में यह विचारणा चाहिये कि देवद्धि गणी के 500-600 वर्ष बाद शीलांकाचार्य हुए हैं। तथा सैकड़ों साधु देवर्द्धिगणी के समय भारत में थे। उन्हें 11 अंग, एक पूर्व का ज्ञान तथा 84 आगम सब कंठस्थ रह गये थे, तब आचारांग के ही बीच में से शीर्फ, सातवां अध्ययन सभी साधु और एक पूर्वधर भूल जावे और विस्मृत होकर विच्छेद हो जाये, ऐसी कल्पना करना सर्वथा असंगत है एवं अघटित हैं।

अतः लिपि काल में उसे अनुपयुक्त समझ कर उसका लिपिबद्व न करना ही विशेष संगत प्रतीत होता हैं।

मूल पाठ में उस स्थान पर चूर्णी व्याख्या काल तक विच्छेद आदि कुछ भी लिखा हुआ नहीं था। बाद में जिसके जो समझ में आया उसने वैसा ही अनुमान किया। किन्तु सही विचार करने पर ही किये गये अनुमान की कसोटी हो सकती हैं।

17. प्रश्न– प्रक्षिप्त मानने पर मौलिक रचना का क्या महत्व रहेगा ?

उत्तर– इस विषय में यह निवेदन है कि अक्षरसः सब मौलिक रचना ही नहीं मान लेना चाहिये क्यों कि पूर्वधरों की रचना ऐसी नहीं हो सकती है प्रमाण के लिये-

1. दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन का प्रारम्भ– हे आयुष्मान मैने सुना है उन भगवान ने इस प्रकार फरमाया है कि इस शासन में छज्जीवनिकाय अध्ययन काश्यप गौत्री श्रमण भगवान महावीर ने कथन किया है, समझाया है, प्ररूपित किया है, कि मुझे उस धर्म प्रज्ञप्ति अध्ययन का अध्ययन करना श्रेयष्कार हैं।

इस रचना के छोटे छोटे वाक्य पर शब्द पर तथा उनको सम्बन्धित करने पर क्या अर्थ होता है उस पर विचार करें और 14 पूर्वी, गणधर की योग्यता को सामने रख कर कसोटी करें, देखे-क्या निर्णय आता है।

यहां भगवान से प्रत्यक्ष सुनने के भाव बताये हैं भागवान ने क्या फरमाया यह बताते हुए कहा गया कि इस जिन शासन में...... महावीर ने............. प्रज्ञापित किया कि मुझे........... अध्ययन करना श्रेयष्कर हैं। क्या श्रुत केवली की ऐसी रचना होती है ? क्या इसमें असंबद्वता नहीं लगती है ?

2. दशाश्रुतस्कंध दशा 10 का मुख्य विषय प्रारम्भ व अंत इस प्रकार है–

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था श्रमण भगवान महावीर धर्म की आदि करने वाले यावत् णमोत्थुणं पाठ कथित गुण कहना यावत् पधारे। भगवान ने मनुष्य देव युक्त परिषद को उपदेश दिया.............साधु साध्वी ने नियाणा किया...........हे आर्यो ! इस प्रकार संबोधन से श्रमण भगवान महावीर ने बहुत से निर्ग्रन्थियों को कहा.....। कि

''हे आयुष्मन् श्रमणों ! मैने जो यह धर्म कहा..........। नियाणा वर्णन।

तब बहुत से निर्ग्रनथ निर्ग्रन्थियों ने श्रमण भगवान महावीर से यह गूढ अर्थ सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन पूर्वक यावत् प्रायश्चित किया। इसके बाद यह पाठ है कि उस काल उस समय में वहां भगवान ने यह पूरा अध्ययन बहुत से साधु साध्वी श्रावक श्राविका बहुत से देवी देवी की परिषद में अर्थ, हेतु कारण सहित तथा सूत्र व अर्थ तथा तदुभय रूप में बारंबार कहा, बारंबार समझाया ।

विचार करें.........अनेक बार भगवान के पूरे नाम युक्त गुण युक्त यह अध्ययन भगवान ने फरमाया था?

अंत में पुनः तेण कालेणं तेणं समएणं आदि रचना क्यों की गई ?

भगवान ने उस नगर व बगीचे में उस सम्पूर्ण परिषद् में अपने नामों से भरा हुआ यह अध्ययन बारंबार क्यों व कितनी बार फरमाया या केवल उस परिषद में घटना ही घटी थी ? इत्यादि उपलब्ध रचना क्रम की विचित्रता प्रत्यक्ष हैं। इस तरह अनेक सूत्रों में, अध्ययनों में रचना क्रम विचित्र है, जिसे 14 पूर्वी या गणधर द्वारा रचित कहना तो प्रक्षिप्त कहने की अपेक्षा, ज्यादा ही आपत्तिजनक होता हैं।

3. उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन भगवान महावीर स्वामी ने अंतिम समय फरमाये ऐसा प्रचलन है किन्तु कई अध्ययनों की रचना से यह संगत प्रतीत नहीं होता ।

आठवें अध्ययन में जो संयम आदि का उपदेश दिया गया है वह भगवान ने स्वतंत्र रूप से फरमाया है? या कपिल मुनि के फरमाये हुए का पुनर्कथन किया है? वैसे ही 20 वें अध्ययन में भी अनाथी मुनि के उपदेश का भगवान ने पुनर्कथन किया हैं? ऐसा पुनर्कथन तीर्थकर करते है क्या? आठवें अध्ययन के विषय में अनेक संपादनों में यह समझाया जाता है कि अध्ययन कथित उपदेश कपिल मुनि ने चोरों को दिया, जिससे प्रतिबुद्ध होकर वे दीक्षित हो गये। कोई चोर 1-2 गाथा से प्रतिबुद्ध हुए और कोई पूरे अध्ययन से।

सोचने का विषय है कि इस अध्ययन का विषय तो संयमी श्रमणों के लिये ज्यादा उपयुक्त है चोरों को प्रतिबुद्ध करने में वह विषय कैसे उपयुक्त हो सकता है

भगवान ने ये अध्ययन फरमाये तो किसने सुनकर इन अध्ययनों की रचना की है वे तो अज्ञात ही हैं। जब कि दशवैकालिक, नंदीसूत्र, छेद सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र आदि के रचनाकारों के नाम तो उपलब्ध हैं। तो यह सूत्र कब बना ? बनाने वाले का नाम क्यों अज्ञात है ?

भगवान से सुनने वाले रचना करे तो अभी-सुधर्मा वाचना व जम्बू प्रभव परंपरा चल रही हैं। उसमें तो अन्य की रचना परंपरा कैसे चली ?

अतः उत्तराध्ययन भगवान की अंतिम वाणी कहना और आठवां अध्ययन चोरों को उपदेश कपिल मुनि द्वारा कहा बताना आदि भी संगत नहीं हैं।

मध्यकाल में प्रक्षिप्त करने की प्रवृत्ति का उदाहरण- दशाश्रुतस्कंध सूत्र भद्रबाहु स्वामी रचित (संकलित) हैं। इसके निर्युक्ति कार (छट्ठी शताब्दी के) द्वितीय भद्रबाहु (वराहमिहिर के भाई) निर्युक्तिकार ने प्रथम गाथा में सूत्रकर्ता ''प्राचीन भद्रबाहु'' को वंदन किया हैं। सूत्र परिचय देते हुए नियुक्तिकार ने कहा कि इसमें छोटी दशाएं कही गई हैं। बड़ी दशाएं अन्य सूत्रों में है। आठवीं दशा में (पर्युषणा कल्प) केवल साधु समाचारी सम्बन्धी सूत्रों की व्याख्या उन्होंने की हैं।

कल्प सूत्र को महत्व देने की रूचि वाले मध्यकालीन तथा कथित महापुरूषों ने यह प्रचार किया है कि बारह सो श्लोक प्रमाण उपलब्ध पूरा कल्प सूत्र दशाश्रुतस्कंध का आठवां अध्ययन ही है जो भगवद् कथित और गणधर गूंथित तथा चौदह पूर्वी भद्रबाहु से संकलित हैं।

इस प्रचार को पुष्ट करने के लिये आठवीं दशा में किसी ने पूरा बारह सो श्लोक का कल्प सूत्र लिख भी दिया। जो 400 वर्ष से अधिक पुरानी दशाश्रुतस्कन्ध की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद की एल.डी.डी. लाइब्रेरी में देखा गया हैं। उसमें पूरा कल्प सूत्र आठवीं दशा में उपलब्ध हैं। जो कि महान प्रक्षिप्तिकरण का उदाहरण हैं।

इस कल्प सूत्र के अंत में स्पष्ट मूल पाठ है कि यह पूरा कल्प सूत्र (आठवीं दशा) भगवान् ने परिषद में बारंबार फरमाया, अर्थ हेतु आदि सहित।

कल्प सूत्र का विषय– भगवान के खुद के नाम पूर्वक पूरे जीवन का कथन, अंत में 980 वां वर्ष चल रहा है ऐसा कथन व मंतातर, साधुओं की पट्टावली, देवर्द्धिगणी आदि को वंदन, भगवान ने संवत्सरी की, वैसे ही गणधर करते, वेसे ही आज के आचार्य करते और वैसे ही हम करते, आदि आदि है।

ये सब भगवान के मुख से परिषद में कहलाना और अर्थ हेतु सहित बारंबार कहलाना इत्यादि प्रक्षिप्त नहीं तो क्या है फिर भी लिखित मौखिक चल ही गया। इस में आठवीं दशा का स्वरूप भी बिगड़ा। इतने बडे प्रक्षेप के अनर्थ मध्यकाल में हुए हैं।

अतः निश्चित किए गये दृष्टिकोण में पुनः विचार करना आवश्यक लगे तो विचार करना चाहिए। इसलिये सारे ही जैन समाज के आगम विपरीत पाठ को प्रक्षिप्त नहीं मानने के मानस को परिवर्तित करने की आवश्यकता समझनी चाहिये। यही निवेदन करने का आशय हैं।

18. प्रश्न– मांस परक होने के कारण पाठ निकाल देने की बात मन में जमती नहीं हैं। पुष्ट प्रमाणों के बिना ऐसे पाठों को निकाला न जाय ऐसे बाधाजनक पाठ आचारांग, भगवती सूत्र आदि में भी तो है ?

उत्तर– पूना श्रमण संघ साधु सम्मेलन के प्रस्तावों से निर्मित समाचारी (फोटो कापी) पृ. 20 में इस प्रकार है-

''चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति और कुछ अन्य सूत्रों में भी ऐसे पाठ है जो वीतराग मार्ग की मान्यताओं के विरूद्ध प्रतीत होते हैं।

इस वाक्य का आशय स्पष्ट यह है कि भगवती सूत्र, आचारांग सूत्र और सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के ''मांस'' विषयक पाठ वीतराग मार्ग की मान्यता से विरूद्ध हैं।

इस समाचारी के वाक्य का निर्णय लेने वाले श्रमण इन सूत्रों के इन पाठों को सर्वज्ञ भाषित व गणधर रचित नहीं मानते है, यह सुनिश्चित हैं। क्योंकि कोई भी सुज्ञ निर्णायक किसी पाठ को गणधर रचित मानकर भी उसे वीतराग मार्ग की मान्यता से विरूद्ध होने के आक्षेप से अलंकृत नहीं कर सकते हैं।

गणधर रचित भी मानना और ऐसे आक्षेप से अलंकृत भी किया जाना विद्वत समाज के लिये प्रशंसनीय नहीं हो सकता हैं।

क्योंकि गणधरों की रचना को जिनवाणी के विरूद्ध होना कहना महान् आशातना का कारण हैं।

जो निर्णायक जिस सूत्र पाठ को जिन मार्ग के विपरित होने की घोषणा कर सकते हैं ?

प्रकाशित कर सकते हैं। वे उस पाठ को गणधर कृत या प्रमाणिक पुरूष कृत तो मान ही नहीं सकते।

जब गणधर कृत या प्रमाणिक पुरूष कृत नहीं माने तो किसका रचित माना जाएगा ? जब कि भगवती सूत्र व आंचारागं सूत्र स्वयं तो गणधर रचित हैं। सूर्य प्रज्ञप्ति भी पूर्वधर रचित है उनके से मांस विषयक पाठ उनके रचित होना स्वीकार नहीं हैं। क्योंकि आगम विरूद्ध जो कह दिया गया हैं।) अतः स्वतः ही यह सिद्व हो गया कि किसी के द्वारा प्रक्षिप्त ही किये गये उक्त सूत्रों के वे पाठ हैं।

जब पूना सम्मेलन की समाचारी से ही यह सुनिश्चित और स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि प्रक्षिप्त हुए मांस परक पाठ उस आगम के रचनाकार के स्वयं के नहीं है। तब ''ऐसे पाठों को निकाला तो न जाए'' कोई भी विचारक तटस्थ बुद्धि वाला विद्वान इस वाक्य की उचितता नहीं समझ सकता हैं।

वास्तव में इस समाचारी निर्णायक वाक्य से भी यही प्रेरणा मिलती है कि ये सूर्य प्रज्ञप्ति आदि के पाठ आगम के मध्य में अनुचित और वीतराग मार्ग विरूद्ध प्रक्षिप्त पाठ हैं।

इस प्रकार समझ में आ जाने पर भी, किसी भूल से प्रविष्ट खराबी है ऐसा जानकर के भी, उसके अर्थ भावार्थ को छिपाने की एवं मूल को छपाने की नीति, कभी भी प्रशंसनीय नहीं हो सकती हैं।

अतः अपने दृष्टिकोण में पुनः विचार करना चाहिये तथा आगम विपरीत पाठ को प्रक्षिप्त नहीं मानने के सारे जैन समाज के मानस को भी परिवर्तित करना आवश्यक समझना चाहिये यही निवेदन करने का आशय हैं।

सार– सूर्य प्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों के मांस भक्षण प्रेरक पाठ प्रक्षिप्त है और जब प्रक्षिप्त है तो उन्हें हटाकर उनका सही संपादन करने में किंचित भी दोष नहीं हैं।

परिशिष्ट-5

वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण में आगम

परम संहिता-मोक्ष प्रकरण-

जैन साधना पद्वति प्रमादहीन व अहिंसक हैं। अतः आचार संहिता की बडी कठोरता से पालन का निर्देशन करती है, विशेषरूप से साधु समाज को । दशवैकालिक सूत्र इसका प्रमाण हैं। मगर दर्शन संहिता के द्वारा अध्ययन मनन हेतु सबके लिये सहृदय व समान रूप से खुले हुए है तथापि दर्शन से शुद्व ज्ञान की उपलब्धि किसी व्यक्ति विशेष को उसके आचार संहिता एंव इंगित यम नियमों के श्रद्वा निष्ठापूर्वक पालन पर ही सम्भव हैं।

साधक उपरोक्त दोनों वीथियों को पार करके, अर्थात् दोनों संहिताओं की परीक्षा को उत्तीर्ण करके, शुद्व सम्यक् भाव में प्रवेश कर पाता है तब वह चारित्र संहिता का विद्यार्थी हो पाता है, विद्याओं का अधिकारी हो जाता है और काम जीत होने के लिये नई तीसरी कक्षा में प्रवेक्ष पाता हैं। चारित्र संहिता में संकलित सारा ज्ञान गुरू गम्य व गुप्त है ताकि किसी छद्मस्थ द्वारा अशुभ कर्मोदय के आवेग में यह शुभ विद्या दुरूपयोगित न हो पावे। सहज नैसर्गिक क्रिया व्यापार में व नियमित क्रमबद्व समय चक्र में कोई अनधिकार चेष्टा न होने पावे।

सूर्य-चन्द्र प्रज्ञप्ति अर्थात् ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति सूत्र चरित्र संहिता हैं। तीसरी कक्षा में पढ़ी जाने वाली विद्या पुस्तकें हैं। काम-सूत्र हैं। समझलो परमाणु बम हैं। ज्ञान अपने प्रकाश द्वारा समस्त विश्व को सुखी व आनन्दित कर सकता हैं। विध्वंस का कारण भूत बन के दुःख का दरिया भी बहा सकता हैं। अस्तुत ये शास्त्र बड़ी गूढ़ भाषा में लिखे गये हैं। इनका न्यूनाधिक ज्ञान जिस किसी को भी प्राप्त है, उसे खुल्ले-आम प्रकाशित करना दोष हैं। अतः इस विषय का मर्यादा में ही विमर्श किया जा सकता हैं।

टिप्पण- 1. लेखक ने अपनी कल्पना में चार संहिता में पहली आचार संहिता और तीसरी चारित्र संहिता कल्पित की है तदनुसार उनका उक्त कथन है। (संपा)

वैज्ञनिक विचार शैली व आत्म ज्ञान द्वारा प्रकाशित सत्य-

विकास द्वार पर खड़े वर्तमान-विज्ञान युग के मानव की विचारधारा बदल चुकी हैं। जब यह शास्वत ज्ञान केवली भगवन्तों के मुखारविन्द से प्रफल्लित हुआ था प्रवर्तमान मानव की सोच सहज थी सीधी और सपाट सरल रेखा की तरह। आज की सोच वक्र व पेचीदी हैं। खण्ड-खण्ड व तर्क-वितर्क से उलझी व गडमगड हैं। यही कारण है कि उस समय की सपाट समझी जाने वाली पृथ्वी आज के सोच में वक्राकार मानी जाती हैं।

ज्योतिष-मण्डल का शास्वत ज्ञान केवली भगवान ने किसी भौतिक दूरबीन के सहारे जान कर व्यक्त नहीं किया। वह शुक्ल ध्यानयुक्त आत्मा से उद्भूत हुआ था। भगवान ने अन्तर शोधन किया, आत्म-वेदन किया और उस अनन्त सत्य सागर से कुछ शब्द शबनम, देश, काल, पात्र, भाव के अनुसार व अनुरूप, समय-समय पर धर्म-तीर्थो के हितार्थ, समाज-चिन्तन को गूढ़ ज्ञान के रूप में समर्पित कर दिये। भगवान द्वारा प्रदर्शित तथ्य आत्मज्ञान हैं। भौतिक विदो द्वारा प्रसारित तथ्य मात्र भौतिक जानकारियां हैं। जानकारी असत्य हो सकती हैं। ज्ञान परम सत्य हैं। भगवान द्वारा उद्बोधित वाक्य पूरा ज्ञान है, स्थूल चक्षु से परे का ज्ञान परे नयन की बात जो हैं। भौतिक विद् स्थूल चक्षु की परख क्षमता की सीमा में बात करता है। अतः दोनों की तुलना का कोई मेल नहीं बैठता हैं। यथा एक व्यक्ति पहाड़ की तलहटी से दृष्य का अवलोकन करता है तो दूसरा चोटि पर खड़ा हुआ हैं। संक्षेप में, सूत्र ज्ञान निश्चय सत्य है, सनातन है, ठोस व यथार्थ सत्य हैं।

हां ! मैं पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि यदि केवली- प्रमाणिक सिद्वान्त हमारी अल्प बुद्वि के अनुरूप नहीं ठहरते तो असत्य कैसे हो सकते हैं। 'प्रकट' सम्भवतया भ्रम हो सकता, मगर अप्रकट को असत्य की परीधि में नहीं रखा जा सकता।

रहा वर्तमान वैज्ञानिक मान्यताओं का प्रश्न, तो गणित के आधार पर ऐन्द्रिक क्षमता की सीमा में प्रमाणित की हुई मानयतायें एकांत (एकांगी) सत्य हो भी सकती है अर्थात् सापेक्ष सत्य हो सकती हैं। निश्चयनय का बोध अन्य ज्ञान द्वारा ही सम्भव हैं। विज्ञान के किसी नव-निर्मित सिद्वान्त को प्रतिष्ठित होने से पूर्व चार कक्षाओं से गुजरना पड़ता हैं। 1. परिकल्पना- हाइपोथिसिस 2. प्रयोग- एक्सपेरिमेन्ट 3. प्रमाण-प्रजेन्ट प्रुफ 4. सिद्वान्त-थिसिस

प्रयोगो का आधार भूत निर्देशन ही परिकल्पना हैं। व्यक्ति का सोच (विचार) अगर मिथ्या है तो प्रयोग भी मिथ्यात्व की अपेक्षा से ही होगे और प्रमाण भी बहु धर्मा प्रकृति माया-जाल के रूप में दे देगी। सम्भव है कि वह एकांगी सत्य सर्व मान्य या बहु मान्य हो जावे। 'मनुष्य' मान्यता इन्द्रिय-जनित ज्ञान के आधार पर स्थापित करता है फिर स्वभाव से मनुष्य अपने समान विचारधारा के सिद्वान्त को ही मान्यता देता हैं। कुल मिलाकर परा ज्ञान के आगे भौतिक जानकारियां अपूर्ण व बाल समान हैं।

भौतिक विज्ञान के नव-कल्पित सिद्वान्तों की अपूर्णता यहीं प्रमाणित हो जाती हैं। तथा कथित विज्ञान किसी नवीन सिद्वान्त को प्रस्तुत करता है तो आगन्तुक सिद्वान्त पूर्व-प्रचलित मान्यता के वर्चस्व को लगभग निरस्त ही कर देता हैं। यह आज तक का इतिहास रहा है चाहे फोटोन वाद रहा हो चाहे इलेक्ट्रोन वाद ।

केवल ज्ञान परम ज्ञान हैं। उसके बाद खोजने लायक कुछ नहीं रहता हैं। वह शाश्वत सत्य है। अतः शंका की वहां कोई गुन्जाइश ही नहीं हैं। विज्ञान अपने अनुसन्धान सतत जारी रखे हुए हैं। मुमुक्षु स्वयम् सत्य की शोध करे। बस खोजो और पावो।

भौतिक विज्ञान व आत्म ज्ञान में आयामी भेद- यहां हम वर्त्तमान वैज्ञानिक भौतिक जानकारियों व आगम सूत्र प्रकाश पर तुलनात्मक दृष्टिपात करेंगे। निर्णय पाठकों को करना है। हां। तुलनात्मक अध्ययन से पूर्व एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक समझूंगा कि परम ज्ञानी भगवान श्री महावीर द्वारा प्रकाशित गूढ ज्ञान चार आयाम् (लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई व काल (गहराई) की अपेक्षा से वस्तु स्थिति के सनातन स्वरूप को अवधी ज्ञान सम्पन्न महात्मा श्री गौतम गणधर को व्यक्त किया गया था। हाल की प्रचलित वैज्ञानिक विचारधारा तीन-आयामों (लम्बाई, चौड़ाई व ऊंचाई) की अपेक्षा से भैतिक वादियों द्वारा साधारण सांसारिक मानवों को समझाई गई है। आकाश द्रव्य की भांति काल द्रव्य है यह भगवान श्री पूर्व में ही उद्घोष करके गये हैं। आज विज्ञान की नई परिकल्पना ''चार-आयाम-प्रकृति'' की पुष्टि करती है। तब सहज ही उनकी पुरानी मान्यतायें अपने आप में अनुत्तीर्ण हो जाती है स्खलित हो हाती है। काल के चौथे आयाम की अपेक्षा से पृथ्वी, जम्बूद्वीप, लोकाकाश, आकाश गंगा आदि की कल्पना विज्ञान के लिये पुनः चिन्तन का विषय हो चुका है; विवाद का कदापि नहीं। यद्यपि काल चक्र के स्वभाव का क्रम नियमित व क्रमबद्ध है तथापि चिन्तन व खोज अपने आप में एक स्वस्थ परम्परा है ''जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पेठ।'' जो कार्य विशुद्ध संकल्प के साथ अपने लक्ष्य की ओर प्रारंभ होता है वह अपनी परिणिति को निश्चय ही प्राप्त करता है।

बहुत कम समय पहले, तत्कालीन वैज्ञानिक विचार यह मानने के लिये तैयार नहीं थे कि पेड़-पौधों में जीव होता है। भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीश चन्द्र वसु ने प्रमणाण्ति किया। आज इस विषय में वनस्पति जीवन पर उत्तरोत्तर कई शोध कार्यसम्पन्न हो चुके हैं। निगोद-जीव-समुह व निगोद से मानव जीवन तक की यात्रा के सत्य का उद्घाटन जैन दर्शन अनादि काल से करता आया है। भगवान महावीर के त्राटक ध्यान साधना का लक्ष्य बिन्दु भी वही रहा है। आज वायरस आदि एक कोषिक एकेन्द्रिय जीवों की जानकारी मिलने पर ''जीव चिन्तन'' के आयाम ही बदल चुके है। वर्तमान विज्ञान को आत्म ज्ञान के आगे डारविन के विकास वाद की थ्योरी भौतिक दृष्टिकोण से तय होने के कारण भले अधूरी है मगर भगवान श्री की दृढ़ घोषणा की गहराई का समर्थन तो करती ही है। यही तथ्य सम्पूर्ण आगम सूत्र ज्ञान के लिये लागू होता है।

पृथ्वी गोल या चपटी– वस्तु गोलाकार है या चपटी इसका निर्णय मानव नेत्र किरणों की क्षमता व संवेदना से करता है। यही कारण रहा है कि भौतिक शास्त्रियों द्वारा निर्मित सारे शोध उपकरण भी नैत्र क्षमता के अनुरूप होते हैं। बिना नयन का अचाक्षुस परा ज्ञान नेत्र ज्ञान के अनुरूप उपकरणों से कैसे प्राप्त किया जा सकता है? कल्पना करो कि आप शोधकर्ता है आपको अतिन्द्रिय ज्ञान उपलब्ध हुआ। अब आप वस्तु का स्वरूप कुछ और ही देख रहे हो। फिर साधारण इन्द्रिय क्षमता के बल पर तर्क करने वालों के समक्ष अपनी बात प्रमाणित कैसे करोगे? कहां से लावेगे अतिन्द्रिय उपकरण?

वर्तमान विज्ञान का मानना है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सीधी सरल रेखा कोई है ही नहीं। जिसे आप सीधी रेखा समझते हैं वह किसी बड़े वर्तुल का अंश मात्र होने से आप को सीधी भाषित होती है। मगर बात बड़ी सीधी है। ऐसी स्थिति में विज्ञान पृथ्वी को चपटी कैसे मान सकता है? सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि पृथ्वी के वर्तुलाकार होने की मान्यता भी एकांगी हुई? सूत्र कारों में पूरे जम्बूद्वीप का शाश्वत आकार बताया है? विज्ञान मात्र पृथ्वी को वर्तमान में गोलाकार कहता और समय-समय पृथ्वी के आकार में सम्भवतया परिवर्तन होते रहे हैं व होते रहेंगे यह बात मानता है? पर पृथ्वी के सनातन स्वरूप का विचार ही उसकी सोच क्षमता से परे हैं।

फिर फिर कर वही बात की मानव नैत्रो की सामान्य संवेदना शक्ति सीमित है नैत्र शक्ति कई पडावों से होती हुई समाप्ति बिन्दु तक पहुंचती है। वस्तु के आदि व अन्त का ज्ञान उसके विषय से परे हैं। वह सिर्फ वर्तमान को निश्चित आकाश तक देखती है। जैसे कि मनुष्य के कानों की क्षमता क्षेत्र 'सुपरसौनिक टाक' तक सीमित है वैसा ही हाल नैत्रों का है। नैत्र विषय किरण'' के हर पड़ाव से सरल रेखा एक निश्चित गोलाई में भाषित होती है। अतः हर बड़ी वस्तु से गोलाकार दिखती है ठीक इसी प्रकार कि जैसे पानी में सीधा खड़ा किया डन्डा किरणों के कमाल से टेढ़ा दिखता है। हमारी नई से नई टेकनोलोजी, यन्त्र व उपकरण भी तो इन्हीं प्रकाश किरणों के स्वभाव से पराधीन है। अतः वे भी वही बात प्रमाणित करते हैं। परन्तु वस्तु के शास्वत स्वरूप के बारे में न तो उपकरण ही आश्वस्त हैं न ही अनुसन्धान कर्ता।

भौतिक विदों ने जैसी कल्पना की प्रयोगों में अनन्त धर्मा प्रकृति वाली वस्तु वैसी ही प्रमाणित हुई। अतः वह स्यात सत्य हो सकता है, एकांगी सत्य हो सकता है किंतु निश्चित नय से नहीं।

भू-परिभ्रमण–

पृथ्वी अपनी धूरी पर अपने सम्पूर्ण वायुमण्डल व इलेक्ट्रोन वलय क्षेत्र की बारात के साथ घूमती है। 24 घन्टे की अवधि में वह एक चक्कर तय करती है और एक वर्ष में वह सूर्य की एक परिक्रमा भी कर डालती है। यह चुम्बकीय विद्युत का उस समय का चमत्कारिक आविष्कार था। वर्तमान तक आते-आते विद्युत शक्ति की विविध फलदायी यात्रा इसी सिद्धान्त की देन है। विकासशील समाज इस सिद्धान्त का ऋणी है। मगर क्या कोई वैज्ञानिक दावे के साथ कह सकता है कि काल के नये आयाम की जानकारी के अभाव में अनुसन्धानित व प्रतिपादित यह धारणा सत्य हो सकती है।

जैन दर्शन काल चक्र को भरत क्षेत्र में घूमता मानता है। अतः पृथ्वी स्वतः ही स्थिर पिण्ड के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है तथा कथित विज्ञान को उस समय काल की जानकारी नहीं थी। वह काल को आकाश में वस्तु व गति की गणना का कल्पित माध्यम जानकारी नहीं थी। वह काल को आकाश में वस्तु व गति की गणना का कल्पित माध्यम मात्र मानना था अंकगणित का कल्पित मान दण्ड। अतः उसे पृथ्वी घूमती हुई दिखाई दी। आकाश द्रव्य में पृथ्वी (पुद्‌गल) व काल दोनों स्थित है। दोनों में से कोई एक घूम रहा है। रेलगाड़ी या बाहर का वतावरण। किसी एक को भ्रमण इकाई मान ले तो दूसरे को स्थिर भाषित होना ही पड़ेगा। बादल को स्थिर माने तो चन्द्रमा शीघ्र गति घूमता नजर आवेगा व चन्द्रमा के स्थाइत्व पर नजर गड़ा कर गौर करे तो बादल

गतिमान दिखेगा। परा विज्ञान (आत्म ज्ञान) काल को गतिशील मानता है और भौतिक पृथ्वी को। बात एक ही है, दृष्टि-दृष्टि का अन्तर है।

जैन दर्शन भाव की अपेक्षा से सूर्य (आदित्य) को काल को काल की आत्मा मानता है, काल पुरूष मानता है। अतः काल गणना की मूल इकाई को सूर्य की चाल के तय करता है। अतः भाषा विदों ने रवि को ''चरती'' नाम दिया है। रवि (रूइ) भी गति का द्योतक है क्योंकि सूर्य एक निश्चित रव (कोलाहल) सम्पन्न है। शब्द हमेशा गतिमान होता है। अतः एक निश्चित चाल सूर्य की है ही।

जैन दर्शन उत्सर्पिणी से अवसर्पिणी तक का काल गणित करता है। मगर खगोल विदों को 12 घन्टे व 12 महिनों तक का ही करना है। अब वे प्रकाश वर्ष तक की काल गणना तक पहुंच पाया हैं। विज्ञान की पहुंच वहां तक ही हो पाती है जहां तक प्रत्यक्ष होता है। अब आप पृथ्वी को घूमती हुई मानों या सूर्य को, गणित को क्या फरक पड़ता है उसकी बला से। एक ने कहा वस्तु अपने स्थान पर ही है। नैत्र लेश्या (किरण) का चमत्कार उसे प्रदर्शित करता है। दूसरा कहता है है कि नैत्र मात्र उपकरण है वस्तु की प्रकाश किरण उसे दृश्यमान करती है। अब क्या फायदा व्यर्थ विवाद से। आत्माभिलाषी के लिये उपलब्ध केवली दर्शन ही मार्ग दर्शन के लिये काफी है।

सूर्य विमान या आकाश पिण्ड-

''विमान'' शब्द प्रचलित हिन्दी भाषा में भ्रम उत्पन्न कर रहा है। आज का विद्यार्थी विमान को वायुयान अथवा उड़न खटोला का पर्यायवाची मानने की भूल कर बैठता है। विमान शब्द ''व्योम यान'' अथवा ''व्योम रथ'' का सूचक है। याने विराट में स्थित पिण्ड मानव निर्मित राकेट या उपग्रह कदापि नहीं। राकेट का आकार छोटा होता है योजनों लम्बा चौड़ा नहीं। अतः सूर्य चन्द्र हजारों मील लम्बे चौड़े आकाशीय पिण्ड याने विमान है। यह शास्त्र वचन है और आज की वैज्ञानिक विचार धारा इससे सहमत भी।

पृथ्वी अपने पूर्व व पश्चिम में दो प्रोटोन समुह व इलेक्ट्रोन समूह के विशाल वलय को धारण किये हुए है। जिसे ''वान एलन पट्ट'' कहा जाता है। ये 40 हजार किलोमीटर तक रहते हैं व समय समय पर क्षणिक रूप से घटते बढ़ते रहते हैं जैसे किस पक्षी की दो पांखे हो और वह इसे क्षोभित विक्षोभित करता हो इसी प्रकार सूर्य अपने विशाल कलेवर पर प्रोटोन इलेक्ट्रोन की कितनी परमाणु सम्पदा को घेरे होगा। उसका सही आयतन क्या होगा ? यह विज्ञान के लिये अभी ज्ञातव्य विषय है। शास्त्रकारों ने वस्तु स्थिति परा-ज्ञान द्वारा देखी है अतः वे सूर्य व चन्द्र का क्षेत्रफल ज्यादा बताते हैं। शास्त्र सम्मत भाषा में कुछ कम बताया होता और विज्ञान ज्यादा खोज पाया होता तो बात और थी। अगर किसी को जितना पढ़ाया उससे कम गुन पाया तो जो नहीं गुन पाया वह मिथ्या क्यों कर हुआ।

जिस कारण सूर्य में ताप उत्पन्न होता है वह बड़ा दिलचस्प विषय है। उदर में पित्ताशय से अम्ल निकल कर भोजन से मिलता है व ताप उत्पन्न करता है, मगर औदारिक शरीर को किसी ने अग्नि पिण्ड तो नहीं कहा। सूर्य पिण्ड में हाइड्रोजन गैस व हीलियम भरी हुई है। हाइड्रोजन पृथ्वी पर काफी मात्रा में उपलब्ध है। हीलियम बहुत ठण्डी होती है - शुन्य से भी कम तापमान। अतः सूर्य का अन्दर का तापमान बहुत ठण्डा होना चाहिये। सूर्य के गर्भ-ग्रह में दबाव के कारण हाइड्रोजन गेस हिलियम में परिवर्तित होती रहती है। जिससे ऊर्जा व ताप हमें प्राप्त होता है और सूर्य हमें अग्नि पिण्ड सा भाषित होता है। पर वह अग्नि पिण्ड तो नहीं हुआ। हाइड्रोजन व हीलियम दोनों गैसे सचित अवस्था में पृथ्वी काय व पृथ्वी द्रव्य ही माना गया है।

अतः सूर्य विमान में संचित परमाणु पृथ्वी रूपेण ही है जैसे सोना, चान्दी, कार्बन आदि। अतः सूर्य विमान को एक ऐसी स्वयम् प्रकाशित पृथ्वी माना जा सकता है जिस पर देव निवास करते हैं। औदारिक शरीरधारी व्यक्ति उस वातावरण में वैक्रिय शक्तियों व विविध लेश्याओं के प्रचुर व प्रबल वेग से लगने वाले आघातों को सहन नहीं कर सकता। जीवित नहीं रह सकता। सच्चाई को जान पाने की गरज से मनुष्य का वहां जा पाना सम्भव नहीं है। अतः बोलचाल के परिपेक्ष में लौकिक भाषा में भले उसे ''अग्नि पिण्ड'' कहा जाये, शास्त्रोक्त सम्यक वाणी की अपेक्षा से वह विमान ही कहा जा सकता है।

उपसंहार–

जैन सौर सिद्धान्त सूर्य व आदित्य की संज्ञायें देता है। सूर्य याने सर्वत्र व्यापक चलायमान। आदित्य याने आदि से।

ता कहं ते सूरिये– आइच्चे सूरे आइच्चे (106)। ईसाई दर्शन ''सेवन्थ डे ऐडवेन्चर'' के अनुसार सृष्टिकर्ता द्वारा प्रथम सूर्य की सृष्टि होती है, वेद सूर्य को दृष्टि का पिता घोषित करता है।

आज विटामिन्स की खोज हो चुकी है जो कि सूर्य किरणों की आतापना द्वारा प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। अतः धीरज रख कर और भी शोध की जावे तो आने वाला समय सूर्य-चन्द्र प्रज्ञप्ति में प्रतिपादित सारे सिद्धान्तों की पुष्टि करेगा।

एक नई बात अभी सामने आई है कि सूर्य किसी अज्ञात तारे की परिक्रमा कर रहा है। तो इस पूरे व्यापार में ध्रुव तारा ही केन्द्र बिन्दु हुआ। तो क्या हमारे सूत्रों में निर्दिष्ट मेरू पर्वत ध्रुव तारा ही है ? अगर ऐसा है तो जम्बूद्वीप की आकृति, क्षीर सागर, लवण सागर के शब्दों में छुपे गृढ अर्थों का हमें नये सिरे से मन्थन करना होगा। येनकेन प्रकारेण अगर भौतिक विद यह शोध करने में सफल रहते हैं तो कल वे ही कहेंगें कि जम्बूद्वीप के दो सूर्य है। दूसरा ध्रुव के उस पार है जिसे हमारी दुरबीने आकाश में प्रसारित होने वाली किन्हीं विचित्र किरणों के प्रभाव में पकड़ नहीं पाई। उस समय का नजारा क्या होगा जब भौतिक विद काल की गहराई में वस्तु के शाश्वत स्वरूप की खोज करेंगे तब आज की सारी धारणाये बदल चुकी होगी, आज की तारीख में उचित तो यह है कि आत्मार्थी साधक सूत्र के मार्ग दर्शन से स्वयम् धारणा करे, परिकल्पना करे फिर चिन्तन द्वारा परिकल्पना को पुष्ट करे। अन्ततः ध्यान द्वारा दर्शन ज्ञान प्राप्त करे। धर्म धारणा के गहन अर्थों में प्रविष्ट कर अर्थ प्राप्ति करे। फिर शुक्ल ध्यान में प्रवेश प्राप्त कर इस अनन्त चारित्र के किसी विषय को आत्म वेदन करे। विद्याओं से सम्पन्न होकर उसे चरितावे। सारी सृष्टि को स्वयम् में देखें, वेदे और अन्ततोगत्वा वह भव्य आत्मा 'सोहम्' भाव में स्थित होकर पूर्ण सत्य को प्राप्त होवे। यही मेरी भावना है।

जीव-अजीवाभिगम सूत्र

प्रस्तावना

तत्त्व ज्ञान का महत्व- जैन धर्म के आधार एवं आचार में ज्ञान का सर्वोपरि स्थान है। ऐसा होते हुए भी तत्त्व ज्ञान रूप जीव अजीव एवं लोक स्वरूप आदि के ज्ञान का भी कोई कम महत्व नहीं है। अनेक आगमों में और आचार शास्त्रों के बीच में भी इन तत्त्वों को महत्व दिया गया है यथा-

आचारांग में- **''विदित्ता लोगं'', उड्ढं अहे व तिरियं च पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने'',**

उत्तराव्ययन में- **जीवा जीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा।**

संवरं निज्जरा मोक्खो, संति ऐ तहिया नव।।

उत्तराध्ययन सूत्र में लेश्या, कर्म, और जीवाजीव के भेद प्रभेदों का वर्णन किया गया है। सूयगडांग सूत्र में जीवों में आहार सम्बन्धी सूक्ष्मतम ज्ञान वाला एक संपूर्ण अध्ययन है।

धर्म सिद्धान्तों की कसौटी के मुख्य अंगो में तत्त्ववाद का भी एक प्रमुख स्थान है। दशवैकालिक सूत्र में तत्त्व ज्ञान का उच्चतम महत्व प्रदर्शित किया गया है यथा-

जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ ।

जीवाऽजीव अयाणंतो, कहं सो नाहिइ संजमं।

भावार्थ- जीव अजीव आदि तत्त्व ज्ञान के अभाव में संयम धर्म का पालन या अस्तित्त्व भी संभव नहीं है।

इन सभी अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं के लिए ही तत्त्व ज्ञान से परिपूर्ण स्वतंत्र अनेक सूत्र स्थविर भगवंतो ने अपने पूर्वों के श्रुतज्ञान के आधार से बनाये हैं। उनके पूर्व यह विशाल तत्त्व ज्ञान समूह बारहवें दृष्टिवाद अंग में निहित था एवं संक्षेप में तो प्रत्येक आगम में दूध में घी के समान तत्त्वज्ञान अंतर्हित रहता ही है।

सूत्र परिचय एवं विषय- प्रस्तुत सूत्र में जीव और अजीव दो तत्त्वों का कथन होने से इसका सार्थक नाम जीवा अजीवा अभिगम सूत्र है। इसमें भी प्रमुखतया जीव विज्ञान का विस्तार है इसलिए इसे संक्षिप्त में जीवाभिगम सूत्र भी कहा जाता है। इस सूत्र में नौ प्रतिपत्ति-अध्याय है। जिसके प्रथम अध्याय में ही जीवों के शरीर अवगाहना आदि अनेक प्रकारों से सूक्ष्मतम वर्णन किया गया है। आगे के अध्यायों में वेद, स्थिति, कायस्थिति, अंतर, अल्पबहुत्व आदि के साथ जीवों के विविध भेदों का वर्णन है। बीच में तीसरे अध्याय में नारकी, देव आदि के वर्णन के साथ नरक पृथ्वी पिण्डों देवलोकों का भी वर्णन है। तिर्च्छालोक का वर्णन करते हुए जम्बद्वीप के विजयद्वार के मालिक विजय देव का उसकी राजधानी का, उसके जन्म एवं जन्माभिषेक का वर्णन भी सूर्याभ देव के समान है। समस्त द्वीप समुद्रों का वर्णन स्वयं भूरमण समुद्र पर्यन्त हैं सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिषि देवों का भी विस्तार पूर्वक वर्णन है। इस प्रकार यह पूर्ण सूत्र विविध तत्त्व ज्ञान एवं भोगोलिक ज्ञान से परिपूर्ण होने से रोचकता लिए हुए है।

रचना एवं प्रामाणिकता- इस सूत्र के रचना काल या रचनाकार के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में कोई चर्चा नहीं होने से अज्ञातनामा स्थविर कृत यह आगम है। नंदी सूत्र की सूत्र सूचि में अंग-बाह्य उत्कालिक सूत्रों में इस शास्त्र की परिगणना की गई है। उसी आधार से इस सूत्र को सर्व जैन श्वे. समाज में एकरूपता से प्रमाणिक आगम कोटी में स्वीकर किया गया है। इस शास्त्र की प्रमाणिकता में किसी भी प्रकार का विवाद नहीं है। यही इस सूत्र की महत्ता का घोतक है।

सूत्र परिमाण– यह सूत्र एक श्रुतस्कन्ध रूप है। नौ इसकी प्रतिपत्तियां (अध्याय) है। दो भेद से लेकर 10 भेद तक की अपेक्षा के जीव तत्त्व का इसमें विविध बोध है। संसारी जीवों की नौ प्रतिपत्ति के बाद संक्षेप में सिद्ध सहित समस्त जीवों की भी 2 से लेकर 10 तक के भेदों से विचारणा की गई है। इस सूत्र का ग्रंथाग्र अर्थात् परिमाण 4750 श्लोक प्रमाण माना गया है।

प्रचलन– इस सूत्र की प्रथम प्रतिप्रत्ति के महत्वपूर्ण सूक्ष्मतम तत्त्व ज्ञान को पूर्वाचार्यों ने विशेष पद्धति से संकलित किया है जिसका जैन साधु समाज एवं श्रावक समाज में अत्यधिक प्रचलन है। चतुर्विध संघ में उसे कंठस्थ करके चिंतन-विचारणा करने की पद्धति भी प्रचलित है। जो ''लघुदंडक'' या ''दंडक प्रकरण'' के नाम से विख्यात है। इस प्रकरण का अर्थात् थोकड़े का अभ्यासी स्वाध्यायी सरलता पूर्वक जीवाभिगम प्रज्ञापना आदि तत्त्वज्ञान के सूत्रों को समझने में प्रगति कर सकता है।

उपांग– इस सूत्र को कुछ समय से तृतीय उपांग की संज्ञा से पहिचाना जाता है। एवं ठाणांग सूत्र तृतीय अंग से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जो एक भ्रमित कल्पना मात्र है। इस विषयक स्पष्टीकरण औपपातिक सूत्र के प्रारम्भ में कर दिया गया है। जिज्ञाशु पाठक वहां देखने का प्रयत्न करें।

उपलब्ध साहित्य– इस सूत्र पर आचार्य मलयगिरि द्वारा कृत टीका प्रकाशित उपलब्ध है। अन्य कई मूल पाठ के संस्करण प्रकाशित है। हिन्दी अनुवाद युक्त एवं संस्कृत टीका के साथ गुजराती हिन्दी अनुवाद युक्त भी प्रकाशित आवृत्ति उपलब्ध है। हिन्दी विवेचन युक्त संस्करण आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित हुआ है। मलयगिरी टीका के आधार से सारांश रूप में यह जैन आगम सारांश तैयार किया है। जो पाठकों के हाथ में शोभित हो रहा है। आशा है स्वाध्यायी बंधु इससे अपनी आगम सम्बन्धी तत्त्व ज्ञान की तृषा को शांत कर सकेंगे।

संयोजक
विमल कुमार नवलखा

आवश्यक तत्त्व भेद-

1. पांच शरीर -	1. औदारिक 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तेजस, 5. कार्मण
2. छः संघयण -	1. वज्र ऋषभनाराच 2. ऋषभनाराच 3. नाराच 4. अर्द्धनाराच 5. कीलिका 6. सेवार्त।
3. छः संस्थान -	1. समुचतुरस्त्र 2. न्यग्रोध परिमंडल 3. सादि 4. वामन 5. कुब्ज 6. हुण्डक।
4. चार कषाय -	1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ
5. चार संज्ञा -	1. आहार 2. भय 3. मैथुन 4. परिग्रह
6. छः लेश्या -	1. कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. तेजो 5. पद्म 6. शुक्ल
7. पांच इनिद्रय -	1. श्रोत 2. चक्षु 3. घ्राण 4. रसना 5. स्पर्श
8. सात समुद्घात -	1. वेदनीय 2. कषाय 3. मारणंतिक 4. वंक्रिय 5. तेजस 6. आहारक 7. केवली
9. छः पर्याप्ति -	1. आहार 2. शरीर 3. इन्द्रिय 4. श्वासोश्वास 5. भाषा 6. मन
10. तीन दृष्टि -	1. समयग् दृष्टि 2. मिथ्यादृष्टि 3. मिश्रदृष्टि
11. चार दर्शन -	1. चक्षु 2. अचक्षु 3. अवधि 4. केवल दर्शन
12. पांच ज्ञान -	1.मति 2. श्रुत 3. अवधि 4. मनः पर्यव 5. केवल ज्ञान
13. तीन अज्ञान -	1. मति अज्ञान 2. श्रुत अज्ञान 3. विभंग ज्ञान
14.तीन योग -	1. मन योग 2. वचन योग 3. काय योग
15. दो उपयोग -	1. सरकार उपयोग 2. अणाकार उपयोग।
16. दो मरण -	1. समवहत मरण 2. असमवहत मरण।
17. चार भंग -	1. अनादि अनंत- जो बोल शाश्वत रहे और अभवी में पावे उसमें यह भंग होता हैं।
	2. अनादि सांत- जो बोल भवी में पावे और सिद्धावस्था में न रहे। उसमें यह भंग होता हैं।
	3. सादि अनंत- जो बोल अभवी या संसारी में न हो, सिद्ध मे हो ,उसमें यह भंग होता हैं।
	4. सादि सांत- जो बोल अशाश्वत हो और सिद्धों में न हो, ऐसे परिवर्तन होने वाले सभी

भावों में यह भंग होता हैं। जिसमें यह भंग होता हैं उसी की कायस्थिति कही जाती है अर्थात् इस भंग की कायस्थिति होती है अन्य तीन भंगों की कायस्थिति नहीं कही जाती हैं।

विशेष- गुणस्थान स्वरूप एवं उसका चार्ट इसी पुष्प के पिछले पृष्ठों में परिशिष्ट नं. 5 में देखें। जो नवीन चिंतन युक्त स्पष्ट एवं सरल तरीके से समझाया गया हैं।

कर्म ग्रंथ दूसरे तीसरे का सारांश भी चार्ट युक्त दिया गया हैं। (बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता एवं बंधस्वामित्व)

जीवाजीवाभिगम सूत्र

-प्रथम प्रतिपत्ति-

अजीव ज्ञान- अजीव पदार्थ के दो प्रकार हैं- 1. रूपी 2. अरूपी

1. अरूपी अजीव- के दस प्रकार है- 1 से 3 धर्मास्तिकाय का स्कंध, देश और प्रदेश 4-6 अधर्मासितकाय का स्कंध, देश और प्रदेश 7-9 आकाशास्तिकाय का स्कंध, देश और प्रदेश और 10 वां अप्रदेशी काल द्रव्य ।

2. रूपी अजीव- के चार प्रकार है- 1. पुद्‌गल स्कंध, 2. पुद्‌गल देश 3. पुद्‌गल प्रदेश 4. परमाणु पुद्‌गल। इन सभी पुद्‌गलों में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान के भेद पाये जाते हैं।

जीव ज्ञान-

जीव दो प्रकार के है- 1. सिद्ध 2. संसारी

1. सिद्ध के 15 प्रकार हैं- 1. तीर्थ सिद्ध 2. अतीर्थ सिद्ध 3. तीर्थंकर सिद्ध 4. अतीर्थंकर सिद्ध 5. स्वयंबुद्ध सिद्ध 6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध 7. बुद्ध बोधित सिद्ध 8. स्त्रींलिग सिद्ध 9. पुरूषलिंग सिद्ध 10. नपुसंक लिंग सिद्ध 11. स्वलिंग सिद्ध 12. अन्यलिंग सिद्ध 13. गृहस्थलिंग सिद्ध 14. एक सिद्ध 15. अनेक सिद्ध।

स्थिति की अपेक्षा सिद्धों के निम्न प्रकार हैं-

1. प्रथम समय सिद्ध 2. द्वितीय समय सिद्ध 3. तृतीय समय सिद्ध यावत् दस समय के सिद्ध, संख्यात, असंख्यात, अनंत समय के सिद्ध। इस प्रकार सिद्धों के अनेक भेद हैं। इन्हें परम्पर सिद्ध कहा गया हैं।

2. संसारी जीवों के दो प्रकार हैं- 1.त्रस 2. स्थावर। तीन प्रकार भी है- 1. स्त्री 2. पुरुष 3. नपुंसक। चार प्रकार भी है- 1. नरकगति 2. तीर्यंच गति 3. मनुष्य गति 4. देव गति। **पांच प्रकार-** 1. एकेन्द्रिय 2. बेइन्द्रिय 3. तेइन्द्रिय 4. चौरेन्द्रिय 5. पंचेन्द्रिय। **छः प्रकार-** 1. पृथ्वी 2. पानी 3. अग्नि 4. हवा 5. वनस्पति और 6. त्रस जीव। **सात प्रकार-** 1. नैरयिक 2. तीर्यंच 3. तीर्यंचणी 4. मनुष्य 5. मनुष्यणी 6. देव 7. देवी। **आठ प्रकार-** 1. प्रथम समय के नेरयिक 2. अप्रथम समय के नेरयिक 3-4 प्रथम अप्रथम समय के तीर्यंच 5-6 प्रथम-अप्रथम के मनुष्य 7-8 प्रथम अप्रथम समय के देव। **नव प्रकार-** 1. पृथ्वी 2. पानी 3. अग्नि 4. वायु 5. वनस्पति 6. बेइन्द्रिय 7. तेइन्द्रिय 8. चौरेन्द्रिय 9. पंचेन्द्रिय। **दस प्रकार-** 1. प्रथम समय एकेन्द्रिय 2. अप्रथम समय एकेन्द्रिय 3-4 प्रथम- अप्रथम समय के बेइन्द्रिय 5-6 प्रथम-अप्रथम समय का तेइन्द्रिय 7-8 प्रथम-अप्रथम समय का चौरेन्द्रिय 9-10. प्रथम-अप्रथम समय का पंचेन्द्रिय ।

त्रस और स्थावर दो प्रकार के संसारी जीवों का वर्णन इस प्रकार है-

1. पृथ्वीकाय-

सूक्ष्म और बादर के भेद से पृथ्वी काय के दो प्रकार है। इनमें-

1. **शरीर तीन होते है-** औदारिक, तेजस और कार्मण ।

2. **अवगाहना-** जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती हैं।

3. **संघयण-** सेवार्त्त नामक छट्ठा, 4. संस्थान- मसूर दाल के समान, 5. कषाय-चारों होते हैं।

6. **संज्ञा-** चार 7. लेश्या-सूक्ष्म में तीन, बादर में चार 8. इन्द्रिय- एक स्पर्शेनिद्रय होती हैं।

9. **समुद्घात**- तीन होती है-वेदनीय, कषाय, मारंणांतिक 10. **सन्नी**- असन्नी हैं। 11. **वेद**- नपुंसक

12. **पर्याप्ति**- प्रारम्भ की चार होती हैं। 13. **दृष्टि**- एक मिथ्यादृष्टि 14. **दर्शन**- एक अचक्षु

15. **ज्ञान**- दो अज्ञान 16. **योग**- एक काया का 17. **उपयोग**- साकार, अणाकार दोनों।

18. **आहार**- 1-2 असंख्यात प्रदेश की अवगाहना वाले, अनंत प्रदेशी आहार वर्गणा के पुद्गलों का आहार करते हैं। 3-14 एक समय यावत् असंख्यात समय में से किसी भी स्थिति के पुद्गल ग्रहण करते हैं। 15-27. एक गुण काले यावत् अनंत गुण काले वर्ण के पुद्गल ग्रहण करते हैं। 28-274. इसी प्रकार 5 वर्ण 2 गंध 5 रस 8स्पर्श के पुद्गल ग्रहण करते हैं। 275-286. स्पृष्ट, अवगाढ़, परंपर-अवगाढ़, सूक्ष्म स्थूल, ऊँचे, नीचे, तिरछे से, आदि, मध्य, अंत से स्वविषय के पुद्गलों का, अनुक्रम से प्राप्त पुद्गलों का आहार करते हैं। 287. लोक किनारे वाले सूक्ष्म पृथ्वीकाय तीन चार या पांच दिशा से आहार ग्रहण करते हैं। शेष सभी पृथ्वी जीव 6 दिशा से आहार करते हैं। 288. अपनी आत्म शरीर अवगाहना में रहे हुए आहार वर्गणा के पुद्गलों का आहार करते हैं।

इस प्रकार की अपेक्षा 288बोलों की विचारणा की जाती हैं।

19. **उत्पत्ति**- सूक्ष्म पृथ्वी काय में तीर्यंच मनुष्य से और बादर में तीर्यंच मनुष्य और देव से आकर जीव उत्पन्न होते हैं।

20. **स्थिति**- सूक्ष्म में जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहुर्त की और बादर में उत्कृष्ट 22 हजार वर्ष की।

21. **मरण**- समवहत, असमवहत दोनों प्रकार से मरते हैं।

22. **गति**- तीर्यंच में मनुष्य में, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय में जाते है, नरक देव में नहीं जाते हैं।

2. अप्पकाय-

4 **संस्थान**- स्तबुक (बुदबुदे) का आकार होता हैं।

20. **स्थिति**- बादर अपकाय की उत्कृष्ट सात हजार वर्ष।

शेष वर्णन पृथ्वी के समान हैं।

3. वनस्पतिकाय-

सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक ये तीन प्रकार हैं। प्रत्येक वनस्पति के 12 प्रकार है- 1. वृक्ष 2. गुच्छ 4. लता 5. बेल 6. पर्वक 7 तृण 8. वलय 9. हरित 10. धान्य 11. जलज, 12. कुहण

2. अवगाहना उत्कष्ट 1000 योजन साधिक ।

3. **संस्थान**- विभिन्न प्रकार के ।

20. **स्थिति**- उतकृष्ट 10000 वर्ष की। शेष वर्णन पृथ्वीकाय के समान हैं।

4. तेउकाय-

सूक्ष्म बादर दोनों भेदों में संस्थान बंधे-हुए सूई समूह के समान होता हैं। उपपात (आगति)- दो गति से और गति- केवल एक तीर्यंच की होती हैं। लेश्या तीन ही होती हैं। उत्कृष्ट तीन अहोरात्र की स्थिति हैं। शेष वर्णन पृथ्वीकाय के समान हैं।

5. वायु काय-

सूक्ष्म बादर दोनों भेदों में - संस्थान- ध्वजा पताका के समान है। बादर वायु काय में शरीर चार है, समुद्घात चार है एवं स्थिति उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष है, शेष वर्णन तेउकाय के समान हैं।

6. बेइन्द्रिय-

1. शरीर- तीन
2. अवगाहना-उत्कृष्ट 12 योजन
3. संहनन- एक सेवार्त्त
4. संस्थान- हुण्डक
5. कषाय-चार
6. संज्ञा- चार
7. लेश्या- तीन
8. इन्द्रिय-दो
9. समुद्घात- तीन
10. सन्नी- असन्नी हैं।
11. वेद -एक नपुंसक
12. पर्याप्ति- पांच
13. दृष्टि-दो
14. दर्शन- एक
15. ज्ञान- दो ज्ञान, दो अज्ञान
16. योग- दो
17. उपयोग-दो
18. आहार- 288 बोल पूर्ववत्
19. उत्पत्ति- मनुष्य तीर्यंच से
20. स्थिति-उत्कृष्ट 12 वर्ष
21. मरण - दोनों
22. गति- मनुष्य तीर्यंच की

7. तेइन्द्रिय-

अवगाहन- तीन गाऊ, इन्द्रियां-तीन, स्थिति- 49 अहोरात्रि। शेष वर्णन बेइन्द्रिय के समान हैं।

8. चौरेन्द्रिय-

2. अवगाहना- चार गाऊ, 8. इन्द्रियां-चार, 14. दर्शन-दो, चक्षु और अचक्षु 20. स्थिति- उत्कृष्ट छः महिना। शेष वर्णन बेइन्द्रिय के समान हैं।

9. नारकी-

1. शरीर -तीन-वैक्रिय, तेजस, कार्मण।

2. अवगाहना- जघन्य अंगुल के असंख्यात वें भाग, उत्कृष्ट 500 धनुष, उत्तर वैक्रिय की जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 1000 धनुष।

3. संघयण -नहीं। अशुभ पुद्गल परिणमन होता है।

4. संस्थान- हुण्डक
5. कषाय -चारों
6. संज्ञा- चारों
7. लेश्या -तीन
8. इनिद्रय -पांच
9. समुद्घात -चार प्रारंभ की
10. सन्नी -दोनों
11. वेद - नपुंसक
12. पर्याप्ति - छह
13. दृष्टि - तीन
14. दर्शन- तीन
15. ज्ञान- तीन ज्ञान तीन अज्ञान
16. योग - तीन
17. उपयोग -दो
18. आहार - 288प्रकार पूर्ववत्
19. उत्पत्ति - मनुष्य तीर्यंच से

20. स्थिति - जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट 33 सागरोपम

21. मरण - दोनों

22. गति - मनुष्य तीर्यंच में

10. असन्नि तीर्यंच पंचेन्द्रिय-

1. जलचर 2. स्थलचर 3. खेचर 4. उरपरिसर्प 5. भुजपरिसर्प।

2. अवगाहना- जलचर की उत्कृष्ट 1000 योजन। स्थलचर की- अनेक गाऊ, खेचर -अनेक धनुष, उरपरिसर्प-अनेक योजन, भुजपरिसर्प-अनेक धनुष, 8. इन्द्रिय-पांच।

20 स्थिति- जलचर की उत्कृष्ट-एक करोड़ पूर्व, स्थलचर-84 हजार वर्ष। खेचर-72 हजार वर्ष। उपरिसर्प-53 हजार वर्ष, भुजपरिसर्प-42 हजार वर्ष। 22. गति-प्रथम नरक, सभी तीर्यंच, मनुष्य में अकर्म भूमि को छोड कर शेष सभी में देवता में भवन पति, वाण-व्यंतर में।

शेष वर्णन चौरेन्द्रिय के समान हैं।

11. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय-

इसके भी जलचर आदि पांच प्रकार है इसमें-

1. शरीर -पांच

2. अवगाहना- उत्कृष्ट-जलचर की 1000 योजन। स्थलचर की-6 गाऊ। खेचर की- अनेक धनुष। उरपरिसर्प - 1000 योजन। भुजपरिसर्प 7 अनेक गाऊ।

3. संहनन - छः

4. संस्थान - छः

5. कषाय - चार

6. संज्ञा - चार

7. लेश्या - छः

8. इन्द्रिय - पांच

9. समुद्घात - पांच- वेदनीय, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय, तेजस

10. सन्नी है, असन्नी नहीं

11. वेद - तीन

12. पर्याप्ति - छः

13. दृष्टि - तीन

14. दर्शन - तीन

15. ज्ञान - तीन ज्ञान, तीन अज्ञान

16. योग - तीन

17. उपयोग - दो

18. आहार - 288 बोल पूर्ववत्

19. उत्पत्ति - चारों गति से

20. स्थिति - उत्कृष्ट जलचर की- क्रोड़पूर्व स्थलचर की - तीन पल्योपम। खेचर की- पल्योपम के असंख्यातवें भाग। उरपरिसर्प- करोड़पूर्व। भुजपरिसर्प- करोड़पूर्व।

21. मरण - दोनों

22. गति - चारों गति (आठवें देवलोक तक)

भुजपरिसर्प दो नरक में, खेचर तीन में, स्थलचर चार में, उरपरिसर्प पांच में, जलचर सात में, जलचरणी मनुष्यणी छः नरक तक ।

12. असन्नी मनुष्य-

4. संस्थान -हुण्डक

8. इन्द्रिय - पांच।

12. पर्याप्ति -चौथी अपूर्ण

14. दर्शन - दो

18. आहार - नियमा छहों दिशा से 288बोल पूर्ववत्।

19. उत्पत्ति - तेउ वायु को छोडकर तीर्यंच मनुष्य से शेष वर्णन सूक्ष्म पृथ्वी के समान हैं।

13. सन्नी मनुष्य–

2. अवगाहना - उत्कृष्ट तीन कोश
वैक्रिय की अपेक्षा एक लाख योजन साधिक।
9. समुद्घात - सातों ही । 14. दर्शन - चारों
15. ज्ञान - पांच ज्ञान, तीन अज्ञान
19. उत्पत्ति - चारों गति में, तेउ वायु और सातवीं नरक को छोडकर।
20. स्थिति - उत्कृष्ट तीन पल्य ।
22. गति - चारों गति और मोक्ष में जाते हैं।
शेष वर्णन सन्नी तीर्यंच के समान हैं।

विशेष– अलेशी, अयोगी, अकषायी, अनिंद्रिय, नो सन्नी नो असन्नी, अणाहरक भी होते हैं।

14. देव–

चार प्रकार के हैं - भवनपति 2. वाणव्यंतर 3. ज्योतिषी 4. वैमानिक ।
इनमें-
1. शरीर - तीन - वैक्रिय, तेजस, कार्मण
2. अवगाहना - उत्कृष्ट सात हाथ। उत्तर वैक्रिय - 1 लाख योजन ।
3. संघयण - नहीं है, शुभ पुद्गलों का परिणमन होता हैं।
4. संस्थान - समचतुरस्त्र । उत्तर वैक्रिय में विविध संस्थान ।
5. कषाय - चारों
6. संज्ञा - चारों
7. लेश्या -भवनपति से दूसरे देवलोक तक चार। तीसरे से पांचवे देवलोक तक एक पद्म लेश्या और आगे शुक्ल लेश्या, अणुतर विमान में परम शुक्ल।
8. इन्द्रिय - पांच
9. समुद्घात - पांच ग्रेवयक एवं अणुतर में तीन, शेष देवों में पांच क्रमशः ।
10.सन्नी असन्नी - दोनों
11. वेद - दूसरे देवलोक तक दो, आगे एक
12. पर्याप्ति - पांचों (भाषा मन साथ में)
13. दृष्टि - तीन, अणुत्तर विमान में एक
14. दर्शन - तीन
15. ज्ञान - तीन ज्ञान तीन अज्ञान
16. योग - तीन
17. उपयोग - दोनों ।
18. आहार - 288प्रकार का पूर्ववत्
19. उत्पत्ति - मनुष्य तीर्यंच से
20. स्थिति - उत्कृष्ट 33 सागरोपम
21. मरण - दोनों
22. गति - दूसरे देवलोक तक पृथ्वी , पानी, वनस्पति, सन्नी तीर्यंच, सन्नी मनुष्य। इस तीसरे आठवें देवलोक तक सन्नी मनुष्य तीर्यंच। उससे आगे एक मनुष्य की गति ।

जीव	शरीर	अवगाहना		संघयण	संस्थान	कषाय	संज्ञा	लेश्या	इन्द्रिय	समुद्घात
		जघन्य उत्तर वैकिय	उत्कृष्ट							
पृथ्वीकाय	3	अंगुल के असंख्यात्वें भाग	अंगुल के असंख्यात्वें भाग	सेवार्त	मसूरदाल	4	4	4	1	3
अपकाय	3	"	"	"	बुदबुदा	4	4	4	1	3
तेउकाय	3	"	"	"	सूईसमूह	4	4	3	1	3
वायुकाय	4	"	"	"	ध्वजा	4	4	3	1	3
वनस्पतिकाय	3	"	एक हजार योजन साधिक	"	विविध	4	4	4	1	3
असन्नी मनुष्य	3	"	अंगुल के असंख्यातवें भाग	"	हुण्डक	4	4	3	5	3
बेइन्द्रिय	3	"	12 योजन	"	"	4	4	3	2	3
तेइन्द्रिय	3	"	3 गाउ	"	"	4	4	3	5	3
चौरेन्द्रिय	3	"	4 गाउ	"	"	4	4	3	5	3
असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय	3	"	1000 योजन अनेक गाउ अनेक धनुष अनेक योजन अनेक धनुष	"	"	4	4	3	5	3
सन्नी तिर्यंच	4	" संख्यातवें भाग	1000 यो. 6 गाउ अनेक धनुष 1000 योजन अनेक गाउ वैक्रिय अनेक सौ योजन	6	6	4	4	6	5	5
सन्नी मनुष्य	5	असंख्यातवें भाग संख्यातवें भाग	3 गाउ वैक्रिय एक लाख योजन साधिक	6	6	4/×	4/×	6/×	5/×	7
नारकी	3	असंख्यातवें भाग संख्यातवें भाग	500 धनुष वैक्रिय 1000 धनुष	×	हुण्डक	4	4	3	5	4
देवता	3	असंख्यातवें भाग संख्यातवें भाग	7 हाथ वैक्रिय एक लाख यो.	×	सम चोरस	4	4	6	5	5

असन्नी सन्नी	वेद	प्रर्याप्ति	दृष्टि	दर्शन	ज्ञान	योग	उपभोग	आहार	आगति	उत्पति	गति	स्थिति उत्कृष्ट	मरण
असन्नी	1	4	1	1	2	1	2	288	$\frac{3/4/5}{6}$	3	2	22 हजार वर्ष	2
"	1	4	1	1	2	1	2	"	"	3	2	7 हजार वर्ष	2
"	1	4	1	1	2	1	2	"	"	2	2	3 अहोरात्रि	2
"	1	4	1	1	2	1	2	"	"	2	2	3 हजार वर्ष	2
"	1	4	1	1	2	1	2	"	"	3	2	10 हजार वर्ष	2
"	1	3/4	1	1	2	1	2	"	6	2	2	अंतर्मुहुर्त्त	2
"	1	5	2	1	2+2	2	2	"	6	2	2	12 वर्ष	2
"	1	5	2	1	2+2	2	2	"	6	2	2	49 वर्ष	2
"	1	5	2	2	2+2	2	2	"	6	2	2	6 माह	2
"	1	5	2	2	2+2	2	2	"	6	2	2	करोड़ वर्ष 84 हजार वर्ष 72 हजार वर्ष 53 हजार वर्ष 42 हजार वर्ष	2
सन्नी	3	6	3	3	3+3	3	2	"	6	4	4	करोड़ पूर्व 3 पल्योपम पल्य असंख्यांश करोड़ पूर्व करोड़ पूर्व	2
"/×	3/×	6/5	3	3	3+5	3	2	"	6	4	4	3 पल्योपम	2
"/×	1	6	3	3	3+3	3	2	"	6	2	2	10 हजार वर्ष 33 सागरोपम	2
"	2	6/5	3	3	3+3	3	2	"	6	2	2	10 हजार वर्ष 33 सागरोपम	2

1. लघु दंडक के स्तोक में बोले जाने वाले कई तत्त्व यहां सूत्र में नहीं है अतः यहां प्रस्तुत सूत्रानुसार सारांश दिया हैं। 2. ज्ञान लेश्या, समुद्घात की संख्या में क्रमशः समझना 3. शरीर तीन- औदारिक तेजस, कार्मण अथवा वैक्रिय तेजस कार्मण। चार शरीर- क्रमशः, पांच शरीर- सभी। 4. मनुष्य की अवगाहना स्थिति सूत्र में 6 आरों से नहीं दी गई हैं। 5. जघन्य स्थिति कोष्ठक में नहीं दी है वह अंतमुर्हूत की समझना 6. नारकी और देवता की अवगाहना एवं स्थिति यहां अलग-अलग नहीं कही गई हैं। 7 सूत्र में मनुष्य और देव के पर्याप्ति छः होते हुए भी पांच ही कही गई हें। 8. अवगाहना में अंडरलाइन करके उत्तर वैक्रिय की अवगाहना कही गई हैं। 9. योग 3. और उपयोग 2 की अपेक्षा ही सूत्र में वर्णन हैं। 10. लघुदंडक में बोला जाने वाला च्यवन, उपपात, प्राण आदि द्वार मूल में नहीं हैं। 11. पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, नरक, तीर्यंच, मनुष्य, देव, इस क्रम से सूत्र में वर्णन है। कोष्ठक में असन्नी मनुष्य और नारकी का क्रम बदला गया है। 12. अकर्म भूमि और अंतरद्वीप के मनुष्य एवं सिद्धों का वर्णन भी सूत्र में नहीं है, थोकडे में बोलते हैं 13. असन्नी मनुष्य में चौथी पर्याप्ति अपूर्ण रहती है, तीन पूर्ण होती हैं। 14. पृथकत्व और प्रत्येक शब्द का प्रयोग न करके ''अनेक'' शब्द का प्रयोग किया गया हैं। इस विषयक स्पष्टीकरण परिशिष्ट में आगे किया गया हैं 15. जघन्य अवगाहना सर्वत्र अंगुल के असंख्यातवें भाग हैं। पंचेन्द्रियों में उत्तर वैक्रिय की जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग हैं।

त्रस स्थावर-

	स्थिति	कायस्थिति	अंतर	अल्पबहुत्व
त्रस	33 सागरोपम	2000 सागरोपम साधिक	वनस्पतिकाल	1 अल्प
स्थावर	22000 वर्ष	वनस्पतिकाल	2000 सागर साधिक	2 अनंत गुणा

स्थान	जघन्य	उत्कृष्ट
पहली नरक	10 हजार वर्ष	1 सागरोपम
दूसरी	1 सागर	3 सागर
तीसरी	3 सागर	7 सागर
चौथी	7 सागर	10 सागर
पाँचवी	10 सागर	17 सागर
छठी	17 सागर	22 सागर
सातवीं	22 सागर	33 सागरोपम
असुरकुमार देव	10 हजार वर्ष	1 सागरोपम (उत्तर दिशा में झाझेरी)
व्यंतर देव	10 हजार वर्ष	1 पल्योपम
ज्योतिषी देव	पाव पल्य	1 पल्य 1 लाख वर्ष
पहला देवलोक	एक पल्य	2 सागर
दूसरा देवलोक	एक पल झाझेरी	2 सागर झाझेरी
तीसरा देवलोक	2 सागर	7 सागर
चौथा देवलोक	2 सागर झाझेरी	7 सागर झाझेरी
पाँचवाँ देवलोक	7 सागर	10 सागर
छठा देवलोक	10 सागर	14 सागर
सातवाँ देवलोक	14 सागर	17 सागर

स्थान	आवे	जावे
पृथ्वी पानी वन.	तीन गति से आवे, 23 दंडक से (नरक छूटा) आवे	2 गति 10 दंडक औदारिक में जावे
तेउवायु	2 गति 10 दंडक औदा.	1 तिर्यंच गति 9 दंडक
असन्नी मनुष्य	दो गति आठ दंडक (तेउवायु छूटा)	2 गति 10 दंडक में जावे औदारिक

(2) **अवगाहना**-पाँच हेमवत पाँच हैरण्यवत	जघन्य देशोन एक गाऊ उत्कृष्ट एक गाऊ
हरिवास रम्यकवास 10 क्षेत्रों में	जघन्य देशोन दो गाऊ उत्कृष्ट दो गाऊ
देवकुरू उतरकुरू 10 क्षेत्रों में	जघन्य देशोन तीन गाऊ उत्कृष्ट तीन गाऊ
56 अंतरद्वीपा	जघन्य आठ सौ धनुष (देशोन) पूरी 800 धनुष

द्वार	भवनपति देव	व्यंतर देव	ज्योतिषी देव	वैमानिक देव
1 नाम	असुरकुमार से स्तनित कुमार 10 भवनपति, अंब अंबरीश आदि 15 परमाधामी ये कुल 25	पिशाच भूत से गंधर्व आठ, आणपन्नी आदि आणजृंभक से आदि 8 अवियत तक 10 जृंभक ये 26	सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र तारा-ये पाँच चर, पाँच अचर, ये 10	सौधर्म, ईशान से अच्युत ये 12 देवलोक, सारस्वत आदि 9 लौकांतिक, तीन पल्लिया आदि तीन किल्विषी, भद्र सुभद्रआदि 9 नवग्रैवे. , विजय से सर्वार्थ सिद्ध पाँच अणुत्तर ये 38 देव
2 वासा	पहली नरक के 12 अंतरों में से नीचे के 10 अंतरों में	रत्नप्रभा के ऊपर 1000 यो. में 100-100 ऊपर नीचे का छोड़ 800 यो. में 8 व्यंतर, ऊपर के 100 में ऊपर नीचे 10-10 यो. छोड़कर 80 यो. आठ (9 से 16) वाणव्यंतर, 10 जृंभक रहते है।	समभूमि से 790 यो. ऊपर से 110 यो. तक (45 लाख यो. में) 790 तारा 800 सूर्य 880 चन्द्र 884 नक्षत्र 887 बुध **आदिग्रह** 891 शुक्र 894 **वृहस्पति** 897 मंगल 900 शनि	ज्योतिषी से असंख्य क्रोड़ा क्रोड़ी यो. ऊपर देव विमानावास

3 राजधानी	अरूणवर द्वीप समुद्रों में उत्तर में बलिचंचा, दक्षिण में चमरचंचा (बलिंद्र, चमरेन्द्र क्रमशः)	तिर्च्छालोक के द्वीप समुद्रों में प्रायः 12 हजार यो. की रत्नमय राजधानी	तिर्च्छालोक में असंख्य राजधानियाँ	अपने-अपने देवलोक में है, शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र अनेक लोकपाल आदि की तिर्च्छालोक में भी
4 सभा	प्रत्येक इंद्र की पाँच सभा-उत्पात, अभिषेक, अलंकार, व्यवसाय, सौधर्म	भवनपतिवत्	भवनपतिवत्	पाँच-पाँच सभाएँ
5 भवन संख्या	4 करोड़ 6 लाख दक्षिण 3 करोड़ 66 लाख उत्तर में कुल 7,72,00,000 भवन 7 करोड़ 72 लाख	व्यंतरों के असंख्य नगर है	असंख्यात ज्योतिषी विमान	8497023 विमानावास
6 वर्ण	काला, सफेद, पीला, 3 लाल, सफेद, लाल, नीला, पीला	श्याम, काला, श्याम, सफेद, नीला, सफेद, 2 श्याम	तारा पाँच वर्णा, शेष चार सुवर्ण	
7 वस्त्र	लाल, नीला, सफेद, 4 नीला, सफेद, संध्याराग, सफेद	2 नीला, पीला, नीला, 2 पीला, 2 श्याम क्रमशः	सभी वर्ण के सुंदर कोमल	
8 चिह्न (ध्वज पर)	चूड़ामणि, नागफण, गरूड़, वज्र, कलश, सिंह, हाथी, घोड़ा, मगर, वर्द्धमान क्रमशः	कदंब, सुलक्षवृक्ष, बड़, स्कंदक, अशोक, चंपक, नागवृक्ष, टिम्बरू, क्रमशः	चंद्र-मृग, सूर्य-7 मुखी घोड़ा मंगल-गेंड़ा, बुध-सिंह गुरु-हाथी, शुक्र-अश्व शनि-महिष	मृग, महिष, सूअर (वराह) सिंह, बकरा, मेंढ़क, अश्व, हस्ति, सर्प, गरूड़,
9 इन्द्र	दक्षिण — उत्तर 1 चमरेंद्र — बलींद्र 2 धरणेन्द्र — भूतानेन्द्र 3 वेणुदेव — वेणुदाली 4 हरिकांत — हरिशिख 5 अग्निशिख — अग्निमाणव 6 पूणेन्द्र — विशिष्टेन्द्र 7 जलकांत — जलप्रभ 8 अमितगति — अमितवाहन 9 वेलंब — प्रभंजन 10 घोष — महोघोष	दक्षिण — उत्तर कालेन्द्र — महाकाल सुरूपेन्द्र — प्रतिरूप पूर्णभद्र — मणिभद्र भीम — महाभीम किन्नर — किंपुरुष सत्पुरुष — महापुरुष अतिकाय — महाकाय गीत रति — गीत यश सनिहित — सामान्य धाता — विधाता ऋषि — ऋषिपाल ईश्वर — महेश्वर सुवत्स — विशाल हास्य — हास्य रति श्वेत — महाश्वेत पंतग — पतंगपति	सभी इंद्र हैं परंतु क्षेत्र अपेक्षा एक चंद्र इंद्र एक सूर्य इंद्र है।	12 देवलोक में 10 इंद्र है। 1 से 8 तक आठ, 9-10 का एक 11-12 का एक इंद्र यों दस इंद्र है। आगे सभी अहमिंद्र है।

10. सामानिक	चमरेन्द्र के 64 हजार बलीन्द्र के 60 हजार, शेष इंद्रों के 6-6 हजार	सभी इंद्रों के चार-चार हजार	प्रत्येक इंद्र के चार-चार हजार सामानिक	84 हजार, 80 हजार, 72 हजार, 70 हजार, 60 हजार 50 हजार, 40 हजार, 30 हजार 20 हजार, 10 हजार (1 से 12 देव.)
11 आत्म रक्षक देव	चमरेन्द्र- 256000 बलीन्द्र - 240000 शेष के 24-24 हजार लोकपाल-चार-चार त्रायस्त्रिशंक-33-33	सभी इंद्रों के 16-16 हजार नहीं होते नहीं होते	सभी के 16-16 हजार नहीं नहीं	3 लाख 36 हजार, 3 लाख 20 हजार, 2 लाख 88 हजार 2 लाख 80 हजार, 2 लाख 40 हजार, दो लाख, एक लाख साठ हजार, एक लाख बीस हजार, अस्सी हजार, 40 हजार (1 से 12 देव.)
12 अनीक (सेना)	सात प्रकार की सेना- हाथी घोड़ा महल, पैदल, गंधर्व नृतक आदि चमरेंद्र के 81 लाख28 हजार, बलीन्द्र के 76लाख 20 हजार, शेष 18 इंद्र के 35लाख 56 हजार देव	सात प्रकार की सेवा प्रत्येक में 5 लाख आठ हजार देव	प्रत्येक इंद्र के सात प्रकार की। प्रत्येक में 5 लाख अस्सी हजार देव	प्रत्येक इंद्र के सात प्रकार की सेना, सामानिक देवों से 127 गुणा सेना सभी देव की समझें
13 देवी	चमरेन्द्र-बलीन्द्र के 5-5 अग्र महिषी प्रत्येक के 8000 देवी प्रत्येक के आठ हजार वैक्रिय रूप कुल 32 क्रोड़ वैक्रिय रूप, शेष 18 इंद्रों के 6-6 X6000 देवी परिवार प्रत्येक 6 हजार वैक्रिय रूप कुल 21 क्रोड़ 60 लाख वै. रूप	प्रत्येक इन्द्र के चार-चार देवी प्रत्येक के एक हजार का परिवार एक-एक हजार वैक्रिय रूप करे प्रत्येक देवी	प्रत्येक के 4-4 देवी प्रत्येक के चार-चार हजार का परिवार प्रत्येक 4 हजार वैक्रिय रूप करे प्रत्येक देवी	शक्रेन्द्र के और इशानेन्द्र के 8-8 देवी, प्रत्येक देवी के 16 हजार देवी परिवार, 16 हजार प्रत्येक देव के, 16 हजार वैक्रिय रूप 2,04,80,00,000 2 अरब 4 करोड़ अस्सी लाख का वैक्रिय रूप दूसरे देवलोक सेआगे देवियाँ नहीं होती

14.परिषद 3	आभ्यंतर	मध्य	बाह्य	आभ्यं.	संख्या	स्थिति	आभ्यं	देव सं.	देवी सं.	आभ्यं	देव	देवी
चमर देव	24000	28000	32000	देव	8 हजार	½ पल	देव	8 हजार	100 देवी	पहला देव	12 हजार	700
स्थिति	ढ़ाई पल	2 पल	डेढ़ पल	देवी	100	¼ झा.	-	-	-	मध्य	14 हजार	600
देवी	350	300	250	मध्य देव	10 ह.	½न्यून	मध्य	10 हजार	100 देवी	बाह्य	16 हजार	500
स्थिति	डेढ़ पल	1 पल	आधा पल	देवी	100	¼	बाह्य	12 हजार	100 देवी	दूसरा देव आभ्यं.	10 हजार	900
बलीन्द्र देव	20000	24000	28000	बाह्यदेव	12 ह.	¼ झा.						
स्थिति	3½ पल	3 पल	2½पल	देवी	100	न्यून पल				मध्य	12 हजार	800
देवी	450	400	350							बाह्य	14 हजार	700
स्थिति	2½ पल	2 पल	1½ पल							**आ.** (3से12)	**म.**	**बा.देव**
9 देव दक्षिण	60000	70000	80000							8000	10000	12 हजार
स्थिति	½पल सा.	½पल	½ पलन्यू.							6000	8000	10 हजार
देवी	175	150	125							4000	6000	2 हजार

स्थिति	½ पल न्यू.	¼प.सा.	¼ पल.							2000	4000	6 हजार
9 देव उत्तर	50000	60000	70000							1000	2000	4 हजार
स्थिति	1 पल न्यून	½प.सा.	½पल							500	1हजार	2 हजार
देवी	225	200	175							250	500	1 हजार
स्थिति	½पल	½प.न्यू.	¼ पल सा.							125	250	500
										तीसरे और आगे देवीयां नहीं होती तीन परिषद के देव होते है ऊपर भुजब		
15परिचारणा		मन, रूप, शब्द, स्पर्श, काय पाँच प्रकार, मनुष्य वत् भोग भोगे देवी के साथ			पांच प्रकार भवनपतिवत्		पाँच प्रकार मनुष्यवत्	1-2 में पाँच प्रकार, 3-4 में चार प्रकार, 5-6 में तीन प्रकार 7-8 में दो मन शब्द, 9 से 12 में मन परिचारणा, आगे नही एक भी नहीं।				

16 वैक्रिय	चमरेंन्द्र-देवी से पूरा जंबूद्वीप पूरे, असं.द्वीप भरने की शक्ति है, भरे नहीं/बलीन्द्र साधिक जंबू भरे असं. द्वीप भरने की शक्ति है, भरे नहीं, शेष 18 देवेन्द्र पूरा भरे, सं. जंबूद्वीप द्वीप भरने की शक्ति है, रे नहीं/ सामानिक, त्राय. लोकपाल की भी इन्द्रवत् काल 15 दिन	जंबूद्वीप भरकर रूप बनावे, संख्याता द्वीप भरने की शक्ति है	संपूर्ण जंबूद्वीप भरा है, संख्याता द्वीप भरने की शक्ति है इन्द्र, सामानिक, देवियों में भी शक्ति है।	शक्रेन्द्र-2 जंबू, ईशानेन्द्र 2 जंबू झाझेरा, सनत्कुमार 4 जंबू, माहेन्द्र 4 जाझोरा बहमेन्द्र 8 जंबू, लांतकेन्द्र 8 जंबू झाझेरा, सहस्त्रेंद्र 16 झा. प्राणतेद्र 32 जंबू, अच्युतेन्द्र 32 जंबू झा., लोकपाल त्राय. देवियाँ, भी इन्द्रवत् शक्ति है, परन्तु करे नहीं
17 अवधि	असुरकुमार-ज. 25 योजन, ऊँचे पहले देवलोक, नीचे तीसरी नरक, तिर्च्छे असंख्य द्वीप समुद्र जाने देखे/शेष 9 देवेन्द्र-25 यो., ऊँचे ज्यो. तक, नीचे पहली नरक, तिर्च्छे संख्यात द्वीप स. देखे जाने	जघन्य 25 यो., ऊँचे ज्योतिषी, नीचे पहली नरक, तिर्च्छे संख्यात द्वीप समुद्र जाने देखे	तिर्च्छा जघन्य संख्यात द्वीप समु द्र, ऊपर स्वयं की ध्वजा तक नीचे पहली नरक देखे जाने	सभी देव ज.अं. के असं. भाग, ऊपर स्वयं की पताका, तिर्च्छे पल की आयु वाला संख्यात द्वीप समुद्र, सागर वाला असं. देखे, 1-2 नीचे पहली नरक, 3-4 दूसरी, 5-6 तीसरी, 7-8 चौथी, 9 से 12 पाँचवीं, ग्रैवेयक छठी अणुत्तर 7वीं नरक, सर्वार्थ सिद्ध के देव संभिन्न लोक नाली देखें
18 सिद्ध	मनुष्य होकर 1 समय में 10 जीव, तथा देवियों से 5 जीव मोक्ष जा सकते है	देवों से-1 समय में 10 तथा देवियों से 1 समय में 5 जीव मनुष्य बन कर मोक्ष जा सकते हैं।	देवों से मनुष्य बन 1 समय में 10, देवियों से 20 जीव मोक्ष जा सकते हैं।	देवों से मनुष्य बन 108 तथा देवियों से 20 जीव एक समय में सिद्ध हो सकते हैं।
19 उत्पन्न	समस्त जीव प्राण भूत सत्व देव देवी पणे अनंत बार उपजे हैं।	भवनपतिवत् अनंत बार	भवनपतिवत्	9 ग्रैवेयक तक अनंत बार, 4 अणुत्तर में 2 बार, सर्वार्थ सिद्ध में 1 बार एक भव में मोक्ष जाये

20 सुख	अबाधित मानुषी सुखों से अनंतगुणा सुख	अबाधित मानुषी सुखों से अनंतगुणा सुख	भवनपतिवत्	भवनपतिवत्
21 भव	व्यंतर की तरह	ज. 1-2-3 यावत् अनंता भव संसार भ्रमण करे	व्यंतर की तरह	ज. 01-2-3 यावत संख्या, असंख्य, अनंत करे, करे तो

नोट- स्थिति,कायस्थिति एवं अंतर जघन्य अंतमुहुर्त्त हैं।

यह द्विविधा प्रथम प्रतिपत्ति पूर्ण हुई ।

-दूसरी प्रतिपत्ति-

संसारी जीव तीन प्रकार के हैं। यथा- स्त्री, पुरूष, नपुंसक ।

स्त्री वर्णन-

स्त्रियां तीन प्रकार की हैं- 1. तीर्यंच योनिक स्त्री 2. मनुष्यणी 3. देवी। तीर्यंच-योनिक स्त्री के जलचर आदि पांच भेद और फिर भेदानुभेद हैं। मनुष्यणी के कर्म भूमि आदि तीन भेद है और फिर भरत क्षेत्र आदि की अपेक्षा भेदानुभेद हैं। देवी के भवनपत्यादि चार भेद है और फिर असुर आदि भेदानुभेद हैं।

स्थिति- (1) समुच्चय स्त्री की जघन्य अंतर्मुहुर्त्त स्थिति है उत्कृष्ट में चार विकल्प हैं-

1. पचपन पल्य 2. पचास पल्य 3. नौ पल्य 4. सात पल्य ।

(2) तीर्यंच स्त्री की स्थिति प्रथम प्रतिपत्ती में वर्णित सन्नी तीर्यंच के समान हैं।

(3) सामान्य मनुष्यणी की स्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्य। धर्माचरणी (साध्वी) की स्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट-देशोनक्रोडपूर्व। इसी प्रकार पंद्रह कर्म भूमि में स्थिति हैं।

अकर्म भूमि और अंतद्वीप में जन्म की अपेक्षा जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थिति में किंचित न्यून होती हैं। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त्त, उत्कृष्ट देशोनक्रोडपूर्व होती हैं।

(4) भवनपति आदि देवी की स्थिति अपने स्थान की स्थिति के अनुसार होती हैं।

कायस्थिति- (1) समुच्चय स्त्री की कायस्थिति जघन्य एक समय की होती है उत्कृष्ट में पांच विकल्प है- 1. अनेक (तीन) पल्योपम अनेक (सात) करोडपूर्व अधिक 2. एक सौ दस पल्योपम 3. सौ पल्योपम 4. अठारह पल्योपम 5. चौदह पल्योपम।

(2) तीर्यंच स्त्री की कायस्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम अनेक (सात) करोड पूर्व अधिक।

(3) सामान्य मनुष्यणी की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम अनेक (सात) करोड पूर्व। धर्माचरणी (साध्वी) की अपेक्षा, कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व ।

अकर्म भूमि स्त्री की कायस्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य अपनी स्थिति से (अंतर्मुहुर्त्त) कुछ कम और उत्कृष्ट में अपनी पूरी स्थिति होती है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम साधिक देशोन करोडपूर्व। (संहरण करके लाया गया व्यक्ति अकर्म भूमि में पहले अपना अवशेष देशोनक्रोडपूर्व आयुष्य पूर्ण करेगा। फिर उसी क्षेत्र में जन्म लेकर युगलिक बन जाय तो यह कायस्थिति बनती है।)

(4) देवी की कायस्थिति उनकी स्थिति के समान ही होती हैं।

अंतर- समुच्चय स्त्री एक समय का, तीर्यंच का और देवी का और सामान्य मनुष्यणी का अंतर जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पति काल ।

धर्माचरणी (साध्वी) मनुष्यणी का अंतर जघन्य एक समान उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन ।

अकर्म भूमि स्त्री का अंतर जन्म की अपेक्षा जघन्य दस हजार वर्ष अंतर्मुहुर्त्त अधिक उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पति काल। (1. युगलिक मर कर पहले देवगति में जायेगा फिर अंतर्मुहुर्त्त का तीर्यंच बनेगा वहां से युगलिक मनुष्य का आयु बांधकर अकर्म भूमि में जन्मेगा। इस प्रकार जन्म की अपेक्षा अंतर होगा।)

2. संहरण करके किसी व्यक्ति को अकर्म भूमि में लाया गया वह तत्काल मरकर अंतर्मुहुर्त्त का तीर्यंच बनकर पुनः अकर्म भूमि में जन्म लेवे तो जघन्य अंतर्मुहुर्त्त का अंतर बनता हैं।

नोट- सामान्य स्त्रियों (मनुष्यों) में एक समय की कायस्थिति नहीं बनती हैं। धर्माचरणी स्त्रियों (मनुष्यों) के ही भावों में एक समय की अवस्थिति संभव होती हैं। ऐसा स्वभाविक ही होता हैं।

देव का अंतर जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पति काल ।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़ी मनुष्यणी, उससे तीर्यंचणी असंख्यातगुणी, उससे देवी असंख्यगुणी ।

स्त्रीवेद का बंध- जघन्य एक सागरोपम का सातिया डेढ भाग ($1\frac{1}{2}$ / 7) पल्योपम का असंख्यातवां भाग न्यून, उत्कृष्ट 15 कोडा कोडी सागरोपम। अबाधाकाल 15 सौ वर्ष का ।

स्त्रीवेद का स्वभाव करीष अग्नि के समान होता हैं।

पुरूष वर्णन-

पुरूष तीन प्रकार के है- तीर्यंच, मनुष्य, देव । इनके भेद प्रभेद पूर्ववत् हैं।

स्थिति- 1. समुच्चय पुरूष की स्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट 3 पल्य।

2. तीर्यंच की स्थिति पांचों भेदों की पूर्ववत् ।

3. मनुष्य की स्थिति स्त्री के समान, अंकर्म भूमि में भी स्त्री के समान ।

4. देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट 33 सागरोपम ।

कायस्थिति- 1. समुच्चय पुरूष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट अनेक सौ सागरोपम साधिक।

2. तीर्यंच पुरूष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम, अनेक (सात) करोड़ पूर्व अधिक ।

3. सामान्य-मनुष्य की तीर्यंच पुरूष के समान काय स्थिति हैं। धर्माचरणी (साधु) पुरूष की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व ।

अकर्म भूमि पुरूष की कायस्थिति अकर्म भूमि स्त्री के समान हैं।

4. देवों में स्थिति के समान ही कायस्थिति होती हैं।

अंतर- समुच्चय पुरूष का जघन्य एक समय तिर्यच्च मनुष्य और देव पुरूष का अंतर जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पति काल। धर्माचरणी (साधु) मनुष्य का अंतर जघन्य एकसमय उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन। अकर्म भूमि पुरूष का अंतर स्त्री के समान है। देवों का अंतर आठवें देवलोक तक जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। नवमें देवलोक से ग्रैवेयक तक अंतर जघन्य अनेक वर्ष उत्कृष्ट वनस्पति काल। अणुत्तर देवों का अंतर जघन्य अनेक वर्ष उत्कृष्ट संख्याता सागरोपम साधिक।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े मनुष्य। उससे तिर्यक पुरुष असंख्य गुणें उससे देव पुरूष असंख्यगुणे।

पुरूष वेद का बंध- जघन्य आठ वर्ष, उत्कृष्ट दसकोडाकोडी सागरोपम, अबाधाकाल एक हजार वर्ष।

पुरूष वेद का स्वरूप वन दावाग्नि झाल के समान है।

नपुसंक वर्णन-

नपुंसक तीन प्रकार के है - नारकी, तिर्यंच और मनुष्य। सात नरक के सात भेद है। तिर्यक के पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय आदि भेद है। मनुष्य के कर्म भूमि आदि भेद है।

स्थिति- 1. समुच्चय नपुसंक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

2. नेरयिक नपुसंक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

3. तिर्यक नपुसंक की स्थिति अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट करोड़पूर्व।

4. सामान्य मनुष्य नपुसंक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट करोडपूर्व। धर्माचरणी मनुष्य नपुंसक की स्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व।

अकर्म भूमि आदि के नपुंसक की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघनय अंतर्मुहुर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतमुहूर्त्त। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट देशोन करोडपूर्व।

कायस्थिति- 1. समच्चय नपुंसक की कायस्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

2. नैरयिक नपुंसक की जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

3. तिर्यक नपुंसक की जघन्य अंतमुर्हूत, उत्कृष्ट वनस्पति काल। इसमें चार स्थावर की असंख्य काल। वनस्पति की अनंत काल। विकलेन्द्रिय की संख्याता काल। पंचेन्द्रिय की अनेक (आठ) करोड पूर्व।

4. सामान्य मनुष्य नपुंसक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त और उत्कृष्ट अनेक (आठ) करोड पूर्व। धर्माचरणी की जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व अकर्मभूमि आदि के नपुंसक की जन्म की अपेक्षा कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहुर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतमुहूर्त्त। संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट देशोन करोडपूर्व।

अंतर- समुच्चय नपुंसक का अंतर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अनेक सौ सागरोपम।

नारकी का अंतर जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

तिर्यंच नपुंसक का अतर जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट समुच्चय के समान है। एकेन्द्रिय का अंतर उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम संख्याता वर्ष अधिक चार स्थावर का अंतर उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। वनस्पति का उत्कृष्ट असंख्य काल।

बेइन्द्रियादि का उत्कृष्ट अंतर वनस्पतिकाल।

समान्य मनुष्य नपुंसक का अंतर जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। धर्माचरणी का जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन।

अकर्मभूमि नपुंसक का अंतर जन्म की अपेक्षा और संहरण की अपेक्षा जघन्य अंतर्मुहुर्त्त उत्कृष्ट वनस्पति काल है।

अल्पाबहुत्व- सबसे थोड़े मनुष्य नपुंसक। नारकी असंख्य गुणे। तिर्यंच अनंत गुणे।

नपुंसक वेद का बंध- जघन्य एक सागरोपम का सातिया दो भाग (2/7 भाग) पल्योपम का असंख्यातवां भागकम, उत्कृष्ट बीस कोडाकोडी सागरोपम, अबाधा काल दो हजार वर्ष।

नपुंसक वेद का स्वरूप महानगर दाह के समान है।

तीन वेद की तालिका-

क्र.सं	वेद	स्थिति	कायस्थिति	अंतर	
1.	स्त्री	55 पल 50 पल 9 पल 7 पल -	110 पल 100 पल 18 पल 14 पल अनेक पल अनेक क्रोडपूर्व	एक समय	वनस्पतिकाय
2.	तिर्यञ्चणी	3 पल्योपम	अनेक पल अनेक क्रोडपूर्व	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाय
3.	सामान्य मनुष्यणी	3 पल्योपम	अनेक पल अनेक क्रोडपूर्व	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाय
4.	धर्माचरणी (साध्वी)	क्रोडपूर्वदेशोन	एक समय/क्रोड पूर्वदेशोन	एक समय	देशोन अर्द्धपुद्गल
5.	अकर्म भूमि जन्म/संहरण	3 पल आदि/ देशोन करोड पूर्व	3 पल/3 पल+देशोन करोड पूर्व	10000 वर्ष + अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
6.	देवी ज./उ.	10000 वर्ष / 55 पल	10000 वर्ष / 55 पल	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
1.	पुरुष	33 सागर	अनेक सौ सागर साधिक	एक समय	वनस्पतिकाल
2.	तिर्यंच पुरुष	3 पल	3 पल अनेक करोड पूर्व	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
3.	मनुष पुरुष	3 पल	3 पल अनेक करोड पूर्व	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
4.	धर्माचरणी पुरुष	करोड पूर्व देशोन	1 समय/देशोन करोड पूर्व	1 समय	देशोन अर्द्धपुद्गल
5.	अकर्म भुमि जन्म/संहरण	3 पल देशोन करोड पूर्व	3 पल/3 पल + देशोन करोड पूर्व	10000 वर्ष + अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
6.	देव	10000 वर्ष/ 33 सागर	10000 वर्ष/ 33 सागर	अंतमुहूर्त या अनेक वर्ष	वनस्पतिकाल (संख्याता सागर)
1.	नपुंसक	33 सागर	वनस्पतिकाल	अंतमुहूर्त	अनेक सौ सागर
2.	नारकी	10000 वर्ष/ 33 सागर	10000 वर्ष/ 33 सागर	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
3.	तिर्यंच	करोड पूर्व	वनस्पतिकाल	अंतमुहूर्त	अनेक सौ सागर
4.	पुरुष असन्नी	अंतमुहूर्त	अंतमुहूर्त	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
5.	पुरुष सन्नी	करोड पूर्व	3 पल + अनेक करोड पूर्व	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल
6.	धर्माचरणी मनुष्य	देशोन करोड पूर्व	1 समय/देशोन करोड पूर्व	1 समय	देशोन अर्द्धपुद्गल
7.	अकर्म भूमि	अंतमुहूर्त/ देशोन करोड पूर्व	स्थिति के समान	अंतमुहूर्त	वनस्पतिकाल

नोट– जघन्य स्थिति जहां नहीं कहीं वहां अंतर्मुहुर्त्त समझे। उत्कृष्ट स्थिति चार्ट में सर्वत्र बताई ही गई है। स्त्री वेदी की कायस्थिति जघन्य एक समय है वैसे ही नपुंसक वेदी की कायस्थिति भी एक समय की है।

तीसरी प्रतिपत्ति–

प्रथम उद्देशक– संसार के जीव चार प्रकार के हैं यथ- 1. नैरयिक, 2. तिर्यंच 3. मनुष्य 4. देव।

नरक वर्णन– नरक सात है - पहली नरक, दूसरी नरक, तीसरी नरक, चौथी नरक, पांचवी नरक, छठ्ठी नरक, सातवीं नरक,

नाम– 1. धम्मा 2. वंशा 3. शैला 4. अंजणा 5. रिठ्ठा 6. मघा 7. माघवती

गौत्र– रत्नप्रभा 2. शर्कराप्रभा 3. वालुकाप्रभा 4. पंकप्रभा, धूमप्रभा 6. तमःप्रभा 7. तमःतमाप्रभा।

पृथ्वी पिंड– सातों नरक के पृथ्वी पिंड की जाडाई इस प्रकार है- 1. एक लाख अस्सी हजार, 2. एक लाख बत्तीस हजार, 3. एक लाख अठ्ठावीस हजार 4. एक लाख बीस हजार 5. एक लाख अठारह हजार 6. एक लाख सोलह हजार 7. एक लाख आठ हजार।

ये असंख्य योजन की लम्बी चौड़ी गोल है और असंख्य योजन की परिधि है। पृथ्वी पिण्ड की जाड़ाई सर्वत्र (बीच में या किनारे) समान है।

कांड– पहली नरक में तीन कांड है- 1. खरकांड 2. पंक कांड 3. अप्बहुल कांड। खर कांड की मोटाई 16हजार योजन है। पंक कांड की 84 हजार योजन है। अप्बहुलकांड की 80 हजार योजन है।

खर कांड के 16विभाग है यथा - 1. रत्नकांड 2. वज्र 3. वैडूर्य 4. लोहिताक्ष 5. मसारगल्ल 6. हंसगर्भ 7. पुलक 8. सौगंधिक, 9. ज्योतिरस, 10 अंजन 11. अंजन पुलक 12. रजत 13. जातरूप 14. अंक 15 फलिह (स्फटिक) 16. रिष्ट। ये प्रत्येक एक-एक हजार योजन के जाड़े होते हैं।

पहली नरक पृथ्वी पिंड के एक लाख अस्सी हजार योजन भूमि भाग के ये तीन विभाग है। इन तीनों विभाग के पृथ्वी स्वभाव, पुद्गल आदि में भिन्नता है। शेष 6नरकों में यह अंतर नहीं है इसलिये उनमें ''कांड'' नहीं है।

नरकावास– नारकियों के रहने वाले नगर के समान स्थानों को नरकावास कहा गया है। ये संख्याता योजन एवं असंख्याता योजन के विस्तार वाले है। बाहर से चौकोन आदि हैं अंदर से गोल हैं। ये पंक्ति बद्ध भी हैं और प्रकीर्ण भी। पंक्ति बद्ध त्रिकोण चौकोन और गोल है। प्रकीर्ण नरकावास विभिन्न संस्थानों वाले हैं। सातों नरक में इनकी संख्या क्रमशः इस प्रकार है यथा-

1. तीस लाख 2. पच्चीस लाख 3. पंद्रह लाख 4. दस लाख 5. तीन लाख 6. एक लाख में पांच कम 7. पांच नरकावास है। पांच के नाम- 1. काल, महाकाल, रूद्र, महारूद्र, अप्रतिष्ठान।

पृथ्वी पिण्ड का आधार- सातों नरक पृथ्वी पिण्ड के नीचे बीस हजार योजन की जाडाई में घनोदधि है उसके नीचे असंख्य योजन जाडाई का घनवाय, तनुवाय और आकाशांतर क्रमशः हैं।

वलय- सातों नरक पृथ्वी पिण्ड के चौतरफ तीन वलय है- 1. घनोदधि वलय (यह पृथ्वी के किनारों को स्पर्श किया हुआ है 2. घनवाय वलय (यह घनोदधि को स्पर्श करते हुए है) 3. तनुवाय वलय (यह घनवाय को स्पर्श करते हुए हैं)।

तनुवाय के बाद अलोकाकाश हैं। इन तीनों वलयों की लंबाई नरक पृथ्वी पिण्ड की जाडाई के समान हैं। और चौडाई निम्न प्रकार है-

नरकपिंड की तालिका-

नरक पृथ्वी	धनोदधि		घनवाय		तनुवाय		वलय चौड़ाई कुल
1	6 योजन	+	4 $\frac{1}{2}$ योजन	+	1 $\frac{1}{2}$ योजन	=	12 योजन
2	6 $\frac{1}{3}$ योजन	+	4 $\frac{3}{4}$ योजन	+	1 $\frac{1}{2}+\frac{1}{12}$ योजन	=	12 $\frac{2}{3}$ योजन
3		+	5 योजन	+	1 $\frac{1}{2}+\frac{1}{12}$ योजन	=	13 $\frac{1}{3}$ योजन
4	7 योजन	+	5 $\frac{1}{4}$ योजन	+	1 $\frac{3}{4}$ योजन	=	14 योजन
5	7 $\frac{1}{3}$ योजन	+	5 $\frac{1}{2}$ योजन	+	1 $\frac{3}{4}$ $\frac{1}{12}$ योजन	=	14 $\frac{2}{3}$ योजन
6	7 $\frac{2}{3}$ योजन	+	5 $\frac{3}{4}$ योजन	+	1 $\frac{3}{4}$ $\frac{2}{12}$ योजन	=	15 $\frac{1}{3}$ योजन
7	8 योजन	+	6 योजन	+	2 योजन	=	16 योजन

पहली नरक पृथ्वी के चरमांत से चारों दिशाओं में अलोक 12 योजन दूर है और सातवीं नरक के पृथ्वी के चरमांत से 16योजन दूर हैं।

संस्थान- पृथ्वी पिंड एवं उसके नीचे रहे घनोदधि आदि झालर के आकार से है और चौतरफ रहे घनोदधि आदि वलयाकार हैं।

उपसंहार- इन नरक स्थानों में सभी जीव उत्पन्न हो चुके है, व्यवहार राशि की अपेक्षा एवं बहुलता की दृष्टि से।

ये सभी नरक स्थान शाश्वत है, अनादि हैं।

पहली नरक से दूसरी नरक बाहल्य (जाडाई) में कुछ कम (विशेष हीन) हैं। विस्तार की अपेक्षा विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी से चौथी यों आगे की नरक के विषय में जानना चाहिये।

-दूसरा उद्देशक-

नरक वर्णन

आंतरा-पाथडा-छत-

पाथड़े (प्रस्तट) सभी नरक में हैं। आंतरे छः नरक में है सातवीं नरक में नहीं हैं। ऊपर का छत और नीचे की ठीकरी सभी नरक में हैं। सर्व प्रथम ऊपर छत फिर पाथडा आंतरा पाथड़ा इस प्रकार है अंत में पाथड़ा और फिर ठीकरी (नीचली सतह) हैं। सातवीं नरक में ऊपर छत फिर पाथड़ा फिर ठीकरी (नीचली सतह) हैं। इनके माप योजन में इस प्रकार है- (छत और ठीकरी का माप समान हैं)।

नरक	छत	पाथडा	पाथडा माप	आंतरा	माप	पृथ्वीपिंड
1	1000 × 2	13	× 3000	12	× $11583\frac{1}{3}$ =	180000
2	1000 × 2	11	× 3000	10	× 1700 =	132000
3	1000 × 2	9	× 3000	8	× 12375 =	128000
4	1000 × 2	7	× 3000	6	× $16166\frac{2}{3}$ =	120000
5	1000 × 2	5	× 3000	4	× 25250 =	118000
6	1000 × 2	3	× 3000	2	× 52500 =	116000
7	52500 × 2	1	× 3000	×	× × =	108000

वर्ण गंध आदि-नरकावास कृष्ण परमकृष्ण रोमांचकरी भीम, भयानक, एवं त्रासकारी हैं। मरे हुए जानवरों के सड रहे मृत कलेवर की दुर्गन्ध से भी अधिक अनिष्टतर वहां का वायुमंडल हैं। तीक्ष्ण शस्त्र एवं प्रज्वलित अग्नि से भी अधिक अनिष्टतर वहां का स्पर्श होता है।

संख्यात योजन वाले नरकवास है उनका सामान्य या मध्यम गति से देवता छः महीने में अंत पा सकता है किन्तु असंख्य योजन वालों का उस गति से अंत नहीं पा सकता हैं।

सातवीं नरक में एक अप्रतिष्ठान नरकवास लाख योजन का है, शेष चार असंख्य योजन के हैं। शेष 6नरक में संख्याता योजन के भी बहुत है और असंख्य योजन के भी बहुत हैं। सभी नरकवास ''सर्ववज्रमय'' हैं। द्रव्यार्थतया शाश्वत है और वर्णादि पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत हैं।

आगतगत– पहली नरक में पांच असन्नी तीर्यंच एवं पांच सन्नी तीर्यंच पंचेनिद्रय उत्पन्न होते है एवं 15 कर्मभुमि मनुष्य उत्पन्न होते हैं। दूसरी नरक में असन्नी उत्पन्न नहीं होते हैं। तीसरी में भुजपरिसर्प, चौथी में खेचर, पाचवीं में थलचर और छट्ठी में उरपरिसर्प उत्पन्न नहीं होते अर्थात् छट्ठी में मनुष्य एवं जलचर उत्पन्न होते है। सातवीं में मनुष्यणी और तीर्यंच स्त्री उत्पन्न नहीं होती हैं। पहली से छट्ठी नरक के नारकी जीव मरकर 15 कर्म भूमि और पांच सन्नी तिर्यञ्च में जन्मते है सातवीं नरक के नारकी जीव केवल तीर्यंच में उत्पन्न होते हैं। अर्थात् मनुष्य नहीं बनते हैं।

अवगाहना– भव सम्बन्धी और वैक्रिय सम्बन्धी यों दो प्रकार की होती हैं। भव सम्बन्धी जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्तर वैक्रिय जघन्य अंगुल के संख्यातवां भाग की होती हैं। उत्कृष्ट इस प्रकार है -

नरक	भवधारणीय उत्कृष्ट	उत्तर वैक्रिय उत्कृष्ट
1	पोने आठ धनुष छः अंगुल	15 $\frac{1}{2}$ धनुष 12 अंगुल
2	साढ़े पंद्रह धनुष 12 अंगुल	31 $\frac{1}{4}$ धनुष
3	सवा 31 $\frac{1}{4}$ धनुष	62 $\frac{1}{2}$ धनुष
4	साढ़े 62 $\frac{1}{2}$ धनुष	125 धनुष
5	125 धनुष	250 धनुष
6	250 धनुष	500 धनुष
7	500 धनुष	1000 धनुष

नारकी जीव अपने शरीर मान से दुगुना वैक्रिय कर सकता हैं। इसलिये भवधारणीय अवगाहना से उत्तर वैक्रिय की अवगाहना दुगुनी कही हैं।

आहार श्वास पुद्गल– नेरयिकों का शरीर वर्ण गंध स्पर्श की अपेक्षा अकांत अमनोज्ञ होता हे उसके श्वासोश्वास एवं आहार में भी अनिष्ट अमनोज्ञ पुद्गलों का परिणमन होता हैं।

लेश्या– पहली दूसरी नारकी में कापोत लेश्या, तीसरी में कापोत और नील, चौथी में नील, पाचवीं नील और कृष्ण, छठी में कृष्ण, सातवीं में परम कृष्ण।

वेदना– पहली दूसरी तीसरी में शीत वेदना, चौथी में उष्ण वेदना स्थान ज्यादा और शीत वेदना स्थान कम, पाचवीं में शीत वेदना ज्यादा और उष्ण वेदना कम, छठ्ठी में शीत वेदना, सातवीं में परम शीत वेदना हैं।

वैक्रिय– नारकी जीव एक या अनेक रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं। पहली से पांचवी नरक तक संख्याता, संबद्ध और सरीखे रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं। वैक्रिय से अनेक प्रकार के शास्त्र बनाकर एक दूसरे को परम त्रास उत्पन्न करते हैं। छठ्ठी सातवीं नरक में वैक्रिय से गोबर के कीड़ों के समान छोटे छोटे वज्रमुखी कीड़ों की विकुर्वणा करते है और एक दूसरे के शरीर में प्रवेश कर उसके शरीर को खाकर खोखला या चालणी जैसा कर देते हैं। इस प्रकार परस्पर तीव्र प्रगाढ़ वेदना उत्पन्न करते हैं।

क्षुधा आदि वेदना हेतु उपमाएं– नैरयिकों को भूख प्यास की वेदना इतनी तीव्र होती हैं कि उन्हें सब समुद्रों का पानी पिला दिया जाय और सब पुद्गलों का आहार करा दिया जाय तो भी तृप्त नहीं होते हैं। वे नारकी जीव वहां भयाक्रांत, त्रसित, भूखे, प्यासे उद्विग्न व्यथित, व्याकुल बने हुए नरक भव के दुखों का अनुभव करते हैं। वहां गर्मी की वेदना इतनी प्रचंड होती है कि लोहे का सघन तपाया गोला यदि नरक में रख कर तत्काल उठाना चाहे तो नहीं उठा सकते, वह एक क्षण में ही पिघल कर पानी सा बन जाता है। गर्मी से संतप्त बना व्यक्ति जिस तरह बावड़ी आदि में प्रवेश करके आनंद का अनुभव करता है उसी तरह असत् कल्पना से उष्ण वेदना के नरक का नैरयिक यहां मनुष्य लोक की बड़ी फेक्ट्रियों के अग्नि की भट्ठी में पंहुच जाये तो परम शांति शीतलता का अनुभव करेगा।

शीत की वेदना वाले नरक स्थानों में ठंडी की प्रचंड वेदना होती है वहां पर लोहे का गोला ठंडी से बिखर जायेगा और कल्पना से उस स्थान के नेरायिक को यहां पर्वतों पर बर्फ की चट्टानों में प्रवेश करा दिया जाय तो परम शांति और उष्णता का अनुभव करेगा।

नरक में पृथ्वी पानी वनस्पति– सातों नरकों में पृथ्वी का स्पर्श पानी का स्पर्श और वनस्पति का स्पर्श अनिष्ट अकांत अप्रिय अमनोज्ञ असुखकर होता हैं।

(इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि नरक में भी कहीं कोई जल स्थान होते है एवं वनस्पतियां (वृक्ष) आदि भी होते हैं। अथवा तो देव द्वारा विकुर्वित भी हो सकते है)

नरक सीमा में रहने वाले पृथ्वीकाय आदि के जीव महाकर्म महाकिरिया महा आश्रव महा वेदना वाले होते हैं।

सभी प्राणी नरक में पांच स्थावर के रूप में और नरक के रूप में अनेक बार अथवा अनंत बार उत्पन्न हो चुके हैं।

अवधि क्षेत्र– नारकी जीव अवधिज्ञान से जघन्य आधा कोष उत्कृष्ट 4 कोष जानते देखते हैं।

वहां अवधि क्षेत्र इस प्रकार हैं।

नारकी	जघन्य	उत्कृष्ट
पहली नरक	$3\frac{1}{2}$ कोश	4 कोश
दूसरी नरक	3 कोश	$3\frac{1}{2}$ कोश
तीसरी नरक	$2\frac{1}{2}$ कोश	3 कोश
चौथी नरक	2 कोश	$2\frac{1}{2}$ कोश
पांचवी नरक	$1\frac{1}{2}$ कोश	2 कोश
छट्ठी नरक	1 कोश	$1\frac{1}{2}$ कोश
सातवी नरक	$\frac{1}{2}$ कोश	1 कोश

–तीसरा उद्देशक–

नरक वर्णन–

चक्रवर्ती वासुदेव मांडलिक राजा, सामान्य राजा, महारंभी, महाकुटुम्बी आदि इन नरकों में उत्पन्न होते हैं। अर्थात् महाऋद्धि संपन्न लोग, महान् आसक्त लोग और महान् आरंभ समारंभ के कार्यों में भाग लेने वाले लोग यदि जीवन में उनका त्याग नहीं कर पाते अथवा त्यागने का संकल्प नहीं रखते और मरते समय तक उसी अवस्था में रहते है, वे लोग नहीं चाहते हुए भी नरक के मेहमान बनते है। तब वहां उनका इहलौकिक सारा बडप्पन और अभिमान धूमिल हो जाता है असंख्य वर्षों तक नरक के दुख उन्हें परवश होकर भोगना आवश्यक बन जाता हैं।

वैक्रिय शरीर– नारकी द्वारा किया गया वैक्रिय अंतर्मुहुर्त्त स्थिर रह सकता हैं। तीर्यंच मनुष्य द्वारा किया वैक्रिय भी अंतर्मुहुर्त्त रह सकता है किन्तु उनका उत्कृष्ट समय नारक के समय से चार गुना होता हैं। देवों द्वारा किया गया वैक्रिय उत्कृष्ट 15 दिन रह सकता हैं।

नैरयिक सुख– तीर्थंकर जन्म के निमित से, देव के प्रयत्न विशेष से, शुभ अध्यवसायों से अथवा कर्मोदय से नैरयिक जीवों को कभी किंचित साता होती है अर्थात् सुखानुभूति-प्रसन्नता होती हैं।

नरक दुख- नैरयिक जीव सेकड़ों नरक दुखों से अभिभूत होकर कभी कहीं 500 योजन ऊंचे उछल जाते हैं।

नरक स्वभाव से नैरयिकों के क्षण मात्र भी सुख नहीं हैं। रात दिन सदा केवल दुखों में ही संलग्न रहते हैं।

इस प्रकार नरकों में अतिशीत, अतिऊष्ण, अतिभूख, अतिप्यास, अतिभय इत्यादि सैकड़ों दुख निरन्तर लगे हुए हैं।

-चौथा उद्देशक-

तिर्यंच वर्णन-

तिर्यंच योनिक जीव पांच प्रकार के हैं। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। इनमें सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त, सन्नी- असन्नी आदि कई भेद प्रभेद हैं।

खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और जलचर इन चारों के अंडज, पोतज, समुच्छिम ये तीन योनि संग्रह हैं। स्थलचर के जरायुज एवं सम्मुच्छिम दो योनि संग्रह हैं।

जाति कुल कोड़ी योनि- जीवों की 84 लाख जीवयोनि हैं। जाति कुल कोड़ी योनि 93$\frac{1}{2}$ लाख कही गई हैं।

बेइन्द्रिय की	=	7 लाख	तेइन्द्रिय की	=	8 लाख
चौरेन्द्रिय की	=	9 लाख	वनस्पति की	=	16 लाख
जलचर की	=	12$\frac{1}{2}$ लाख	स्थलचर की	=	10 लाख
उरपरसिर्प की	=	10 लाख	खेचर की	=	12 लाख
भुजपरिसर्प की	=	9 लाख			कुल 93$\frac{1}{2}$ लाख हुए।

चार स्थावर एवं नारकी देवता मनुष्य की कुल कोडी यहां नहीं कही गई हैं। फूलों की 16लाख कुल कोडी इस प्रकार है- 4 लाख जलज उत्पलादि, 4 लाख स्थलज कोरंटादि, 4 लाख महावृक्षों के महुआ आदि 4 लाख गुल्मों के जायफल आदि

सुगंध- सात सुगन्ध के मुख्य पदार्थ है और उनके 700 अवांतर भेद हैं। यथा - 1. मूल, 2. त्वक, 3. काष्ठ, 4. निर्यास (कर्पूर आदि) 5. पत्र 6. पुष्प 7. फल। इनकों 5 वर्ण 5 रस और चार स्पर्श से अर्थात् 100 से गुणा करने पर 700 अवांतर भेद हो जाते हैं।

विमान विस्तार- सूर्योदय से सूर्यास्त तक बीच का जो आकाश क्षेत्र है इससे तीन गुणे क्षेत्र जितना एक कदम भरते हुए कोई देवता चले तो किसी विमान का पार पाता हैं किसी का पार नहीं पाता हैं। इसी प्रकार पांच गुणा, सात गुणा, नौ गुणा कदम भरते हुए छः मास चलने पर भी किसी विमान का अंत आता है और किसी विमान का अंत नहीं आ सकता। विमानों के नाम क्रमशः इस प्रकार है 1. अर्चि आदि 2. स्वस्तिक आदि 3. काम कामावर्त्त आदि 4. विजय वेजयंतादि ।

विमान	पृथ्वीपिंड	विमान ऊँचाई	विमान संख्या	प्रतर	वर्ण	लोकपाल	त्रायस्त्रिंशक
1-2	2700 योजन	500 योजन	32/28 लाख	13	5	4-4	33-33
3-4	2600 योजन	600-600	12/8 लाख	12	4	4-4	33-33
5	2500 योजन	700 योजन	4 लाख	6	3	4	33
6	2500 योजन	700 योजन	50 हजार	5	3	4	33
7	2400 योजन	800 योजन	40 हजार	4	2	4	33
8	2400 योजन	800 योजन	6 हजार	4	2	4	33
9-10	2300 योजन	900 योजन	400	4	1	4	33
11-12	2300 योजन	900 योजन	300	4	1	4	33
9 ग्रैवे.	2200 योजन	1000 योजन	318	9	1	नहीं	नहीं
5 अणु.	2100 योजन	1100 योजन	5	1	1	नहीं	नहीं

नोट– उक्त निर्दिष्ट गति से पार नहीं पाया जा सकता, किंतु देव अपनी उत्कृष्ट गति से सभी विमानों नरकों को भी पार कर सकते हैं।

पृथ्वी के भेद– छः प्रकार की पृथ्वी होती हे- 1. श्लक्ष्ण-कोमल मिट्टी 2. शुद्ध- पर्वत आदि के मध्य 3. बालु रेत 4. मेनसिल 5. शर्करा-मरूण्ड पृथ्वी 6. खर पृथ्वी- पत्थर आदि। इनकी क्रमशः उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार हैं। 1. एक हजार वर्ष 2. बारह हजार वर्ष 3. चौदह हजार वर्ष 4. सौलह हजार वर्ष 5. अठारह हजार वर्ष 6. बावीस हजार वर्ष ।

निर्लेप– पृथ्वी काय के जीव एक-एक सूक्ष्म समय में निकाले जाय तो असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल से खाली हो सकते है वैसे ही पानी अग्नि हवा का भी समझना। वनस्पति काय के जीव निर्लेप नहीं हो सकते। त्रसकाय सैकड़ों सागरोपम से निर्लेप हो सकते हैं।

विशुद्ध लेश्या (परिणाम) वाले अणगार समवहत असमवसहत दोनों अवस्था में देव, देवी या अणगार आदि को जान-देख सकते हैं। अविशुद्ध लेश्या वाला नहीं जाने, नहीं देखे। यहां जानना देखना परोक्ष की अपेक्षा एवं विशिष्ट ज्ञान की अपेक्षा समझना चाहिए और विशिष्ट ज्ञान का उपयोग विशुद्ध लेश्या में संभव हैं। अविशुद्ध लेश्या में नहीं।

क्रिया– मिथ्यात्व या सम्यक्त्व में से एक समय में एक ही क्रिया लग सकती हैं। एक समय में जीव इन दोनों भाव में नहीं रह सकता।

मनुष्य– कर्म भूमि, अकर्म भूमि और अंतरद्वीप यों मनुष्य के तीन प्रकार हैं। इनके 101 क्षेत्र होने से मनुष्य के 101 भेद होते हैं। सन्नी के पर्याप्त अपर्याप्त और असन्नि के अपर्याप्त यों तीन भेद करने से कुल 303 भेद होते हैं। जिसमें कर्म भूमि के भरत आदि 15 क्षेत्र है, अकर्मभूमि के देवकुरू आदि 30 क्षेत्र है और अंतर द्वीप के एकोरूक आदि 56क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों का और उनके मनुष्यों का वर्णन इस प्रकार हैं।

अन्तर द्वीपों का वर्णन–

जम्बू द्वीप के चौतरफ लवण समुद्र है उसमें ये द्वीप है। इनकी आठ पंक्तियां है और एक पंक्ति में सात द्वीप हैं। वे सातों द्वीप थोड़े थोड़े अंतर से, दूरी से रहे हुए है अर्थात् उनके बीच बीच में समुद्रजल हैं। इस प्रकार ये $7 \times 8 = 56$ होते हैं।

भरत क्षेत्र की सीमा करने वाला पर्वत चुल्लहिमवंत है और ऐरावत क्षेत्र की सीमा करने वाला शिखरीपर्वत हैं। इनके दोनों किनारे पूर्व और पश्चिम में है, जो लवण समुद्र का स्पर्श करते हैं। उन किनारों से एक पंक्ति उत्तर की और गोलाई में झुकी हुई है, दूसरी दक्षिण की तरफ गोलाई में झुकी हुई हैं। यों चार किनारों में दो दो पंक्ति होने से आठ पंक्ति हैं।

इस पंक्ति का प्रथम द्वीप लवण समुद्र में 300 योजन जाने पर आता हैं। उस द्वीप से 400 योजन जल में जाने पर आगे का द्वीप आता हैं। इस तरह क्रमशः 500, 600, 700, 800, 900 योजन जाने पर अंतिम सातवां द्वीप आता है और वे द्वीप जम्बू द्वीप के किनारे से भी इतनी ही दूरी पर है उतने ही योजन के विस्तार वाले हैं।

तात्पर्य यह है कि पहला अंतर द्वीप जगती से 300 योजन दूर हैं। और 300 योजन का ही लम्बा चौड़ा गोल हैं। दूसरा द्वीप जगती से 400 योजन दूर है पहले द्वीप से भी 400 योजन दूर है और 400 योजन का ही लम्बा चौडा गोल हैं। यो क्रमशः सातवां द्वीप छट्ठे द्वीप से 900 योजन दूर है जगती से भी 900 योजन दूर है और 900 योजन का लम्बा चौड़ा गोल हैं।

आठों पंक्तियों के सात-सात द्वीप इसी प्रकार रहे हुए हैं। इन द्वीपों के किनारे पर पद्मवरवेदिका (जगती रूप) है और उसके चौतरफ वनखंड हैं। वंनखड में देव देवी आते जाते है और विश्राम करते है। द्वीप के अंदर युगलिक मनुष्य रहते हैं। वहां विविध प्रकार के वृक्ष लता गुल्म आदि हैं। शिलापट है अर्थात् जगह जगह पर कुर्सियें हैं। विविध वृक्षों के अतिरिक्त दस जाति के विशिष्ट वृक्ष भी विपुल मात्रा में होते है जो युगलिक जीवों के सुखमय जीवन निर्वाह के प्रमुख आधार भूत होते हैं। उन्हें प्रचलित रूढ भाषा में दस कल्प वृक्ष कहा जाता हैं। वे इस प्रकार हैं-

दस वृक्ष- 1. मत्तंगा- मादक फल वाले 2. भृगंगा- बर्तनाकार फल वाले 3. तुटितंगा-वांदित्र विधि से युक्त ध्वनि करने वाले 4. द्वीपशिखा-द्वीप के समान प्रकाश करने वाले 5. ज्योति शिखा- विशेष प्रकाश करने वाला 6. चित्रंगा- विविध मालाएं प्रदान करने वाले 7. चित्तरसा- विविध प्रकार के भोजन सामग्री के पदार्थों से युक्त 8. मणियंगा- विविध आभूषण प्रदाता 9. गेहागारा-मकानाकार उपयोग में आने वाने मनोनुकूल भवन विधि से युक्त 10 अणिगणा (अणगिणा)- विविध वस्त्रविधि से युक्त

वे वनस्पति काय मय वृक्ष होते हैं। इन से ऊपरोक्त आवश्यक्ताओं की पूर्ति रूप उपयोग युगलिक मनुष्य या तीर्यंच कर लेते हैं। युगलियों की संख्या की अपेक्षा वृक्षों से उपलब्ध पदार्थों की संख्या कई गुणी होती हैं। इन वृक्षों से कोई चीज मांगी नहीं जाती है किन्तु उनसे उपलब्ध होने वाली वस्तुओं का स्वयं ही उपयोग किया जाता हैं।

युगलिक मनुष्य- यहां अंतर द्वीप में रहने वाले युगलिक मनुष्य सुस्वर वाले होते हैं। वज्रऋषभ- नाराच संहनन, समचतुरस्त्र संस्थान, प्रकाशमान, अंगोपांग वाले, स्निग्ध छवि वाले, सुगंधिक निःश्वास वाले वे मनुष्य होते हैं। उनकी अवगाहना-800 धनुष की और उनके 64 पसलियां होती हैं। वे मनुष्य प्रकृति से भद्र, विनीत, उपशांत, स्वाभाविक ही अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, नम्र ,सरल, निरहंकारी, अल्पेच्छा वाले, एवं इच्छानुसार विचरण करने वाले होते हैं। उन मनुष्यों को उपवास के अनंतर आहार की इच्छा उत्पन्न होती हैं।

युगलिक मनुष्यणी- अंतरद्वीप की यौगलिक मनुष्यणी सुजात, सर्वाग सुन्दर एवं प्रधान महिला के गुणों से युक्त होती हैं। उत्तम बतीस लक्षण युक्त, हंस सदृश गति, पुरूष से ऊंचाई में कुछ कम, स्वभाविक श्रृंगार और सुन्दर वेश युक्त होती हैं। उनका हंसना बोलना, चेष्टा, विलास संलाप सुसंगत होती हैं। योग्य व्यवहार में कुशल, निपुण होती है। वह सुन्दर स्तन, जंघा, मुख, हाथ, पांव,नयन वाली, वर्ण लावण्य योवन संपन्न एवं अत्यन्त दर्शनीय अप्सरा सदृश होती हैं। (यहां शास्त्र में स्त्री के प्रत्येक अंग का विस्तृत वर्णन किया गया है तथा 32 लक्षण भी बताये हैं।)

क्षेत्र स्वभाव एवं मनुष्यों का जीवन-

1. ये मनुष्य पृथ्वी पुष्प फल का आहार करते हैं। उस पृथ्वी पुष्प फल का स्वाद अति उत्तम होता है और वे पौष्टिक गुण युक्त होते हैं। 2. वहां गांव नगर घर आदि नहीं होते किन्तु वृक्ष ही सुन्दर भवन बंगलों के समान होते हैं। 3. व्यापार वाणिज्य खेती आदि नहीं होती हैं। 4. सोना चांदी मणि मुक्ता धन आदि होते है किन्तु उन मनुष्यों का उनमें ममत्व भाव नहीं होता हैं। 5. राजा सेठ मालिक नौकर नहीं होते हैं। सभी मनुष्य अहमिन्द्र के समान होते हैं। 6. माता पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्रवधु होते है किन्तु तीव्र प्रेमानुराग नहीं होते हैं। 7. शत्रु, वैरी, घातक मित्र, सखा, सखी, आदि नहीं होते है 8. किसी प्रकार के महोत्सव, विवाह, यज्ञ, पूजन, मृतपिंड, निवेदन पिंड, आदि क्रियाएं नहीं होती 9. नाटक खेल आदि नहीं होते है क्योकि वे कुतुहल रहित होते हैं।

10. यान वाहन नहीं होते हैं। वे पैदल विहार चर्या वाले होते है 11. हाथी घोडे आदि पशु होते है किन्तु वे आपस में या मनुष्यों को किंचित भी पीड़ा नहीं पहुंचाते 13. गेहूं आदि घान्य भी होते है किन्तु मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते। 14. खड्डे (गड्डे), खाई, उबड खाबड भूमि (विषम भूमि) कीचड आदि नहीं होते, धूल रज गंदगी नहीं होती 15. कांटे खीले कांच कचरा आदि नहीं होते ।

16. डांस, मच्छर, माकड (खटमल) जूं लीख आदि नहीं होते 17. सांप, अजगर आदि होते है किन्तु वे प्रकृति भद्र होते हैं। आपस में या मनुष्यों को पीडा नहीं पहुचाते 18. आंधी तूफान, उपद्रव, ग्रहण, उल्कापात आदि कोई भी अशुभ लक्षण, संयोग नहीं होते 19. वैर विरोध लडाई झगडे, सग्राम आदि नहीं होते 20. किसी प्रकार के रोग वेदना आदि नहीं होते 21. अतिवृष्टि अनावृष्टि नहीं होती 22. सुवर्ण आदि की खान निधान या सुवर्ण आदि की वृष्टि भी नहीं होती हैं।

इन मनुष्यों की उम्र जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है जघन्य से उत्कृष्ट कुछ अधिक होती हैं।

ये मनुष्य छः महिने आयु शेष रहने पर पुत्र पुत्री युगल को जन्म देते है 49 दिन पालन पोषण करते हैं उसके बाद कभी भी काल करके देव गति में जाते है अर्थात् भवनपति और वाणव्यतंर जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं।

अंतरद्वीप के नाम- 1. एकोरूक 2. हयकर्ण 3. आदर्शमुख 4. अश्व मुख 5. अश्व कर्ण 6. उल्कामुख 7. धनदन्त। 8. आभाषिक 9. गजकर्ण 10. मेण्ढ मुख 11. हस्ति मुख 12. सिंह कर्ण 13. मेघ मुख 14. लष्ट दंत । 15. वेषाणिक 16. गोकर्ण 17. अयोमुख 18. सिंहमुख 19. अकर्ण 20. विधुद्दंत 21. गूढदंत। 22. नागोलिक 23. शष्कुलीकर्ण 24. गोमुख 25. व्याघ्रमुख 26. कर्ण प्रावरण 27. विद्युज्जिव्हा 28. शुद्धदंत ।

ये अट्ठावीस चुल्ल हिमंवत पर्वत के दोनों किनारे हैं। इसी प्रकार शिखरी पर्वत के दोनों किनारे इन्हीं 28नाम वाले द्वीप हैं। इनके दक्षिणी और उत्तरी ये विशेषण लग जाने से नाम साम्यता होने पर भी बाधा नहीं आती हैं।

देवों की परिषदा- देवों की तीन प्रकार की परिषद होती हैं-1. आभ्यंतर 2. मध्यम 3.बाह्म। इन तीनों के नाम भवनपति में 1. समिता 2. चंडा 3. जाता परिषद हैं। ''आभ्यंतर परिषद के देव बुलाने पर आते है, उनके साथ इन्द्र आवश्यक विचारणा करता हैं। मध्यम परिषद बुलाने पर भी आती हैं बिना बुलाये भी आती हैं। इनके साथ उस विचारणा विषय के गुण दोष की विस्तार से विचारणा कर निर्णय किया जाता हैं। तीसरी बाह्यपरिषद में निर्णित की गई आज्ञा दी जाती हैं। यथा- यह करना, यह नहीं करना।

इन तीन परिषद के देवों की और देवियों की संख्या एवं उनकी उम्र निम्न प्रकार से होती हैं। वाणव्यंतर देवों के तीन परिषद के नाम 1. ईशा 2. त्रुटिता 3. दृढ़रथा। ज्योतिषी देवों की तीन परिषद के नाम- 1. तुम्बा 2. त्रुटिता 3. प्रेत्या।

देवों की परिषद-

नोट- ज्योतिषी देवेंद्रों की परिषद संख्या और उसकी स्थिति व्यतर के कालकुमारेंद्र के समान हैं। नव ग्रैवेयक एवं अणुत्तर विमान में सभी देव अहमिन्द्र होते हैं। परिषद नहीं होती ।

द्वीप	अधिष्ठायक देव	समुद्र	अधिष्ठायक देव
जंबूद्वीप	अनादृत	लवणसमुद्र	सुस्थित देव
धातकी खंड	सुदर्शन, प्रियदर्शन	कालोदधि समुद्र	काल, महाकाल
पुष्कर द्वीप	पद्म, पुंडरीक	पुष्कर समुद्र	श्रीधर, श्रीप्रभ
वरूणवर द्वीप	वरूण, वरूणप्रभ	वरूणवर समुद्र	वारूणी, वरूणाकांत
क्षीरवर द्वीप	पुंडरीक, पुष्करदंत	क्षीरवर समुद्र	विमल, विमलप्रभ
घृतवर द्वीप	कनक, कनकप्रभ	घृतवर समुद्र	कांत, सुकांत
क्षोदवर द्वीप	सुप्रभ, महाप्रभ	क्षोदवर समुद्र	पूर्णभद्र, मणिभद्र
नंदीश्वर द्वीप	कैलास, हरिवाहन	नंदीश्वर समुद्र	सुमनस, सोमनसभद्र
अरूण द्वीप	अशोक, वीतशोक	अरूण समुद्र	सुभद्र, सुमनभद्र
अरूणवर द्वीप	अरूणवरभद्र, अरूणवर महाभद्र	अरूणवर समुद्र	अरूणवर, अरूणमहावर
अरूणवरावभास द्वीप	अरूणवरभासभद्र, अरूणवमहाराव भासभद्र	अरूणवराव भास समुद्र	अरूणवराव भासवर, अरूण महावराव भासवर

द्वीप समुद्रों का वर्णन- तिर्च्छा लोक में जम्बूद्वीप आदि असंख्य द्वीप है लवण समुद्र आदि असंख्य समुद्र हैं। जम्बूद्वीप सबसे छोटा, बीचो बीच, पूर्ण चंद्र के आकार का हैं। एक लाख योजन लम्बा चौडा हैं। उसके चौतरफ वलयाकार दो लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र हैं। उसके बाद एक द्वीप एक समुद्र यों क्रमशः वलयाकार हैं। उनका विस्तार आगे से आगे दुगुणा दुगुणा हैं। प्रत्येक द्वीप समुद्र के किनारे पद्मवर वेदिका (पाली) हैं और वन खंड है ये भी वलयाकार हैं।

जम्बूद्वीप जगती- जम्बूद्वीप के किनारे जगती है उसके मध्य में चौतरफ घिरे हुए गवाक्षकटक (जाली के गोखडे) हैं। जगती के ऊपर बीच में पद्मवर वेदिका हैं।, उसके दोनों तरफ वन खंड हैं। वनखंड में अनेक बावडियां आदि है (यहां सूत्र में पद्मवर वेदिका और वनखंड तथा उसमें रही बावडियों का विस्तृत वर्णन हैं।

जगती पर वाणव्यतंर देव आमोद प्रमोद करने के लिए आते रहते है यहां बैठने सोने आदि के लिए आसन, शिलापट्ट आदि हैं।

जम्बूद्वीप की जगती के द्वार- मेरू पर्वत से पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशा में चार द्वार जगती में है उनके नाम-1. विजय 2. वेजयंत 3. जयंत 4. अपराजित। मेरू से 45000 योजन दूर हैं। पहला विजयद्वार पूर्व दिशा में सीता महानदी के ऊपर हैं। चार योजन चौडा आठ योजन ऊंचा है। दरवाजे के अंदर और बाहर बालुरेत बिछी हुई हैं।

विजय द्वार का आभ्यंतर वर्णन- द्वार के अंदर दोनों बाजू में निषीदिका (बैठक सथान) हैं। जिनमें चंदन कलश, मालाओं युक्त खूंटियां, घटिकाएं, चांदी के छीके एवं उनमें धूप घटिकाएं हैं। पुतलियां, जालधर, विशाल घंटा एवं वनमाला की पंक्तिएं हैं। दोनों निषिदिकाओं में पकंठक (पीठ) पर प्रासादावतंसक हैं। पकंठक 4 योजन लम्बे चौडे दो योजन ऊंचे है और प्राषाद दो योजन लम्बे चौडे 4 योजन ऊंचे हैं। प्राषाद में मणि पीठिका (चबुतरा) हैं। उस पर सिंहासन हैं।

द्वार का बाह्य वर्णन– दोनों निषीदिकाओं के सामने दो तोरण हैं। प्रत्येक तोरण के सामने दो दो पुतलियां, नागदंत हस्ती युगल, अश्व युगल नर-किन्नर-किंपुरूष युगल, महोरग गंधर्व एवं ऋषभ (बेल) युगल हैं। इसी प्रकार अनेक मंगल रूप दर्शनीय रूप दो दो पदार्थ हैं। दो दो सिंहासन छत्र चामर आदि भी हैं।

द्वार पर 1080 ध्वजाएं हैं। दरवाजे के ऊपर 9 भवन हैं। पाचवें भवन में विजय देव का सिहासन है उसके आस-पास उसकी परिषद के देव देवियों के भद्रासन हैं। इस प्रकार परिवार सहित बैठने योग्य यह बीच का भवन है अन्य आठ भवन में एक एक सिंहासन है।

विजयदेव का परिवार– 4 हजार सामानिक, चार अग्रमहिषी परिवार, 8हजार आभयंतर परिषद के देव, मध्यम परिषद के दस हजार देव बाह्य परिषद के 12 हजार देव, 7 सेनापति, 16 हजार आत्म रक्षक देव। इन सभी के लिये पांचवे भवन में भद्रासन हैं।

इस विजय द्वार का विजय नामक मालिक देव यहीं रहता है। उसकी एक पल्योपम की स्थिति हैं।

विजयदेव की राजधानी– पूर्व दिशा में असंख्य द्वीप समुद्रों के बाद जहां दूसरा जम्बूद्वीप है, उसमें बारह हजार योजन अंदर जाने पर विजयदेव की विजया नामक राजधानी हैं। 12 हजार योजन लम्बी चौडी गोल हैं। उसके चौतरफ 37 योजन ऊंचा परकोटा (प्राकार) है। मूल में $12\frac{1}{2}$ यो. चौड़ा हैं बीच में $6\frac{1}{4}$ यो. चोड़ा और ऊपर तीन योजन आधा कोश चौड़ा है। विजया राजधानी में कुल 500 द्वार है। ये द्वार है। ये द्वार $62\frac{1}{2}$ यो. ऊंचे $31\frac{1}{4}$ योजन चोड़े है। शेष वर्णन ऊपरोक्त द्वार वर्णन के समान है। विजया राजधानी का बाह्य और आभ्यंतर वर्णन प्रायः सूर्याभ देव के सर्याभ विमान के वर्णन के सदृश है। यथा- जन्माभिषेक एवं अन्य क्रिया कलाप और सुधर्मा सभा में सपरिवार बैठने की व्यवस्था आदि है।

शेष तीन द्वार– मेरू पर्वत से पूर्व दिशा में स्थित विजय द्वार का वर्णन हुआ। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में वेजयंत द्वार और वेजयंत देव एवं उसकी राजधानी का वर्णन है। पश्चिम दिशा में जयंत द्वार और जयंत देव एवं उसकी जयंता राजधानी का वर्णन है। उत्तर दिशा में अपराजित द्वार और अपराजित देव एवं उसकी अपराजिता राजधानी है।

चारों द्वारों में आपस में 79052 योजन देशोन दो कोश साधिक का अंतर है।

उपसंहार– लवण समुद्र के प्रदेशांत जम्बूद्वीप से स्पृष्ट है और जम्बूद्वीप के प्रदेश लवणसमुद्र से स्पृष्ट है किन्तु वे प्रदेश अपनी अपनी क्षेत्र मर्यादा के ही कहे जायेंगे। जम्बूद्वीप से मरकर कई जीव लवण समुद्र में उत्पन्न होते हैं और लवणसमुद्र के कई जीव मरकर जम्बूद्वीप में उत्पन्न होते हैं।

जम्बूद्वीप नाम– मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में उत्तर कुरू नामक क्षेत्र में जम्बूसुदर्शन नामक वृक्ष है। पृथ्वीमय विविध रत्न मणिमय है। जम्बू द्वीप का अधिपति (मालिक) अनादृत देव यहां पर रहता है। उसकी अनादृता राजधानी दूसरे जम्बूद्वीप में है। इस प्रकार इस जंबू सुदर्शन वृक्ष के कारण एवं अन्य भी अनेक जम्बू वृक्षों के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप है अथवा यह अनादि शाश्वत नाम है। जम्बू द्वीप में 2 सूर्य 2 चन्द्र 56 नक्षत्र 176 ग्रह, 1,33,950 कोडाकोडी तारे भ्रमण करते हैं।

–लवण समुद्र–

जम्बूद्वीप के चौतरफ घिरा वलयाकार (चूड़ी के आकार) लवण समुद्र है। जिसका पानी खारा कटुक अमनोज्ञ है। तद्योनिक (वहीं उत्पन्न) जीवों को छोड़कर शेष सभी के लिये अपेय है। पद्मवरवेदिका और वनखंड से क्रमशः चौतरफ लवण समुद्र घिरा हुआ है। चार दिशाओं में लवण समुद्र के विजय आदि चार द्वार है। जिसका संपूर्ण वर्णन जम्बूद्वीप के उक्त विजय आदि द्वारों के समान है।

लवण समुद्र के मालिक देव का नाम 'सुस्थित' है। वह लवण समुद्र में ही गौतम द्वीप में रहता है। लवणधिपति सुस्थित देव की अन्य दूसरे लवण समुद्र में 'सुस्थिता' नामक राजधानी है। सुस्थिति देव की उम्र एक पल्योपम की है।

पाताल कलश- लवण समुद्र में चार बड़े महापाताल कलश है, जो एक लाख योजन गहरे हैं सात हजार आठ सौ चौरासी (7884) छोटे पाताल कलश है। वे एक हजार योजन गहरे हैं। चार बड़े कलशों के चार मालिक देव है यथा- 1. काल 2. मलाकाल 3. वेलंब, 4. प्रभंजन। इनकी उम्र एक पल्योपम की है।

इन कलशों के नीचे के एक तिहाई (1/3) भाग में वायु होती है। बीच के एक तिहाई भागमें वायु और जल होता है और ऊपर के एक तिहाई भाग में केवल जल होता है। इसमें ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाली वायु उत्पन्न होती है कुपित होती है, उदीरित होती है, तब पानी शिखा रूप में ऊपर उठता है।

लवण-शिखा- लवण समुद्र के दोनों किनारों से 95-95 हजार योजन अंदर जाने पर बीच का जो दस हजार योजन का क्षेत्र है इसी में पाताल कलश है। और वहीं पर सम भूमि से 16000 योजन ऊंची 10000 योजन चौड़ाई वाली जल शिखाहै। जो पूरे लवण समुद्र के दो विभाग करती है। आभ्यंतर और बाह्य। पाताल कलशों का मुख समुद्र की भीतरी सतह पर है अर्थात् समुद्र की ऊपरी सतह से 1000 योजन ऊंडा है। पाताल कलशों की वायु के कुपित एवं उदीरित होने पर वह 16000 योजन की शिखा देशोन आधा योजन ऊपर बढ़ती और कुपित नहीं होने पर नहीं बढ़ती है। स्वभाव से ही वह प्रति दिन दो बार बढ़ती है और पुनः घट जाती है। किन्तु अष्टमी चतुर्दशी अमावस पूनम के दिन स्वाभाविक हीअतिशय रूप में ज्यादा समय तक या बहुत बार घटती बढ़ती रहती है।

इस लवण शिखा को अंदर (जंबूद्वीप की तरफ) बाहर (धातकीखंड की तरफ) और ऊपर यों तीनों दिशा में क्रमशः 42 हजार, 72 हजार और 60 हजार नागकुमार देव धारण करते हैं अर्थात् व्यवहार से रोकने के प्रयत्न हेतु दबाते रहते हैं। इनमें चार वेलंधर नाग राजा है- 1. गोस्तूप 2. शिवक 3. शंक 4. मनोशिलक।

वेलंधर नागराज के आवास पर्वत- मेरू पर्वत से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में लवण समुद्र में 42000 योजन जाने पर क्रमशः गोस्तूप आदि चारों नागराजाओं के क्रमशः चार आवास पर्वत है यथा- 1. गोस्तूप 2. उदकभाास 3. संख 4. दकसीम। ये पर्वत स्वर्णमय है गोपुच्छ संस्थान वाले हैं ऊपरी शिखर पर प्रासादावतंसक है। $52\frac{1}{2}$ योजन ऊंचा $26\frac{1}{4}$ यो. लम्बा चौड़ा है। उसमें सपरिवार सिंहासन आदि विजय देव के प्रासाद के समान है। इनकी राजधानी अन्य लवण समुद्र में इसी दिशा में इतनी ही (12000 योजन) दूरी पर है। जिसका वर्णन विजया राजधानी के समान है।

मेरू पर्वत से चारों विदिशाओं में इसी प्रकार चार अणुवेलंधर नागराजाओं के आवास पर्वत है। यथा- 1. कर्कोटक 2. कर्दमक 3. कैलाश 4. अरूणप्रभ। ये आवास पर्वत चांदीमय हैं। देव, आवास पर्वत, प्रासाद एवं राजधानी इन्हीं नामों से हैं।

सुस्थित देव- मेरू पर्वत से पश्चिम में लवण समुद्र में 12000 योजन जाने पर 12000 योजन का लम्बा चौड़ा गोल गौतम द्वीप है। जो पद्मवरवेदिका और वनखंड से घिरा हुआ है। उसके बीच में अतिक्रीडावास नामक भवन है, जो सैकड़ों खंभो (स्तंभो) पर बना हुआ है। यहां सुस्थित देव रहता है। गौतम द्वीप से पश्चिम में अन्य लवण समुद्र में किनारें से 12000 योजन दूर सुस्थिता नामक राजधानी है। देवों का जन्म निवास आदि राजधानी में होता है और आवास पर्वत आदि पर समय-समय पर सपरिवार आते जाते बैठते एवं मर्यादित समय रहते हैं।

चन्द्रसूर्यद्वीप- जम्बू द्वीप के सूर्य चन्द्र के द्वीप आभ्यंतर लवणसमुद्र में हैं। आभ्यंतर लवणसमुद्र के चन्द्रसूर्य के द्वीप आभ्यंतर में हैं। और बाह्य के बाहर में है धातकी खंड के चन्द्रसूर्य के द्वीप कालोद समुद्र के भीतरी किनारे पर है और कालोद

समुद्र के चन्द्र सूर्यों के द्वीप बाह्य किनारे पर है। पुष्कर द्वीप और पुष्कर समुद्र के चन्द्र सूर्य के द्वीप पुष्कर समुद्र में है। इस प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिये।

चन्द्र के चन्द्र द्वीप पूर्व दिशा में है और सूर्य के सूर्य द्वीप पश्चिम दिशा में है। ये सभी समुद्री किनारे से 12000 योजन समुद्र में है और 12000 योजन के लम्बे चोड़े, गोल है। इनकी राजधारी अपनी दिशा में उसी नाम के अन्य द्वीप समुद्र में है।

अंत में जिन द्वीप समुद्रों के बाद उस नाम का द्वीप समुद्र आगे न हो तो उस द्वीप के चन्द्रसूर्य के द्वीप अगले समुद्र में है और उस समुद्र के चन्द्रसूर्यों के द्वीप उसी समुद्र में बाह्य वेदिका से 12000 योजन समुद्र में जाने पर है। उनकी राजधानी द्वीपवालों की द्वीप में और समुद्रवालों की समुद्र में है। किनारे से अर्थात् वेदिका से असंख्य असंख्य योजन दूर है। अथवा दोनों की राजधानी उसी समुद्र में है द्वीप की आभ्यंतर किनारे से और समुद्र की बाह्य किनारे से असंख्य योजन दूर समुद्र में है।

उपसंहार– लवण समुद्र का जल ऊंचा उठा हुआ है और वह क्षुभित जल है। अन्य समुद्रों का जल समतल है और अक्षुभित जल है।

लवण समुद्र में स्वाभाविक वर्षा होती है अन्य समुद्रों में नहीं होती वहाँ अपकाय के पुद्गलों का चय उपचय होता है पुराने जीव मरते है नये जन्मते रहते हैं।

लवण समुद्र में किनारे से पानी क्रमशः बढ़ते हुए है अर्थात् 95 योजन जाने पर एक योजन पानी की गहराई बढ़ती है। 95000 योजन जाने पर एक हजार योजन गहराई बढ़ती है। और ऊँचाई भी 700 योजन क्रमशः बढ़ती है। उसके बाद 10,000 योजन क्षेत्र की चौड़ाई में लवण शिखा है जो समभूमि से 16000 योजन ऊंची गई है। सदा शाश्वत इसी अवस्था में रहती है। अन्य सभी समुद्रों में पानी की गहराई एक किनारे से दूसरे किनारें तक सर्वत्र समान 1000 योजन है। गोतीर्थ और दगमाल अन्य समुद्रों में नहीं है।

लवण समुद्र गोतीर्थ संस्थान, नावा संस्थान, अश्वस्कंध संस्थान से संस्थित गोल वलयाकार है। सोलह हजार योजन ऊंचा, हजार योजन गहरा एवं सतरह हजार योजन का सर्वाग्र है।

इतना ऊंचा जल होते हुए भी लोक स्वभाव से तथा मनुष्य देव आदि के पुण्य प्रभाव से एवं धर्माचरणाी जीवों के धर्म प्रभाव से वह जम्बूद्वीप को जल मग्न नहीं करता है।

–अन्य द्वीप समुद्र–

धातकी खंड द्वीप– लवण समुद्र के चौतरफ घिरा हुआ वलयाकार चार लाख योजन के विस्तार वाला धातकी खंड द्वीप है। इसके दो विभाग है पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध। दो मालिक देव है।

1. सुदर्शन 2. प्रियदर्शन। एक पल्योपम की इनकी स्थिति है।

दो विभाग होने से यहां भरतादि क्षेत्र एवं पर्वत नदियां आदि एक नाम के दो दो हैं। 12. सूर्य 12 चन्द्र है। विजय आदि चार द्वार जम्बूद्वीप के द्वारों के समान है। पद्मवरवेदिका और वनखंड से यह द्वीप घिरा हुआ है।

कालोदधि समुद्र– धातकी खंड को घेरे हुए आठ लाख योजन विस्तार वाला, कालोदधि समुद्र है वलयाकार है। चार द्वार हैं। काल-महाकाल नामक दो मालिक देव है। 42 चन्द्र सूर्य प्रकाश करते हैं। इस समुद्र का जल प्राकृतिक जल के स्वभाव और आस्वाद वाला है।

पुष्कर द्वीप– 16 लाख योजन का विस्तार वाला वलयाकार कालोदधि समुद्र को घेरे हुए पुष्कर-द्वीप है पद्मवर वेदिका एवं वनखंड से घिरा हुआ है। पद्म और पुडरीक नामक दो मालिक देव है। पद्म, महापद्म, नामक वृक्षों पर जिनके प्रासादावतंसक हैं। एक पल्योपम की स्थिति है 144 चन्द्र 144 सूर्य इस द्वीप में प्रकाश करते हैं। विजय आदि 4 द्वार है।

इस द्वीप के बीचों बीच वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत है, जिससे इस द्वीप के आभ्यंतर और बाह्य दो विभाग हो गये हैं। आभ्यंतर विभाग में ही भरत आदि क्षेत्र है। बाह्य विभाग में ऐसे क्षेत्र विभाजन नहीं है ये दोनों विभाजित क्षेत्र 8-8लाख योजन विस्तार वाले है। एक विभाग में 72 सूर्य 72 चन्द्र है।

समय क्षेत्र-मनुष्य क्षेत्र- ढाई द्वीप और दो समुद्र पर्यन्त समय क्षेत्र हैं इतने क्षेत्र में सूर्य चन्द्र आदि भ्रमण करतेहैं, दिन रात्रि के विभाजन रूप समय का वर्तन होता है, बोध होता है, इतने क्षेत्र में ही मनुष्यों का जन्म होता है, अतः इसे मनुष्य क्षेत्र कहा गया है। इसमें लवण और कालोद दो समुद्र हैं जम्बूद्वीप और धातकी खंड दो द्वीप हैं एवं मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व तक का अर्द्ध पुष्करद्वीप है।

मनुष्य क्षेत्र में चंद्रादि का ज्ञान- इस मनुष्य क्षेत्र में कुल 132 चन्द्र 132 सूर्य प्रकाश करते है, भ्रमण करते हैं।

एक एक चन्द्र सूर्य युगल के साथ 28 नक्षत्र 88 ग्रह और 66975 कोड़ाकोड़ी तारागण का परिवार होता हैं।

दो चन्द्र दो सूर्य परिवार का एक पिटक होता है, ऐसे 66 पिटक मनुष्य लोक में हैं। चन्द्र की दो और सूर्य की दो यों चन्द्र सूर्य की चार पंक्तियां मनुष्य लोक में है एक पंक्ति में 66-66 संख्या होती है ऐसी पंक्तियां नक्षत्र की 56, ग्रह की 176 होती हैं।

मनुष्य क्षेत्र में चन्द्र सूर्य के ग्रह नक्षत्र योग बदलते रहते हैं। अतः यहां अनवस्थित योग होते हैं

नक्षत्र और ताराओं के अवस्थित मंडल होते हैं। सूर्य चन्द्र दोनों का मंडल परिवर्तन होता रहता हैं किन्तु वे ऊपर नीचे नहीं होते हैं। चन्द्र सूर्य ग्रह-नक्षत्र के चाल विशेष से एवं योग-संयोग से मनुष्यों के सुख दुख का ज्ञान होता हैं।

सूर्य बाहर से आभ्यंतर मंडलों में चलता है तब ताप क्षेत्र क्रमशः बढता जाता है। जब आभ्यंतर मंडल से बाहर के मंडलों की तरफ चलता हैं। तब क्रमशः ताप क्षेत्र घटता रहता हैं।

चन्द्र के साथ चार अंगुल नीचे कृष्ण राहु सदा चलता रहता है, जिससे चन्द्र की कलाओं की हानि वृद्धि होती रहती हैं।

संख्या परिज्ञान- चन्द्रसूर्य जम्बूद्वीप में दो-दो, लवण समुद्र में चार चार और धातकी खंड में 12-12 हैं। आगे कालोदधि आदि किसी भी द्वीप समुद्र के चन्द्र सूर्य की संख्या जानना हो तो उसके पूर्व के अनन्तर द्वीप समुद्र के चन्द्र की संख्या को तिगुना करके उसके पहले के सभी समुद्रों के सभी चन्द्रों की संख्या जोडने पर जो संख्या आयेगी वही उस द्वीप समुद्र के चन्द्रों की या सूर्यो की संख्या होगी यथा-धातकी खड के 12 चन्द्र है तो 12 × 3 = 36 + 4 + 2 = 42 कालोदधि की चन्द्र सूर्य की संख्या है फिर 42 × 3 = 126 + 12 + 4 + 2 = 144 पुष्कर द्वीप के चन्द्र सूर्यो की संख्या है।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर का परिज्ञान- मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र सूर्यों की दिशा विदिशा में आठ पंक्तियाँ है। प्रत्येक पंक्ति में एक सूर्य एक चन्द्र एक सूर्य एक चन्द्र है। प्रत्येक पंक्ति में दूरी 50000 योजन की है। अर्थात् चन्द्र से सूर्य और सूर्य से चन्द्र 50000 योजन दूर है। किन्तु सूर्य से सूर्य एक एक लाख योजन दूर है। चन्द्र के साथ अभिजीत नक्षत्र का स्थिर योग है। और सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र का स्थिर योग्य है क्योंकि वहां चन्द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र और तारे सभी स्थिर है।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर स्वाभाविक वर्षा नहीं होती है। घर गांव आदि नहीं होते, मनुष्यों का गमनागमन स्वाभाविक नहीं होता है। चक्रवर्ति बलदेव वासुदेव साधु साध्वी आदि नहीं होते हैं। वैक्रिय से, विद्या से एवं पर प्रयोग से जा सकते हैं। दिन रात आदि काल ज्ञान नहीं होता है। अग्नि नहीं होती है। ग्रहण, प्रतिचन्द्र, इन्द्रधनुष नहीं होते हैं।

मनुष्य क्षेत्र में सूर्य चन्द्र का ताप क्षेत्र ऊर्ध्व मुखी कदम्ब पुष्प के संस्थान वाला होता है। मनुष्य क्षेत्र के बाहर पक्की ईट के समान ताप क्षेत्र होता है। वहां सदा चन्द्र सूर्य का मिश्रित प्रकाश होता है।

इन्द्रविरह– चन्द्र सूर्य ज्योतिषेन्द्र का विरह उत्कृष्ट 6महीनों का होता है। उतने समय तक 2 - 4 सामानिक देव मिलकर उस रिक्त स्थान की पूर्ति करते हैं। अर्थात् अपने सम्पूर्ण ज्योतिष परिवार का अधिपत्य धारण करते हैं।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर द्वीप समुद्र

बाहर के द्वीप समुद्रों की लम्बाई चौड़ाई संख्याता योजन रूप कही गई है। रूचक द्वीप से लम्बाई, चौड़ाई, परिधि, चन्द्र आदि असंख्य असंख्य कहे गये हैं। द्वार पद्मवरवेदिका वनखंड सभी द्वीप समुद्रों के हैं। दो दो मालिक देव है।

समुद्र	मालिक देव	द्वीप	मालिक देव
6 पुष्कर समुद्र	श्रीधर श्रीप्रभु	7 वरूण (वर) द्वीप	वरूण वरूणप्रभ
8 वरूण (वर) समुद्र	वारूणि, वारूणिकंता	9 क्षीर (वर) द्वीप	पुण्डरीक, पुष्करदंत
10 क्षीरोदसमुद्र	विमल, विमलप्रभ	11 घृत वर द्वीप	कनक, कनकप्रभ
12 घृतोद समुद्र	कांत, सुकांत	13 क्षोद वर द्वीप	सुप्रभ, महाप्रभ
14 क्षोदोद समुद्र	पूर्णभद्र, माणिभद्र	15 नंदीश्वर द्वीप	कैलाश, हरिवाहन
16 नंदीश्वर समुद्र	सुमन, सोमनस	17 अरूण द्वीप	अशोक, वीतशोक
18 अरूण समुद्र	सुभद्र, सुमनभद्र	19 अरूणवर द्वीप	अरूणवरभद्र, अरूणवर महाभद्र
20 अरूण वर समुद्र	अरूणवर, अरूणमहावर		

इसके बाद द्वीप में भद्र और समुद्र में वर लगाकार मालिक देव कहना।

21. अरूणवरावभास द्वीप 22. अरूणवरावभास समुद्र 23. कुंडल द्वीप 24. कुंडलोद समुद्र 25. कुंडलवर द्वीप 26. कुंडलवर समुद्र 27. कुंडलवरावभास द्वीप 28. कुंडलवरावभास समुद्र 29. रूचक द्वीप (असंख्य योजन का विस्तार परिधि कहना) 30. रूचक समुद्र 31. रूचकवर द्वीप 32. रूचकवर समुद्र 33. रूचकवराभस द्वीप 34. रूचकवरावभास समुद्र। जितने भी लोक में शुभ नाम हैं एवं शुभ गंध, शुभ स्पर्श हैं आभरण, वस्त्र, पृथ्वी, रत्न, निधि, द्रह, नदी, पर्वत, क्षेत्र, विजय, कल्प, आवास, कूट नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य आदि हैं उन नाम से त्रिप्रत्यवतार नाम के द्वीप समुद्र है। यथा - हार द्वीप, हार समुद्र हार वर द्वीप, हारवर समुद्र, हारवरावभास द्वीप, हार वरावभास समुद्र यावत सूरवरावभास समुद्र अंत में देव द्वीप, देव समुद्र, नागद्वीप, नागसमुद्र, यक्षद्वीप, यक्षसमुद्र, भूतद्वीप, भूत समुद्र, स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र।

सभी द्वीपों में बावडिया है उस का पानी इक्षुरस स्वभाव वाला है। उत्पात पर्वत हैं वे सभी व्रजमय हैं।

लघु क्षेत्र समास में भी द्वीप समुद्रों का वर्णन मिलता है, परन्तु कुछ भिन्नता है-

1. जम्बू द्वीप	2. लवण समुद्र
3. धातकी खंड	4. कालोदधि समुद्र
5. पुष्कर द्वीप	6. पुष्कर समुद्र
7. वारुणी वरद्वीप	8. वारुणवर समुद्र
9. क्षीरवर द्वीप	10. क्षीरवर समुद्र
11. घृतवर द्वीप	12. घृतवर समुद्र
13. इक्षुवर द्वीप	14. इक्षुवर समुद्र
15. नंदीश्वर द्वीप	16. नंदीश्वर समुद्र (आगे त्रिपत्यावतार है)
17. अरुण द्वीप	18. अरुण समुद्र
19. अरुणवर द्वीप	20. अरुणवर समुद्र
21. अरुणवराविभास द्वीप	22. अरुणवराविभास समुद्र
23. अरुणोपपात द्वीप	24. अरुणोपपपात समुद्र
25. अरुणोपपातवर द्वीप	26. अरुणोपपातवर समुद्र
27. अरुणोपपातवराविभास द्वीप	28. अरुणोपपातवराविभास समुद्र
29. कुंडल द्वीप	30. कुंडल समुद्र
31. कुडलवर द्वीप	32. कुडलवर समुद्र
33. कुंडल वरावभास द्वीप	34. कुंडल वरावभास समुद्र(यहां 10 को 11 या 11 को 10 भी मानते हैं।)
35. शंख द्वीप	36. शंख समुद्र
37. शंख वर द्वीप	38. शंख वर समुद्र
39. शंख वरावभास द्वीप	40. शंख वरावभास समुद्र
41. रुचक द्वीप	42 रुचक समुद्र
43. रुचकवर द्वीप	44. रुचकवर समुद्र
45. रुचक वरावभास द्वीप	46. रुचक वरावभास समुद्र
47. भुजग द्वीप	48. भुजग समुद्र
49. भुजगवर द्वीप	50. भुजगवर समुद्र
51. भुजग वरावभास द्वीप	52. भुजग वरावभास समुद्र
53. कुश द्वीप	54. कुश समुद्र
55. कुश वरद्वीप	56. कुशवर समुद्र
57. कुशवराविभास द्वीप	58. कुशवराविभास समुद्र
59. क्रोंच द्वीप	60. क्रोंच समुद्र
61. क्रोंचवर द्वीप	62. क्रोंच वर समुद्र
63. क्रोंच वरावभास द्वीप	64. क्रोंच वरावभास समुद्र

असंख्याता द्वीप एवं समुद्र

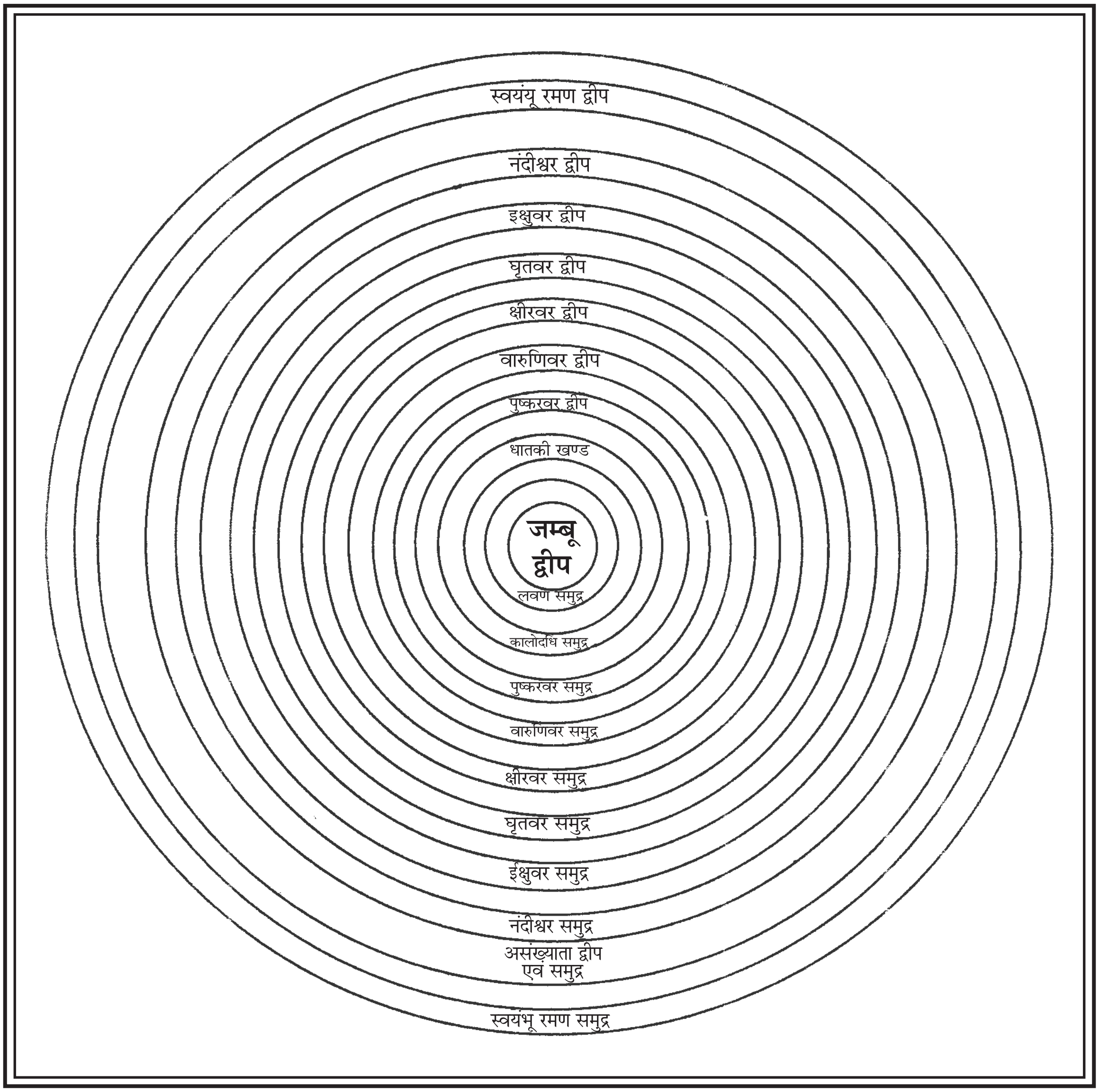

नंदीश्वर द्वीप–

अंजन गिरि– चारो दिशाओं में बीचों बीच में चार अंजन पर्वत हैं। 84000 योजन के ऊंचे हैं। 1000 योजन भूमि में हैं। 85,000 योजन सर्वाग्र है। 10000 योजन का विस्तार है। क्रमशः घटते घटते ऊपर 1000 योजन का विस्तार है। गौपुच्छ संस्थान संस्थित हैं पदमवर वेदिका और वनखंड में घिरा हुआ है। ऊपरी शिखर के मध्य भाग में सिद्धायतन (अथवा मालिक देव का भवन है) है।

सिद्धायतन- 100 योजन लम्बा 50 योजन चौड़ा 72 योजन ऊंचा अनेक खंभो (स्तंभो) पर बना हुआ है। उसके चार द्वार हैं यथा- देवद्वार असुरदार नागद्वार सुपर्ण द्वार। ये द्वार 16 योजन ऊंचे 8 योजन चौड़े हैं। द्वार के तोरण (मुख मंडप) प्रेक्षाघर, स्तूप चैत्यवृक्ष आदि विजया राजधानी के द्वार वर्णन के समान है। महेन्द्र ध्वज, नंदा पुष्करिणी एवं 48000 भद्रासन हैं। 108 जिन पडिमा आदि सूर्याभ देव वर्णन के समान है।

बावडियां- पूर्व दिशा के अंजन पर्वत के चारों दिशाओं में चार नंदापुष्करिणी हैं। यथा- 1. नदुंत्तरा 2. नंदी 3. आनदां 4. नंदीवर्द्धना। ये नंदा पुष्करिणी एक लाख योजन की लंबी चौड़ी 10 योजन ऊंडी हैं। वेदिका एवं वनखंड सहित है।

दधिमुखा- इन बावडियों के बीच में एक दधिमुख पर्वत है। 64000 योजन ऊंचा 10000 योजन लम्बा चौड़ा है। 1000 योजन भूमि में है। शिखर पर सिद्धायतन है।

पूर्व दिशा के अंजन पर्वत के समान ही चारों दिशा के अंजन पर्वतों की चार चार बावडियां और उसमें दधिमुख पर्वत है। उन बावडियों के नाम दक्षिणी अंजन पर्वत के 1. भद्रा 2. विशाला 3. कुमुदा

4. पुंडरिकिणी। पश्चिमी अंजन पर्वत के- 1. नंदीसेना 2. अमोघा 3. गोस्तुभा 4. सुदर्शना। उत्तरी अंजन पर्वत के- 1. विजय 2. वैजयंती 3. जयंति 4. अपराजिता।

यहां पर बहुत से भवनपति व्यंतर ज्योतिषी वैमानिक देव चौमासी संवत्सरी पर्वों के दिन प्रतिपदा के दिन तीर्थंकरों के जन्मादि के समय और अन्य भी अनेक कार्यों से यहां आते हैं, अष्टान्हिका महोत्सव करते हैं एवं सुख पूर्वक यहां आमोद प्रमोद करते हैं।

द्वीपसमुद्र का प्रकीर्ण विषय-

जम्बुद्वीप नाम के द्वीप असंख्य है, लवण समुद्र नाम के समुद्र असंख्य है इस प्रकार धातकी, कालोदधि, यावत् सूर्य नामक द्वीप भी असंख्य है। उसके बाद देव द्वीप एक है फिर क्रमशः 2 नाग 3 यक्ष 4 भूत और 5 स्वयं भूरमण ये पांचों द्वीप और समुद्र एक एक है।

कालोद समुद्र, पुष्कर समुद्र, स्वयंभूरमण समुद्र में स्वाभाविक जल है। लवण, क्षीर, धृत और वरूण इन चार समुद्रों में पानी स्वतंत्र नाम सदृश रस वाला है शेष सभी समुद्रों का जल प्रायः इक्षु रस के सदृश है।

लवण समुद्र कालोदधि समुद्र और स्वयं भूरमण समुद्र में अत्यधिक मच्छ कच्छ है, अन्य समुद्रों में कम है। इनमें क्रमशः मच्छों की 7 तथा 9 एवं $12\frac{1}{2}$ लाख कुलकोड़ि योनी है। लवण में मच्छ कच्छों की उत्कृष्ट 500 योजन की अवगाहना है। कालोदधि आदि में उत्कृष्ट 700 योजन की अवगाहना है। स्वयंभूरमण समुद्र में उत्कृष्ट 1000 योजन की अवगाहना के मच्छ कच्छ है।

तिर्च्छे लोक में असंख्य द्वीप समुद्र है वे अढाई उद्धार सागरोपम के समय तुल्य है। प्रायः सभी जीव यहां पर पृथ्वी काय पने यावत् त्रसकाय पने अनेक बार या अनंतबार उत्पन्न हो चुके हैं।

इंद्रिय विषय- शुभ शब्द रूप गंध रस स्पर्श पुद्गल अशुभ में परिवर्तित हो सकते हैं और अशुभ पुद्गल शुभ में बदल सकते हैं।

कोई भी पुद्गल फेंकने पर पहले उसकी तीव्र गति होती है धीरे उसकी मंदगति हो जाती है। देवता की गति शीध्र से शीघ्रतर होती है। इसलिये वह कोई चीज को फेंक कर पुनः उसे ग्रहण कर पकड़ सकता है।

देव बाहर के पुद्‌गल ग्रहण कर के ही कोई उत्तरवैक्रिय क्रिया को सफल कर सकता है।

ज्योतिष मंडल

क्षेत्र– मेरू पर्वत से 1121 योजन दूर से ज्योतिष मंडल प्रारम्भ होता है और लोकांत से 1111 योजन दूर भीतर तक रहता है। रत्नप्रभा पृथ्वी की समभूमि से 790 योजन दूर ऊंचे ज्योतिष मंडल प्रारंभ होता है। 900 योजन के ऊंचाई पर ज्योतिष मंडल पूर्ण हो जाता है। अर्थात् समभूमि से 900 योजन ऊंचाई के बाद कोई भी सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र ताराओं के विमान नहीं है। इस प्रकार कुल 110 योजन में ज्योतिषी मंडल क्षेत्र है।

समभूमि से सूर्य विमान 800 योजन ऊंचा है, चन्द्र विमान 880 योजन ऊंचा है। नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र सबसे आभ्यंतर चलता है। मूल (वृश्चिक) नक्षत्र सबसे बाह्य चलता है। स्वाति सबसे ऊपर और भरणी सबसे नीचे चलता है। तारागण सूर्य से नीचे, ऊपर तथा समकक्ष भी चलते हैं।

संस्थान और माप– पांचों ज्योतिषियों के विमान अर्द्ध चन्द्रकार है अर्थात् उल्टे रखे अर्द्ध कपित्थ फल के समान है। 56/61 योजन का लम्बा चौड़ा गोल चन्द्र विमान है। 48/61 योजन का सूर्य विमान है। आधा योजन ग्रह का विमान है। एक कोश नक्षत्र विमान और आधा कोश का तारा विमान लम्बा चौड़ा और गोल है। इन विमानों की लंबाई से जाड़ाई आधी है और परिधि साधिक तीन गुणी है।

वाहक देव– चन्द्र विमान को 16000 देव उठाते है। प्रत्येक दिशा में 4000 देव उठाते है। पूर्व में सिंह रूप से, दक्षिण मे हाथी के रूप से, पश्चिम में बैल के रूप से और उत्तर में घोड़े के रूप में वे देव रहते हैं। इसी प्रकार सूर्य विमान को भी 16 हजार देव उठाते है। ग्रह विमान को आठ हजार, नक्षत्र विमान को चार हजार और तारा विमान को कुल दो हजार देव उठाते हैं जिसके प्रत्येक दिशा में 500-500 देव उठाते हैं।

गति ऋद्धि– चन्द्र से सूर्य की चाल तेज है, सूर्य से ग्रह की, ग्रह से नक्षत्र की और नक्षत्र से ताराओं की चाल तेज होती है। तारागण से नक्षत्र ऋद्धिमान होते है। नक्षत्र से ग्रह ऋद्धिवान है, ग्रह से सूर्य ऋद्धिमान है, सूर्य से चन्द्र ऋद्धिमान है। इस तरह ज्योतिषियों में चन्द्र सबसे अधिक ऋद्धिमान है।

तारा विमानों का आपस में अंतर जघन्य 500 धनुष का रहता है। उत्कृष्ट दो कोश का अंतर रहता है। पर्वत कूंट आदि के कारण अंतर जघन्य 266योजन, उत्कृष्ठ 12242 योजन का होता है।

देवता अपनी सुधर्मा सभा में सारे परिवार और ऋद्धि संपदा सहित बैठकर आमोद प्रमोद कर सकते हैं। देविक दैहिक सुखों को उपभोग कर सकते हैं। किन्तु मैथुन सेवन नहीं करते। क्यों कि वहां माणवक चैत्यस्तंभ पर अनेक जिन दाढाएं है जो देवों के अर्चनीय पूजनीय है। चन्द्र देवेन्द्र के 4 अग्रमहिषी होती है एक देवी 4000 देवी विकुर्वित करती है यों कुल 16000 देवी का परिवार त्रुटित कहलाता है।

द्वीप तालिका-

नाम	समुद्र में	आयाम विष्कंभ	परिधि	जल से बाहर द्वीप तरफ	जल से बाहर समुद्र तरफ
गोतम द्वीप	12000 योजन	12000 योजन	33948 योजन साधिक	$88\frac{87}{95} - \frac{1}{2}$	2 कोश
चन्द्रद्वीप लवण में	12000 योजन	12000 योजन	33948 योजन साधिक	"	2 कोश
चन्द्र द्वीप अन्य समुद्र में	12000 योजन	12000 योजन	33948 योजन साधिक	2 कोश	2 कोश

पाताल कलश तालिका-

देव	संख्या	गहराई	मूल में विस्तार	मध्य में विस्तार	ऊपर विस्तार	भित्ती
1. बडे	4	1 लाख यो.	10000 योजन	1 लाख योजन	10 हजार योजन	1000 योजन
2. छोटे	7884	1000 यो.	100 योजन	1000 योजन	100 योजन	10 योजन

आवास पर्वत-

देव	ऊंचाई	गहराई	मूल में	मध्य में	ऊपर	समुद्र में दूरी
वेलन्धर अणुवेलंधर	1721 योजन	430 योजन	1022 योजन	723 योजन	424 योजन	42000 योजन

नोट- वेलन्धर अणुवेलंधर का सभी परिमाण समान है।

ज्योतिषी तालिका-

	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारागण
एक चंद्र परिवार	1	1	88	28	66975 क्रोडाक्रोड
जम्बूद्वीप	2	2	176	56	133950 क्रोडाक्रोड
लवध समुद्र	4	4	352	112	167900 क्रोडाक्रोड
धातकी खंड	12	12	1056	336	803700 क्रोडाक्रोड
कालोदधि	42	42	3696	1178	2812950 क्रोडाक्रोड
पुष्कर द्वीप	144	144	12672	4032	9644400 क्रोडाक्रोड
आभ्यंतर पुष्कर	72	72	6336	2016	4822200 क्रोडाक्रोड
समय क्षेत्र (ढाई द्वीप)	132	132	11616	3656	8844700 क्रोडाक्रोड

	आयाम / विष्कम्भ	मोटाई	वाहक देव
चन्द्र विमान	56 / 61 योजन	28 / 61 योजन	16000
सूर्य विमान	48 / 61 योजन	24 / 61 योजन	16000
ग्रह विमान	1 / 2 योजन	1 / 4 योजन	8000
नक्षत्र विमान	1 / 4 योजन	1 / 2 कोश	4000
तारागण विमान	1 / 2 कोश	500 धनुष	2000

वैमानिक देव-

देवलोक	पृथ्वी पिंड	विमान की ऊंचाई	उत्कृष्ट अवगाहना	विमान वर्ण	अवधि विषय
1-2	2800 योजन	500 योजन	7 हाथ	5	1 नरक
3-4	2600 योजन	600 योजन	6 हाथ	4	2 नरक
5-6	2500 योजन	700 योजन	5 हाथ	3	3 नरक
7-8	2400 योजन	800 योजन	4 हाथ	2	4 नरक
9-12	2300 योजन	900 योजन	2 हाथ	1	5 नरक
ग्रैवेयक	2200 योजन	1000 योजन	2 हाथ	1	6/7 नरक
दोत्रिक/उपरित्रिक					
अणुत्तर विमान	2100 योजन	1100 योजन	1 हाथ	1	त्रसनाल

आधार-

पहला दूसरा देवलोक घनोदधि के आधार से रहे हुए हैं। तीसरा चौथा पांचवां देवलोक घनवाय प्रतिष्ठित है। छट्ठा सातवां आठवां उभय प्रतिष्ठित और उसके ऊपर के सभी देवलोक आकाश प्रतिष्ठित है।

आकार भाव-

1,2,3,4,9,10,11,12वें देवलोक अर्द्ध चन्द्राकार हैं। शेष 5,6,7,8वें देवलोक पूर्ण चंद्राकार है।

आवलिका बद्ध विमान- गोल त्रिकोण और चौकोन क्रम से तीन तरह के होते हैं। प्रकीर्णक विमान विविध आकार के हैं। अणुत्तर विमान में गोल और त्रिकोन दो आकार के विमान है। विमानों का विस्तार असंख्याता योजन एवं संख्याता योजन का है। विमान सुगंधित एवं सुख स्पर्श वाले है। सभी विमान सर्वरत्न मय है।

आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट असंख्य देव उत्पन्न होते हैं। नवें देवलोक से अणुत्तर देव तक जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न होते हैं। देवों का शरीर और श्वासोश्वास सुगंधमय होता है।

अवधिज्ञान से देव ऊपर अपनी ध्वजा तक देखते है। तिरछे असंख्य द्वीप समुद्र तक देखते है। देवों को भूख प्यास नहीं लगती है।

विकुर्वणा- देव संख्याता असंख्याता सरीखे एवं विभिन्न प्रकार के रूपों की विकुर्वणा करके उनसे यथेच्छ कार्य कर सकते हैं। ग्रैवेयक एवं अणुत्तर देवों में शक्ति है किन्तु वैक्रिय नहीं करते। ग्रैवेयक देवों को मनोज्ञ शब्द रूप गंध रस स्पर्श का सुख है। अणुत्तर देवों को अणुत्तर शब्दादि का सुख है।

विभूषा- देव और देवी वस्त्र आभरण रहित भी विभूषित शरीर वाले होते है और वैक्रिय द्वारा विविध आभूषण वस्त्रों से विशेष सुसज्जित शरीर वाले होते हैं। ग्रैवेयक और अणुत्तर देव आभरण वस्त्रों से विशेष सुसज्जित शरीर वाले होते हैं। ग्रैवेयक और अणुत्तर देव आभरण वस्त्र रहित ही विभूषित शरीर वाले होते हैं।

जीवों की उत्पत्ति- सभी जीव देवलोक में पृथ्वीकाय रूप में यावत् त्रसकाय रूप में, देव रूप में, देवी रूप में अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुके है। देवी का दूसरे देवलोक तक ही समझना और देव का ग्रैवेयक तक ही समझना। अणुत्तर विमान में देव रूप में जीव एक या दो बार ही उत्पन्न होता है।

स्थिति आदि- नारकी, देवता की स्थिति जघन्य 10,000 वर्ष उत्कृष्ट 33 सागर। तिर्यक मनुष्य की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट 3 पल्योपम।

नारकी देवता की स्थिति के अनुसार ही कायस्थिति हैं तीर्यंच की कायस्थिति उत्कृष्ट अंनतकाल (वनस्पतिकाल) हैं। मनुष्य की उत्कृष्ट कायस्थिति तीन पल्योपम और अनेक क्रोडपूर्व साधिक हैं।

नारकी देवता मनुष्य का अंतर उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। तीर्यंच का अंतर अनेक सो सागरोपम का हैं।

अल्पबहुत्व- सबसे थोडे मनुष्य, नारकी असंख्य गुणे, उससे देव असंख्य गुणे, उससे तीर्यंच असंख्य गुणे।

यह चार प्रकार के संसारी जीवों का वर्णन पूरा हुआ।

-चौथी प्रतिपत्ति-

पांच प्रकार के संसारी जीव है- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइनिद्रय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, इनकी स्थिति, कायस्थिति, अंतर और अल्प बहुत्व इस प्रकार हैं।

अल्पाबहुत्व- 1. सबसे थोड़ा चौरेन्द्रिय का पर्याप्त 2. पंचेन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक 3. बेइन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक 4. तेइन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक 5. पंचन्द्रिय का अपर्याप्ता असंख्यगुणे 6. चौरेन्द्रिय का अपर्याप्ता विशेषाधिक 7. तेइन्द्रिय का अपर्याप्त विशेषाधिक 8. बेइन्द्रिय का अपर्याप्ता विशेषाधिक 9. एकेन्द्रिय का अपर्याप्त अंनतगुणा 10. सइन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक 11. एकेन्द्रिय पर्याप्त संख्यात गुणा 12. सइन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक 13. सइन्द्रिय विशेषाधिक।

चौथी प्रतिपति-

	स्थिति	**कायस्थिति**	**अंतर**
एकेन्द्रिय	22000 वर्ष	वनस्पतिकाल	दो हजार सागरोपम साधिक संख्याता वर्ष
बेन्द्रिय	12 वर्ष	संख्याताकाल	वनस्पतिकाल
तेन्द्रिय	49 दिन	संख्याताकाल	वनस्पतिकाल
चौरेन्द्रिय	6 महिना	संख्याताकाल	वनस्पतिकाल
पंचेन्द्रिय	33 सागरोपम	1000 सागरोपम साधिक	वनस्पतिकाल
अपर्याप्त	अंतमुहूर्त्त	अंतर्मुहूर्त्त	समुच्चयवत्
एकेन्द्रिय पर्याप्त	अंतमुहूर्त्त कम उपरोक्त स्थिति	संख्याता हजार वर्ष	समुच्चयवत्
बेइन्द्रिय		संख्याता वर्ष	समुच्चयवत्
तेइन्द्रिय		संख्याता दिन	समुच्चयवत्
चौरेन्द्रिय		संख्याता महिना	समुच्चयवत्
पंचेन्द्रिय		अनेक सौ सागरोपम साधिक	समुच्चयवत्

नोट- इनकी जघन्य स्थिति, कायस्थिति और अंतर तीनों अंतर्मुहुर्त्त हैं।

-पांचवी प्रतिपत्ति-

छः प्रकार के संसारी जीव है- 1. पृथ्वीकाय 2. अप्काय (पानी) 3. तेउकाय 4. वायुकाय 5. वनस्पतिकाय 6. त्रसकाय। इनकी जघन्य स्थिति, कायस्थिति और अंतर तीनों अंतर्मुहूर्त का हैं। उत्कृष्ट स्थिति आदि इस प्रकार है-

बादरकाल- असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग की श्रेणियों के प्रदेश तुल्य।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़ा तेउकाय के अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथ्वी काय के अपर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म अपकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्ता संख्यातगुणा, सूक्ष्म पृथ्वीकाय पर्याप्ता विशेषाधिक, सूक्ष्म अपकाय पर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म वायुकाय पर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त संख्यात गुणा सूक्ष्मवनस्पति काय पर्याप्त संख्यात गुणा।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े बादर तेउकाय पर्याप्त, त्रसकाय के पर्याप्त असंख्यगुणा, त्रस काय के अपर्याप्त असंख्यगुणा प्रत्येक वनस्पति पर्याप्त असंख्यगुणा, बादर पृथ्वीकाय पर्याप्त असंख्यगुणा बादर अप्काय पर्याप्त असंख्यगुणा, बादर वायुकाय पर्याप्त असंख्यगुणा, बादर तेउकाय अपर्याप्त असंख्यगुणा, प्रत्येक वनस्पति अपर्याप्ता असंख्यगुणा, बादर पृथ्वी, अप, वायु, अपर्याप्त क्रमशः असंख्यगुणा, बादर वनस्पति पर्याप्त अनंतगुणा, बादर वनस्पति अपर्याप्त असंख्यगुणा।

पांचवी प्रतिपति-

	स्थिति	कायस्थिति	अंतर	अल्पबहुत्व
पृथ्वीकाय	22000 वर्ष	असंख्याता काल	वनस्पतिकाल	
अप्काय	7000 वर्ष	असंख्याता काल	वनस्पतिकाल	
तेउकाय	3 अहोरात्रि	असंख्याता काल	वनस्पतिकाल	
वनस्पतिकाय	10000 वर्ष	अनंताकाल	पृथ्वीकाल	
त्रसकाय	33 सागरोपम	दो हजार सागरोपम	वनस्पतिकाल	
		संख्याता वर्ष साधिक		
पृथ्वीकाय अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	4 विशेषाधिक
अप्काय अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	5 विशेषाधिक
तेउकाय अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	3 विशेषाधिक
वायुकाय अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	6 विशेषाधिक
वनस्पति अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	पृथ्वीकाल	11 अनंतगुणा
त्रय अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	2 असंख्यगुणा
पृथ्वीकाय पर्याप्त	उपरोक्त स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम	संख्याता हजार वर्ष	वनस्पतिकाल	8 विशेषाधिक
अपकाय अपर्याप्त	उपरोक्त स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम	संख्याता हजार वर्ष	वनस्पतिकाल	9 विशेषाधिक
तेउकाय पर्याप्त	उपरोक्त स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम	संख्याता दिन	वनस्पतिकाल	7 विशेषाधिक
वायुकाय पर्याप्त	उपरोक्त स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम	संख्याता हजार वर्ष	वनस्पतिकाल	10 विशेषाधिक
वनस्पति पर्याप्त	उपरोक्त स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम	संख्याता हजार वर्ष	पृथ्वीकाल	12 विशेषाधिक
त्रसकाय पर्याप्त	उपरोक्त स्थिति से अंतर्मुहूर्त कम	अनेक सौ सागरोपम	वनस्पतिकाल	1 सबसे थोडा
सूक्ष्म	अंतर्मुहूर्त	पृथ्वीकाल	बादरकाल	
सुक्ष्म पर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	बादरकाल	
सूक्ष्म अपर्याप्त	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	बादरकाल	
सूक्ष्म चारस्थावर	अंतर्मुहूर्त	पृथ्वीकाल	वनस्पतिकाल	
सूक्ष्म वनस्पति	अंतर्मुहूर्त	पृथ्वीकाल	बादरकाल	

	कायस्थिति	अंतर
बादर	बादर काल	पृथ्वीकाल
पृथ्वी आदि चार	70 कोडाकोडि सागर	वनस्पतिकाल
प्रत्येक वनस्पति	70 कोडाकोडि सागर	वनस्पतिकाल
बादर निगोद	70 कोडाकोडि सागर	पृथ्वीकाल
निगोद	अढाई पुद्गल परावर्तन	पृथ्वीकाल

निगोद– सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद ये दोनों ही शरीर असंख्याता हैं। इन दोनों निगोद के जीव अनंत-अनंत हैं।

सबसे थोड़ा बादर निगोद शरीर, सूक्ष्म निगोद शरीर असंख्य गुणा, बादर निगोद जीव अंनत गुणा, सूक्ष्म निगोद जीव असंख्यगुणा।

–छट्ठी प्रतिपत्ति–

सात प्रकार के संसार के जीव हैं– 1. नारकी 2. तीर्यंच 3. तीर्यंचणी 4. मनुष्य 5. मनुष्यणी 6. देव 7. देवी।

छट्ठी प्रतिपति–

	स्थिति	कायस्थिति	अंतर	अल्पबहुत्व
नरक	33 सागर	33 सागर	वनस्पतिकाल	3 असंख्यगुणा
तिर्यंञ्च	3 पल	वनस्पतिकाल	अनेक सौ सागर	7 अनंतगुणा
तिर्यंञ्चणी	3 पल	3 पल 7 करोड पूर्व	वनस्पतिकाल	4 असंख्यगुणी
मनुष्य	3 पल	3 पल 7 करोड पूर्व	वनस्पतिकाल	2 असंख्यातगुणा
मनुष्यणी	3 पल	3 पल 7 करोड पूर्व	वनस्पतिकाल	1 सबसे थोडी
देव	33 सागर	33 सागर	वनस्पतिकाल	5 असंख्यगुणा
देवी	55 पल	55 पल	वनस्पतिकाल	6 संख्यातगुणी

–सातवीं प्रतिपत्ति–

संसारी जीव आठ प्रकार के हैं यथा– 1. प्रथम समय के नैरयिक 2. अप्रथम समय के नैरयिक इसी प्रकार 3-4. तीर्यंच 5-6. मनुष्य 7-8. देव ।

प्रथम समय वालों की स्थिति एवं कायस्थिति एक समय की हैं। अप्रथम समय वालों की स्थिति कायस्थिति एक समय कम की हैं। अंतर तीर्यंच का अनेक सौ सागर। शेष सभी का वनस्पतिकाल।

1. सबसे थोड़े प्रथम समय के मनुष्य, 2. अपढम समय के मनुष्य असंख्यगुणा, 3. प्रथम समय के नैरयिक असंख्यगुणा, 4. प्रथम समय के देव असंख्यगुणा, 5. प्रथम समय के तीर्यंच असंख्य गुणा, 6. अप्रथम समय के नैरयिक असंख्यगुणा, 7. अप्रथम समय के देव असंख्यगुणा, 8. अप्रथम समय के तीर्यंच अनंतगुणा,।

–आठवीं प्रतिपत्ति–

नव प्रकार के संसारी जीव है– 1. पृथ्वीकाय 2. अपकाय 3. तेउकाय 4. वायुकाय 5. वनस्पतिकाय 6. बेइन्द्रिय 7. तेइन्द्रिय 8. चौरेन्द्रिय 9. पंचेन्द्रिय ।

स्थिति कायस्थिति पूर्ववत् ।

अल्पबहुत्व– 1. सबसे थोड़ा पंचेन्द्रिय 2. चौरेन्द्रिय विशेषाधिक 3. तेइन्द्रिय विशेषाधिक 4. बेइन्द्रिय विशेषाधिक 5. तेउकाय असंख्या गुणा 6. पृथ्वीकाय विशेषाधिक 7. अपकाय विशेषाधिक 8. वायुकाय विशेषाधिक

9. वनस्पतिकाय अनंतगुणा।

–नवमी प्रतिपत्ति–

दस प्रकार के संसार के जीव है यथा– 1. प्रथम समय के एकेन्द्रिय 2. अप्रथम समय के एकेन्द्रिय यावत 10. अप्रथम समय के पंचेन्द्रिय।

इनकी स्थिति कायस्थिति अंतर पूर्ववत।

अल्पबहुत्व– 1. सबसे थोडा प्रथम समय के पंचेन्द्रिय 2. प्रथम समय के चौरेन्द्रिय तेइन्द्रिय बेइन्द्रिय एकेन्द्रिय क्रमशः विशेषाधिक। अप्रथम समय के पूर्ववत्।

दस जीवों की नवमी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। यह संसारी जीवों के प्रकार रूप जीवाजीवाऽभिगम का प्रथम खंड संपूर्ण हुआ। अब समस्त जीवों का वर्णन द्वितीय खंड में किया जाता हैं।

–दूसरा खंड– सर्व जीव प्रतिपत्ति–

पूर्व खंड में संसारी जीवों का नौ प्रतिपत्ति द्वारा कथन हैं। इस द्वितीय खंड में संसारी एवं असंसारी (सिद्ध) जीवों की अपेक्षा नौ प्रतिपत्तियां कही गई हैं। प्रथम प्रतिपत्ति में सब जीवों के दो भेद यावत् नवमी प्रतिपत्ति के सर्व जीवों के दस भेद कहे गये हैं।

–पहली प्रतिपत्ति –

सर्व जीवों के दो भेद–

सर्व जीवो के दो भेद-

जीव	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट	अल्पबहुत्व
सिद्ध संसार	1 2	सादिअनंत अनादि अनंत अनादिसात	- -	अल्प अनंतगुणा
इसी प्रकार सइन्द्रिय-अनान्द्रिय, सकायिक-अकायिक, संयोगी-अयोगी-अयोगी, सलेशी-अलेशी सशरीर-अशरीरी का वर्णन है।				
सवेदी अवेदी	3 2	अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्‌गल एक समय/अंतर्मुहूर्त	एक समय/अंतर्मुहूर्त अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन	अनंतगुणा अल्प
इसी प्रकार सकषायी-अकषायी का वर्णन है।				
ज्ञानी	2	अंतर्मुहूर्त/66 सागर साधिक	देशोन अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन	अल्प
अज्ञानी	3	अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्‌गल	66 सागर साधिक	अनंतगुणा
साकार उपयोग		अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	संख्यातगुणा
अनाकार उपयोग		अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त	अल्प
छद्‌मस्थ आहारक		जघन्य दो समय कम छोटा भव, उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग के प्रदेश तुल्य अर्थात् असंख्यकाल चक्र	एक समय/दो समय	अनाहारक अल्प है, उससे आहारक असंख्यगुणा
केवली आहारक		अंतर्मुहूर्त/देशोनक्रोड पूर्व	तीन समय	
छद्‌मस्थ अणाहारक		एक समय/दो समय	दो समय कम क्षुल्लक भव/असंख्यकाल	
सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक		तीन समय	अंतर्मुहूर्त	
अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक		अंतर्मुहूर्त	-	
सिद्ध अणाहारक	1	सादि अनंत	-	
भाषक		एक समय/अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त/वनस्पतिकाल	अल्प
अभाषक	2	अंतर्मुहूर्त/वनस्पतिकाल	एक समय/अंतर्मुहूर्त	अनन्तगुणा
चरिम	1	अनादि सात	-	अनन्तगुणा
अचरिम	2	सादि अनंत/अनादि अनंत	-	अल्प

-दूसरी प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के तीन भेद-

सर्व जीवो के तीन भेद-

जीव	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट	अल्पबहुत्व
सम्यगदृष्टि	2	अंतर्मुहूर्त/66 सागरोपम	अंतर्मुहूर्त/अर्द्ध पुद्गल परावर्तन	2 अनंतगुणा
मिथ्यादृष्टि	3	अंतर्मुहूर्त/अर्द्ध पुद्गल परावर्तन	अंतर्मुहूर्त/66 सागर	3 अनंतगुणा
मिश्रदृष्टि		अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त/ अर्द्ध पुद्गल परावर्तन	1 अल्प
कायपरित्त		पृथ्वीकाल	वनस्पतिकाल	1 अल्प
संसार परित्त		अंतर्मुहूर्त/अर्द्ध पुद्गल परावर्तन	66 सागर साधिक	अनंतगुणा
काय अपरित		वनस्पतिकाल	पृथ्वीकाल	3 अनंतगुणा
संसार अपरित	2	अनादि अनंत अनादि सात		
नौ परित- नौ अपरित	1	सादि अनंत		2 अनंतगुणा
पर्याप्त		अनेक सौ सागर साधिक	अंतर्मुहूर्त	3 संख्यातागुणा
अपर्याप्त		अंतर्मुहूर्त	अनेक सौ सागर साधिक	2 अनंतगुणा
नौ पर्याप्त- नौ अपर्याप्त	1	सादि अनंत		1 अल्प
सूक्ष्म		पृथ्वीकाल	बादरकाल	3 असंख्यगुणा
बादर		बादरकाल	पृथ्वीकाल	2 अनंतगुणा
नौ सूक्ष्म- नौ बादर	1	सादि अनंत		1 अल्प
सन्नी		अनेक सौ सागर साधिक	वनस्पतिकाल	1 अल्प
असन्नी		वनस्पतिकाल	अनेक सौ सागर साधिक	3 अनंतगुणा
नौ सन्नी- नौ असन्नी	1	सादि अनंत		2 अनंतगुणा
भवी	1	अनादि सांत		3 अनंतगुणा
अभवी	1	अनादि अनंत		1 अल्प
नौ भवी- नौ अभवी	1	सादि अनंत		2 अनंतगुणा
त्रस		दो हजार सागर साधिक	वनस्पतिकाल	1 अल्प
स्थावर		वनस्पतिकाल	दो हजार सागर साधिक	3 अनंतगुणा
नौ त्रस / नौ अत्रस	1	सादि अनंत		2 अनंतगुणा

-तीसरी प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के चार भेद-

जीव	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट	अल्पबहुत्व
मनयोगी		एक समय / अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त / वनस्पतिकाल	1 अल्प
वचनयोगी		एक समय / अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त / वनस्पतिकाल	2 संख्यातगुणा
काययोगी		अंतर्मुहूर्त / वनस्पतिकाल	एक समय / अंतर्मुहूर्त	4 अनंतगुणा
अयोगी	1	सादि अनंत	-	3 अनंतगुणा
स्त्रीवेदी		एक समय / एक सौ दस पल	अंतर्मुहूर्त / वनस्पतिकाल	2 संख्यातगुणा
पुरुषवेदी		अंतर्मुहूर्त / अनेक सौ सागर साधिक	एक समय / वनस्पतिकाल	1 अल्प
नपुंसकवेदी		एक समय / वनस्पतिकाल	अंतर्मुहूर्त / अनेक सौ सागर साधिक	4 अनंतगुणा
अवेदी	2	एक समय / अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्गल ०	2 अनंतगुणा
चक्षुदर्शनी		एक हजार सागरोपम साधिक	वनस्पतिकाल	2 असंख्यातगुणा
अचक्षुदर्शनी	2	अनादि अनंत / अनादि सांत	-	4 अनंतगुणा
अवधि		एक समय / दो छासठ सागर साधिक	वनस्पतिकाल	1 अल्प
केवल दर्शनी	1	सादि अनंत	-	3 अनंतगुणा
संयत		एक समय / देशोन करोड़ पूर्व	अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्गल ०	1 अल्प
असंयत	3	अंतर्मुहूर्त / देशोन अर्द्ध पुद्गल ०	एक समय/देशोन करोड़ पूर्व	4 अनंतगुणा
संयता संयत		अंतर्मुहूर्त / देशोन करोड़ पूर्व	अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्गल ०	2 असंख्यातगुणा
नो संयत नो असंयत (सिद्ध)		सादि अनंत	-	3 असंख्यातगुणा

-चौथी प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के पांच भेद-

सर्व जीवो के पांच भेद-

जीव	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट	अल्पबहुत्व
क्रोधी		अंतर्मुहूर्त/अन्तर्मुहूर्त	एक समय/अंतर्मुहूर्त	3 विशेषाधिक
मानी		अंतर्मुहूर्त/अन्तर्मुहूर्त	एक समय/अंतर्मुहूर्त	2 अनंतगुणा
मायी		अंतर्मुहूर्त/अन्तर्मुहूर्त	एक समय/अंतर्मुहूर्त	4 विशेषाधिक
लोभी		एक समय/अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त/अन्तर्मुहूर्त	4 विशेषाधिक
अकषायी	2	एक समय/अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त/अर्द्ध पुद्गल देशोन	1 अल्प

-पांचवी प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के छः भेद-

सर्व जीवो के छः भेद-

	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट	अल्पबहुत्व
मतिज्ञानी		अंतर्मुहूर्त/66 सागरोपम साधिक	देशोन अर्द्ध पुद्गल	3 विशेषाधिक
श्रुतज्ञानी		अंतर्मुहूर्त/66 सागरोपम साधिक	देशोन अर्द्ध पुद्गल	3 विशेषाधिक
अवधिज्ञानी		एक समय/66 सागरोपम साधिक	देशोन अर्द्ध पुद्गल	2 असंख्यगुणा
मनःपर्यवज्ञानी		एक समय/देशोन क्रोड पूर्व	देशोन अर्द्ध पुद्गल	1 अल्प
केवलज्ञानी	1	सादि अनंत	×	4 अनंतगुणा
अज्ञानी	3	अंतर्मुहूर्त/देशोन अर्द्ध पुद्गल	66 सागर साधिक	5 अनंतगुणा
एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अनिंद्रिय ये 6 भेद हैं। इनकी कायस्थिति पहले कही गई है।				

औदारिक शरीर		दो समय कम छोटाभव/ असंख्यकाल	एक समय/तैतीस सागर	3 असंख्यगुणा
वैक्रिय शरीर		एक समय/33 सागर एवं अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	2 असंख्यगुणा
अहारक शरीरी		अंतर्मुहूर्त/अंतर्मुहूर्त	देशोन अर्द्ध पुद्गल	1 अल्प
तैजस, कार्मण शरीरी	2	अनादि अनंत, अनादि सांत		5 अनंतगुणा
अशरीरी	1	सादि अनंत		4 अनंतगुणा

–छठवीं प्रतिपत्ति –

सर्व जीवों के सात भेद–

सर्व जीवों के सात भेद–

	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट	अल्पबहुत्व
कृष्णलेशी		तैतीस सागर साधिक अंतर्मुहूर्त	तैतीस सागर + अंतर्मुहूर्त	7 विशेषाधिक
नीललेशी		दस सागर + पल का असंख्यातवां भाग	तेतीस सागर + अंतर्मुहूर्त	6 विशेषाधिक
कापोतलेशी		3 सागर + पल का असंख्यातवां भाग	तेतीस सागर + अंतर्मुहूर्त	5 अनंतगुणा
तेजोलेशी		2 सागर + पल का असंख्यातवां भाग	वनस्पतिकाल	3 संख्यातगुणा
पद्मलेशी		10 सागर + अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	2 संख्यातगुणा
शुक्ललेशी		33 सागर + अंतर्मुहूर्त	वनस्पतिकाल	1 अल्प
अलेशी	1	सादि अनंत		4 अनंतगुणा
पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय एवं अकाया ये भी सात भेद हैं। इनकी स्थिति आदि पूर्व वर्णित है।				

-सातवीं प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के आठ भेद-

5 ज्ञान पहले कह दिये है, मतिश्रुत ज्ञानी से विभांगज्ञानी असंख्यगुणा, केवल ज्ञानी अनंतगुणा, मतिश्रुत अज्ञानी दोनों तुल्य अनंतगुणा, अवधि, मनः, पर्यवज्ञान का वर्णन पहले जैसा है।

सर्व जीवो के आठ भेद-

	भंग	कायस्थिति जघन्य / उत्कृष्ट	अंतर जघन्य / उत्कृष्ट
मति अज्ञान	3	देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन	66 सागर
श्रुत अज्ञान		देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन	66 सागर साधिक
विभंग ज्ञान		तैतीस सागर + देशोन क्रोड पूर्व	वनस्पतिकाल

सर्वजीव के 8 भेद- नारकी, देव, देवी, तिर्यंच, तिर्यंचणी, मनुष्य, मनष्यणी, सिद्ध इनकी काय स्थिति पहले वर्णित है।

-आठवीं प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के 9 भेद-

1-4 एकेन्द्रिय यावत चौरेन्द्रिय, 5-8नारकी तीर्यंच, मनुष्य, देव, 9 सिद्ध। इनकी काय स्थिति आदि पहले वर्णित हैं। विशेष यह है कि देव से तीर्यंच पंचेन्द्रिय असंख्यगुणा हैं।

1-8प्रथम समय नैरायिक यावत् अप्रथम समय देव, 9 सिद्ध। कायस्थिति आदि पूर्ववत्।

-नौवी प्रतिपत्ति -

सर्व जीवों के दस भेद-

1-5 पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय, 6-9 बेइन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय 10 सिद्ध

1-8प्रथम समय नैरयिक यावत् अप्रथम समय देव, 9 प्रथम समय सिद्ध 10 अप्रथम समय सिद्ध

इनकी कायस्थिति आदि पूर्ववत् ।

-सर्व जीवों की नौवीं प्रतिपत्ति समाप्त-

।। जीवाजीवाभिगम सूत्र सारांश समाप्त ।।

नोट- विस्तृत जानकारी के लिये युवाचार्य श्री मधुकर मिश्रीमलजी म.सा. एवं श्री अमोलख ऋषि जी म. सा. द्वारा संपादित इस सूत्र का अध्ययन करना चाहिए। अथवा आचार्य श्री मलयगिरि कृत टीका एवं टीकार्थ देखना चाहिए।

परिशिष्ट - 1

''आएसेणं'' -पद प्रयोग पद्वति-

आगम में ''आएस = आदेश'' शब्द प्रयोग अनेक जगह पर हुआ हैं भगवती सूत्र के 24 वें ''गम्मा'' शतक में बीसवें द्वार के दो विकल्प किये हैं। 1. भवादेश 2. कालादेश। भवादेश में भवों की संख्या बताई जाती हैं। और काला देश में स्थिति बताई जाती हैं।

नंदी सूत्र में मति श्रुतज्ञान के लिये कहा गया हैं कि ''आएसेणं सव्वं-दव्वं सव्वखेत्तं सव्वंकालं सव्वंभावं जाणइ पासइ'' श्रुतज्ञानी अपेक्षा से सर्वद्रव्य क्षेत्र आदि को जानता देखता हैं।

जीवाभिगम सूत्र में ''आदेश'' शब्द प्रारम्भ से ही प्रयुक्त हैं। अर्थात् इस सूत्र की प्रारंभिक रचना पद्धति ''आदेश'' शब्द की मौलिकता के साथ ही हैं। इस सूत्र में नौ प्रतिपतियों का विभाजन भी आदेश शब्द प्रयोग के साथ हैं। आगे दूसरी प्रतिपत्ति में स्थिति और कायस्थिति में भी आदेश शब्द के प्रयोग से युक्त कथन हैं।

जीवाभिगम सूत्र की उत्थानिका में यह बताया गया है कि आदेश (एक अपेक्षा से या एक प्रकार से) जीव के दो भेद हैं। एक आदेश से जीव तीन भेद है, यों क्रमशः बढाते हुए एक आदेश से जीव के दस भेद है ऐसा कहा गया हैं। फिर इन नौ प्रतिपत्तियों में उन दो तीन चार आदि भेदों पर स्थिति आदि की विचारणा की गई हैं।

अभिधान राजेन्द्र कोष में भी ''आएस'' शब्द को प्रकारवाची बताया गया हैं। जिसमें प्रज्ञापना सूत्र जीवाभिगम सूत्र आदि से उद्धरण दिये गये है। यथा-

1- एकेन आदेशन- ''आदेश'' शब्द इह प्रकार वाची।

2- ''आएसो त्ति पगारो'' इति वचनात् एकेन प्रकारेण-

एक प्रकारं अधिकृत्य इति भावार्थः।

इस प्रकार आदेश शब्द का अर्थ ''प्रकार'' या ''अपेक्षा'' है। यह स्पष्ट है। जीवाभिगम सूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति में स्त्रीवेद की स्थिति चार प्रकार की और कायस्थिति पांच प्रकार की बताई हैं। फिर चारों पांचों अपेक्षा से स्थितियों का स्पष्टीकरण किया गया हैं।

यहां टीकाकार आचार्य श्री मलयगिरिजी ने स्थिति में अपेक्षा का कथन किया है और कायस्थिति में अपेक्षा कहते कहते मान्यता शब्द के प्रयोग में पहुंच गये हैं। फिर उसे आचार्यों के मतभेद रूप में दिखाने समझाने का प्रयत्न भी किया हैं। किन्तु उन्होंने ही अनेकों स्थलों पर आदेश शब्द का परिभाषार्थ व्याख्यार्थ ''अपेक्षा'' और ''प्रकार वाची'' किया हैं। अतः कायस्थिति के इस प्रसंग में मान्यता कथन एक शाब्दिक (शब्द प्रयोग पद्धति की) स्खलना मात्र हैं। क्यों कि यह आदेश शब्द और इसका विषय इतना स्पष्ट है कि इस शब्द से मान्यता में उलझने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। नंदी, भगवती के उक्त स्थलों से, और जीवाभिगम सूत्र की नव प्रतिपत्तियों के प्रारम्भिक वर्णन से सुस्पष्ट है कि जैनागमों में आदेश शब्द अपेक्षा और प्रकार अर्थ में प्रसिद्ध, प्रचलित है।

मान्यता भेद मतांतर-आदि को दिखाने के लिये आगम में आदेश शब्द का प्रयोग नहीं किया गया हैं। उसके लिये भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया हैं। अर्थात् आगमों में मान्यता भेद के भी अनेक पाठ कई सूत्रों में है किन्तु वहां कहीं पर भी आदेश शब्द का प्रयोग नहीं हैं। वे प्रयोग इस प्रकार हैं-

1. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में वक्षस्कार 2 पृ. 560 में कुलकर के विषय में मान्यता भेद ''अन्ने पढंति'' इस प्रयोग से बताया गया हैं।

2. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में ऋषभकूट के वर्णन में मान्यता भेद ''पाठंतरं'' इस शब्द द्वारा कहा गया हैं।

3. उत्सर्पिणी के चौथे आरे के वर्णन में मतभेद ''अण्णे पढ़ंति'' शब्द से दिखाया हैं।

4. प्रज्ञापना पद 17 में ''केई भणंति'' इस शब्द का प्रयोग किया हैं।

5. व्यवहार सूत्र में ''एगे एवं आहंसु एगे पुण एवं'' ऐसा प्रयोग हैं।

6. भगवतीसूत्र में मान्यता भेद के कथन हेतु ''केइ अपज्जत्तगा पढमं भण्णंति पच्छा पज्जत्तगं'' ऐसा वाक्य प्रयोग किया गया हैं।

7. ज्ञाता सूत्र में देव के उपस्थित होने के वर्णन में ''पाठंतर'' शब्द के द्वारा मान्यता भेद कहा गया हैं।

इस प्रकार मान्यता भेद के कथन आगमों में हैं। इसमें विविध शब्द या वाक्य प्रयोग है किन्तु कहीं भी आदेश शब्द नहीं हैं। तथा इन मान्यता भेदों में दो विकल्प ही है अर्थात् दो से अधिक मान्यता भेद के विकल्प आगम में कहीं भी नहीं हें। जब कि आदेश शब्द नंदी में केवल एक विकल्प के लिये, भगवती में दो विकल्प के लिये और जीवाभिगम में तो 4-5 और 9 विकल्पों तक के लिये प्रयुक्त हैं। अतः अनेक विकल्पों वाले कायस्थिति के प्रसंग में आदेश शब्द को आचार्यों की मान्यता भेद में उलझाना और मानना कदापि उचित नहीं माना जा सकता। टीकाकार का इस प्रकार का कथन भ्रमपूर्ण एवं स्ववचन विरोध दोष युक्त है और आगम विपरीत भी है, यह स्पष्ट समझना चाहिये। अतः कायस्थिति के विकल्पों को मान्यता भेद कहना छादमस्थिक भूल हैं। उसके आग्रह में न पडकर, अपेक्षा विशेष के विकल्प ही समझने चाहिये।

यह संभव भी नहीं हो सकता कि इतनी सरल सी बात में आचार्यों के पांच पांच भिन्न मत हो जाय ओर वे इतने उलझन में पड़ जाय कि उनका समन्वय न कर सकने से सूत्र में पांच मत दिखाने पड़ जाय, यह एक क्लिष्ट और अयुक्त कलपना है। तथा उससे आचार्यों की अल्पज्ञता और हठाग्रहवृत्ति सिद्ध होती हैं। अतः गलत कल्पना में सरल विषय को नहीं उलझाकर आदेश शब्द के प्रचलित प्रसिद्ध और वास्तविक अर्थ के द्वारा ही विषय को समझना चाहिये। और वैसे समझने में किसी प्रकार की सैद्धांतिक बाधा भी उत्पन्न नहीं होती हैं।

सार– आदेश शब्द से अनेक विकल्प, प्रकार और अपेक्षा अर्थ करना चाहिये। मान्यता भेद नहीं करना चाहिये। आगमों में मान्यता भेद के लिये अन्य शब्दों का प्रयोग होता हें। आदेश शब्द का प्रयोग मान्यता भेद के लिये नहीं होता हैं। आदेश शब्द से मान्यता भेद में उलझना एक छाद्मस्थिक भूल है एवं आगम विपरीत चिंतन प्ररूपण हैं। विद्वान आचार्यों से भी छाद्मस्थिक भूलें होना संभव है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है एवं हिचकने की भी आवश्यकता नहीं हैं। आगे परिशिष्ट 4 में इसे स्पष्ट किया गया हैं

परिशिष्ट-2

एक समय की कायस्थिति
(आगमिक विचारणा)

भगवती सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, जीवाभिगम सूत्र में कई भावों परिणामों (स्थानों) की एक समय की कायस्थिति कही गई हैं। व्याख्याकारों ने उसे समझाने के लिए, कहीं मरने की अपेक्षा घटित किया, कहीं परिणामों के परिवर्तन होने का स्पष्टीकरण किया हैं। कहीं ''ही'' लगाया है तो कहीं ''भी'' लगाया हैं। किसी भी तरह से आगम कथन को घटित कर समझाने का यत्न किया हैं। फिर भी यह मानना ही होगा कि किसी भी तरह समझा जाय तो भी एक समय का उदयभाव और एक समय का वह परिणाम अवश्य ही होता है। एक समय के बाद दूसरा भाव और दूसरा उदय भी अवश्य होता ही हैं। अर्थात् किसी भी तरह मानने पर उस प्रकृति का एक समय का उदय स्वभाव और उस भाव का एक समय से भावांतर में परिवर्तन होने का स्वभाव तो मानना ही होगा।

यथा-स्त्रीवेद की एक समय की कायस्थिति यदि मरने की अपेक्षा समझी गई तो भी एक समय का स्त्रीवेद उदय स्वभाव तो मानना ही पडेगा और स्त्री परिणाम भाव का एक समय में परिवर्तित होना भी मानना पड़ेगा।

अतः आगम में जिन भावों की एक समय की कायस्थिति कही है उसके सम्बन्ध में ऐसा एकांत नहीं मानना चाहिये कि कोई भी परिणाम एक समय में स्वाभाविक परिवर्तन होते ही नही हैं, केवल मरने से ही एक समय की स्थितिएं बनती है । क्योंकि ऐसा मानने में आगम का कोई प्रमाण नहीं है और व्याख्याकारों का भी ऐसा एकांत आशय नहीं हैं। इसके लिये कुछ प्रमाण दिये जा रहे है, उस पर अनुप्रेक्षण करना चाहिये।

1. भगवती सूत्र शतक 25 में पुलाक आदि सभी नियंठों में हायमान, वर्धमान और अवस्थित परिणामों की स्थिति कही हैं। उसमें जघन्य एक समय की स्थिति कही गई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि परिणामों का एक समय का होना और परिवर्तित होना आगमकार को इष्ट हैं। पुलाक निर्ग्रन्थ में भी एक समय में परिणाम परिवर्तित होना कहा हैं। और इस निर्ग्रन्थ अवस्था में काल करना भी नहीं माना गया हैं। इसलिये टीकाकार श्री अभयदेवसूरी जी ने भगवती सूत्र के 25 वें शतक में स्पष्ट किया है कि् ''कषाय आदि से बाधित होने पर पुलाक निर्ग्रन्थ के इन हायमान वर्धमान अवस्थित परिणामों के एक समय की स्थिति बनती है।

सभी निर्ग्रन्थों के अवस्थित परिणाम की उत्कृष्ट स्थिति भी सात समय की कही गई हैं। बकुश आदि निर्ग्रन्थों के समय की स्थिति को समझाते समय टीकाकार ने मरण से समझाने में ''भी'' शब्द का प्रयोग किया हैं। अर्थात् मरने से भी एक समय की स्थिति घटित होती हैं। यहां लगाये गये ''भी'' शब्द से भी स्पष्ट होता है कि एकांत मरने से ही एक समय की स्थिति मानना टीकाकार को अभिमत नहीं हैं।

मरण की अपेक्षा समझाने के आग्रह में श्रेणी अवस्था रूप अप्रमत्त दशा में वर्तमान श्रमण का स्त्री वेद के परिणामों में जाना या नपुंसकता के परिणामों में जाना एवं श्रमणी का पुरूषवेद के परिणामों में जाना मानना पडता है, यह अप्रमत्त दशा में विपरीत लिंग के परिणामों का मानना भी उपयुक्त नहीं लगता हें।

छट्ठे गुणस्थान वर्त्ती प्रमत्त श्रमण के भी ऐसे अन्य लिंगी के परिणामों का होना एक विचित्र अवस्था है जो उदय की प्रबलता से संभव हैं। किन्तु ऐसी विचित्र अवस्था (स्तर) अप्रमत्त और श्रेणी में वर्तमान उच्च दशा के श्रमण में मानना अत्यंत विचारणीय हैं। और ऐसे विचित्र परिणामों के अवस्था (स्तर) में मरकर अणुत्तर आदि देवों में उत्पन्न होना मानना और भी विचारणीय हैं।

अतः एक समय की स्थितियों को स्वभाव से परिणाम से मानने में हिचकना नहीं चाहिये और मरते समय ही होने का एकांत आग्रह नहीं करना चाहिये।

2. सामान्य रूपेण विशेष रूपेण आदिष्टस्य जीवस्य यद अव्यवछेदेन भवनं सा कायस्थिति।

3. सर्व विरतिस्तु सर्व सावद्यं अहं न करोमि इत्येवं रूपा, ततस्तत् प्रतिपत्ति उपयोगः एक सामयिकोपि भवति।

4. आह च मूलटीकाकार- ''पढम समये काय जोगेण गहियाणं भासा दव्वाणं, बिइयसमये वइ जोगेण निसग्गं काउण, उवरमंतस्स वा एक समयो लब्भई। मन योग के लिये भी तीसरे समय- ''ऊपरमते प्रियते वा तदा एक समयं मनोयोगी लभ्यते।

यहां परिणामों के स्वाभाविक परिवर्तित होने पर भी एक समय की स्थिति होना टीकाकार ने समझाया हैं।

5. अवधि ज्ञान की एक समय की कायस्थिति के लिये -''च्यवनेन, मरणेन, अन्यथा वा अनंतर समये प्रतिपतति तदा अवधिज्ञानस्य एकसमयता भवति। यहां भी परिणामों के परिवर्तित हो जाने से एक समय में अवधिज्ञान का नष्ट होना स्वीकार किया हैं एवं मृत्यु की अपेक्षा भी।

6. अवधिज्ञान के समान ही विभंगज्ञान के एक समय को भी टीका में सिद्ध किया हैं।

7. जीवाभिगम टीका पृष्ट (पत्र) 60 में क्षयोपशम की विचित्रता से भी एक समय की स्थिति मानी हैं-सर्व विरति परिणामस्य तदावरण कर्म क्षयोपशम वैचित्र्यतः समयमेकं संभवात् ।

8. प्रज्ञापना टीका में अवधिज्ञान का एक समय- ''मरणतः प्रतिपादेन, मिथ्यात्वं गमनतो वा''

जीवाभिगम टीका पृष्ट 460 में विभंग ज्ञान की एक समय के लिये ''सम्यक्त्व लाभतो ज्ञान भावेन'' ऐसा किया हैं। इन दोनों व्याख्याओं से भी स्पष्ट है कि मरने के बिना भी मिथ्यात्व या समकित आने पर भी परिणाम एक समय के हो सकते हैं। जिससे वह ज्ञान एक समय रहता है।

9. जीवाभिगम टीका पृष्ट 452 अवधिदर्शन की एक समय की स्थिति- मरण से और अध्यवसाय परिवर्तन से यों दोनों तरह से समझाई हैं ।

10. अवधि दर्शन का अतंर एक समय - ''अनंतर समये पुनस्तद् लाभः'' अर्थात् बीच के परिणाम एक समय स्वाभाविक रहेगे यह स्पष्ट हैं।

सार- 1. संयम अवस्था में बिना काल किये ही कई प्रकृत्तियों का स्वाभाविक एक समय का उदय हो सकता हैं। 2. कई परिणाम एक समय की स्थिति के अनंतर परिवर्तित हो सकते हें। 3. प्रकृतियों का क्षयोपशम काल एक समय का हो सकता हैं। 4. और काल करने पर भी कई अवस्थाएं एक समय की हो सकती हैं। 5. साथ ही कई भाव केवल अंतर्मुहुर्त्त के ही स्वाभाविक होते हैं। वे मरने की अपेक्षा भी एक समय के नहीं होते। यथा- पुरूषवेद, काययोग, दोनो उपयोग, तीनों कषाय, 6. लेश्या आदि जघन्य अंतर्मुहुर्त्त ही होना आगमकार को ईष्ट हैं। 6. असंयत अवस्था में एक समय के परिणाम नहीं होते।

7. वहां मरने की अपेक्षा से एक समय की स्थिति बनती हैं। 8. अतः धर्माचरणी तीनों वेद के एक समय की कायस्थिति अंतर आदि को स्वाभाविक परिणामों के परिवर्तन से मान्य करना सुसंगत होता हैं।

9. संयम अवस्था के भावों की किसी भी एक समय की स्थिति के लिये मरणकाल का ही एकांत आग्रह नहीं रखना चाहिये।

किसी भी स्थिति के एकांत रूप से मरण की अपेक्षा समझाने का प्रयत्न करने से व्याख्याकारों के सामने उलझन सी पैदा हुई ऐसा ज्ञात होता है एवं इन जघन्य स्थितियों को समझाने के प्रयत्न में कहीं आगम से अन्यथा तत्त्व का कथन भी हुआ है और

कहीं मूलपाठ को शुद्ध अशुद्ध या पाठांतर मानने की स्थितिएं भी उत्पन्न हुई हैं। अतः एकांत में न जाते हुए आगम आशय को सरल विधि से ही समझने का प्रयत्न करना चाहिये एवं अनेकांतिक बुद्धि से चिंतन करना चाहिये।

परिशिष्ट-3

'पुहत्त'' शब्द विचारणा

जीवाभिगम सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, एवं भगवती सूत्र में ''पुहत्त'' शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता हैं।

जब कहीं भी अनेक संख्या को, अनेक संख्या के विकल्पों को, एक शब्द में कहना होता तब आगमकार ''पुहत्त'' शब्द का प्रयोग करते। ''पुहत्त'' शब्द का संस्कृत रूपांतर ''पृथकत्व'' बनता है जिसका शब्दार्थ होता हैं अलग-अलग, भिन्न-भिन्न, विभाग रूप अथवा एकत्व का प्रतिपक्ष- अनेकत्व = अनेक।

टीकाकार एवं कोषकारों ने ''पुहत्त'' का अर्थ ''अनेक'' किया हैं।

(1) जीवाभिगम टीका पृष्ट 119 मे ''पुहत्त पृथक्त्व- पृथक् शब्दों बहुवाची'' ।

(2) कर्म प्रकृति संग्रहणी चूर्णीकार -''पुहत्त'' शब्दों बहुवाची, इति प्रभूतानि रूपाणि विकुर्वितं प्रभवः? उत्तर- पृथक्तवमपि प्रभवों विकुर्वितुं । अनेक (सेकडों हजारों)रूपों की विकुर्वणा करने में भी समर्थ होता हैं। भगवती सूत्र श. 12 उद्दे. 9।

(3) ''एकत्त- पुहत्तिया भंगा भाणियव्वा'' एक वचन के और बहुवचन के भंग कह लेने चाहिये।

(4) ''एगत्तेण पुहुत्तेण खंधा य परमाणु य'' पुद्‌गलों के एकत्रित होने पर स्कंध बनता है और अलग अलग विभाग होने से परमाणु अवस्था बन जाती हैं।

(5) प्रज्ञापना में देवों के आहार-श्वासोश्वास के दिन कहने में भी पुहुत्त शब्द का प्रयोग किया गया हैं। पल के आठवें भाग की स्थिति वालों से लेकर देशोन दो पल तक वालों के लिये भी यही एक शब्द प्रयोग किया हैं फिर भी उन सभी स्थिति वालों के श्वास के दिनों में और आहार के दिनों में फर्क हैं। क्योकिं स्थिति में फर्क है ।

(6) भगवती सूत्र शतक 22 में अनेक फलों और बीजों की अवगाहना भी ''पुहत्त'' शब्द से कही गई है अर्थात् अंगुल पुहुत्त, विहत्थी पुहुत्त, रयणी पुहुत्त आदि।

(7) तीर्यंच पंचेन्द्रिय की अवगाहना कहने में, मनुष्य की अवगाहना कहने में, कई जगह कायस्थिति कहने में ''पुहुत्त'' शब्द का प्रयोग किया गया हैं। वहां धणु, धणु-पुहुत्त, के बाद गाउ, गाउ,-पुहुत्त कहा गया है जिससे दो से लेकर 1999 धनुष्य का ग्रहण भी ''पुहुत'' शब्द से किया गया हैं।

(8) इस प्रकार प्रज्ञापना, भगवती, जीवाभिगम में ''पुहुत्त'' शब्द से कहीं दो, कहीं सात, कही नौ, कहीं 12, कहीं 99, कहीं 199, कहीं 1999 कहीं संख्याता, कहीं अनंत तक का ग्रहण भी 'पुहुत'' शब्द से किया गया हैं इस प्रकार 'पुहुत' शब्द का विशाल अर्थ है और ऐसे विशाल अर्थ को कहने वाला हिन्दी शब्द ''अनेक'' या ''बहुत'' हैं।

अतः आगम में प्रयुक्त ''धणु पुहुत्त'' गाउ पुहुत्त, कोडी पुहुत्त, सय पुहुत्त, सहस्स पुहुत्त, अगुंल पुहुत्त, रयणि पुहुत्त विहत्थी पुहुत्त, मास पुहुत्त, वास मुहुत्त कोडीसय पुहुत्त कोडी सहस्स पुहुत्त आदि शब्दों को हिन्दी भाषा में क्रमशः अनेक धनुष, अनेक गाऊ, अनेक क्रोड़, अनेक सौ, अनेक हजार, अनेक अंगुल, अनेक हाथ, अनेक बेंत, अनेक वर्ष, अनेक मास, अनेक सौ करोड़, अनेक हजार करोड़, इन शब्दों में कहना चाहिये।

थोकड़ों की प्रचलित भाषा में कभी भूल से एवं भ्रम से ''अनेक'' के स्थान पर प्रत्येक शब्द का प्रयोग कर दिया गया है जो रूढ होकर चला आ रहा है अर्थात् प्रत्येक धनुष्य, प्रत्येक गाउ, प्रत्येक करोड़, प्रत्येक हजार करोड़ प्रत्येक सौ करोड़ आदि एवं उस प्रत्येक शब्द का अर्थ भी सीमित मान लिया गया है कि दो से नौ तक ।

वास्तव में यह शब्द प्रयोग भी मूढता पूर्ण है और उसका माना गया वह अर्थ भी आग्रह पूर्ण और आगम से असंगत हैं। आगमिक शब्द ''पुहुत्त'' है उसका संस्कृत शब्द पृथकत्व है और हिन्दी भाषा का शब्द ''अनेक'' है और उसका आगम आशय वाला अर्थ विशाल है जब जहां जो घटित हो वही अनिर्दिष्ट संख्या के अर्थ को कहने वाला यह शब्द हैं। इस एक ही शब्द से अनेक संख्या एक साथ भी कह दी जाती है। यथा- अनेक मास वाले मनुष्य अमुक देवलोक तक जाते है और अनेक वर्ष वाले अमुक देवलोकों में जाते हैं। तो इस प्रासंगिक शब्द में 2 महीने और दो वर्ष वाले भी ग्रहित है और आगे अनेक महीनों और अनेक वर्ष वालों का भी ग्रहण हैं।

चौथे आरे के मनुष्य की अवगाहना जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में अनेक धनुष कही है तो वहां प्रयुक्त ''पुहुत्त'' शब्द से एक साथ 2 धनुष वाले भी ग्रहित है और 500 धनुष वाले भी ग्रहित हैं।

सार - आगमोक्त इस ''पुहुत्त'' शब्द को थोकड़ों में ''प्रत्येक'' शब्द से कहना सर्वथा अनुपयुक्त है, गलत हैं, मूढता पूर्ण मात्र हैं अतः उक्त प्रमाण चर्चा से चिंतन मनन कर सही पद्धति रूप ''अनेक'' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। यथा अनेक करोड, अनेक सौ करोड़, अनेक हजार करोड़ इत्यादि प्रयोग करने चाहिये। किंतु प्रत्येक करोड़, प्रत्येक सौ करोड़, प्रत्येक हजार करोड़, प्रत्येक मास, प्रत्येक वर्ष ऐसा नहीं कहना चाहिये। तथा जघन्य दो करोड़ उत्कृष्ट नौ करोड, जघन्य दो हजार करोड़ उत्कृष्ट नौ हजार करोड़, ऐसा निश्चित संख्या खोल कर भी नहीं बोलना चाहिये। क्योंकि जहां आगम में संख्या नहीं खोल कर ''पुहुत्त'' शब्द कहा हैं वहां बिना आगमाधार के ऐसी संख्या निश्चित नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से कई दोष उत्पन्न होते है, आगम विपरीत कथन होते है तथा कई जगह उलझने खड़ी होती हैं, जिसे कल्पनाओं से हल करना पड़ता हैं। अतः पहले से ही सही निराबाध सुसंगत शब्द का प्रयोग एवं अर्थ का प्ररूपण करना चाहिये।

परिशिष्ट-4

छद्मस्थों से भूलें
(एक अनुप्रेक्षण)

अनेकांत सिद्धांत युक्त वीतराग मार्ग से एकांतवाद का रोग दूर ही रहता हैं। एकांतवाद उलझनों का जनक है जबकि अनेकांतवाद उलझनों का शोधक हैं।

सर्वज्ञता के पूर्व की अवस्था के सामान्य अथवा विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थ अपने कई आदर्श गुणों से सर्वज्ञ तुल्य ''जिन नहीं पण सरीखा, केवली नहीं पण केवली सरीखा'' ऐसी उपमा द्वारा उपमित किये जा सकते हैं। वैसे सर्वोच्च छद्मस्थ ज्ञानी भी भूल के पात्र हो सकते हैं एवं सरलता पूर्वक शुद्धि कर सकते हैं। इसके लिये आगम उपासक दशा सूत्र में आनंद श्रावक और गौतम गणधर का घटित घटनाचक्र आज भी उपलब्ध हैं।

अतः कोई कितना भी विद्वान छद्मस्थ है, जिन शासन में उसके लिये व्यक्ति- महत्व देकर अंधानुकरण नहीं किया जा सकता हैं। छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र हैं। अर्थात् उनसे भूल होना संभव है, असंभव नहीं हैं।

भगवान महावीर के दीर्घकाल के इस शासन में कई महापुरूषों ने आगम सेवा की है, अपना जीवन आगम सेवा में अर्पित भी किया हैं। अनेकों ने अंगबाह्य आगमों की रचना की है और अनेकों आचार्यों ने उपलब्ध आगमों की विस्तृत व्याख्या भी की हैं। सर्वज्ञता के अभाव में छोटी बडी भूलें उनसे भी हुई हैं। जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये कुछ तत्त्व यहां प्रस्तुत किये जा रहे है, जिन्हें जानकर यह अनुभव अनुप्रेक्षण करना चाहिये कि किसी भी छद्मस्थ आचार्य का कथन यदि आगम सापेक्ष नहीं है तो उसके आग्रह में नहीं पड़ना चाहिये। किसी भी आगम तत्त्व से उनका कथन असंगत या विपरीत हो तो उस पर गंभीरता पूर्वक विचारणा करके सही निर्णय लेना चाहिये, किन्तु ''बाबा वाक्यं प्रमाणं'' की उक्ति को चरितार्थ नहीं करना चाहिये।

1. जीवाभिगम टीका एंव प्रज्ञापना टीका में अवधि दर्शन की कायस्थिति समझाने में विभंग ज्ञान की कायस्थिति का उल्लंघन कर दिया गया हैं। नरक में उपयोग लाने ले जाने के सिद्धांत का भी उल्लंघन हुआ हैं। इस प्रकार एक तत्त्व को समझाने में दो तीन सूत्रों से विपरीत कथन हुआ है क्योकि कायस्थिति जीवाभिगम एवं प्रज्ञापना से विपरीत हुई और उपयोग का भगवती सूत्र से विपरीत कथन हुआ हैं।

2. अनेक प्रमाणों से ''आएसेणं'' का अपेक्षा से यह प्रमाणित और शुद्ध है फिर भी स्त्री वेद की कायस्थिति में पांच अपेक्षा को पांच मतांतर कह दिया गया और मत के प्ररूपक अलग अलग वादी मान लिये गये। उनमें आपस में सामाधान नहीं होना मानकर सूत्र में वे मतभेद लिखे गये, ऐसा मान लिया गया। जबकि जीवाभिगम सूत्र कीआदेश कहने की वह पद्वति ही है जिसका आलंबन स्पष्ट रूप से प्रारंभ में ही लिया गया हैं।

3. टीका में देवलोकों की अवगाहना बताने में आगम से विपरीत कथन कर दिया गया हैं।

4. अपर्याप्त की कायस्थिति का विवेचन करने में भगवती सूत्र के गम्माशतक से विपरीत कथन हैं।

5. प्रज्ञानपा पद 12 एवं 21 में वायुकाय के पर्याप्तों के संख्यातवें भाग वालों को वैक्रिय करना कह दिया गया एवं उक्तं च कहकर उसे अन्य गाथा द्वारा सिद्ध कर दिया है जबकि आगम में असंख्यातवें भाग कहा गया हैं।

6. प्रज्ञानपा पद 21 की व्याख्या में सूर्य की किरणों को अवलंबन कर आकाश में गमन करना कह दिया हैं।

7. प्रज्ञानपा पद 23 टीका में बकुल नामक वनस्पति के पांच भावेंद्रिय होने का कथन कर दिया हैं। जब कि उसी सूत्र के 15 वें पद में एकेन्द्रिय के एक द्रव्येन्द्रिय और एक ही भावेन्द्रिय होना स्पष्ट कहा गया है। ऐसी विपरीत प्ररूपणा के लिये भी फिर यह कहा गया है कि- आगमेपि प्रोच्यंते। जब कि किसी भी आगम में ऐसा कथन नहीं हैं।

8. अंतर द्वीपों का वर्णन आगम जीवाभिगम में स्पष्ट है कि जम्बूद्वीप की जगती से दूर जल के मध्य वे सभी द्वीप स्वतंत्र आये हुए है फिर भी जगती से एक दाढा निकलना बताया और उस दाढा पर उन द्वीपों का होना कहा हैं।

9. देव नरक का अंतर्मुहुर्त्त का अंतर मनुष्य के भव से समझाया है, जब कि देव के साथ मनुष्य का अंतर्मुहुर्त्त का सम्बन्ध ही नहीं हैं। अनेक मास या अनेक वर्ष के बिना मनुष्य देवलोक में नहीं जाता है, यह भगवती सूत्र के गम्मा शतक से स्पष्ट है।

10. नौवें से बारहवें देवलोकों के अनेक वर्ष के अंतर को समझाते हुए कह दिया कि यहां संयम ग्रहण के बिना कोई जीव उत्पन्न नहीं होता जब कि 12 वें देवलोक तक श्रावक, मिथ्यादृष्टि और गोशालकपंथी भी जा सकते हैं।

11. देवलोकों में जीव, पांच स्थावर रूप में अनंतवार उत्पन्न हुए है यह कथन सूक्ष्म स्थावर की मुख्यता से है फिर भी देवलोकों में बादर तेउकाय पने उत्पन्न होना कह दिया जब कि बादर तेउकाय अढ़ाई द्वीप में ही होती हैं।

12. देवों के जघन्य अंतर के विषय में कहीं ये गाथा उद्धृत कर आगम विपरीत कथन कर दिया कि आठवें देवलोक तक 9 दिन की उम्र वाला मनुष्य उत्पन्न होवें और दूसरा देवलोक तक अंतर्मुहुर्त्त की उम्र वाला मनुष्य उत्पन्न हो सकता है, ऐसा प्ररूपण किया हैं। जबकि मनुष्य तो अनेक मास या अनेक वर्ष के बिना देवलोक में जाता ही नहीं हें। अंतर्मुहुर्त्त और नौ दिन का प्रश्न ही क्या ?

13. पुरूष वेद की कायस्थिति प्रज्ञापना जीवाभिगम में जघन्य अंतर्मुहुर्त की कही है फिर भी कह दिया कि एक समय होनी चाहिये। जबकि आगम से विपरीत कथन हो रहा हैं।

14. अकषायी की कायस्थिति एक समय की सूत्रों में स्पष्ट है फिर भी विवेचन में एक समय की स्थिति का पाठ सामने होते हुए भी अंतर्मुहुर्त्त के वृद्ववाद को सही कह दिया ।

15. पंचेन्द्रिय की कायस्थिति 1000 सागरोपम साधिक सूत्रों में कही गई है एवं परंपरा में प्रसिद्ध हैं। टीकाकार स्वयं ने पन्नवणा पद 18 में उसकी टीका की है जीवाभिगम पडिवत्ती 4 में भी 1000 सागरोपम की टीका की हैं। फिर भी जीवाभिगम सर्व जीव पडिवत्ति 9 में उन्हीं टीकाकार ने बिना कुछ निर्देश चर्चा के अनेक सौ सागर की टीका कर दी हैं।

16. जीवाभिगम सूत्र की नौ पडिवत्तियों के प्रारम्भिक पाठ की व्याख्या में आदेश का 'अपेक्षा' अर्थ करते-करते वादी भी कहना शुरू तो किया किन्तु एकांत ''वादी'' कहने में नहीं पहुंचे। किन्तु उसके बाद आगे पडिवत्ती दूसरी में स्त्री वेदी की कायस्थिति के पांच प्रकार में वादी कहना प्रारम्भ किया और फिर एकांत ''वादी'' के आग्रह युक्त प्ररूपण वाला विवेचन कर दिया और पांच मतभेद होना बता दिया, जो कि पूर्ण रूप से असंगत हैं। देखो-परिशिष्ट नं. 3 इसी सारांश में ।

17. जीवाभिगम प्रतिपत्ति 2 में 5 वें आदेश के विवेचन में- 1. स्त्री के लगातार 9 भव होना बता दिया 2. जलचर, उरपर, भुजपर के आठभव का निषेध कर उत्कृष्ट सात भव होना ही कह दिया। 3. आठवां भव एकांत रूप से जुगलिये का ही होता है, ऐसा प्ररूपण कर दिया 4. पर्याप्त के लगातार आठ भव ही होना कह दिया। ये कथन आगम सम्मत नहीं है और कोई परस्पर भी असंगत हैं क्योंकि भगवती में जलचर उरपरिसर्प आदि के आठ भव का कालादेश कहा गया हैं। पर्याप्त के लगातार आठ से ज्यादा भव हो सकते है। मनुष्य के लगातार आठ भव करने के बाद वह देवलोक में जा सकता हैं इस तरह पर्याप्त के आठ से ज्यादा भव हो जाते हैं। तभी पर्याप्ता की कायस्थिति अनेक सौ सागर की होती हैं। दो 66 सागर अवधि दर्शन की स्थिति को सही रूप में समझाने के लिये भी कम से कम 10 भव पर्याप्त के बताये जाते हैं।

18. धर्माचरणी स्त्री, पुरूष और नपुंसक की स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की आगम में कही गई उसे अवास्तविक कह दिया।

19. पन्नवणा पद 21 की टीका में विद्याचारण के लिये कहा कि यह संयमवान नहीं होता हैं। जबकि आगमानुसार यह लब्धि संयमवान को ही होती हैं।

20. पुरूष वेद की अंतर्मुहुर्त्त की कायस्थिति को अवास्तविक कह दिया और कहा कि वेश परिवर्तन की अपेक्षा अंतर्मुहुर्त्त है वास्तव में भाव परिणाम की अपेक्षा तो एक समय की ही जघन्यकाय स्थिति होती हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आगमकार एक ही सूत्र के एक ही प्रकरण में एक वेद की काय स्थिति द्रव्य वेश की अपेक्षा कहे और दो वेद की स्थिति भाव परिणाम की अपेक्षा कहे, ऐसी कल्पना टीकाकार द्वारा करना भी उपयुक्त नहीं समझा जा सकता- प्रज्ञा. टीका पृ. 451

उक्त 20 संकलन विद्वान आचार्य मलयगिरि से सम्बन्धित हैं। जिनका कि जैनागम टीका साहित्य में एक अनूठा स्थान है। ये तेरहवीं शताब्दि के साधना-सिद्ध पुरूष थे। आपमें श्रुत सेवा की अनुपम लगन थी। छाद्मस्थिक क्षयोपशम की विचित्रता से ही यह निर्दिष्ट त्रुटिएं संभव हुई हैं। आप एक भवभीरू, नम्र, सरल, आचार्य, हुए हैं। आगम विपरीत प्ररूपण का किंचित भी संकल्प आपका नहीं होगा, फिर उक्त भूलें आप से हो गई हैं।

21. निशीथ उद्देशक 2 में पादप्रोंछन का रजोहरण अर्थ कर दिया गया है, जबकि रजोहरण सम्बन्धी दस सूत्र आगे पांचवें उद्देशक में अलग हैं। पादप्रोछन औपग्रहिक उपकरण अलग है, रजोहरण औधिक उपकरण अलग हैं। इन दोनों को एक कर देना भ्रम हैं। विशेष जानकारी के लिये में देखना चाहियें।

22. विसुयावेई - निशीथ उद्देशक दो में पादप्रोंछन के सूत्रों में अंतिम सूत्र में ''वियुयावेई''क्रिया है जिसका अर्थ है पृथक करना अर्थात् काष्ठ दंड से पादप्रोंछन को अकारण खोल कर अलग करना। किन्तु इस सही अर्थ को छोडकर धूप देना, सुखाना, धोना, आदि अर्थ किये हैं।जबकि किसी भी उपधि को धूप देना सूर्य के तप में सुखाना कोई दोष नहीं होता है अपितु गुणकर होता है और यदि किसी भी कारण से गीला हो गया है तो उसे सुखाना तो आवश्यक कर्तव्य है उसे दोष रूप में कथन करके प्रायश्चित कहने का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता हैं।

23. निशीथ उद्देशा 3 सूत्र 76 ''गोलेहणियासु'' भूमि का विशेषण है जिसका अर्थ है हल हांकी हुई जमीन पर लघुनीत बडीनीत नहीं परठना और परठने पर सचित मिट्टी के कारण प्रायश्चित आता हैं। इस सीधे और उपयुक्त अर्थ को छोडकर गाायों के जानवरों के चरने की भूमि इत्यादि अयुक्त असंगत अर्थ किये गये हैं। विशेष जानकारी के लिये आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित इस सूत्र का विवेचन देखना चाहिये।

24. निशीथ उद्देशा 3 में ''अणुग्गए सूरिए'' शब्द हैं जिसका आशय है जिस स्थान पर सूर्य का ताप नहीं आता हो ऐसे अयोग्य स्थान में मल त्याग नहीं करना चाहिये। चाहे रात्रि में हो या दिन में कभी भी ऐसे स्थान पर शौच निवृत्ति नहीं करना। इस अर्थ को छोड़कर ऐसा अर्थ किया गया है कि सूर्योदय के पहले मल-मूत्र परठने नहीं जाना किन्तु भाजन में शौच निवृत्ति करके रख देना, फिर सुबह परठना। ऐसा अर्थ आगम विपरीत कथन है। आगम में परठने की भूमि से युक्त मकान का होना, संध्या समय मल विसर्जन की तीन भूमि का प्रतिलेखन करना एवं रात्रि में परठने जाने के एवं शौचनिवृति के लिये जाने, बैठने सम्बन्धी कई विधान हैं। अतः रात्रि में अर्थात् सूर्योदय के पूर्व मल विसर्जन करने या परठने मकान के बाहर नहीं जाना, ऐसा अर्थ करना उपयुक्त नहीं है एवं आगम सापेक्ष भी नहीं हैं।

25. निशीथ उद्देशा 19 में औषध सम्बन्धी सात सूत्र है अंतिम सातवें सूत्र में विहार में दवा ले जाने सम्बन्धी प्रायश्चित हैं। उस जगह प्रयुक्त ''वियड'' शब्द के अर्थ भावार्थ को मद्य-मादक पदार्थ से संबंधित कर दिया हैं। जो कि जैन श्रमण के

अयोग्य है। मद्य मांस सेवन नरक का कारण है उसे साधु उपयोग में ले और विहार में रखे फिर भी उसका लघु प्रायश्चित कहा जाय यह भी उपयुक्त नहीं होता हैं।

26. व्यवहार सूत्र उद्देशा 2 में श्रमण के लिये ''अट्ठ जायं'' विशेषण दिया है जिसका अर्थ है कि किसी इच्छा में तीव्रता से रूग्ण बना साधु। किन्तु यहां अर्थ कर दिया कि ''धन की इच्छा करने वाला साधु'' अर्थात् अपने परिवार वालों के लिये धन प्राप्ति की इच्छा में तल्लीन होकर रूग्ण पागल सा बना साधु। यहां सूत्र में उस रूग्ण साधु की सेवा करने का निर्देश हैं। रूग्ण सेवा आदि से सम्बन्धित साधु के लिये धन प्राप्ति का अर्थ और विवेचन करना उपयुक्त नहीं हैं।

27. व्यवहार सूत्र उद्देशा 3 सूत्र 1-2 में ''गणधारण'' का विषय है जिसका अर्थ मुखिया बनकर विचरण करना या मुखिया बनकर विचरण करने वाला हैं। वहां उसके लिये योग्य होना भी कहा है साथ आज्ञा लेकर विचरण करना कहा हैं। बिना आाज्ञा विचरण का निषेध किया है और प्रायश्चित भी कहा हैं। इसका अर्थ व्याख्याकारों ने आचार्य बनना, गणी या गच्छाधिपति बनने से जोड दिया है, वह उपयुक्त नहीं हैं। क्योकि आचार्य उपाध्याय आदि की योग्यता, गुण, श्रुत आदि का कथन उस सूत्र से आगे के सूत्रों में ही हैं।

28. व्यवहार सूत्र उद्देशा 9 में ''सोंडिय शाला'' शब्द है जहां पर श्रमण को गोचरी जाने का प्रसंग है उसका अर्थ होता है खाद्य सामग्री या मिष्ठान सामग्री, ऐसा अर्थ न करके मद्य शाला अर्थ विवेचन कर दिया हैं। जब कि मद्य शाला में साधु के जाने का प्रसंग ही नहीं हो सकता हैं।

29. व्यवहार सूत्र उद्देशा 10 में श्रमण के अध्ययन सम्बन्धी वर्णन दीक्षा पर्याय के वर्षों से सम्बन्धित करके कहा गया है उसका ऐसा अर्थ कर दिया कि इतने वर्ष पहले यह सूत्र पढाना ही नहीं, जो कि आगम तात्पर्य से विपरीत अर्थ हैं। क्यों कि इसी सूत्र में तीन वर्ष की दीक्षा वाले को बहुश्रुत होने पर एवं आचारांग निशीथ सूत्र के मूल एवं अर्थ सहित धारण करने वाला होने पर, उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित करना कहा हैं। अतः तीन वर्ष के पहले आचारांग निशीथ नहीं पढाना' यह अर्थ करना स्पष्ट ही आगम विपरीत है।

30. व्यवहार सूत्र उद्देशा 3 में निरूद्ध परियाए और निरूद्ध वास परियाए शब्द हैं जिनका क्रमशः सीधा सा संगत अर्थ हैं अत्यल्प दीक्षा पर्याय (एक दिन) और अल्प वर्ष पर्याय (तीन वर्ष से कम) वाले भी किसी परिस्थिति में आचार्य उपाध्याय पद दिया जा सकता हैं। इस अर्थ को छोड कर, जबरन (बलात्) दीक्षा छोडने से किसी श्रमण को निरूद्ध पर्याय बनाना आदि विस्तृत विवेचन किया हैं। जो मात्र कल्पना रूप ही हैं।

ये छेद सूत्रों सम्बन्धी संकलन है, इस सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिये पूर्व निर्दिष्ट विवेचन युक्त शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। इसमें निर्युक्तिकार, भाष्यकार, टीकाकार और चूर्णिकार सभी अपेक्षित हैं।

अन्य भी सूत्रों की व्याख्याओं में ऐसी कई भूलें हैं। उन सब का यहां संकलन नहीं करके नमूना रूप थोडा सा संकलन दिया गया हैं। तटस्थता पूर्वक चिंतन मनन अनुभव करने वालों के लिये इतना ही पर्याप्त होगा।

सार- तात्पर्य यही है कि छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र है, अतः खुद के लिये या अन्य किसी के लिये, किसी भी प्रकार का मान गुमान और दुराग्रह हठाग्रह नहीं करके आगम सापेक्ष चिंतन मनन की गुंजाइश रखते हुए जिज्ञासावृत्ति रख कर सत्य खोजते रहने का प्रयत्न करना चाहिये और सारे प्रत्यत्नों चिंतनों को आगम कसौटी पर कसने की बुद्धि रखनी चाहिये। किन्तु ''बाबा वाक्यं प्रमाणं'' की वृत्ति नहीं रखनी चाहिये तथा अपनी स्वच्छंद बुद्धि कल्पित आगम निरपेक्ष निर्णय लेने की वृत्ति भी नही रखनी चाहियें।

।। इति परिशिष्ट खंड समाप्त ।

सूत्र गत स्थलों का चार्ट-

		आयाम विष्कंभ	परिधि	द्वारों का अंतर/ आकार	ऊंचाई	गहराई	मूल में विस्तार	मध्य में विस्तार	ऊपर में विस्तार
1	जम्बूद्वीप	1 लाख यो.	यो. 3, 16, 227 3 कोश 28 ध. 13 अ.	79052 योजन	-	-	-	-	-
2	जम्बूद्वीप जगती	-		गौपुच्छ संस्थान	8 योजन	-	12 योजन	8 योजन	4 योजन
3	जाल कटक जगती	500 धनुष		वलयाकार	आधा योजन	-	-	-	-
4	पद्मवर वैदिक	500 धनुष		वलयाकार	आधा योजन	-	-	-	-
5	वनखंड	देशोन दो योजन		वलयाकार	-	-	-	-	-
6	विजया राजधानी	12000 योजन	37948 योजन साधिक	- 13 गोल	-	-	-	-	-
7	परकोटा	-	-	वलयाकार	$37\frac{1}{2}$ योजन	$12\frac{1}{2}$ योजन	-	$6\frac{1}{2}$ योजन	$3\frac{1}{2}$ यो. कोश
8	500 द्वार	$62\frac{1}{2}$ योजन	$13\frac{1}{2}$ योजन	$31\frac{1}{2}$ योजन					
9	कपि शीर्षक	$\frac{1}{2}$ कोश ×500ध.	-	-	देशोन $\frac{1}{2}$ कोश	-	-	-	-
10	वनखंड 4	12000 ×500यो.	-	-	-	-	-	-	-
11	लवण समुद्र	2 लाख	15811399 योजन साधिक	395280 योजन	16000 योजन	1000 योजन			
12	धातकी खंडद्वीप	4 लाख योजन	4110961 योजन साधिक	1027735 यो. 3 कोश	-	-	-	-	-

सूत्र गत स्थलों का चार्ट-

		आयाम विष्कंभ	परिधि	द्वारों का अंतर/ आकार	ऊंचाई	गहराई	मूल में विस्तार	मध्य में विस्तार	उपर में विस्तार
13	कालोदधि	8 लाख योजन	14230249 योजन	-	-	-	-	-	-
14	पुष्कर द्वीप	13 लाख योजन	19289894 योजन	4822496 योजन	-	-	-	-	-
15	आभ्यंतर पुष्कर	8 लाख योजन	14230249 योजन	-	-	-	-	-	-
16	ढाई द्वीप	45 लाख योजन	14230249 योजन	-	-	-	-	-	-
17	मानुषोत्तर पर्वत	-	14236719 यो. (बाह्य)	-	1721 योजन	430 यो. 1 कोश	1022 योजन	723 योजन	424 योजन
18	अंजन-गिरी	-	-	-	84000 योजन	1000 योजन	10000 योजन	10000 योजन	1000 योजन
19	नंदा पुष्करिणी	1 लाख योजन	-	-	-	10 योजन	-	-	-
20	दधिमुखा	10000 योजन	-	-	10000 योजन	1000 योजन	-	-	-

गुणस्थान स्वरूप

जीव की आत्मिक- आध्यात्मिक हीनाधिक-उच्चावच्च अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। ऐसे जीव के गुणस्थान चौदह कहे गये हैं। जिसमें चौथे गुणस्थान से 14 वें गुणस्थान तक के ग्यारह गुणस्थान वाले उन्नति शील प्रगतिशील आत्मस्थान में अवस्थित होते हैं। शेष एक से तीन गुणस्थान वाले अवनत आत्म स्थान में होते हें उन 14 गुणस्थानों का स्वरूप इस प्रकार हैं।

पहला मिथ्यात्व गुणस्थान- 1. जो परभव, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धांत और जीव का अनादि अस्तित्त्व नहीं मानता है 2. अठारह प्रकार के पाप, 25 क्रियाएं एवं आठ प्रकार के कर्म का बंध उदय आदि नहीं मानता हैं 3. जो सुदेव सुगुरू सुधर्म सद्शास्त्र- आगम की श्रद्धा नहीं रखता है, स्वछंदता स्वेच्छा से कुदेव कुगुरू और कुशास्त्रों की श्रद्धा करता है 4. श्रावक के 12 व्रत एवं साधु के पांच महाव्रतों की समिति गुप्ति की एवं अन्य भी छोटी बडी जिनाज्ञाओं की सम्यग् श्रद्धा नहीं करता हैं। 5. जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-संवर, निर्जरा, बंध मोक्ष, इन तत्त्वों का तीर्थंकर भगवान द्वारा कथित स्वरूप के अनुसार श्रद्धान नहीं करता है 6. ईश्वर को संसार का कर्त्ता मानता है। 7. यज्ञ, हवन, पशु-बली, आदि में धर्म मानता है, अन्य भी छोटी बडी हिंसाकारी सावद्य प्रवृतियों को छः काया के जीवों का संहार करने वाली प्रवृत्तियों को धर्म मानता हैं। 8. जिनेश्वर भगवन्तों के कथित सिद्धान्तों से विपरीत या हीनाधिक प्ररूपणा करता है 9. अनेकांतिक सिद्धान्तों से हटकर एकांत के आग्राह में पडता है। सात नयों का ख्याल नहीं करके दुर्नय में पडता है 10. कलह, गुस्सा रंज भाव को दीर्घ काल तक टिकाये रखता है अथवा 11. किसी भी पापकृत्य में अति आसक्त गृद्ध लीन बनता है अर्थात् लोभ, परिग्रह, निंदा (पर परिवाद), माया, झुठ, चोरी एवं जीव हिंसा आदि किसी भी पाप कृत्य में तल्लीन हो जाता है 12. जो जिनेश्वर भगवन्तों पर, उनके धर्म पर या उनके मार्ग पर चलने वाले धर्म गुरूओं पर द्वेष रखता है इत्यादि, इन उक्त सभी अवस्थाओं वाला जीव व्यवहार से मिथ्यात्व गुणस्थान वर्ती जानना चाहिए ।

निश्चय दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यात्व रूप मोहनीय कर्म की प्रकृति के उदय होने से एवं उदय रहने से जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में रहता हैं।

यह जीव का प्रथम गुणस्थान हैं। इसमें रहने वाले जीवों की अपेक्षा इसके तीन भंग हैं। 1. अनादि अनंत 2. अनादि सांत 3. सादि सांत। अनादि-अनंत अभवी की अपेक्षा है, अनादि-सांत भवी की अपेक्षा है और तीसरा भंग सादि-सांत सम्यक्त्व समकित से प्रतिपाती (पडिवाई) की अपेक्षा हैं। इस भंग वाले की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन की होती हैं।

इस गुणस्थान में मरने या आयुष्य बांधने वाला जीव चार गति में भ्रमण करता है इस गुणस्थान में वर्त्तता हुआ जीव कर्मो का विशेष बंध करता हुआ कर्म वृद्धि और संसार वृद्धि करता हैं। यह गुणस्थान पांच अणुत्तर विमान के अतिरिक्त सभी जीवों में पाया जा सकता हैं।

दूसरा सास्वादन गुणस्थान- जिस जीव ने चौथा गुणस्थान प्राप्त कर लिया है, फिर उसमें अथवा तो ऊपर के किसी भी गुणस्थान में उक्त प्रथम मिथ्यात्त्व गुणस्थान में कही गई किसी व्यवहार की अवस्था को प्राप्त करता है और निश्चय से मिथ्यात्व के उदयाभिमुख होता हैं, तब वह उन चौथे आदि गुणस्थानों से गिर कर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता हैं। उस समय चौथे आदि गुणस्थानों से च्युत होकर प्रथम गुणस्थान में पहुंचने के बीच का जो क्षणिक काल एवं आत्मा की अवस्था है वही दूसरा सास्वादन गुणस्थान हैं। यथा-वृक्ष से टूटा हुआ फल भूमि पर गिरने के पूर्व जो मार्ग में कुछ समय व्यतीत करता है, वैसी अवस्था दूसरे गुणस्थान की समझनी चाहिये।

इस गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति छः आवलिका जितनी होती है अर्थात् एक सेकंड के हजारवें भाग से भी कम स्थिति होती हैं। इसलिये इस गुणस्थान का अस्तित्त्व किंचित मात्र है जो छद्मस्थों के अनुभव गम्य नहीं हैं। यह गुणस्थान एकेन्द्रियों में नहीं होता हैं। शेष बेइन्द्रिय आदि असन्नि में अपर्याप्त में होता है सन्नी के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों में और चारों गति में होता हैं।

तीसरा मिश्र गुणस्थान– समकित और मिथ्यात्व के मिश्र परिणामों वाली आत्मा की अवस्था को मिश्र गुणस्थान कहा गया हैं। जैसे- श्री खंड खट्टे मीठे उभय स्वभाव वाला होता है, उसी प्रकार इस गुणस्थान वाला जिनेश्वर भगवन्त के धर्म की भी श्रद्धा रखता है एवं जिनेश्वर भंगवंत के सिद्धान्तों से विपरीत सिद्धांतों वाले धर्म की भी श्रद्धा करता हैं। सभी धर्मों को सुन्दर एवं सही समझता हैं। ऐसे भोले स्वभाव वाली अनभिज्ञ आत्माओं के यह तीसरा गुणस्थान होता हैं। यह आत्म गुणस्थान भी जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहुर्त्त अर्थात् 48मिनट से कम समय तक ही रहता हैं। उस आत्मा के वे मिश्र परिणाम मिथ्यात्व में या समकित में परिवर्तित हो जाते हैं।

यह गुणस्थान मिश्र परिणाम वाला होने से इसमें जीव मरता भी नहीं है एवं आयुष्य भी नहीं बांधता हैं। यह सन्नी जीवों के पर्याप्तावस्था में ही होता हैं। पांच अणुत्तर विमान वासी देवों में यह गुणस्थान नहीं होता हैं। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियों में भी नहीं होता हैं। यह गुणस्थान अनादि मिथ्यात्वी को नहीं आता हैं। किन्तु जिसने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर ली हैं। फिर सम्यक्त्व से च्युत हो गया है ऐसे जीव में ही यह गुणस्थान पाया जा सकता हैं।

चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान– पहले गुणस्थान में जो आत्मा की अवस्था रूप लक्षण कहे गये उन अवगुणों की अवस्थाओं में नहीं रहने वाला इस गुणस्थान को प्राप्त करता है अर्थात् उन उक्त अवगुणों से विपरीत गुणों वाली आत्म अवस्था को व्यवहार की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहा गया हैं।

निश्चय दृष्टि से दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृति एवं चारित्र मोह की अंनतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ ये चार प्रकृति के क्षय, उपशम या क्षयोपशम होने पर जीव को यह चौथा गुणस्थान प्राप्त होता हैं। इस गुणस्थान वाले की सभी प्रकार की समझ एवं दृष्टिकोण सही सम्यग् होता हैं, अतः इसे सम्यग दृष्टि कहा गया हैं। इस गुणस्थान वाला किसी भी प्रकार के प्रत्याख्यान भावों में परिणत या प्रगतिशील नहीं होता हैं। केवल सम्यग् श्रद्धान तक ही रहता है इसलिये इसके सम्यग्दृष्टि गुण के साथ अविरत लग जाने से इसका परिपूर्ण नाम अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान होता हैं।

इस गुणस्थान वाले को सम्यक्त्वी, समकिती, सम्यग्दृष्टि आदि नामों से भी कहा जाता हैं। इस गुणस्थान को गुण की मुख्यता से सम्यक्त्व या समकित ऐसा कथन भी कर दिया जाता हैं। यथा- एक बार ''समकित'' आ जाने पर अर्थात् चौथा गुणस्थान आ जाने पर जीव अर्द्ध पुद्गल से ज्यादा संसार में भ्रमण-जन्म मरण नहीं करता हैं।

इस गुणस्थान वाला जिनेश्वर भगवंत भाषित सभी सिद्धान्तों में ज्ञान चारित्र तप रूप सभी प्रवर्त्तनों में, जीवादि पदार्थों में, सम्यक् सही श्रद्धान- आस्था रखता हैं। कथन प्ररूपण भी सही करता हैं। हिंसा आदि पाप कृत्यों में अति आसक्त नहीं होता हैं। उन पाप जनक प्रवृतियों में, छः काया के आरम्भ जनक प्रवृत्तियों में कभी भी धर्म नहीं मानता हैं। कषायों को और कलह को दीर्घकालीन नहीं रखता हैं।

इस गुणस्थान में आयुष्य बांधने वाला जीव जघन्य इस भव सहित तीसरे भव में मोक्ष जाता हैं। उत्कृष्ट 15 वें भव में मोक्ष जाता हैं। यह गुणस्थान चार गति के सन्नी जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों में होता हैं।

निश्चय दृष्टि से इस गुणस्थान में सात प्रकृतियों के क्षय आदि के अनेक विकल्प होते हैं। क्षय आदि का अर्थ इस प्रकार है- 1. क्षय- उस प्रकृति की आत्मा में से सत्ता अस्तित्त्व समाप्त हो जाना। 2. उपशम- उस प्रकृति का उदय रूक जाना, सत्ता में

अवरूद्ध पड़े रहना। 3. क्षयोपशम -उस प्रकृति का प्रदेशोदय होना, विपाकोदय रूकना 4. उदय- उस प्रकृति का विपाकोदय होना उदय कहा जाता हैं।

पुनश्च- 1. क्षय-सर्वथा क्षय 2. उपशम- सर्वथा अनुदय 3. क्षयोपशम- प्रदेशोदय 4. उदय-विपाकोदय।

सात प्रकृतियों से होने वाले विकल्प इस प्रकार है-

1.	सात प्रकृति का क्षय	-	क्षायिक समकित
2.	सात प्रकृति का उपशम	-	उपशम समकित
3.	6का क्षय, एक का उदय	-	क्षायिक वैदक
4.	6का उपशम, एक का उदय	-	उपशम वैदक
5.	6का क्षयोपशम, एक का उदय	-	क्षयोपशम समकित
6.	5 का क्षयोपशम, एक का उपशम, एक का उदय	-	क्षयोपशम समकित
7.	4 का क्षयोपशम, 2 का उपशम, एक का उदय	-	क्षयोपशम समकित
8.	4 का क्षय, 3 का क्षयोपशम		
9.	5 का क्षय, 2 का क्षयोपशम		
10.	6का क्षय, एक का क्षयोपशम		
11.	4 का क्षय, 2 का क्षयोपशम, एक का वेदन (सूक्ष्म)		
12.	5 का क्षय, एक क्षयोपशम, एक का वेदन (सूक्ष्मतर)		

क्रमांक 8से 12 के पांच भंग क्षायिक समकित की पूर्व भूमिका के भंग है इसमें अनंतानुबंधी चतुष्क का सर्वथा क्षय नियमतः होता हैं।

संक्षिप्त में इन सभी भंगों का तीन समकित में समावेश होता है तब उक्त तीसरे भंग से लेकर 12 वें तक के सभी भंगों का क्षयोपशम समकित में समावेश हो जाता हैं। अर्थात् सातों का क्षय या सातों उपशम न हो वे सभी क्षयोपशम समकित के ही दर्जे हैं।

इस गुणस्थान में वर्त्तता हुआ जीव नरक तीर्यंच का आयुष्य बंध नहीं करता है, देव या मनुष्य यों दो गति का आयुष्य बंध कर सकता है अर्थात् इस गुणस्थान वाले नारकी देवता केवल मनुष्य का एंव तीर्यंच मनुष्य केवल देवता का ही आयुष्य बंध करते हैं। देव का आयुबंध करने वाले इस गुणस्थान वर्त्ती मनुष्य तीर्यंच दोनों केवल वैमानिक जाति के देवों का आयु बंध करते हैं, भवनपति, व्यंतर एवं ज्योतिषी इन तीन जाति के देवों का आयुष्य नहीं बांधते हैं।

इस गुणस्थान वाला स्त्री वेद और नपुंसक वेद का बंध भी नहीं करता हैं। केवल पुरूष वेद का ही बंध करता हैं।

इस गुणस्थान की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की उत्कृष्ट साधिक 33 सागरोपम की होती है (66सागर कहना भ्रम पूर्ण है) इतने समय बाद यह गुणस्थान बदल जाता है अर्थात् वह जीव पांचवे आदि गुणस्थानों में आगे बढ जाता है अथवा नीचे के गुणस्थानों में चला जाता हैं। एक भव में यह गुणस्थान हजारों बार आ सकता हे और असंख्य भवों में असंख्य बार आ सकता हैं।

क्षायिक समकित एक बार ही आती हैं। इसके आने के बाद मनुष्य आयुष्य नहीं बांधता है और उसी भव में मोक्ष जाता हें। यदि मनुष्य के क्षायिक समकित आने के पहले चारों गति में से किसी गति का आयु बंध गया हो तो उस गति में जाना ही पडता हैं। नरक देव में गया हुआ क्षायिक सम्यक्त्वी फिर मनुष्य का भव प्राप्त कर मोक्ष जाता हैं। मनुष्य तीर्यंच का आयुष्य बाधां हुआ जीव

वहां जाता है फिर उस भव में देव का आयुष्य बांधता है और देव भव के बाद मनुष्य बन कर मोक्ष जाता हैं। किन्तु इन भवों के बीच में वह क्षायिक समकित कभी बदलती नहीं हैं अर्थात् एक बार प्राप्त हुई यह समकित मोक्ष पर्यन्त सदा शाश्वत रहने वाली होती हैं। यह समकित केवल मनुष्य गति में ही आती है तीन गति में नहीं आती।

उपशम सम्यक्त्व जीव को एक भव में उत्कृष्ट 2 बार एवं अनेक भवों में कुल 5 बार ही आ सकती हैं। क्षयोपशम समकित की अपेक्षा ही यह गुणस्थान एक भव में हजारों बार एवं असंख्य भवों में असंख्य बार आता हैं।

उपशम समकित वाला ही मिथ्यात्व में जाते समय दूसरा गुणस्थान स्पर्श करता हैं। क्षयोपशम समकित वाला तो छट्ठे पांचवें चौथे गुणस्थान से सीधा मिथ्यात्व गुणस्थानमें जा सकता है और 7 वें 8वें 9 वें 11 वें गुण स्थान वाला चौथे गुणस्थान में जा सकता हैं।

पांचवा देश विरत (श्रावक) गुणस्थान- किसी भी सम्यकत्व वाला जीव जब सम्यक् श्रद्धा के साथ व्रत प्रत्याख्यान की रूचि वाला होता है, कुछ न कुछ व्रत प्रत्याख्यान धारण करता है, पापों का देशतः त्याग करता है, उसे व्यवहार से पांचवा देश विरत गुणस्थान प्राप्त होता हैं। इस गुणस्थान वाले को श्रावक या श्रमणोपासक कहा जाता हैं।

निश्चय दृष्टि से मोहनीय कर्म की अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क रूप चार प्रकृति का क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने पर यह गुणस्थान प्राप्त होता है अर्थात् सात प्रकृति चौथे गुणस्थान में कही गई है उनके सहित कुल 11 प्रकृति का क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने से यह गुणस्थान आता हैं।

इस गुणस्थान वाले में चौथे गुणस्थान वाले सभी लक्षण पाये जाते है, विशेषता यह है कि इसमें व्रत धारण एवं प्रत्याख्यान रूचि का विकास होता हें। वह श्रावक के 12 व्रतों में से अनुकूलता अनुसार एक या अनेक अथवा सभी व्रतों को धारण करता हैं। आगे बढकर श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं धारण करता है। तीन मनोरथ चिंतन करता हैं दैनिक 24 नियम धारण एवं सामायिक करता हैं। महीने में कम से कम 6 पौषध करता हैं।

जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता बनता हैं। क्रमशः अनेकों शास्त्रों में, जिन मत में, विशारद-कोविद-बहुश्रुत होकर देवों से भी वाद विवाद कर विजय कर वियज प्राप्त करने योग्य बन सकता है और अपने धर्म में ऐसी दृढ़ आस्था वाला बन जाता है कि देव दानव की सम्पूर्ण शक्ति से युक्त कष्ट झेलकर भी विचलित नहीं होता है।

इस गुणस्थान वर्ती जीव अपने जीवन में दीक्षा लेने का सदा मनोरथ रखता है, दीक्षा लेने वालें का हार्दिक सहयोगी होता हैं एवं दीक्षित श्रमण निग्रन्थों का हार्दिक स्वागत भक्ति विनय वंदन करता है, उनकी पर्यूपासना सेवा करता है, भक्ति और उत्साह के साथ उन्हें संयम योग्य कल्पनीय आाहर पानी, वस्त्र-पात्र, औषध-भेषज, मकान, पाट आदि का निर्दोष दान देकर प्रतिलाभित करता है। श्रमण निर्ग्रन्थों को देखते ही, उनके दर्शन होते ही, उनकी आत्मा में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो जाती है। इसलिये इस गुणस्थान वाले को श्रमण .उपासक= श्रमणोपासक इस सार्थक नाम से कहा जाता है।

इस गुणस्थान में मरने वाला या आयुबंध करने वाला केवल वैमानिक देव रूप देवगति को ही प्राप्त करता है। अन्य किसी भी गति या दंडक में नहीं जाता है। वैमानिक में भी 12 देवलोक एवं नौ लोकांतिक में ही जाता है।

यह गुणस्थान जीव को एक भव में उत्कृष्ट अनेक हजार बार एवं आठ भव में भी उत्कृष्ट अनेक हजार बार आ सकता है अर्थात् इतनी बार इस गुणस्थान को प्राप्त करना और फिर छोड़ देना हो सकता है। छोड़ने में अनेक रास्ते हैं- 1. आगे के गुणस्थानों में जाना 2. मिथ्यात्व आदि रूप में नीचे जाना 3. आयु समाप्त हो जाने के कारण स्वतः इस गुणस्थान का छूट जाना और चौथे गुणस्थान का प्राप्त होना। अर्थात् आयु समाप्त हो जाने पर इस गुणस्थान वाला देवलोक में जाता है और वहां पांचवां आदि ऊपर के गुणस्थानों का स्वभाव न होने से स्वाभाविक चौथा गुणस्थान आ जाता है।

इस गुणस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त देशोन करोड पूर्व वर्षों की होती है आर्थात् पूरे भव तक निरंतर भी यह गुणस्थान रह सकता है। मनुष्य एवं तिर्य्च यों दो गति में ही सन्नी जीवों के पर्याप्त में यह गुणस्थान होता है। मनुष्य की अपेक्षा इस गुणस्थान वाले लोक में संख्यात होते हैं और तिर्य्च की अपेक्षा असंख्य होते हैं। इस गुणस्थान में आयुष्य बांधने वाला या मरने वाला कम से कम तीन भव (वर्तमान भव सहित) उत्कृष्ट 15 भव करके मोक्ष जाता है।

छट्ठा प्रमत्त संयत गुणस्थान- जो मनुष्य भाव पूर्वक संयम स्वीकार करता है, जिन शासन में प्रव्रजित होता है, मुनि बनता है और उसके बाद उत्तरोत्तर संयम गुणों का विकास करते हुए भगवदाज्ञा का पालन करता है उसे व्यवहार की अपेक्षा यह छट्ठा प्रमत्त संयम गुणस्थान प्राप्त होता है।

निश्चय दृष्टि से पूर्वोक्त 11 प्रकृति एवं प्रत्याख्यानावरण चतुष्क यों कुल 15 प्रकृति के क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने से यह गुणस्थान प्राप्त होता है।

व्यवहार की अपेक्षा चौथे गुणस्थान में कहे गये सभी गुणों से तो यह सम्पन्न होता ही है।

उन गुणों के अभाव में यह गुणस्थान या ऊपर के कोई भी गुणस्थान नहीं रहते हैं।

यह गुणस्थान और आगे के सभी गुणस्थान केवल मनुष्य गति में ही होते हैं, शेष तीन गति में नहीं हाते। एक जीव को यह गुणस्थान अधिकतम आठ भव में आ सकता है। एक भव में यह गुण्स्थान सैकड़ों बार आ सकता है और आठ भवों में भी सैकड़ों बार आ सकता है। इस गुणस्थान में आयुष्य बांधने वाला एवं मरने वाला वैमानिक देव के 35 स्थानों में उत्पन्न हो सकता है, अन्यत्र कहीं उत्पन्न नहीं होता है। इस गुणस्थान में जीव जघन्य अंतर्मूहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व वर्ष तक लगातार स्थिर रह सकता है।

गुण सम्पन्न जैन श्रमण एवं श्रमणियां इस गुणस्थान के अधिकारी होते हैं। शरीर सम्बन्धी प्रमाद रूप प्रवृत्तियों से युक्त होने के कारण इस गुणस्थान का नाम 'प्रमत्त संयत' है। वे प्रवृत्तियां इस प्रकार है- गोचरी लाना, खाना एवं मल मूत्र त्यागना, सोना, वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का एवं शरीर का परिकर्म, सुश्रुषा करना आदि ये मुनि जीवन के प्रमाद है। अन्य मद्य, निंदा, विषय, कषय, विकथा आदि मुनि जीवन के योग्य ही नहीं है। उन्हें यहां नहीं समझना चाहिये।

यह गुणस्थान जब भी आता है तो सातवें गुणस्थान में होकर ही आता है। किसी भी गुणस्थान वाला सीधा इसमें प्रवेश नहीं करता है।

इस गुणस्थान वाला पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, रात्रि भोजन त्याग एवं अन्य अनेक भगवदाज्ञाओं का पालन करता है, सम्पूर्ण 18पापों का त्यागी होता है। किसी भी पाप कार्य की, सावध कार्य की, छः काय जीवों की, हिंसा मूलक प्रवृत्तियों की, प्रेरणा या प्ररूपणा भी नहीं करता है। तीन करण तीन योग से छोटी बड़ी सभी सावद्य प्रवृत्तियों का मन से वचन से काया से त्याग करता है। सदा-सरल, निष्कपट रहता है। यथसमय स्वाध्याय ध्यान में सदा प्रयत्नशील बना रहता है।

सातवां अप्रमत्त संयम गुणस्थान- छट्ठे गुणस्थान में कहे गये सभी लक्षणों में युक्त जीव जब शरीर और उपकरण सम्बन्धी प्रमाद प्रवृत्तियों में नहीं होता है अथवा प्रवृत्तियों के होते हुए भी भावों में निस्पृह रहता है, तप स्वाध्याय ध्यान आत्म चिंतन में लीन होता है, आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा आदि से रहित होता है, केवल आत्म लक्षी परिणामों में वर्त्तता है तब उस श्रमण में यह सातवां अप्रमत्त संयम गुणस्थान होता है।

निश्चय दृष्टि से इसमें उक्त 15 प्रकृतियों का क्षय आदि छट्ठे गुणस्थान के समान ही रहता है।

जीव के संयम भाव में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम इसी गुणस्थान की प्राप्ति होती है। उसके बाद ही छठ्ठा या आठवां गुणस्थान प्राप्त होता है। अर्थात् यह संयम का प्रवेश द्वार है।

यह गुणस्थान व्यवहार से श्रमण धर्म स्वीकार करने वालों में होने के अतिरिक्त कदाचित् गृहस्थलिंग में एवं अन्य मतावलंबी के लिंग वेष भूषा में भी भावों से हो सकता है।

इस गुणस्थान की स्थिति प्रारम्भ में आने पर जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की होती है और बाद में पुनः आने पर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त की होती है। एक भव में यह गुणस्थान सेकड़ों हजारों बार आ जा सकता है अर्थात् यह छट्ठे गुणस्थान में हजारों बार आता जाता रहता है।

इस गुणस्थान में आयुबंध प्रारम्भ नहीं किया जाता हैं। छट्ठे गुणस्थान में प्रारम्भ किया हो तो इसमें पूर्ण किया जा सकता हैं। इस अपेक्षा से इसमें आयु बंध और मरने पर गति केवल वैमानिक की ही होती है, अन्य विवरण छट्ठे गुणस्थान के समान हैं।

यह गुणस्थान भी उत्कृष्ट आठ भव में ही आ सकता हैं। इस गुणस्थान वाला छट्ठे के अतिरिक्त नीचे के किसी गुणस्थान में नहीं जाता है किन्तु आयुष्य समाप्त होने पर सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता हैं।

आठवां निवृत्ति बादर गुणस्थान- यह गुणस्थान निश्चय दृष्टि से ही आता है, व्यवहार दृष्टि से सात गुणस्थान ही जाने जाते हैं। अतः शुक्ल ध्यान एवं अपूर्वकरण गुएश्रेणी प्रारम्भ करने पर इस गुणस्थान की प्राप्ति होती हैं।

मोहनीय की जो भी प्रकृति सातवें गुणस्थान तक क्षयोपशम में होती है, वह यहां परिवर्तित हो जाती है अर्थात् इस गुणस्थान में मोह कर्म की प्रकृतियों का क्षय या उपशम ही रहता है, क्षयोपशम नहीं रहता। इसलिये इस गुणस्थान में और आगे के गुणस्थान में क्षयोपशम समकित नहीं होती हैं। उपशम और क्षायिक दो समकित ही होती हैं।

अतः यहां से चारित्र मोह कर्म की अपेक्षा दो श्रेणियां होती है- 1. उपशम श्रेणी 2. क्षपक श्रेणी 3. उपशम श्रेणी करने वाला यथायोग्य प्रकृतियों का उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक बढता है और क्षपक श्रेणी करने वाला यथा योग्य प्रकृतियों का पूर्ण क्षय करता हुआ क्रमशः आगे बढता है किन्तु ग्यारहवां गुणस्थान छोडकर सीधा बारहवें गुणस्थान में बढ जाता हैं।

इस गुणस्थान में धर्मध्यान ही आगे बढकर शुक्ल ध्यान में परिवर्तित हो जाता है, अर्थात् इसी गुणस्थान से शुक्ल ध्यान प्रारम्भ होता हैं। इस गुणस्थान में रहे जीव के हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा इन मोहनीय की प्रकृतियों का यथाक्रम से क्षय अथवा उपशम होता हैं।

क्षपक श्रेणी प्रारम्भ करने वाला उसी भव में मुक्त होता है और उपशम श्रेणी करने वाला उस भव में मुक्त नहीं होता है किन्तु श्रेणी से गिर जाता है। सातवें आदि किसी भी गुणस्थान में पहुंचकर वहां की गति को प्राप्त करता हैं। इस गुणस्थान में और आगे के गुणस्थानों में आयुबंध नहीं होता है, मृत्यु हो सकती हैं। इस गुणस्थान में मरने वाला पांच अणुत्तर विमान में ही जाता हैं। इस गुणस्थान में काल करने वाला जघन्य तीसरे भव में उत्कृष्ट 15 वें भव में मोक्ष जाता है।

इस गुणस्थान में काल नहीं कर के कोई जीव नीचे के गुणस्थानों में चला जाय तो उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन जितना अनंत काल भी संसार में रह सकता हैं। यह गुणस्थान एक भव में उत्कृष्ट चार बार और तीन भवों में उत्कृष्ट नौ बार आ सकता हैं।

इस गुणस्थान वाला प्रथम बार (चढते समय) तो नौवें गुणस्थान में ही जाता है पुनः गिरते समय वापिस आने पर सातवें में जा सकता हैं। अन्य किसी गुणस्थानों में सीधा जाता आता नहीं हैं। कभी भी काल करे तो उस समय सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता हैं।

इस आठवें गुणस्थान का यह स्वरूप तो स्पष्ट समझ में आने जैसा है किन्तु इस गुणस्थान और नौवें गुणस्थान का इनके नामों से मतलब समझने लगे तो कई उलझने और समाधान खड़े होते हैं। अतः उस सूक्ष्मता में सामान्य पाठक को जाने की आवश्यकता नहीं हैं। वास्तव में इन दोनों के नाम सही परंपरागत है या नहीं है ? कभी लिपि प्रमाद के दोष से इधर-उधर तो नहीं हुए है ? इत्यादि निर्णय नहीं किया जा सकता। अतः नाम के विवाद में नहीं पड़ना चाहिये। इस गुणस्थान के प्रारम्भ में क्षयोपशम समकित समाप्त हो जाती है और समकित मोहनीय का उदय भी रूक जाता हैं। फिर यथाक्रम से हास्यादि 6 प्रकृतियों का उदय रूकने पर जीव आगे बढता हैं।

नौवां अनिवृत्ति बादर गुणस्थान– हास्यादि 6 प्रकृतियों के पूर्ण क्षय या उपशम हो जाने पर जीव इस गुणस्थान में प्रवेश करता है और यहां रहा हुआ जीव तीनों वेद एवं संज्वलन के क्रोध मान माया के उदय को यथाक्रम से रोकता है अर्थात् उनका क्षय अथवा उपशम करता हैं। अंत में संज्वलन माया का उदय रूकने पर इस गुणस्थान वाला जीव दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता हैं। शेष इस गुणस्थान का वर्णन आठवें गुणस्थान के वर्णन से समझ लेना चाहिये।

दसवां सूक्ष्म संपराय गुणस्थान– संपराय का अर्थ है कषाय। यहां संज्वलन लोभ मात्र अवशेष रहता है, शेष संज्वलन क्रोध मान का उदय समाप्त होने पर जीव नौवें गुणस्थान में प्रवेश करता हैं। दसवें गुणस्थान के अंतिम समय तक लोभ का उदय रहता हैं। उसके बाद उपशम श्रेणी वाला उसका उपशम कर के ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है और क्षपक श्रेणी वाला उस का पूर्णतया क्षय करके बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता हैं।

इस गुणस्थान की स्थिति गति आदि सम्पूर्ण वर्णन आठवें गुणस्थान के समान हैं। विशेष यह है कि इस गुणस्थान वाला ऊपर दो गुणस्थान में जा सकता है ग्यारहवें और बारहवें में, नीचे केवल नौवें में जा सकता हैं और काल कर जाय तो चौथे गुणस्थान में जाता हैं।

यह गुणस्थान जीव को उत्कृष्ट तीन भवों में आ सकता हैं। एक भव में उत्कृष्ट चार बार और तीन भवों में उत्कृष्ट नौ बार आ सकता हैं। जिस भव में मोक्ष जाना होता है उस भव में तो एक बार ही आता हैं।

आठवें नौवें दसवें गुणस्थान में परिणाम हायमान और वर्द्धमान दोनों तरह के होते है श्रेणी से गिरने वालों की अपेक्षा हायमान और श्रेणी चढने वालों की अपेक्षा वर्द्धमान परिणाम होता हैं।

इस गुणस्थान वाले में-4 ज्ञान 3 दर्शन = 7 हो सकते है किन्तु उपयोग केवल ज्ञानोपयोग साकारोपयोग ही होता हैं।

ग्यारहवां उपशांत मोह गुणस्थान– संज्वलन लोभ के उपशम होने पर सम्पूर्ण मोह कर्म का उदय समाप्त हो जाता हैं। तब उपशम श्रेणी वाला दसवें गुणस्थान वर्त्ती जीव ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता हैं।

अंतर्मुहूर्त्त मात्र समय के लिये ही लोभ का उपशम किया जाता है अतः इस गुणस्थान वाला लोभ का उपशम समाप्त होने पर अर्थात् स्थिति पूर्ण होने पर पुनः उदयाभिमुखी होने से दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता हैं। इस गुणस्थान वाला आगे बारहवें गुणस्थान में नहीं जाता हैं।

इस गुणस्थान वाला मोह राग द्वेष नहीं होने से वीतराग भी कहा जाता हैं। उसका पूर्ण नाम उपशांत मोह वीतराग कहा जाता हैं।

यह गुणस्थान एक भव में दो बार और उत्कृष्ट दो भव में चार बार आ सकता हैं। इस गुणस्थान में उपशम समकित और क्षायिक समकित दोनों हो सकती हैं। इसके चारित्र को यथाख्यात चरित्र कहा गया हैं। शेष वर्णन पूर्व के गुणस्थानों के समान हैं

यहां ग्यारह गुणस्थानों में मोह कर्म की अपेक्षा विचार किया गया है अन्य कर्मों का भी यथा-योग्य उदय विचार अन्यत्र से जान लेना चाहिये।

इस ग्यारहवें गुणस्थान में केवल साता वेदनीय कर्म के अतिरिक्त सभी कर्म का बंध होना रूक जाता है साता वेदनीय भी केवल दो समय की स्थिति वाला बंधता हैं। जो बंध नाम मात्र का है। इस गुणस्थान में केवल अवस्थित परिणाम रहते हैं। इस गुणस्थान की समय मर्यादा समाप्त होने पर हायमान परिणाम होते हैं। उस वक्त दसवां गुणस्थान प्रारंभ हो जाता हैं।

बारहवां क्षीण मोह गुणस्थान– दसवें गुणस्थान में रहे हुए क्षपक श्रेणी वाले जीव, लोभ मोह के क्षय होने से मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृति क्षय हो जाने पर इस बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करते हैं इसलिये इसे क्षीण मोह गुणस्थान कहा गया हैं। इस गुणस्थान के अंत में जीव ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अंतराय इन तीन अवशिष्ट घाती कर्मों को क्षय करता हैं।

इस गुणस्थान की जघन्य उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त की स्थिति होती है, एक समय की स्थिति नहीं होती है। इस गुणस्थान में कोई भी जीव मरता नहीं हैं। यहां केवल वर्द्धमान परिणाम ही होते हैं। हायमान एवं अवस्थित परिणाम नहीं होते हैं।

तेरहवां सयोगी केवली गुणस्थान– बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में तीन कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान केवल दर्शन प्रकट होते है तब जीव को यह तेरहवां गुणस्थान प्राप्त होता हैं। इस गुणस्थान वाला सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहा जाता हैं। इसकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व की होती हैं। इसमें अपेक्षित मन वचन काया का योग प्रवर्त्तित होता है, अतः इसे सयोगी केवली गुणस्थान कहा गया हैं। इस गुणस्थान में सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली दोनों होते हैं। लम्बी उम्र वाले केवलज्ञान पर्याय में विचरण करते हैं। मुहूर्त्त मात्र आयु शेष रहने पर केवली के आयोजीकरण होता है जिसमें मुक्त होने के पूर्व की प्रक्रियाएं प्रारम्भ होती हैं। यथा- जिम्मेदारी के कर्तव्य पूर्ण करना दूसरों की जिम्मेदारी के कार्य उसके सुपुर्द करना, आवश्यक हो तो केवली समुद्घात करना, पाट आदि प्रत्यपणीय चीजें पुनः यथा स्थान लौटाना, फिर योग निरोध करना, जिसमें क्रमशः मन वचन काया के योगों का निरोध करना, शैलेषी अवस्था प्राप्त करना। ये सारी अवस्थाएं इसी गुणस्थान में होती हैं। शैलैषी अवस्था और योग निरोध जब पूर्ण होते है तब जीव के 13 वां गुणस्थान का समय पूर्ण हो जाता हैं। इस गुणस्थान में प्रायः अवस्थित परिणाम ही रहते है किन्तु अंतिम समयों में वर्द्धमान परिणाम होते हैं। जिनमें योग निरोध होता हैं।

चौदहवां अयोगी केवली गुणस्थान– तेरहवें गुणस्थान के अंतिम अंतर्मुहूर्त्त समय की प्रक्रियाओं में योग निरोध क्रिया एवं शैलेषी अवस्था पूर्ण होने पर जीव 14 वें गुणस्थान में प्रवेश करता हैं। इस गुणस्थान में प्रारंभ से ही शरीर के दो तिहाई भाग में आत्म प्रदेश अवस्थित हो जाते हैं। शरीर में उनका कम्पन भी बंद हो जाता है, श्वासोश्वास क्रिया भी बंध हो जाती हैं।

इस गुणस्थान में केवल वर्द्धमान परिणाम होते हैं। पांच लघु अक्षर उच्चारण जितने समय की स्थिति होती है, (अ, इ, उ, ऋ लृ, ये पांच लघु अक्षर है) इस स्थिति के पूर्ण होने पर अंतिम समय में अघाति कर्मों का क्षय करके, जीव सम्पूर्ण कर्म रहित, निरंजन, निराकार, परमात्मा-स्वरूप को प्राप्त करता हैं।

मुक्त होते हुए जीव, चार कर्म की निर्जरा करते हुए, तीनों शरीरों को छोडते हुए, ऋजुश्रेणि से, अस्पर्शद् गति से साकारोपयोग में वर्त्तते हुए सिद्ध होता हैं। तब जीव 14 वें गुणस्थान को भी छोड कर आत्म स्वरूपी सिद्ध अवस्था में सदा के लिये सादि अनंत स्थिति में लोकाग्र में अवस्थित हो जाता हैं। वहां रहे सिद्धों के आत्म प्रदेश अंतिम शरीर के अनुसार 2/3 भाग की अवगाहना में शरीर संस्थान के घन रूप में अवस्थित रहते हैं।

यह 14 गुणस्थानों का सामान्य स्वरूप पूर्ण हुआ। विशेष स्वरूप के लिये संलग्न चार्ट देखें-

गुणस्थान स्वरूप चार्ट-

	1 योग	2 ज्ञान अज्ञान	3 दर्शन	4 लेश्या	5 जीव के भेद	6 कर्म बंध	7 उदय	8 उदीरणा	9 सत्ता	10 निर्जरा	11 चारित्र	12 नियंठा	13 परीषह
पहला	13	3 अ.	3	6	14	7/8	8	6/7/8	8	8	असंयम	×	×
दूसरा	13	3 अ.	3	6	6	7/8	8	6/7/8	8	8	असंयम	×	×
तीसरा	10	3 अ.	3	6	1	7	8	6/7/8	8	8	असंयम	×	×
चौथा	13	3 अ.	3	6	2	7/8	8	6/7/8	8	8	असंयम	×	1
पांचवा	12	3	3	6	1	7/8	8	6/7/8	8	8	संयमा सयम	×	1
छठा	14	4	3	6	1	7/8	8	6/7/8	8	8	3	4	
सातवां	11	4	3	3	1	7/8	8	6/7/8	8	8	3	3	
आठवां	9	4	3	1	1	7	8	6/7	8	8	2	1 क.	
नौवां	9	4	3	1	1	7	8	6/7	8	8	2	1 क.	
दसवां	9	4	3	1	1	6	8	6/5	8	8	1 सू.	1 क.	
ग्यारहवां	9	4	3	1	1	1	7	5	8	7	1 य.	1 नि .	
बारहवां	9	4	3	1	1	1	7	5/2	7	7	1	1 नि .	
तेरहवां	7	1	1	1	1	1	4	2	4	4	1	1 स्ना .	
चौदहवां	×	1	1	×	1	×	4	2/×	4	4	1	1 स्ना .	

14 गुणस्थान आगत	15 गुणस्थान गत	16 सम.	17 आहारक	18 ध्यान	19 संज्ञा	20 संहनन	21 समुद्घात	22 शास्वत	23 उपजे	24 पावे	25 अल्पबहुत्व
2,3,4,5,6	3,4,5,7	1	दोनों	2	4	6	5	शास्वत	असंख्य	अनंत	11 अनंतगुणा
4,5,6	1	1	दोनों	2	4	6	5	अशास्वत	असंख्य	असंख्य	8 असंख्यगुणा
1,4,5,6	1,4,5,7	1	आहारक	2	4	6	5	अशास्वत	असंख्य	असंख्य	9 असंख्यगुणा
1,3,4,5,6,7 से 11	1,2,3,5,7	4	दानों	3	4	6	5	शास्वत	असंख्य	असंख्य	10 असंख्यगुणा
1,3,4,6	1,2,3,4,7	4	आहारक	3	4	6	5	शास्वत	असंख्य	असंख्य	7 असंख्यगुणा
7	1,2,3,4,5,7	4	आहारक	2	4	6	6	शास्वत	अनेक हजार	अनेक हजार करोड	6 संख्यातगुणा
1,3,4,5,6,8	6,8,4	4	आहारक	1 धर्म	×	6	2	अशास्वत	अनेक हजार	अनेक सौ करोड	5 संख्यातगुणा
7,9	7,9,4	2	आहारक	शुक्ल	×	1	×	अशास्वत	162	अनेक सौ	3 संख्यातगुणा
8,10	8,10,4	2	आहारक	शुक्ल	×	1	×	अशास्वत	162	अनेक सौ	3 संख्यातगुणा
9,11	9,11,12,4	2	आहारक	शुक्ल	×	1	×	अशास्वत	162	अनेक सौ	3 संख्यातगुणा
10	10,4	2	आहारक	शुक्ल	×	1	×	अशास्वत	54	अनेक सौ	1 सबसे अल्प
10	13	1	आहारक	शुक्ल	×	1	×	अशास्वत	108	अनेक सौ	2 संख्यातगुणा
12	14	1	दानों	शुक्ल	×	1	1	शास्वत	108	अनेक करोड	4 संख्यातगुणा
13	मोक्ष	1	आहारक	शुक्ल	×	1	×	अशास्वत	108	अनेक सौ	2 संख्यातगुणा

विशेष- 1. परीषह आठवें गुणस्थान में दर्शन परीषह नहीं होता हैं। नौवें गुणस्थान में अरति, भय, जुगुप्सा ये तीन मोहनीय कर्म की प्रकृति नहीं होने से- अरति, निषद्या, अचेल ये तीन परीषह नहीं होते हैं। 2. समुद्घात- 10, 11, 12 गुणस्थान में समुद्घात नहीं होती है यह भगवती श. 25 उ-6-7 से स्पष्ट हैं। अणुत्तर विमान में अप्रमत (सातवें) गुणस्थान वाले ही जाते है अतः सातवें गुणस्थान तक मरण समुद्घात होती हैं। श्रेणि के बाद के गुणस्थानों में ये समुद्घातें नहीं होती है ऐसा फलित होता हैं। 3. आठ से 12 गुणस्थान तक उत्कृष्ट अनेक सौ जीव पाये जा सकते हैं। एक समय में प्रवेश पाने वालों की उत्कृष्ट संख्या 54 आदि कही गई है किन्तु अंतर्मुहूर्त की स्थिति में अन्य भी 34 आदि आ सकने के कारण अनेक सौ की संख्या हो जाती हैं। 14 वें गुणस्थान में भी ऐसा ही समझना। तेरहवें की स्थिति वर्षों की होने से वह गुणस्थान शाश्वत है अतः वहां अनेक करोड केवली पाये जाते हैं।

संकेत सूचि-

आहाराक द्विक	-	आहाराक शरीर एवं आहारक अंगोपांग नाम
जाति चतुष्कद्विक	-	एकेन्द्रियादि चार
जाति त्रिक	-	विकलेन्द्रिय
स्थावर चतुष्क	-	स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण नाम
नपुंसक चतुष्क	-	नपुंसक वेद, सेवार्त्त, हुण्डक, मिथ्यात्व
नरक त्रिक	-	गति, आनुपूर्वी, आयु ।
दुर्भग त्रिक	-	दुर्भग, दुस्वर, अनादेय।
निद्रात्रिक	-	निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि
तिर्यंचत्रिक	-	गति, आनुपूर्वी, आयु
त्रस नवक	-	यशोकीर्ति छोडकर,
सुरद्विक	-	गति, आनुपूर्वी
त्रस दसक	-	त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, शुभग, सुस्वर, आदेय, यश-कीर्ति।
स्थावर दसक	-	स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति।
प्रत्येक प्रकृति	-	उपघात, पराघात, आतप, उद्योत, तीर्थंकर, निर्माण, अगुरूलघु, उच्छ्वास, विहायोगति द्विक।
वैक्रिय अष्टक	-	2 गति, 2 अनुपूर्वी, 2 आयु, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग। अथवा नरक, त्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक।
एकेंद्रिय त्रिक	-	एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप।
अनंतानुबंधी की छबीसी	-	अनंतानुबंधी चतुष्क, 4 संघयण, 4 संस्थान, निद्रात्रिक, दुर्भगत्रिक, तिर्यचत्रिक, अशुभ गति, स्त्री वेद, उच्चगौत्र, उद्योत नाम, और मनुष्यायु।।
चौबीसी	-	तीर्यंच, मनुष्यायु दो कम छबीसी।
बतीसी	-	छबीसी में 6 बढी -मनुष्यद्विक, औदारिक द्विक, वज्रऋषभ नाराच संघयण, देवायु।
जिनपंचक	-	जिननाम, देव द्विक, वैक्रियद्विक।
औदारिक पंचक	-	मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक, 1 संघयण।

जिन एकादश - वैक्रिय अष्टक, आहारकद्विक, जिननाम।

सूक्ष्म त्रयोदशी - सूक्ष्म त्रिक, एकेन्द्रिय त्रिक, विकलत्रिक, नपुंसक चौक,

नोट- कर्म ग्रंथ में कृष्णादि 3 लेश्या में गुणस्थान 4 माने हैं। क्षायिक समकित में आयुबंध 7 वें गुणस्थान की तरह माना हैं।

8वाँ गुणस्थान	9वाँ गुणस्थान	10वाँ गुणस्थान (अंतर)
क्षपक, उपशमक श्रेणी प्रारंभ	श्रेणी पूर्व की चालू है	श्रेणी पूर्व की चालू है
15 प्रकृतियाँ क्षीण/उपशांत	21 क्षीण/उपशांत	27 क्षीण/उपशांत
हास्यादि 6 क्षय/उपशम	3 वेद, 3 कषाय/क्षय/उपशम	लोभ का क्षय/उपशम
बादर कषाय है संज्वलन 4	बादर कषाय है, संज्वलन 4	सूक्ष्म लोभ मात्र है
तीनों परिणाम है परिणाम में भिन्न	तीनों परिणाम है भिन्नता नहीं	हीयमान वर्द्धमान दो है भिन्नता नहीं
अंतर	**11वाँ गुणस्थान**	**12वाँ गुणस्थान अंतर**
प्रकृतियाँ	मोहनीय की 28 उपशांत/7 का उदय	28 प्रकृतियाँ क्षीण, ज्ञाना-दर्श. अंत क्षय
समकित	औपशामिक क्षायिक दोनों/उपशम श्रेणी	क्षायिक/क्षपक श्रेणी
चारित्र	औपशामिक यथाख्यात	क्षायिक चारित्र
उपमा	राख से ढ़की अग्निवत् मोहनीय	जल से बुझी क्षीण
गति	11वें काल करे अणुत्तर (9, 8, 7 में)	काल नहीं करता
गिरना	11 से 10, 7 यों पहले तक गिर सकता है	पतित नहीं होता क्षपक श्रेणी 13-14 जाये
स्थिति	ज. 1 समय (काल करे तो) उ.अं.मु.	ज.उ. अंतर्मुहूर्त
भव	11वें के 3 आराधक के 15/देशोन अ.पु.	भव नहीं, उसी भव मोक्ष
संहनन	पहले तीन	पहला
सत्ता निर्जरा	8 कर्म की	7 कर्म की

अंतर	13वाँ गुणस्थान	14वाँ गुणस्थान
योग	सयोगी, सलेशी	अयोगी, अलेशी
ध्यान	ध्यानांतरिका, शुक्ल ध्यान तीजा पाया	शुक्ल ध्यान चौथा पाया
ज्ञान	केवलज्ञान, दर्शन नवीनोत्पन्न	दोनों पूर्वोत्पन्न धारे हुए
कर्मोदय	अंतिम समय तक 4 अघाति कर्म है	अंतिम समय में चारों का क्षय
समुद्घात	केवली समुद्घात संभव है	नहीं
भाषकादि	भाषक, अभाषक दोनों	अभाषक है
स्थिति	ज.अं., उत्कृष्ट देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष	5 लघु अक्षर

पहला गुणस्थान	अंतर्मुहूर्त	तीसरे भंग की स्थिति उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पु.प.
दूसरे गुणस्थान	1 समय	छ आवलिका
तीसरा, बारहवाँ	अंतर्मुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
चौथे की	अंतर्मुहूर्त	33 सागर झाझेरी
पाँचवाँ, तेरहवाँ	अंतर्मुहूर्त	देशोन क्रोड़ पूर्व
छठा	1 समय	देशोन क्रोड़ पूर्व
7 से 11 तक	1 समय	अंतर्मुहूर्त

प्रथम तीन गुणस्थान में	3	औदयिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक
चार से 7 गुणस्थान में	4	औदयिक, क्षायो. औप., पारि.
8 से 11 गुणस्थान में	5	उपशम श्रेणी वाले को पाँच
8 से 12 गुणस्थान में	4	क्षपक श्रेणी वाले को चार (औप. छोड़)
13वाँ 14वाँ गुणस्थान में	3	औदयिक, क्षायिक, पारिणामिक
सिद्ध भगवान	2	क्षायिक, पारिणामिक

1 से 4 गुण.	**5वें में**	**6 से 14 गुणस्थान**	**विशेषता**	**गुण. स्थान**	**विशेषता में गुणस्थान सं.**
असंयत	संयता संयत	संयत	शाश्वत गुण.	6	1, 4, 5, 6, 13
अप्रत्याख्यानी	प्रत्या. प्रत्याख्यानी	प्रत्याख्यानी	अमर गुण.	3	3, 12, 13
अविरत	विरता विरत	विरत	अप्रतिपाति गुण.	3	12, 13, 14
असंवृत	संवृता संवृत	संवृत	अनाहारक गुण.	5	1, 2, 4, 13, 14
अपंडित	बाल पंडित	पंडित	वाटे वहता गुण.	3	1, 2, 4
अजागृत	सुप्त जागृत	जागृत	तीर्थंकर न स्पर्शे	5	1, 2, 3, 5, 11
अधर्मी	धर्मी धर्मी	धर्मी	उसी भवमोक्ष जाने वाले	8	4, 7, 8, 9, 10, 12, 13, 14
अधर्म व्यवसायी	धर्मा धर्म व्यवसायी	धर्म व्यवसायी	तीर्थंकर नाम के बंधक	5	4 से 8

	योग			उपयोग	
1, 2, 4थे गुण. में	13	आहारक, आह. मिश्र छोड़कर	पहले तीसरे में	6	3 अज्ञान 3 दर्शन
तीसरे में	10	4 मन 4 वचन 1 औ.1 वै.	2, 4, 5वें में	6	3 ज्ञान 3 दर्शन
5वें में पाँचवें में	12	आहा. आहा. मिश्र, कार्मण छोड़	6 से 12वें तक	7	4 ज्ञान 3 दर्शन
छठे में	14	कार्मण छोड़कर	13वें 14वें में	2	केवलज्ञान केवलदर्शन
7वे में	11	औ.मि., वै.मि., आ.मि. कार्मण छोड़			
8 से 12 में	9	4 मन, 4 वचन 1 औद.	सिद्ध में	2	केवलज्ञान केवलदर्शन
13वें में	5/7	2 मन 2 वचन 1 औ./2 औ. 1 का.			
14वें में	0	योग निरोध			

पहले गुण. में	55	आहारक, आहारक मिश्र कम
दूसरे गुण. में	50	उपरोक्त में 5 मिथ्यात्व छूटे
तीसरे में	43	अनंतानुबंधी चार, औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, कार्मण ये सात उपरोक्त से कम
चौथे में	46	ऊपर के अतिरिक्त औदा. मिश्र, वै. मिश्र कार्मण भी जुड़े
पाँचवें में	40	उपरोक्त में से अप्रत्याख्यान चतुष्क, त्रस की अविरति, कार्मण कम
छठे गुण. में	27	14 योग 13 कषाय (संज्वलन चतुष्क नौ नो कषाय)
7-8 गुण. में	22	औदा. मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, आहारक, आहा. मिश्र छूटे 27 में से
नवमें गुण.	16	22 में से 6 हास्यादि कम
10वें गुण में	10	9 योग और संज्वलन लोभ
11वें 12वें गुण.	9	4 मन, 4 वचन, 1 औदारिक
13वें गुण.	5/7	सत्य मन, व्य. मन, सत्य भाषा, व्य. भाषा, औदारिक, औ. मिश्र, कार्मण (और पाँच) हो तो (औदा. मिश्र, कार्मण छोड़ना)
14वें में	-	कोई हेतु नहीं।

	आगति	गति
पहले गुण. में	पाँच-2, 3, 4, 5, 6 से आ सकता है	चार-3, 4, 5, 7 में जा सकते है
दूसरा गुण. में	तीन-4, 5, 6	एक-पहला
तीसरा गुण. में	चार-1, 4, 5, 6	चार-गिरे तो पहला, चढ़े तो 4, 5, 7
चौथा गुण. में	नौ-1, 3, 5 से 11	पाँच-चढ़े तो पांचवा, सातवाँ, गिरे तो 3, 2, 1
पाँचवें गुण. में	चार-1, 3, 4, 6	पाँच-चढ़े सातवाँ, गिरे 4, 3, 2, 1
छठे गुण. में	एक सातवाँ	छ-चढ़े सातवाँ, गिरे 5, 4, 3, 2, 1
सातवें गुण. में	छ-1, 3, 4, 5, 6, 8	तीन-चढ़े आठवाँ, गिरे तो छठा काल करे चौथा
आठवें गुण. में	दो-7, 9	तीन-चढ़े नवां, गिरे 7वाँ, काल करे चौथा
नवें गुण. में	दो-8, 10	तीन चढ़े दसवाँ, गिरे 8वाँ, काल करे चौथा
दसवें गुण. में	दो-9, 11	चार चढ़े 11-12, गिरे नवां, काल चौथा में
ग्यारवें गुण. में	एक 10वाँ	दो-गिरे दसवाँ, काल करे तो चौथा
बारहवें गुण. में	एक 10वाँ	एक-13वाँ
तेहरवां गुण. में	एक 12वाँ	एक-14वाँ
चौदहवां गुण. में	एक 13वाँ	एक-मोक्ष

पहले गुण. में	24	सभी 24 दंडक	84 लाख	जीव योनि
2रे गुण.	19	पाँच स्थावर कम	32 लाख	एके. 52 लाख छूटे
3-4 में	16	पाँच स्था. तीन विकले. कम	26 लाख	छ लाख विकले. भी छूटे
5वें में	2	संज्ञी ति.पं., संज्ञी मनुष्य	18 लाख	4 लाख ति.पं. 14 लाख मनुष्य
6 से 14 गुण.	1	संज्ञी मनुष्य	14 लाख	मनुष्य की
सिद्ध भग.	0	दंडक नहीं	0	जीवयोनि मुक्त

गुणस्थान	एकभव अपेक्षा		अनेक भवों की अपेक्षा	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
पहला	सादिसांत	तीसरे भंग की अपेक्षा		
दूसरा	एक बार	2 बार	दो बार	पाँच बार
3, 4, 5 गुण.	एक बार	पृथकत्व हजार बार	दो बार	असंख्यात बार
6, 7 गुण.	एक बार	पृथकत्व सौ बार	दो बार	पृथकत्व हजार बार
8, 9, 10	एक बार	4 बार	दो बार	9 बार
ग्यारहवाँ	एक बार	2 बार	दो बार	4 बार
12, 13, 14	एक बार	1 बार	-	-

गुणस्थान	अल्प बहुत्व	कम अधिक के कारण
11वें गुण. वाले	सबसे कम	1 समय में उपशम श्रेणी वाले 54 जीव
12वें 14वें गुण. वाले	संख्याता गुना	1 समय में क्षपक श्रेणी वाले 108 जीव
8, 9, 10वें	संख्याता गुना	1 समय में पृथकत्व 100 जीव
13वें	संख्याता गुना	1 समय में पृथकत्व करोड़ जीव
7वें	संख्याता गुना	1 समय में पृथकत्व 100 करोड़ जीव
6ठे	संख्याता गुना	1 समय में पृथकत्व हजार क्रोड़ जीव
5वें	असं. गुणा	दूसरे से तीसरे गुण. की स्थिति असं. गुणा अधिक है
दूसरे	असं. गुणा	सास्वादन समकित चारों गति में होती है
तीसरे	असं. गुणा	असंख्यात सन्नी तिर्यंच भी श्रावक व्रती होते हैं
चौथे गुण.	असं. गुणा	तीसरे से चौथे गुण. की स्थिति अधिक है
सिद्ध	अनंतगुणा	सिद्ध अनंतगुणा होते हैं
पहले गुण. वाले	अनंतगुणा	साधारण वनस्पति के जीव सिद्धों से भी अनंतगुणा होते हैं, वे मिथ्यात्वी होते हैं।

गुणस्थानों पर बंध उदय उदीरणा सत्ता का अधिकार

1 बंध विचार

समुच्चय 120 प्रकृति का बंध होता हैं। 148 में से 28टली । 5 बंधन 5 संघातन 16 वर्णादि, समकित, मिश्र मोहनीय, इन 28 का बंध नहीं होता हैं।

1. पहले गुणस्थान में- 117 प्रकृति का बंध होता हैं। 120 में से आहारकद्विक और तीर्थंकर नाम ये 3 कम हुई।

2. दूसरे गुणस्थान में- 101 प्रकृति का बंध होता हैं। 117 में से 16 प्रकृति टली। जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, नपुंसक चतुष्क, नरक त्रिक आतप नाम, ये 4 + 4 + 3 + 1 = 16

3. तीसरे गुणस्थान में- 74 प्रकृति का बंध होता हैं। 101 में से 27 टली तब 74 रही। अनन्तानुबंधी चौक, मध्यम के चार संघयण, चार संठाण, दुर्भगत्रिक, निद्रा त्रिक, तिर्यक त्रिक, नीचगौत्र, उघोत नाम, अशुभ विहायोगति, स्त्री वेद, मनुष्यायु, देवायु। ये 4 + 4 + 4 + 3 + 3 + 3 + 1 + 1 + 1 + 1 + 1 + 1 = 27

4. चौथे गुणस्थान में- 77 प्रकृति का बंध होता है। 74 पूर्व की और मनुष्यायु, देवायु, तीर्थंकर नाम, ये 3 बढ़ने 77 हुई।

5. पांचवें गुणस्थान में- 67 प्रकृति का बंध होता है। 77 में से 10 टली। अप्रत्याख्यानी चौक, मनुष्य त्रिक, औदारिक द्विक, व्रजऋषभनाराच संघयण। ये 4 + 3 + 2 + 1 = 10 टली।

6. छट्ठे गुणस्थान में- 63 प्रकृति का बंध होता है। 67 में से प्रत्याख्यानी चौक टला।

7. सातवें गुणस्थान में- 59 व 58 प्रकृति का बंध होता है। अरति, शोक, असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ, अयशोकीर्ति, ये 6टली और आहारक द्विक बढ़ा तब 63 - 6 = 57 + 2 = 59, देवायु का बंध छट्ठे गुणस्थान में शुरू किया हुआ यहां सातवें गुणस्थान में हो सकता है इसलिए 59 और देवायु का बंध शुरू नहीं हुआ हो तो 58 प्रकृति का बंध।

8. आठवें गुणस्थान में– इस गुणस्थान के सात भाग है। पहले भाग में 58 प्रकृति का बंध। दूसरे से छट्ठे भाग तक 56 प्रकृति का बंध होता है। दो निन्द्रा टली, 7 वें भाग में 26 का बंध होता है। 30 प्रकृति टली। यथा- सुरद्विक, पंचेन्द्रियजाति, शुभविहायोगति, त्रसनवक (यशोकीर्ति को छोड़ कर), शरीर चतुष्क, (औदारिक छोड़कर), अंगोपांग द्विक (वैक्रिय और आहारक) प्रथम संस्थान, वर्णचतुष्क, प्रत्येक नाम की 6 प्रकृति (अगरूलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, जिननाम, निर्वाणनाम) ये कुल 2+ 1 + 1 + 9 + 4 + 2 + 1 + 4 + 6 = 30 प्रकृति टली। 5 ज्ञानावरणीय, 5 अंतराय, 4 दर्शनावरणीय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, संज्वलनचतुष्क, सातावेदनीय, उच्चगौत्र, यशोकीर्ति, पुरूष वेद। ये कुल 5 + 5 + 4 + 1 + 1 + 1 + 1 + 4 + 1 + 1 + 1 + 1 = 26 का बंध है।

9. नौवें गुणस्थान में– इसके 5 भाग है। पहले भाग में 22 प्रकृति का बंध होता है। हास्यादि 4 टली। दूसरे भाग में 21, एक पुरूष वेद टला। तीसरे में क्रोध छोड़कर 20 का बंध। चौथे भाग में ''मान'' को छोड़ कर 19 प्रकृति का बंध। पांचवें भाग में ''माया'' को छोड़कर 18 प्रकृति का बंध होता है।

10. दसवें गुणस्थान में– उपरोक्त 18 प्रकृति में से संज्वलन लोभ को टाल कर 17 प्रकृति का बंध होता है।

11,12,13. गुणस्थान में– केवल साता वेदनीय का बंध होता है। 16 टली। ज्ञानावरणीयादि तीन कर्म की (14) तथा यशोकीर्ति, उच्च गौत्र। ये कुल 16 टली।

14. वें गुणस्थान में– बंध नहीं है।

2. उदय विचार

समुच्चय 122 प्रकृति का उदय होता है- 120 पूर्व की तथा समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय ये 2 बढ़ी।

1. पहले गुणस्थान में– 117 प्रकृति का उदय। बंध के समान।

2. दूसरे गुणस्थान में– 109 प्र. का उदय।

नाम कर्म की 5 मोहनीय की 1 = 6 कम 117 - 6 = 111/109

3. तीसरे गुणस्थान में– 100 प्रकृति का उदय, 111 में से 10 वर्जी (अनन्तानुबंधी चौक, तीन आनुपूर्वी, तीन जाति नाम) मिश्रमोहनीय बढ़ी।

4. चौथे गुणस्थान में– 104 प्रकृति का उदय। चार अनुपूर्वी, समकित मोहनीय ये पांच बढ़ी और मिश्र मोहनीय घटी।

5. पांचवें गुणस्थान में– 87 प्रकृति का उदय। 104 में से 17 टली यथा-अप्रत्याख्यानी चतुष्क, वैक्रिय अष्टक, दुर्भग त्रिक, तिर्यच, मनुष्य अनुपूर्वी, ये 4 + 8 + 3 + 2 = 17

6. छट्ठे गुणस्थान में– 81 प्रकृति का उदय। 87 में से प्रत्याख्यानी चतुष्क तिर्यच-द्विक, उद्योतनाम, नीचगौत्र, ये टली तब 79 रही और आहारक द्विक बढ़ी तब 81 हुई।

7. सातवें गुणस्थान में– 76 प्रकृति का उदय। 81 में से निद्रा त्रिक और आहरक द्विक ये पांच टली।

8. आठवें गुणस्थान में– 72 प्रकृति का उदय। अंतिम तीन संघयण व समकित मोहनीय ये 4 टली।

9. नवमें गुणस्थान में– 66 प्रकृति का उदय 72 में से हास्यादिक 6 टली।

10. दसवें गुणस्थान में– 60 प्रकृति का उदय। संज्वलन त्रिक व तीन वेद ये 6 टली।

11. ग्याहरवें गुणस्थान में– 59 प्रकृति का उदय। एक संज्वलन लोभ टला।

12. बारहवें गुणस्थान में- इसके दो भाग। पहले भाग में 2 दो संघयण टाल कर 57 का उदय। दूसरे भाग में निद्रा द्विक छोड़कर 55 का उदय।

13. तेरहवें गुणस्थान में- 42 प्रकृति का उदय। 14 प्रकृति टली, एक जिन नाम बढ़ी।

14. चौदहवें गुणस्थान में- 12 प्रकृति का उदय। 42 में से 30 टली। औदारिक द्विक, अस्थिरद्विक, विहायोगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान छः, प्रत्येक प्रकृति पांच (अगुरूलघु, उपघात, पराघात, श्वासोश्वास, निर्वाण) वर्णादि चतुष्क, तेजस-कार्मण शरीर, वज्रऋषपभनाराच, स्वर द्विक, असाता या साता वेदनीय में से एक ये कुल 2 + 2 + 2 + 3 + 6 + 5 + 4 + 2 + 1 + 2 + 1 = 30 टली, 12 प्रकृति रही सुभग, आदेय, यशोकीर्ति, साता-असाता में से एक, त्रस त्रिक, पंचेन्द्रिय जाति मनुष्य गति, और आयु, जिन नाम, उच्च गौत्र। ये कुल 12 प्रकृति का उदय चौदहवें गुणस्थान के अंत तक रहता है।

3. उदीरणा विचार

पहले गुणस्थान से छट्ठे गुणस्थान तक उदीरणा, उदय के अनुसार है। सातवें से 13 वें गुणस्थान तक उदय की प्रकृति में से वेदनीय द्विक व मनुष्यायु ये तीन टली। कारण कि इन गुण स्थानों में इन प्रकृतियों की उदीरणा नहीं होती।

4. सत्ता विचार

समुच्च 148प्रकृति की सत्ता होती है।

1. पहले गुणस्थान में- 148प्रकृति की सत्ता।

2. दूसरे गुणस्थान में- 147 प्रकृति की सत्ता। जिन नाम टला।

3. चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान में- चार चार भेद- 1. बद्धायु क्षयोपशम समकित 2. अबद्धायु क्षयोपशम समकित 3. बद्धायु क्षायिक समकित 4. अबद्धायु क्षायिक समकित।

पहले भाग में 148 की सत्ता। दूसरे भाग में 145 की (नरक, तिर्यक, देवायु छोड़कर) तीसरे भाग में 141 की, 148 में से अनन्तानुबंधी चतुष्क व तीन दर्शन मोहनीय, ये सात टली। जिससे 141 रही। चौथे भाग में 138की सत्ता, 141 में से तीन आयुष्य कम हुए।

4. आठवें गुणस्थान से 11वें गुणस्थान तक तीन श्रेणी-

1. उपशम समकित उपशम श्रेणी 2. क्षायक समकित उपशम श्रेणी 3. क्षायक समकित क्षपक श्रेणी।

पहली श्रेणी में- 148, 146व 142 की सत्ता। नरक तिर्यंच आयुष्य टालने पर 146, अनन्तानुबधी चतुष्क और टालने पर 142 प्रकृति की सत्ता।

दूसरी श्रेणी में- 138 प्रकृति की सत्ता। 148 में से दर्शन सप्तक व तीन आयुष्य ये 10 कम होने से 138 रही।

तीसरी श्रेणी में- नवें गुणास्थान में - इसके नौ भाग है।

पहले भाग में- 138, दूसरे भाग मे- 122, स्थाविर त्रिक, एकेन्द्रिय चतुष्क, नरक द्विक, तिर्यच द्विक, आतप-उद्योत, निद्रा त्रिक, ये 3 + 4 + 2 + 2 + 2 + 3 = 16 टली।

तीसरे भाग में- 114 की सत्ता। 122 में से अप्रत्याख्यानी चतुष्क और प्रत्याख्यानी चतुष्क ये आठ कम हुई।

चौथे भाग में- 113 प्रकृति की सत्ता। नपुंसक वेद कम हुआ।

पांचवें भाग में- 112 की सत्ता। स्त्री वेद कम हुआ।

छट्ठे भाग में- 106 की सत्ता। हास्यादि 6 कम हुए।

सातवें भाग में- 105 की सत्ता। पुरूष वेद टला।

आठवें भाग में- संज्वलन क्रोध को छोड़कर 104 की सत्ता।

नौवें भाग में- मान को छोड़कर 103 की सत्ता।

5. दसवें गुणस्थान में– इसके दो भाग। पहले भाग में माया छोड़कर 102 की सत्ता तथा दूसरे भाग में लोभ छोड़कर 101 की सत्ता है।

6. बारहवें गुणस्थान में– इसके दो भाग। पहले भाग में 101 की सत्ता। दूसरे भाग में 99 की सत्ता। निद्रा व प्रचला ये दो टली।

7. तेरहवें गुणस्थान में– 14 प्रकृति छोड़कर 85 की सत्ता) तीन कर्म की 14 प्रकृति घटी।

8. चौदहवें गुणस्थान में– 13 की सत्ता। उदयवत् 12 एवं मनुष्यानुपूर्वी बढ़ी।

बंधाधिकार यंत्र-

गुणस्थानों के नाम	मूल प्रकृतियाँ	उ.प्रकृति	ज्ञा.	द.	वे.	मो.	आ.	ना.	गौ.	अंत
ओध से	8	120	5	9	2	23	4	67	2	5
मिथ्यात्व में	8	117	5	9	2	23	4	64	2	5
सास्वादन में	8	101	5	9	2	24	3	51	2	5
मिश्र में	8	74	5	6	2	19	0	36	1	5
अविरत में	8	77	5	6	2	19	2	37	1	5
देशविरत में	8	67	5	6	2	15	1	32	1	5
प्रमत्त में	8	63	5	6	2	11	1	32	1	5
अप्रमत्त में	8/7	59/67	5	6	1	9	1/0	31	1	5
अपूर्वकरण गुणस्थान	7	58	5	6	1	9	0	31	1	5
के सात भागों में	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5
	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5
	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5
	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5
	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5
	7	26	5	4	1	9	0	1	1	5
अनिवृत्ति बादर गुणस्थान	7	22	5	4	1	5	0	1	1	5
के पांच भागों में	7	21	5	4	1	4	0	1	1	5
	7	20	5	4	1	3	0	1	1	5
	7	19	5	4	1	2	0	1	1	5
	7	18	5	4	1	1	0	1	1	5
सूक्ष्म सम्पराय में	6	17	5	4	1	0	0	1	1	5
उपशांत मोह में	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0
क्षीण मोह में	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0
सहयोगी गुणस्थान में	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0
अयोगी गुणस्थान में	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0

उदय उदीरणा यंत्र-

गुणस्थानों के नाम	मूल प्रकृतियाँ	उत्तर प्रकृतियाँ	ज्ञाना वरणीय	दर्शना वरणीय	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गौत्र	अंतराय
0. ओघ से	8	122	5	9	2	18	4	67	2	5
1. मिथ्यात्व में	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5
2. सास्वादन में	8	111/9	5	9	2	25	4	59	2	5
3. मिश्र में	8	100	5	9	2	22	4	51	2	5
4. अविरत में	8	104	5	9	2	22	4	55	2	5
5. देशविरत में	8	87	5	9	2	18	2	44	2	5
6. प्रमत्त में	8	81	5	9	2	14	1	44	2	5
7. अप्रमत्त में	8	76	5	6	2	14	1	42	1	5
8. अपूर्वकरण में	8	72	5	6	2	13	1	39	1	5
9. अनिवृत्ति में	8	66	5	6	2	7	1	39	1	5
10. सूक्ष्म सम्पराय में	8	60	5	6	2	1	1	39	1	5
11. उपशांत मोह में	7	49	5	6	2	0	1	39	1	5
12. क्षीण मोह में	7	57/55	5	6/4	2	0	1	37	1	5
13. सयोगी में	4	42	0	0	2	0	1	38	1	0
14. अयोगी में	4	12	0	0	2	0	1	9	1	0

नोट- उदीरणा का चार्ट - यंत्र इसी प्रकार है परन्तु सातवें ुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक मूल प्रकृति में दो-दो कम समझना एवं उत्तर प्रकृति में तीन-तीन कम समझना। वेदनीय और आयु कर्म में सातवें गुणस्थान से आगे शून्य समझना। चौदहवें गुणस्थान में उदीरणा के सभी कालम में शून्य समझना।

सत्ता यंत्र-

गुणस्थानों के नाम	मूल प्रकृतियाँ	उत्तर प्रकृतियाँ	उपशम श्रेणी क्षयोसम	क्षपक श्रेणी क्षायिकसम	ज्ञाना	दर्शना	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गौत्र	अंतराय
ओघ से	8	148	0	0	5	9	2	28	4	93	2	5
मिथ्यात्व में	8	148/147	0	0	5	9	2	28	4	93	2	5
सास्वादन में	8	147	0	0	5	9	2	28	4	93	2	5
मिश्र में	8	147	0	0	5	9	2	28	4	93	2	5
अविरत में	8	148	148/145	141/138	5	9	2	28/21	4/1	93	2	5
देशविरत में	8	148	148/145	141/138	5	9	2	"	4/1	93	2	5
प्रमत्त में	8	148	148/145	141/138	5	9	2	"	4/1	93	2	5
अप्रमत्त में	8	148	148/145	141/138	5	9	2	"	4/1	93	2	5
अपूर्वकरण में	8	148	148,146, 142	138	5	9	2	28 24/21	4 2/1	93	2	5
अनिवृत्ति में	8	148	"	138	5	9	2	21	1	93	2	5
गुणस्थान के	8	148	"	122	5	6	2	21	1	80	2	5
नव भागों में	8	148	"	114	5	6	2	13	1	80	2	5
	8	148	"	113	5	6	2	12	1	80	2	5
	8	148	"	112	5	6	2	11	1	80	2	5
	8	148	"	106	5	6	2	5	1	80	2	5
	8	148	"	105	5	6	2	4	1	80	2	5
	8	148	"	104	5	6	2	3	1	80	2	5
	8	148	"	103	5	6	2	2	1	80	2	5
सूक्ष्म संपराय में	8	148/142	"	102	5	6	2	28-24 21-1	4/2/1	93/80	2	5
उपशांत मोह में	8	148/142	"	-	5	6	2	28-24/21	4/1	93/80	2	5
क्षीण मोह	7	101/99	0	101/99	5	6	2	0	1	80	2	5
अयोगी केवली में	4	85	0	85	0	0	2	0	1	80	2	0
सयोगी केवली में	4	85/13/12	0	85/13/12	0	0	2/1	0	1	80/9	2/1	0

मार्गणाओं की अपेक्षा गुणस्थानों पर बंध प्रकृतियां

मार्गणा गाथा- **गई इन्दिय काये जोए वेए कषाय नाणे य।**

संजम दंसण लेस्सा भव सम्मे सन्नी आहारे।।

1. गति मार्गणा

नरक गति- समुच्चय नरक तथा पहली दूसरी तीसरी नरक में 101 का बंध 120 में से 19 टली। वैक्रिय अष्टक, आहारकद्विक, सूक्ष्मत्रिक, ऐकेन्द्रियत्रिक विकलेन्द्रियत्रिक ये 19। पहले गुणस्थान में 100 प्रकृति का बंध, 101 में से जिन नाम वर्जकर। दूसरे गुणस्थान में 96 प्रकृतियों का बंध नपुंसक चौक छोड़कर। तीसरे गुण; में 70 प्रकृति का बंध अनंतानुबंधी की छब्बीसी वर्जी। चौथे गुण, में 72 का बंध।

मनुष्यायु और जिननाम बढ़ा।

चौथी पांचवी छट्ठी नारकी में 100 प्रकृति का बंध होता है। 101 में से जिन नाम वर्ज्यो। पहले दूसरे तीसरे गुणस्थान में पहली नारकी वत् चौथे गुणस्थान में 71 का बंध में मनुष्यायु बढ़ा। सातवीं नारकी में समुच्चय 99 का बंध 101 में जिन नाम और मनुष्याय कम हुआ। पहले गुणस्थान में 96, मनुष्य द्विक और उच्चगौत्र ये तीन प्रकृति टली दूसरे गुणस्थान में 91 का बंध। नपुंसक चौक और तिर्यांचायु ये पांच कम। तीसरे गुण में 70 का बंध अनंतानुबंधी की चौबीसी वर्जी और मनुष्य कीगति, आनुपूर्वी और उच्चगौत्र ये 3 बढ़ी।

तिर्यच गति– समुच्चय तथा पहले गुणस्थान में 117 प्रकृति का बंध आहारक द्विक, जिन नाम ये तीन टली। दूसरे गुणस्थान में 101 का बंध 16टली-नरक त्रिक, सूक्ष्म त्रिक एकेन्द्रिय त्रिक विकलेन्द्रिय त्रिक नपसंक चौक। तीसरे गुणस्थान में 69 का बंध एक सौ एक में से बतीसी टली। चौथे गुणस्थान में 70 का बंध देवायु बढ़ा। पांचवे गुण में 66 का अप्रत्याख्यानी चौक कम।

मनुष्य गति– समुच्चय 120 प्रकृति का बंध। पहले गु. में 117 का बंध। दूसरे गुण में 101 का बंध। तीसरे में 69 चौथे गुण में 71 देवायु और जिन नाम दो प्रकृति बढ़ी। पांचवे में 67 का बंध, अनन्तानुबंधी चौक घटा। छठे से 14 वें तक समुच्चय के समान

नोट– यह पर्याप्त मनुष्य तिर्यंच का बंध हुआ। अपर्याप्त का समुच्चय तथा प्रथम गुणस्थान में 109 प्रकृति का बंध।

देव गति– समुच्चय देव और पहला दूसरा देवलोक में 104 का बंध। पहला गुण में 103 का बंध। 104 में से जिन नाम वर्ज्यों। दूसरे गुणस्थान में 96 का बंध 103 में नपुंसक चौक और एकेन्द्रिय त्रिक ये 7 प्रकृति टली। तीसरे गुण में 70 का-बंध छब्बीसी टली। चौथे गुण में 72 जिन नाम और मनुष्यायु बढ़ा।

भवनपति व्यंतर ज्योतिषी में समुच्चय तथा **पहले गुण में–** 103 प्रकृति का बंध। जिन नाम छोड़कर। दूसरे में 96 तीसरे में 70 चौथे गुण में 71 मनुष्यायु बढा। तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक पहली नारकी वत-समुच्चय 101 का बंध। पहले गुण 100 दूसरे में 96 तीसरे में 70 और चौथे में 72 नौवें देवलोक से ग्रैवेयक तक समुच्चय 97 प्रकृति का बंध। 101 में से तिर्यंचत्रिक, उद्योत नाम ये चार टली। पहले गुणस्थान में 96का बंध। 97 में से जिन नाम घटा। दूसरे गुण में 92 नपुंसक चौक वर्जा। तीसरे गुणस्थान में 70 का बंध। 22 टली छब्बीसी में से तिर्यंच त्रिक और उद्योत नाम छोड़कर। क्यों कि पहले टल गई। चौथे गुणस्थान में 72 का बंध। मनुष्यायु और जिननाम दो प्रकृति बढ़ी। पांच अणुतर विमान में चौथे गुणस्थान में 72 का बंध।

(2) जाति मार्गणा– एकेन्द्रिय तथा विकलेंद्रिय में समुच्चय तथा पहले गुणस्थान में 109 प्रकृति का बंध। जिन एकादश कम। दूसरे गुणस्थान में 96 का बंध सूक्ष्म त्रयोदशी वर्जी। यदि 94 होवे तो दोनों आयु कम। पंचेन्द्रिय में 14 गुणस्थान ओघवत्।

(3) काया मार्गणा– पृथ्वी, पानी, वनस्पति में 109 का बंध। जिन एकादश नहीं। तेउवायु में 105 का बंध-मनुष्य त्रिक उच्चगौत्र छोड़कर। त्रस काया में 14 गुणस्थान ओघवत्।

(4) योग मार्गणा– 4 मनयोगी 4 वचन योगी में 13 गुणस्थान ओघवत्। औदारिक योग मनुष्य का तरह। औदारिक के मिश्र में 114 तथा 112 का बंध। 6 तथा 8 टली। नरक त्रिक, आहारक द्विक, देवायु ये 6 तथा मनुष्य तिर्यक का आयु ये आठ। पहले गुणस्थान में 109 तथा 107 का बंध। जिन पंचक वर्जा। दूसरे गुणस्थान में 96 तथा 94 सूक्ष्म त्रयोदशी वर्जी, तीसरा गुणस्थान नहीं हैं। चौथे में 75 चौबीसी वर्जी और जिन पंचक बढ़ा। तेरहवें गुणस्थान में साता वेदनीय का बंध। वैक्रिय में

समुच्चय देववत। वैक्रिय मिश्र में 102 का बंध देवता की 104 में से दो आयुष्य टला। पहले गुणस्थान में 101 जिननाम टला। दूसरे गुणस्थान में 94 का बंध नपुंसक चौक और एकेन्द्रिय त्रिक वर्ज्यों। चौथे गुणस्थान में 71 का बंध। अंनतानुबंधी की चौबीसी टली और जिननाम बढ़ा।

आहारक मिश्र में 63 प्रकृति का समुच्चय बंध, 6 व 7 गुणस्थान में औघवत् कार्मण में समुच्चय 112 का बंध। औदारिक की 114 में से तिर्यच मनुष्यायु वर्ज्यो। पहले गुणस्थान में 107 प्रकृति का बंध। जिन पंचक वर्ज्यो। दूसरे गुणस्थान में 94 का बंध। सूक्ष्म त्रयोदशी टली। चौथे गुणस्थान में 75 प्रकृति का बंध । 94 में चौबीसी टली जिन पंचक बढ़ा। तेरहवें गुणस्थान में एक प्रकृति का बंध।

(5) वेद मार्गणा– तीनों वेद में ओघवत् बंध नवमें गुणस्थान तक।

(6) कषाय मार्गणा– अनंतानुबंधी चतुष्क दूसरे गुणस्थान तक, अप्रत्याख्यानी चौक चौथे गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानी चौक पांचवें गुणस्थान तक, संज्वलन चौक नवमें गुणस्थान तक होता हैं। बंध की प्रकृति ओघवत्।

(7) ज्ञान मार्गणा– तीन ज्ञान में समुच्चय 79 का बंध। समुच्चय के बंध की चौथे गुणस्थान की 77 प्रकृति और आहारक द्विक बढ़ी। चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक बंध प्रकृति ओघवत्। मनः पर्यावज्ञान में समुच्चय में 65 प्रकृति का बंध। छट्ठे गुणस्थान से 12 वें तक ओघवत्। केवल ज्ञान में 13 वें गुणस्थान में बंध एक प्रकृति का, 14 वें बंध नहीं।

तीन अज्ञान में समुच्चय 117 प्रकृति का बंध। पहले व तीसरे गुण में बंध ओघ प्रकृति वत्।

(8) संयम मार्गणा– सामायिक, छेदोपस्थापनीय में समुच्चय 65 प्रकृति का बंध। छठे से नवें गुणस्थान तक औघवत्। परिहार विशुद्ध चारित्र में समुच्चय 65 छठे सातवें गुणस्थान में ओघवत्। सूक्ष्म संपराय चारित्र में समुच्चय 17 और दसवें गुणस्थान में 17 यथाख्यात में 1 बंध। देश विरति में ओघ व पाचवें गुणस्थान में 67 का बंध। असंयम में समुच्चय 118 का बंध आहारक द्विक नहीं। चौथे गुणस्थान तक ओघवत्।

(9) दर्शन मार्गणा– चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन में 12 गुण तक ओघवत्। अवधि दर्शन में समुच्चय बंध 79 का। चौथे से 12 वें गुणस्थान तक समुच्चयवत्। केवल दर्शन में एक प्रकृति का बंध।

(10) लेश्या मार्गणा– कृष्ण नील कापोत लेश्या में समुच्चय 118 का बंध होता हैं। आहारिक द्विक नहीं, 4 गुणस्थान में ओघवत्। तेजो लेश्या में समुच्चय 111 प्रकृति का बंध। सूक्ष्मत्रिक विकलेन्द्रियत्रिक नरक त्रिक ये नौ टली। पहले गुणस्थान में 108 का बंध आहारक द्विक और जिन नाम नही। दूसरे गुणस्थान में 101 नपुंसक चौक एकेन्द्रियत्रिक ये 7 टली। आगे 7 वें गुणस्थान तक ओघवत्। पद्म लेश्या में समुच्चय 108 का बंध 4 त्रिक की 12 प्रकृति टली। पहले गुणस्थान में 105 आहारक द्विक जिन नाम टल्यो। दूसरे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक ओघवत्। शुक्ल लेश्या में समुच्चय 104 प्रकृति का बंध 13 टली तिर्यंच त्रिक, उद्योत नाम, नरक त्रिक, सूक्ष्म त्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रिय त्रिक। पहले गुणस्थान में 101 ओघ वाली तीन टली। दूसरे गुणस्थान में 97 नपुंसक चौक नहीं। तीसरे में 74, चौथे में 77 यावत् ओघवत्।

(11) भवी मार्गणा– भवी पर्याप्ता में ओघवत्। अपर्याप्ता में ओघ तथा पहला गुणस्थान में 109 जिन एकादश नहीं। दूसरे गुणस्थान में 96 तथा 94 चौथे गुणस्थान में 71 का बंध होता हैं। चौबीसी टली जिन नाम बढ़ा। अभवी पर्याप्ता में समुच्चय तथा पहले गुणस्थान में 117 का बंध। अपर्याप्त में 109 जिन एकादश टला।

(12) समकित मार्गणा– क्षायक समकित में समुच्चय 79 प्रकृति का बंध । चौथे गुणस्थान से 13 वें गुणस्थान तक ओघवत्। ''क्षयोपशम समकित में समुच्चय 79 का बंध गुणस्थान चार से 7 तक ओघवत्। ''उपशम समकित में 77 का बंध

79 में से 2 आयुष्य कम। चौथे गुणस्थान में 75 आहारक द्विक टला। पांचवें में 66 ओघ से देवायु कम। छठे गुणस्थान में 62 प्रत्याख्यानी चौक टला। सातवें में 58ओघवत् यावत् 11 वें गुणस्थान तक ओघवत। सास्वादान समकित में समुच्चय तथा दूसरे गुणस्थान में 101 प्रकृति का बंध। वैसे ही मिश्र में 74 मिथ्यात्व में 117 का बंध।

(13) सन्नी मार्गणा- पर्याप्ता में ओघवत्। सन्नी अपर्याप्त में समुच्चय 109 पहले गुणस्थान में 109 दूसरे में 96 चौथे में 70 तथा सित्तंतर। छबीसी वर्जी तो 70 और जिन पंचक, तिर्यंक, मनुष्यायु बढा तो 77 असन्नी का पर्याप्ता पहला गुणस्थान में 117 अपर्याप्ता में पहले गुण में 109 दूसरे में 96 तथा 94 का बंध।

(14) आहार मार्गणा- आहार पर्याप्ता ओघवत्। आहार का अपर्याप्ता नहीं होता। क्योंकि इसका पर्याप्ता बनने में एक समय लगता। अणाहारक अपर्याप्त 112 का बंध 8 टली। नरक त्रिक, आहारक द्विक, तीन आयु। पहले में 107 जिन पंचक नहीं। दूसरे में 94 सूक्ष्म त्रयोदशी वर्जी। चौथे में 75 ओघवत्। पर्याप्ता में तेरहवें गुण में एक का बंध।

563 जीवों की 563 मार्गणाएँ-563 जीवों में से चारों गति में जितने जीव जहाँ-जहाँ होते है, उनकी 563 मार्गणाएँ-

क्रम	जीवों के भेद 563 जीव	नरक 14	तिर्यंच 48	मनुष्य 303	देव 198
1	अधोलोक में केवली	0	0	1	0
2	निश्चय एक भवावतारी	0	0	0	2
3	तेजोलेशी एकेन्द्रिय	0	3	0	0
4	पृथ्वीकाय	0	4	0	0
5	मिश्रदृष्टि तिर्यंच	0	5	0	0
6	ऊर्ध्वलोक की देवी	0	0	0	6
7	नरक में पर्याप्ता	7	0	0	0
8	दो योगी तिर्यंच में	0	8	0	0
9	ऊर्ध्वलोक नो गर्भज तेजोलेशी	0	3	0	6
10	एकांत सम्यक् दृष्टि	0	0	0	10
11	वचनयोगी चक्षु इं. तिर्यंच	0	11	0	0
12	अधोलोक गर्भज	0	10	2	0
13	वचनयोगी तिर्यंच	0	13	0	0
14	अधोलोक वचनयोगी औदारिक शरीर में	0	13	1	0
15	केवली	0	0	15	0
16	ऊर्ध्व. पंचे. तेजो लेश्या	0	10	0	6
17	समदृष्टि घ्राणे. तिर्यंच	0	17	0	0

18	समदृष्टि तिर्यंच में	0	18	0	0
19	ऊर्ध्वलोक में तेजो लेश्या में	0	13	0	6
20	मिश्रदृष्टि गर्भज	0	5	15	0
21	औदारिक शरीर से वैक्रिय वाले	0	6	15	0
22	एकेन्द्रिय जीवों में	0	22	0	0
23	अधोलोक मिश्रदृष्टि	7	5	1	10
24	घ्राणेन्द्रिय तिर्यंच	0	24	0	0
25	अधो. वचनयोगी देव	0	0	0	25
26	त्रस तिर्यंच में	0	26	0	0
27	ऊर्ध्व. शुक्ल लेशी अभाषक	0	5	0	22
28	बादर तिर्यंच एक संहनन का	0	28	0	0
29	अधो. त्रस औदारिक	0	26	3	0
30	एकांत मिथ्यात्वी तिर्यंच	0	30	0	0
31	अधो. पुरुषवेद भाषक	0	5	1	25
32	पद्मलेशी मिश्रदृष्टि	0	5	15	12
33	पद्मलेशी वचनयोगी में	0	5	15	13
34	ऊर्ध्व. एकांत मिथ्यात्वी	0	28	0	6
35	अवधि दर्शन औदा. शरीर	0	5	30	0
36	ऊर्ध्व एकांत नपुंसक	0	36	0	0
37	अधो. पंचे. नपुंसक	14	20	3	0
38	अधो. मनोयोगी	7	5	1	25
39	अधो. एकांत असंज्ञी	0	38	1	0
40	औदारिक शुक्ल लेशी में	0	10	30	0
41	ऊर्ध्व. तिर्यंच शाश्वता	0	41	0	0
42	शुक्ल लेशी वचन योगी	0	5	15	22
43	ऊर्ध्व. में मनयोगी	0	5	0	38
44	शुक्ल लेशी देवता में	0	0	0	44
45	कर्मभूमि मनुष्य	0	0	45	0
46	अधो. वचनयोगी	7	13	1	25
47	ऊर्ध्व. शुक्ल लेशी अवधिज्ञानी	0	5	0	42

48	अधो. त्रस अभाषक	7	13	3	25
49	ऊर्ध्व शुक्ल लेशी अव. दर्शनी	0	5	0	44
50	ज्योतिषी की आगत में	0	5	45	0
51	अधो. औदारिक शरीर में	0	48	3	0
52	ऊर्ध्व. शुक्ल समदृष्टि	0	10	0	42
53	अधो. एकांत नपुंसक वेद	14	38	1	0
54	ऊर्ध्व. शुक्ल लेशी	0	10	0	44
55	अधो. बादर नपुंसक	14	38	3	0
56	तिर्च्छा. मिश्रदृष्टि में	0	5	15	36
57	अधो. पर्याप्ता	7	24	1	25
58	अधो. अपर्याप्ता	7	24	2	25
59	कृष्ण लेशी मिश्रदृष्टि	3	5	15	36
60	अकर्म संज्ञी मनुष्य	0	0	60	0
61	ऊर्ध्व. अनाहारक	0	23	0	38
62	अधो. एकांत मिथ्यात्वी	1	30	1	30
63	ऊर्ध्व. अधो. देव मरने वाले	0	0	0	63
64	पद्मलेशी समदृष्टि	0	10	30	24
65	अधो. तेजो लेशी	0	13	2	50
66	पद्मलेशी में	0	10	30	26
67	अधो. नो गर्भज प्र.श. शरीरी मरने वाले	7	34	1	25
68	तेजो. मिश्रदृष्टि	0	5	15	48
69	ऊर्ध्व. बादर शाश्वत	0	31	0	38
70	अधो. अभाषक	7	35	3	25
71	अधो. अवधि दर्शन	14	5	2	50
72	तिर्च्छा. देवता	0	0	0	72
73	अधो. बादर मरने वाले	7	38	3	25
74	तिर्च्छा नो गर्भज शाश्वता	0	38	0	36
75	ऊर्ध्व. अवधिज्ञान	0	5	0	70
76	ऊर्ध्व. देवता	0	0	0	76
77	अधो. चक्षु इं. नो गर्भज	14	12	1	50

78	ऊर्ध्व. नो गर्भज समदृष्टि	0	8	0	70
79	ऊर्ध्व. शाश्वत	0	41	0	38
80	धातकी खंड त्रस	0	26	54	0
81	देव समदृष्टि पर्याप्ता	0	0	0	81
82	शुक्ल लेशी समदृष्टि	0	10	30	42
83	अधो. मरने वाले	7	48	3	25
84	शुक्ल लेशी जीवों में	0	10	30	44
85	अधो. कृष्ण लेशी त्रस	6	26	3	50
86	ऊर्ध्व. पुरुष वेद	0	10	0	76
87	ऊर्ध्व. घ्राणे. समदृष्टि	0	17	0	70
88	ऊर्ध्व. समदृष्टि	0	18	0	70
89	अधो. चक्षुइ न्द्रिय	14	22	3	50
90	मनुष्य सम्यगदृष्टि	0	0	90	0
91	अधो. घ्राणेन्द्रिय	14	24	3	50
92	ऊर्ध्व त्रस मिथ्यात्वी	0	26	0	66
93	अधो. त्रस	14	26	3	50
94	देव मिथ्यात्वी पर्याप्त	0	0	0	94
95	नो गर्भ. अभाषक समदृष्टि	6	8	0	81
96	ऊर्ध्व. पंचेन्द्रिय	0	20	0	76
97	अधो. कृष्णलेशी बादर	6	38	3	50
98	धातकी खंड प्रत्ये. शरीरी	0	44	54	0
99	वचनयोगी देवता	0	0	0	99
100	ऊर्ध्व. प्र.श. बादर मिथ्यात्वी	0	34	0	66
101	वचनयोगी मनुष्य	0	0	101	0
102	ऊर्ध्व. त्रस	0	26	0	76
103	अधो. नो गर्भज	14	38	1	50
104	एकांत मिथ्यात्व शाश्वत में	0	30	56	18
105	अधो. बादर में	14	38	3	50
106	मनोयोगी गर्भज में	0	5	101	0
107	अधो. कृष्ण लेशी	6	48	3	50

108	औदा. शरी. समदृष्टि में	0	18	90	0
109	कृष्णलेशी वैक्रि .श. नो गर्भज	6	1	0	102
110	ऊर्ध्व बादर प्रत्येक शरीर	0	34	0	76
111	अधो. प्रत्येक शरीर	14	44	3	50
112	ऊर्ध्व. मिथ्यात्वी	0	46	0	66
113	वचनयोगी घ्राणे. औदारिक	0	12	101	0
114	औदारिक वचनयोगी	0	13	101	0
115	अधोलोक में	14	48	3	50
116	मनुष्य अपर्या. मरने वाला	0	0	116	0
117	क्रियावादी समोसरण नोपकर्मी आयुष्य अमर में	6	0	30	81
118	ऊर्ध्व. प्रत्येक शरीरी में	0	42	0	76
119	घ्राणे. मिश्रयोग शाश्वत में	7	12	15	85
120	एकांत असंज्ञी अपर्याप्त	0	19	101	0
121	विभंग ज्ञान मरने वाला	7	5	15	94
122	कृष्णलेशी स्त्रीवेद वैक्रिय श.	0	5	15	102
123	तीन शरीर और औदा. शाश्वता	0	37	86	0
124	लवण समुद्र घ्राणे. अपर्या.	0	12	112	0
125	लवण समुद्र में तेजो लेशी	0	13	112	0
126	मरने वाला गर्भज जीवों में	0	10	116	0
127	वैक्रिय श. मरने वालो में	7	6	15	99
128	देवी में	0	0	0	128
129	एकांत असंज्ञी बादर	0	28	101	0
130	लवण समुद्र त्रस मिश्रयोगी	0	18	112	0
131	मनुष्य नपुंसक वेद	0	0	131	0
132	शाश्वता मिश्रयोगी	7	25	15	85
133	मनयोगी समदृष्टि असंख्य भव वाला	7	5	45	76
134	बादर औदारिक शाश्वत में	0	33	101	0
135	प्र. शरी. एकांत असंज्ञी	0	34	101	0
136	तीन लेशी औदा. शरीर	0	35	101	0

137	क्रियावादी अशाश्वत	6	5	45	81
138	मनयोगी समदृष्टि में	7	5	45	81
139	औदा. श. नो गर्भज	0	38	101	0
140	कृष्णलेशी अमर	3	0	86	51
141	एकांत नपुं. प्र.श. बादर	14	26	101	0
142	पंचे. समदृष्टि अपर्याप्ता	6	10	45	81
143	एकांत नपुं. बादर	14	28	101	0
144	नो गर्भज शाश्वत	7	38	0	99
145	अपर्या. समदृष्टि	6	13	45	81
146	त्रस नो गर्भज एकांत मिथ्यात्वी	1	8	101	36
147	लवण समुद्र के अभाषक में	0	35	112	0
148	स्त्रीवेद वैक्रिय शरीर में	0	5	15	128
149	संज्ञी एकांत मिथ्यात्वी	1	0	112	36
150	तिर्च्छा. वचनयोगी	0	13	101	36
151	तिर्च्छा. पंचे. नपुंसक	0	20	131	0
152	तिर्च्छा. पंचे. शाश्वत	0	15	101	36
153	एकांत नपुं. वेद	14	38	101	0
154	तिर्च्छा. चक्षु इं. शाश्वत	0	17	101	36
155	तिर्च्छा. प्रत्येक बादर पर्याप्ता	0	18	101	36
156	तिर्च्छा. बादर पर्याप्ता	0	19	101	36
157	मनुष्य एकांत मिथ्या. अपर्या.	0	0	157	0
158	नो गर्भ. एकांत मिथ्या. बादर	1	20	101	36
159	तिर्च्छा. प्र.श. पर्याप्ता	0	22	101	36
160	तिर्च्छा. कृष्णलेशी समदृष्टि	0	18	90	52
161	तिर्च्छा. पर्याप्ता	0	24	101	36
162	देवता समदृष्टि	0	0	0	162
163	स्त्रीवेद अवधि दर्शन	0	5	30	128
164	प्र.श. नो गर्भज एकांत मिथ्या.	1	26	101	36
165	पंचेन्द्रिय नपुंसक वेद	14	20	131	0
166	अभाषक मरने वाला	0	35	131	0

167	कृष्ण लेशी घ्राणे. वचनयोगी	3	12	101	51
168	कृष्ण लेशी वचनयोगी	3	13	101	51
169	तिर्च्छा. नो गर्भज कृष्ण. त्रस	0	16	101	52
170	तेजोलेशी वचनयोगी	0	5	101	64
171	नो गर्भज कृष्ण. त्रस मरने वाला	3	16	101	51
172	कृष्ण. स्त्रीवेद समदृष्टि	0	10	90	72
173	तेजोलेशी अभाषक	0	8	101	64
174	नो गर्भज कृष्ण. अपर्या.	3	19	101	51
175	औदा.श. चार लेशी	0	3	172	0
176	लवण समुद्र त्रस एकांत मिथ्या.	0	8	168	0
177	तिर्च्छा. पंचे. समदृष्टि	0	15	90	72
178	तिर्च्छा. चक्षु इ. समदृष्टि	0	16	90	72
179	तिर्च्छा. समुच्चय नपुंसक वेद	0	48	131	0
180	तिर्च्छा. समदृष्टि	0	18	90	72
181	नो गर्भज चक्षु इ. समदृष्टि	13	6	0	162
182	नो गर्भज घ्राणे. समदृष्टि	13	7	0	162
183	नो गर्भज समदृष्टि	13	8	0	162
184	मिश्रयोगी देव वैक्रि.श.	0	0	0	184
185	कृष्णलेशी समदृष्टि	5	18	90	72
186	नीललेशी समदृष्टि	6	18	90	72
187	अभाषक मनुष्य एक संस्थानी	0	0	187	0
188	विभंगज्ञानी देवता	0	0	0	188
189	तिर्च्छा. नो गर्भज त्रस	0	16	101	72
190	लवण समुद्र चक्षु इन्द्रिय में	0	22	168	0
191	तिर्च्छा. कृष्ण. नो गर्भज	0	38	101	52
192	लवण समुद्र घ्राणे.	0	24	168	0
193	समुच्चय नपुंसक वेद	14	48	131	0
194	लवण समुद्र त्रस जीवों	0	26	168	0
195	समदृष्टि वैक्रिय श.	13	5	15	162
196	तेजो. समदृष्टि	0	10	90	96

197	एक वेदी चक्षु इन्द्रिय	14	12	101	70
198	एकांत मिथ्या. अभाषक	1	22	157	18
199	नो गर्भज वैकि. मिश्रयोगी	14	1	0	184
200	वचनयोगी तीन शरीर	7	8	86	99
201	एक वेदी त्रस	14	16	101	70
202	नो गर्भज विभंग ज्ञानी	14	0	0	188
203	नो गर्भज वै.श. मिथ्यात्वी	14	1	0	188
204	एकांत मिथ्यादृष्टि तीन श. मरने वाला	0	29	157	18
205	एकांत मिथ्यादृष्टि मरने वाला	0	30	157	18
206	लवण समुद्र बादर	0	38	168	0
207	मनयोगी मिथ्यात्वी में	7	5	101	94
208	घणा भाव वाला अवधिज्ञान (विशिष्ट अव.)	13	5	30	160
209	समुच्चय संख्यात काल त्रस मरने वाला	1	26	131	51
210	अवधिज्ञान में	13	5	30	162
211	तिर्च्छा. नो गर्भज	0	38	101	72
212	मनयोगी जीवों में	7	5	101	99
213	एकांत मिथ्यात्वी मनुष्य में	0	0	213	0
214	मिथ्यात्वी वैक्रि. मिश्रयोगी	14	6	15	179
215	औदारिक तेजो लेश्या में	0	13	202	0
216	लवण समुद्र में	0	48	168	0
217	वचनयोगी पंचेन्द्रिय	7	10	101	99
218	त्रस वैक्रिय मिश्र में	14	5	15	184
219	वैक्रिय मिश्र में	14	6	15	184
220	वचनयोगी में	7	13	101	99
221	अचरम बादर पर्याप्ता	7	19	101	94
222	पंचेन्द्रिय शाश्वत	7	15	101	99
223	वैक्रिय मिथ्यात्वी	14	6	15	188
224	चक्षुइन्द्रिय शाश्वत	7	17	101	99
225	प्र.श. बादर पर्याप्ता	7	18	101	99
226	औदा.श. अपर्याप्ता	0	24	202	0

227	नो गर्भज बादर अभाषक	7	20	101	99
228	त्रस शाश्वत	7	21	101	99
229	प्रत्येक शरीरी पर्याप्ता	7	22	101	99
230	त्रस औदा.श. अभाषक	0	13	217	0
231	पर्याप्त जीवों में	7	24	101	99
232	पंचे. औदा. मिश्रयोगी	0	15	217	0
233	वैक्रिय शरीर	14	6	15	198
234	औदा. मिश्रयोगी घ्राणे.	0	17	217	0
235	औदा. मिश्रयोगी त्रस	0	18	217	0
236	मनुष्य की आगति नो गर्भज में	6	30	101	99
237	औदा.श. पंचे. मरने वाला	0	20	217	0
238	प्र.श. बादर शाश्वत	7	31	101	99
239	समदृष्टि मिश्रयोगी	13	18	60	148
240	शाश्वत बादर	7	33	101	99
241	प्र.श. नो गर्भज मरने वाला	7	34	101	99
242	बादर औदा. मिश्रयोगी	0	25	217	0
243	औदा. एकांत मिथ्यात्वी	0	30	213	0
244	तीन शरीर नो गर्भज मरने वाला	7	37	101	99
245	समुच्चय असंज्ञी त्रस	1	21	172	51
246	प्र.श. शाश्वत में	7	39	101	99
247	अवधि दर्शन में	14	5	30	198
248	तिर्यक पंचेन्द्रिय अपर्याप्ता	0	10	202	36
249	तिर्यक चक्षु इन्द्रिय अपर्याप्ता	0	11	202	36
250	भव्य सिद्धि शाश्वत में	7	43	101	99
251	तिर्यक त्रस अपर्याप्ता	0	13	202	36
252	औदा. अभाषक	0	35	217	0
253	मिश्रयोगी मरने वाला	7	30	131	85
254	स्त्रीवेद मिश्रयोगी में	0	10	116	128
255	पंचे. एकांत मिथ्यात्वी	1	5	213	36
256	चक्षुइ. एकांत मिथ्यात्वी	1	6	213	36

257	घ्राणे. एकांत मिथ्यात्वी	1	7	213	36
258	त्रस एकांत मिथ्यात्वी	1	8	213	36
259	धर्मदेव की आगत घ्राणे.	5	24	131	99
260	पंचे. तीन शरीरी समदृष्टि	13	10	75	162
261	कृष्ण लेशी अशाश्वत	3	5	202	51
262	पुरुषवेदी समदृष्टि	0	10	90	162
263	प्र.श. समुच्चय असंज्ञी	1	39	172	51
264	तिर्यक कृष्णलेशी स्त्रीवेद	0	10	202	52
265	औदा.श. मरने वाला	0	48	217	0
266	पंचे. कृष्णलेशी अनाहारी	3	10	202	51
267	चक्षुइं. कृष्णलेशी अनाहारी	3	11	202	51
268	एक दृष्टि त्रसकाय	1	8	213	46
269	तिर्यक् कृष्णलेशी मरने वाला	0	26	217	26
270	बादर एकांत मिथ्यात्वी	1	20	213	36
271	मनुष्य आगति के मिथ्यात्वी में	6	40	131	94
272	मनुष्य की आगत प्र.शरी.	6	36	131	99
273	नील लेशी एकांत मिथ्यात्वी	0	30	213	30
274	कृष्णलेशी एकांत मिथ्यात्वी	1	30	213	30
275	क्रियावादी समोसरण में	13	10	90	162
276	मनुष्य की आगति में	6	40	131	99
277	चार लेश्या वाला में	0	3	172	102
278	तिर्यक बादर अभाषक में	0	25	217	36
279	चक्षुइं. समदृष्टि अनेक भवी	13	16	90	160
280	पंचेन्द्रिय समदृष्टि	13	15	90	162
281	चक्षुइन्द्रिय समदृष्टि	13	16	90	162
282	घ्राणे. समदृष्टि में	13	17	90	162
283	त्रसकाय समदृष्टि में	13	18	90	162
284	तिर्च्छा. पुरुष वेद	0	10	202	72
285	चक्षुइं. एक संस्थान औदा.	0	12	273	0
286	एक दृष्टि प्रत्येक शरीरी में	1	26	213	46

287	तिर्यक तेजोलेशी में	0	13	202	72
288	तीन शरीरी मनुष्य में	0	0	288	0
289	त्रस एक संस्थान औदा.	0	16	273	0
290	एक दृष्टि वाला जीवों में	1	30	213	46
291	तिर्यक् कृष्णलेशी मरने वाला	0	48	217	26
292	ज.अंत.उ. दो सागर एक संठाण मरने वाला	2	38	187	65
293	चक्षु.इं. कृष्णलेशी मरने वाला	3	22	217	51
294	नो गर्भज की आगत में कृष्ण-त्रस में	0	26	217	51
295	घ्राणे. कृष्णलेशी मरने वाला	3	24	217	51
296	एकांत संज्ञी में	13	5	131	147
297	त्रस कृष्णलेशी मरने वाला	3	26	217	51
298	पंचे. अपर्या. एक संस्थानी	7	5	187	99
299	चक्षु इं. अपर्या. एक संस्थानी में	7	6	187	99
300	स्त्रीवेद एक संस्थानी में	0	0	172	128
301	एक संस्थानी औदा. बादर	0	28	273	0
302	घ्राणे. एक संस्थानी अचरम मरने वाला	7	14	187	94
303	मनुष्य में	0	0	303	0
304	नो गर्भज पंचे. मिश्रयोगी में	14	5	101	184
305	समदृष्टि आगत कृष्णलेशी बादर में	3	34	217	51
306	तिर्यक घ्राणे. मिश्रयोगी	0	17	217	72
307	तिर्यक त्रस मिश्रयोगी	0	18	217	72
308	अशाश्वता मिथ्यात्वी में	7	5	202	94
309	समदृष्टि आगत एक संस्थानी त्रस में	7	16	187	99
310	औदा. तीन शरीरी एक संस्थानी	0	37	273	0
311	औदा. एक संस्थानी	0	38	273	0
312	नो गर्भज की आगति कृष्ण.प्र. शरीरी	0	44	217	51
313	अशाश्वत में	7	5	202	99
314	कृष्णलेशी स्त्रीवेद में	0	10	202	102
315	प्र.शरी. कृष्णलेशी मरने वाला	3	44	217	51
316	त्रस अनाहारी अचरम	7	13	202	94

317	नो गर्भज घ्राणे. मिथ्यात्वी	14	14	101	188
318	श्रोत्रेन्द्रिय अपर्याप्ता में	7	10	202	99
319	कृष्णलेशी मरने वाला	3	48	217	51
320	तीन शरीरी स्त्रीवेद	0	5	187	128
321	त्रस अपर्याप्ता	7	13	202	99
322	बादर अनाहारी अचरम	7	19	202	94
323	नो गर्भज पंचेन्द्रिय में	14	10	101	198
324	तीन श. त्रस मिथ्यात्वी मरने वाला	7	21	202	94
325	औदा. चक्षुइन्द्रिय	0	22	303	0
326	मिथ्यात्वी एक संस्थानी मरकर	7	38	187	94
327	नो गर्भज घ्राणे.	14	14	101	198
328	बादर अभाषक अचरम	7	25	202	94
329	औदा. त्रस	0	26	303	0
330	औदा. एकांत भव धारणी देह	0	42	288	0
331	नो गर्भज बादर मिथ्यात्वी	14	28	101	188
332	त्रस मिथ्यात्वी एकांत संख्यात काल की स्थिति वाला	7	24	207	94
333	चक्षुइं. मिथ्यात्वी एकांत संख्यात काल की स्थिति वाला	7	20	207	99
334	तिर्यक अधो. की स्त्री में	0	10	202	122
335	घ्राणे. एकांत संख्यात काल की स्थिति का	7	22	207	99
336	कार्मण योग त्रस	7	13	217	99
337	नो गर्भज प्र.श. अचरम में	14	34	101	188
338	अभाषक अचरम में	7	35	202	94
339	ऊर्ध्व. तिर्य. के मरने वाले	0	48	217	74
340	नो गर्भज बादर तीन शरीरी में	14	27	101	198
341	औदा. बादर में	0	38	303	0
342	घ्राणे. में मिथ्यात्वी मरने वाले	7	24	217	94
343	तेजोलेश्या वाला जीवों में	0	13	202	128
344	त्रस मिथ्या. मरने वाले	7	26	217	94

345	तीन शरीरी मिथ्या. मरने वाले	7	42	202	94
346	प्र.श.ज.अं.उ.16 सागर मरने वाले	5	44	217	80
347	अनाहरक जीवों में	7	24	217	99
348	बादर अभाषक	7	25	217	99
349	त्रसपणे मरने वाले	7	26	217	99
350	नो गर्भज तीन शरीरी	14	37	101	198
351	औदा. शरीरी में	0	48	303	0
352	ज.अं.उ.17 सागर स्थि. में मरने वाले	6	48	217	81
353	नो गर्भज गति के त्रस तीन शरीरी में	2	21	228	102
354	मिथ्या. एकांत संख्यात स्थिति में	7	46	207	94
355	तिर्च्छा. पंचे. एक संस्थानी	0	10	273	72
356	बादर मिथ्यात्वी मरने वाले में	7	38	217	94
357	सम्य. आगति के बादर में	7	34	217	99
358	अभाषक में	7	35	217	99
359	तिर्यक् घ्राणे. एक संस्थानी	0	14	273	72
360	ऊर्ध्व. तिर्यक पुरुष वेद में	0	10	202	148
361	तिर्यक् त्रस एक संस्थानी	0	16	273	72
362	प्र.श. मिथ्या. मरने वाले में	7	44	217	94
363	सम्य. आगति में	7	40	217	99
364	नो गर्भज गत के बादर तीन शरीरी	2	32	228	102
365	ज.अं.उ.29 सागर स्थिति मरने वाले	7	48	217	93
366	मिथ्यात्व में मरने वाले	7	48	217	94
367	प्र.श. मरने वाले	7	44	217	99
368	पुरुष एक संस्थानी अनेक भव वाला	0	0	172	196
369	अधो. तिर्य. चक्षु. मिश्रयोगी	14	16	217	122
370	कृष्णलेशी संख्यात स्थिति वाला	3	48	217	102
371	समुच्चय मरने वाले में	7	48	217	99
372	तिर्यक् कृष्ण. तीन शरीरी में	0	32	288	52
373	तिर्यक् बादर एक संस्थानी में	0	28	273	72
374	बादर कृष्ण. एकांत भव धारणी शरीर में	3	32	288	51

375	तिर्यंक पंचे. कृष्णलेशी	0	20	303	52
376	एक संस्थानी मिश्र योगी पंचे. अनेरिया	0	5	187	184
377	तिर्यक् चक्षु. कृष्णलेशी में	0	22	303	52
378	भुजपरि. की जाति के पंचे. संज्ञी	4	10	202	162
379	तिर्यक् घ्राणे. कृष्णलेशी	0	24	303	52
380	पुरुष तीन शरीरी अचरम में	0	5	187	188
381	तिर्यक् त्रस कृष्णलेशी	0	26	303	52
382	तिर्य. तीन शरीरी कृष्ण.	0	42	288	52
383	तिर्य. एक संस्थानी	0	38	273	72
384	संज्ञी एक संस्थानी	14	0	172	198
385	नो गर्भज की गत के बादर में	2	38	243	102
386	अधो.तिर्य.बा.प्र. भवधारणी अवगाहना	7	30	288	61
387	ऊर्ध्व.ति. त्रस मिथ्या एकांत भवधारणी देह में	0	21	288	78
388	अधो. में तिर्यक एकांत भवधारणी देह बादर में	7	32	288	61
389	संज्ञी अभवी तीन श. अ. तिर्यंच में	14	0	187	188
390	पुरुष वेद तीन शरीर	0	5	187	198
391	पंचे. कृष्णलेशी एक संस्थानी	6	10	273	102
392	तिर्यक बादर तीन शरीरी में	0	32	288	72
393	तिर्यक बादर कृष्णलेशी	0	38	303	52
394	संज्ञी अभव्य तीन शरीरी	14	5	187	188
395	तिर्यक पंचेन्द्रिय में	0	20	303	72
396	पुरुष वेदी मिथ्यादृष्टि ज.अं.उ. 28 सागर की स्थिति में	0	10	202	184
397	तिर्यक चक्षुइन्द्रिय में	0	22	303	72
398	अधो. में तिर्यक एकांत भवधारणी देह में	7	42	288	61
399	तिर्यक् घ्राणेन्द्रिय में	0	24	303	72
400	अभव्य पुरुष वेद में	0	10	202	188
401	तिर्यक् त्रस जीवों में	0	26	303	72

402	तिर्यक् तीन शरीरी	0	42	288	72
403	तिर्यक् कृष्णलेश्या	0	48	303	52
404	समु.संज्ञी असं. भव वाला अ. तिर्यंच	14	0	202	188
405	उर परि. की गत का चक्षु.इ. मिश्रयोगी में	10	16	217	162
406	उर परि. की गत का घ्राणे. मिश्रयोगी	10	17	217	162
407	बादर प्र.कृष्ण. एक संस्थानी	6	26	273	102
408	तिर्यक् एकांत छद्मस्थ	0	48	288	72
409	बादर कृष्ण एक संस्थानी में	6	28	273	102
410	पुरुष वेद में	0	10	202	198
411	तिर्यक् प्र. शरीरी बादर में	0	36	303	72
412	स्त्री की गत का संज्ञी मिथ्यात्व में	12	10	202	188
413	प्रशस्त लेश्या में	0	13	202	198
414	संज्ञी मिथ्यात्वी में	14	10	202	188
415	प्र.श.कृष्ण. एक संस्थानी	6	34	273	102
416	अप्रशस्तलेशी तीन श.बा. एक संस्थानी	14	27	273	102
417	स्त्री की गत कृष्ण. एक संस्थानी	4	38	273	102
418	प्र.बादर एक संस्थानी एकांत भवधारणी देह में	7	25	273	113
419	कृष्णलेशी एक संस्थानी में	6	38	273	102
420	मिश्रयोगी बादर एकांत असंयम में	14	20	202	184
421	स्त्री की गत का अप्रशस्त लेशी प्र.श. एक संस्थानी में	12	34	273	102
422	स्त्री की गत का संज्ञी में	12	10	202	198
423	प्र.श. मिश्रयोगी एकांत असंयम में	14	23	202	184
424	समुच्चय संज्ञी में	14	10	202	198
425	मिश्रयोगी एकांत अपच्चक्खाणी	14	25	202	184
426	कृष्णलेशी बादर प्र. तीन शरीरी	6	30	288	102
427	अप्रशस्त लेशी एक संस्थानी में	14	38	273	102
428	कृष्णलेशी बादर तीन शरीर	6	32	288	102
429	कृष्णलेशी बादर एकांत असंयम में	6	33	288	102

430	स्त्रीगत के त्रस मिश्रदृष्टि अनेक भवी	12	18	217	183
431	स्त्री की गत के त्रस मिश्र	12	18	217	184
432	त्रस मिश्रयोगी संख्या. भव वाला	14	18	217	183
433	त्रस मिश्रयोगी	14	18	217	184
434	कृष्ण प्र. तीन शरीरी में	6	38	288	102
435	मिश्रयोगी बादर मिथ्यात्वी	14	25	217	179
436	बा. तीन शरीरी अप्रशस्त लेशी	14	32	288	102
437	बा. एकांत अपच्चखाणी अप्रशस्त लेशी	14	33	288	102
438	कृष्णलेशी तीन शरीरी में	6	42	288	102
439	कृष्णलेशी एकांत अपच्चक्खाणी	6	43	288	102
440	मिश्रयोगी बादर	14	25	217	184
441	अधो. तिर्यक के चक्षुइं. तीन शरीरी	14	17	288	122
442	प्र. तीन शरीरी अप्रश. लेशी में	14	38	288	102
443	प्र. मिश्रयोगी में	14	38	288	102
444	प्र. एकांत भवधारणी देह अनेक भवी	7	38	288	111
445	अधो.ति. तीन शरीरी त्रस में	14	21	288	122
446	अप्र. लेश्या तीन शरीरी	14	42	288	102
447	एकांत असंयम अप्रश. लेशी	14	43	288	102
448	एकांत भव. देह बहुत भव वाला	7	42	288	111
449	स्त्री गत के एकांत भव.धा.देह	6	42	288	113
450	भवसिद्धि के एकांत भव.धा.देह	7	42	288	113
451	उरपरि. की गत कृष्ण.प्र. शरीरी	2	44	303	102
452	भुजपरि. की गत का अधो.तिर्य. प्रत्येक तीन शरीरी	4	38	288	122
453	स्त्री की गत कृष्ण.प्र. शरीरी	4	44	303	102
454	ऊर्ध्व. तिर्यक एकांत छद्मस्थ पंचेन्द्रिय बहुत भवों वाला	0	20	288	146
455	कृष्णलेशी प्रत्येक शरीरी	6	44	303	102
456	अधो.ति. तीन शरीरी बादर	14	32	288	122
457	अप्रशस्त लेशी बादर	14	38	303	102

458	ऊर्ध्व.ति. के एकांत छद्मस्थ चक्षु.	0	22	288	148
459	ऊर्ध्व.ति. के एक संस्थानी में	0	38	273	148
460	ऊर्ध्व.ति. के एकांत छद्मस्थ घ्राणे.	0	24	288	148
461	अधो.ति. के चक्षु इन्द्रिय में	14	22	303	122
462	अधो.ति. के बादर एकांत छद्मस्थ	14	38	288	122
463	अधो.ति. के घ्राणे. में	14	24	303	122
464	स्त्रीगत के अधो.तिर्य. तीन शरीरी	12	42	288	122
465	अधो.ति. के त्रस	14	26	303	122
466	अधो.ति. के तीन शरीरी	14	42	288	122
467	अप्रशस्त लेश्या में	14	48	303	102
468	ऊर्ध्व.ति. तीन शरीरी बादर	0	32	288	148
469	ऊर्ध्व.ति. एकांत असंयम बादर	0	33	288	148
470	अधो.ति. छद्मस्थ स्त्रीगति में	12	48	288	122
471	ऊर्ध्व. पंचेन्द्रिय में	0	22	303	148
472	अधो.ति. एकांत छद्मस्थ	14	48	288	122
473	ऊर्ध्व.ति. चक्षुइन्द्रिय में	0	22	303	148
474	ऊर्ध्व.ति. एकांत छद्मस्थ बादर	0	38	288	148
475	ऊर्ध्व.ति. घ्राणे.	0	24	303	148
476	ऊर्ध्व.ति. तीन शरीरी अनेक भव वाला	0	42	288	146
477	ऊर्ध्व.ति. त्रस में	0	26	303	148
478	ऊर्ध्व.ति. तीन शरीरी में	0	42	288	148
479	ऊर्ध्व.ति. एकांत असंयम में	0	42	288	148
480	ऊर्ध्व.ति. एकांत छद्मस्थ प्र. शरीरी	0	44	288	148
481	स्त्रीगति के अधो.ति. प्रत्येक शरीरी	12	44	303	122
482	ऊर्ध्व. तिर्च्छा. एकांत छद्मस्थ अनेक भव वाला	0	48	288	146
483	अधो.ति. प्रत्येक शरीरी में	14	44	303	122
484	ऊर्ध्व. तिर्च्छा. एकांत छद्मस्थ	0	48	288	148
485	स्त्री की गत के अधोतिर्यक में	12	48	303	122
486	भुज परि. की गत के तीन श. बादर	4	32	288	162

487	अधो तिच्र्छा लोक में	14	48	303	122
488	खेचर गति के तीन शरीरी बादर में	6	32	288	162
489	ऊर्ध्व तिच्र्छा. बादर में	0	38	303	148
490	स्थलचर गत के तीन शरीरी बादर	8	32	288	162
491	खेचर गत के पंचेन्द्रिय में	6	20	303	162
492	उरपरि. गत के तीन शरीरी बादर	10	32	288	162
493	ऊर्ध्व.तिच्र्छा.प्र.श. अनेक भवों वाला	0	44	303	146
494	खेचर गत के प्र. तीन शरीरी	6	38	288	162
495	ऊर्ध्व.ति.प्र. शरीरी में	0	44	303	148
496	भुजपरि. गत के तीन शरीरी में	4	42	288	162
497	खेचर गत के त्रस में	6	26	303	162
498	खेचर गत के तीन शरीरी में	6	42	288	148
499	ऊर्ध्व तिच्र्छा लोक में	0	48	303	148
500	स्थलचर गत के तीन शरीरी	8	42	288	162
501	त्रस एक संस्थानी	14	16	273	198
502	उरपरि. गत के 3 शरीरी	10	42	288	162
503	संज्ञी तिर्यंच गत के घ्राणे.	14	24	303	162
504	खेचर गति के एकांत छद्मस्थ	6	48	288	162
505	संज्ञी तिर्यंच की गत के त्रस	14	26	303	162
506	संज्ञी तिर्यंच की गत के 3 शरीरी	14	42	288	162
507	अंतरद्वीप के पर्या. के अलद्धिया	14	48	247	198
508	उरपरि. तिर्यंच गत के एकांत सकषायी में	10	48	288	162
509	थलचर तिर्यंच गत के प्र.श.बा.	8	36	303	162
510	तिर्यंचणी गत के एकांत सयोगी	12	48	288	162
511	एक संस्थानी प्र.श. बादर	14	26	273	198
512	तिर्यंच गत एकांत सयोगी में	14	48	288	162
513	एक संस्थानी मिथ्यात्वी में	14	38	273	188
514	मध्य जीवों को स्पर्शने वाले एकांत छद्मस्थ चक्षुइं. में	14	22	288	190
515	तिर्यंचणी गत के बादर में	12	38	303	162

516	मध्य जीवों की स्पर्शना वाले एकांत छद्मस्थ घ्राणे. में	14	24	288	190
517	एक संस्थान स्त्री गत के प्र.श.	12	34	273	198
518	पंचे. में एकांत छद्मस्थ अनेक भवी	14	20	288	196
519	घ्राणे. एकांत छद्मस्थ असंयम	14	19	288	198
520	पंचेन्द्रिय एकांत छद्मस्थ	14	20	288	198
521	एक संस्थानी घणा भवा वाला	14	38	273	196
522	एकांत सकषाय चक्षुइं. में	14	22	288	198
523	एक संस्थानी में	14	38	273	198
524	एकांत सकषायी घ्राणे.	14	24	288	198
525	पंचे. मिथ्यात्वी में	14	20	303	188
526	एकांत सकषायी त्रस में	14	26	288	198
527	तिर्यंच गत में	14	48	303	162
528	एकांत छद्मस्थ बादर मिथ्यात्वी	14	38	288	188
529	स्त्री की गत के त्रस मिथ्यात्वी में	12	26	303	188
530	स्त्री की गत के तीन शरीरी बादर एकांत सकषायी में	12	32	288	198
531	स्त्री के गत के पंचे. संख्यात भव वाला	12	20	303	196
532	तीन शरीरी बादर में	14	32	288	198
533	एकांत असंयम बादर में	14	33	288	198
534	एकांत छद्मस्थ अभवी प्र. शरीरी	14	44	288	188
535	पंचेन्द्रिय जीवों में	14	20	303	198
536	स्त्री की गत के बादर एकांत सकषायी	12	38	288	198
537	स्त्री की गत के घ्राणे. में	12	24	303	198
538	एकांत छद्मस्थ बादर में	14	38	288	198
539	घ्राणेन्द्रिय में	14	24	303	198
540	स्त्री की गत के तीन शरीरी में	12	42	288	198
541	त्रस जीवों में	14	26	303	198
542	तीन शरीरी एकांत छद्मस्थ	14	42	288	198
543	एकांत असंयम में	14	43	288	198

544	प्र.श. एकांत छद्मस्थ में	14	44	288	198
545	सम्य. तिर्यंच के अलद्धिया में	14	30	303	198
546	एकांत छद्मस्थ अनेक भव वाला	14	48	288	196
547	स्त्री की गत प्र.श. मिथ्यात्वी में	12	44	303	188
548	एकांत छद्मस्थ में	14	48	288	198
549	मिथ्यात्वी प्रत्येक शरीरी में	14	44	303	188
550	सम्य. नारकी के अलद्धिया में	1	48	303	198
551	स्त्री की गत के मिथ्यात्वी	12	48	303	198
552	एकेन्द्रिय पर्याप्त का अलद्धिया	14	37	303	198
553	मिथ्यात्वी	14	48	303	188
554	नवग्रैवेयक के पर्या. अलद्धिया में	14	48	303	189
555	जीवों का मध्यभेद स्पर्शने वाले	14	48	303	190
556	नरक पर्याप्ता का अलद्धिया में	7	48	303	198
557	स्त्री की गत का प्र. शरीरी में	12	44	303	198
558	तिर्यंच पं. वैक्रिय का अलद्धिया में	14	43	303	198
559	प्रत्येक शरीरी में	14	44	303	198
560	तेजो. एकेन्द्रिय का अलद्धिया में	14	45	303	198
561	बहुत भव वाले जीवों में	14	48	303	196
562	एके. वैक्रिय शरीरी अलद्धिया	14	47	303	198
563	सर्व संसारी जीवों में	14	48	303	198

आगम सारांश ग्रंथों के लेखक

परिचय

लेखक

वरिष्ठ स्वाध्यायी तत्त्व चिंतक

"जिन शासन रत्न"

श्री विमल कुमार नवलखा

प्रस्तुत 'जैनागम सारांश' (आगम बत्तीसी) को 4 भागों में विभक्त कर अपने आगम कौशल्य से ग्रंथ के रचनाकर तत्त्वचिन्तक आगमों के अध्येता श्री विमल कुमारजी नवलखा का जन्म वि.सं. २०११ के कार्तिक सुदी ५ ज्ञान पंचमी दि. १-११-१९५४ को भीलवाड़ा जिलान्तर्गत आसीन्द तहसील के जगपुरा ग्राम में हुआ।

पुण्योदय से आप अनेकों आचार्य एवं विद्वानों संत मुनिराजों एवं विदुषी साध्वी रत्नों के सम्पर्क में आये। गुरुदेवों के शुभाशीर्वाद से अपनी प्रामाणिकता के बल पर व्यावसायिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होकर परिवार व समाज की सेवा में अग्रसर बनें। आपकी धार्मिक-भावना एवं श्रुत-सेवा की रूचि प्रबल से प्रबलत्तर होती गई।

सन् १९७५ में आप श्री स्वाध्यायी संघ, गुलाबपुरा के सक्रिय एवं कर्मठ सदस्य बनें तथा पूरे भारतवर्ष में प्रत्येक राज्य के प्रमुख नगरों में पधारकर पर्युषण पर्वाराधनार्थ सेवाएं प्रदान की। जैन-समाज के लिए अति उपयोगी जैनागमों के हिन्दी सारांश तथा जैन तत्त्व दर्शन के दो खण्ड (भगवती, प्रज्ञापना एवं विविध सुत्तागमों के थोकड़े) तथा अन्तर्मन के मोती (पयुर्षण प्रवचनोपयोगी) जैनागमों में मध्यलोक एवं जैन धर्म में उत्कृष्ट तप संलेखना संथारा, जैनागमों में लोकस्वरूप आदि जैन-धर्म-दर्शन के लिए अप्रतिम देन है। आपकी इस श्रुत-सेवा से सम्पूर्ण जैन समाज गौरवान्वित हुआ है। श्रुत सेवा से प्रभावित होकर दिनांक 7 जनवरी 2024 को जोधपुर में विधायक श्री अतुल जी भंसाली द्वारा ''जिनशासन रत्न'' की उपाधि से अलंकृत किया है।

श्री विमल कुमारजी नवलखा के पुज्यनीय पिताजी श्रीमान् फतेहलालजी सा. नवलखा एवं मातृश्री श्रीमती उगमदेवीजी नवलखा भी अत्यन्त धर्म परायण, महान् व्यक्तित्व के धनी है। धर्मपत्नि श्रीमती सुशीलादेवीजी नवलखा की सेवा तो अतुल्य है। इन्होंने दो-दो मासखण की तपस्याएं भी की हैं। आज भी कीम पीपोदरा में जैन संतमुनिराजों एवं महासतियांजी की सेवा में अनवरत लगे रहते हैं। समाज की सेवा तो इस परिवार का प्रमुख गुण है। श्री विमलजी नवलखा कई वर्षो से दक्षिण गुजरात राजस्थान स्थानकवासी जैन महासंघ के मंत्री के रूप में समाज सेवा में अग्रसर हैं।

इनके पाँच पुत्र रत्न हैं। श्री विनय कुमार, तरूण कुमार, चेतन प्रकाश, विकास एवं लोकेश ये पाँचों ही सुपुत्र अत्यन्त धर्मानुरागी, निर्व्यसनी, सदाचारी और समस्त सद्गुणों से युक्त चरित्रनिष्ठ सुश्रावक युवा रत्न हैं। साधुसंतों की सेवा, समाज की सेवा तो मानों विरासत से मिले सद्गुण हैं। समाज सेवा में हमेशा अग्रसर रहता यह सम्पूर्ण परिवार वास्तव में समाज के लिए एक उदाहरण है, दृष्टान्त है। श्री विमलजी की दो बहिनें श्रद्धेया शीलप्रभाजी म.सा. एवं श्रद्धेया सत्यप्रभाजी म.सा. आचार्य श्री विजयराजजी म.सा. के सानिध्य में संयम-साधना में निरंतर अग्रसर है।

जिन शासन की सेवा में अग्रसर इस परिवार की पारिवारिक और सामाजिक समृद्धि हमेशा बनी रहे।

इसी आशा के साथ...